रामायण में प्रतिबिम्बित भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की पी-एच० डी० उपधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
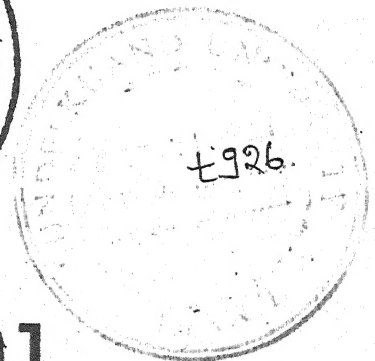
2000-2001

शोध पर्यवेक्षक
प्रो० बी० एन० रॉय
से० नि० अध्यक्ष, इतिहास विभाग

शोधार्थिनी
(श्रीमती) गीता अग्रवाल

पं० जवाहरलाल नेहरू पी० जी० कालेज, बाँदा (उ० प्र०)

(प्रो०) बी०एन० रॉय

सेoनिo अध्यक्ष, इतिहास विभाग
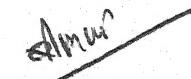
पं० जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय

बाँदा(उ०प्र०)

दिनाँक 6-12-2010

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि-

१. (श्रीमती) गीता अग्रवाल ने मेरे निर्देशन में **''रामायण में प्रतिबिम्बित भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था''** विषय पर शोध कार्य किया है।

२. इन्होंने मेरे यहाँ निर्धारित अवधि तक उपस्थिति दी है।

३. इनका शोध कार्य मौलिक है।

यह शोध प्रबन्ध अब इस स्थिति में है कि इसे पी०एच-डी०उपाधि हेतु मूल्यांकन के लिये प्रस्तुत किया जा सकता है।

(बी०एन० रॉय)

शोध-पर्यवेक्षक

आमुख

प्राचीन भारतीय संस्कृति का मूल ढाँचा वैदिक कालीन संस्कृति पर आधारति माना जाता है। भारत में आर्यो का अनार्यों से युद्ध, यहाँ कि असभ्यता एवं जंगलीपन को दूर करने के लिये तथा आर्य संस्कृति का प्रचार-प्रसार करने के लिये आर्यो का उद्‌भूत होना भारतीय इतिहास की बहुप्रतिष्ठित घटना है।

महर्षि वाल्मीकि कि ने रामायण की रचना कब की यह एक विवाद का प्रश्न है, लेकिन इसका उत्तर रामायण के सूक्ष्मावलोकन से मिल जाता है। उस समय का समाज वर्णाश्रमावस्था से विभाजित था दूसरी ओर उसके पूर्व का युग चतुराश्रम व्यवस्था से पूर्णतः परिचित नहीं दिखाई पड़ता। रामायण में एक ओर एक पत्नी व्रत की बात कही गयी दूसरी ओर गन्धर्व विवाह द्वारा राजा को अनेक पत्नियों को रखने की छूट दी गयी है, वाल्मीकि ने ऐसा क्यों किया? निश्चित रूप से तत्कालीन भारतीय सामाजिक संस्थाओं पर इसका प्रभाव पड़ा होगा।

यह सत्य है कि रामायण कालीन समाज का वास्तविक स्वरूप पूर्वाग्रह रहित होकर प्रस्तुत करने का प्रयास नहीं किया गया। किसी ने राम के जीवन से लेकर सीता के पृथ्वी तल तक की बात कहीं है, किसी ने तत्कालीन इसीलिये हमारी समस्या ज्यों की त्यों बनी हुयी है। और हम रामायण का कोई ठोस ढाँचा नहीं बना पाये। पूर्णरूपेण अध्ययन किया जाये। जिसमें सभी पक्षों की समस्या का हल हो जाये।

राजनीतिक प्रक्रिया के अंतर्गत जब वाल्मीकि युद्ध का वर्णन करते है तो कहीं पर यह आदेश देते हैं कि जब तक शत्रु पक्ष से हमला न हो तब तक आक्रमण नहीं करना चाहिये। और कहीं पर विभीषण की मदद से अपने प्रतिशोध का बदला लेते हुये दिखाई पड़ते है। तो रामायण में ऐसी स्थिति क्यों चित्रित की गयी है? ऐसी समस्या का निदान ढूँढना चाहिये। अतएव हमारी समस्या यह नहीं है कि वाल्मीकि ने किस घटना का विवरण दिया अथवा नहीं दिया, अपितु समस्या यह है कि ऐसा क्यों किया गया। वाल्मीकि के इस प्रयास का भारतीय समाज, राज्य पर क्या प्रभाव पड़ा? साथ ही वैदेशिक सभ्यता पर रामायण के रचना, शिल्प का क्या असर रहा, यह भी हमारे शोध की एक समस्या है।

रामायण पर काम करने वालों में सी० वी० वैद्य, एस० एन० व्यास, ए० डी० पुसालकर, नीलमाधवसेन, विजयराज, जैसे मनीषियों ने कार्य किया है लेकिन उससे रामायणकाल की समाज की समग्रता का बोध नहीं होता है। इस पक्ष में न्याय तभी संभव है जब उसकी समग्रता को ध्यान में रखा जाये। और जो परिस्थितियाँ रामायण में वर्णित है उनका तुलनात्मक अध्ययन किया जाये। तभी वाल्मीकिं कि अन्तदृष्टि का आभास हो पायेगा। इस प्रकार किया गया कार्य समाज एवं राष्ट्रोपयोगी हो सकेगा। लेकिन इन सब में से जैसे रामायण कालीन समाज की समग्रता का बोध नहीं हो पाया है, या कोई पक्ष कोई पक्ष की पूर्ति नहीं हो पायी है। ऐसा संभवतः उनकी विषय चयन की प्रतिबद्धता के कारण रहा होगा। इसलिये इस शून्य को पूरा करने के लिये यह शोध प्रबंध "रामायण में प्रतिबिम्बित भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था" में लिखा गया है। विषय सामग्री प्राप्त करने के लिये मेरे द्वारा कठिन परिश्रम किया गया है। लम्बी अवधि व्यतीत हो जाने के पश्चात् भी मुझे ऐतिहासिक महत्वपूर्ण साक्ष्य ग्रन्थ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हो पाये है। अतः जो भी सामग्री उपलब्ध हुयी है, उसी से हमको सन्तोष करना पड़ा।

इतिहास में ज्ञान प्राप्त करना और रुचि रखना दोनों बड़े कठिन कार्य है। आज यह जो शोध-प्रबन्ध पूर्णता को प्राप्त हुआ है, उसमें केवल मेरा ही परिश्रम नहीं है बल्कि पं० जे० एन० पी० जी० कॉलेज बाँदा के सेवानिवृत इतिहास विभागाध्यक्ष प्रो० बी० एन० रॉय जी के कुशल निर्देशन का परिणाम है। मुझे विश्वास है कि मेरा यह शोध प्रबन्ध भविष्य में उपयोगी सिद्ध होगा और पाठकगण इससे लाभ उठायेगें।

कोई भी शोधकार्य एक लक्ष्य की पूर्ति के लिये किया जाता है। और जब तक लक्ष्य की पूर्ती नहीं हो पाती उस समय तक यह शोध कार्य चलता है। जिन लक्ष्यों को ध्यान में रखकर शोध कार्य किया गया है उनकी पूर्ति हुयी है तथा इस पूर्ति के बाद मुझे बड़ा सुख का अनुभव प्राप्त हुआ है।

इस शोध के माध्यम से अति प्राचीन भारतीय संस्कृति के यर्थाथ को बहुत अच्छी तरह से समझने का अवसर मिला। प्राचीन विद्वानों ने सम्पूर्ण आयु को चार आश्रमों में विभाजित कर तथा प्रत्येक आश्रम में अलग-अलग कर्तव्यों का निर्धारण कर बहुत अच्छा कार्य किया था। इसलिये आयु को ध्यान में रखकर शरीरिक परिवर्तनशीलता के आधार पर

कर्म का निर्धारण पूर्व वैज्ञानिक था। इसीप्रकार हमारे मनीषियों ने भी यह सोचा कि विकास गति देने के लिये कार्य का विभाजन बहुत आवश्यक है इसीलिये उन्होने वर्ण व्यवस्था का सृजन करके समाज की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये उत्पादकता के दृष्टिकोण से कर्मो का विभाजन अलग-अलग कर दिया। इससे समाज में भारतीय समाज में वर्ग-संघर्ष के टकराव की स्थिति पैदा नहीं हुयी। और सामाजिकता की भावना से सभी जातियों में मेल रहा और वे अपना-अपना कार्य करती रही। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति का जो मूल मौजूद आज है वह वर्णव्यस्था के कारण ही है।

भारतीय संस्कृति में ''रामायण में प्रतिबिम्बित भारतीय समाज एवं अर्थ व्यवस्था को दर्शाने का प्रयास किया गया है। इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से महर्षि वाल्मीकि और वेदव्यास ने व्यक्ति को किस समय, किस वस्तु की आवश्यकता होगी, और इस आवश्यकता की पूर्ति कौन, किस संसाधन से करेगा इसका विवरण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार यह शोध प्रबन्ध में सभी सुकरणों की पूर्ति हुयी है, रामायण में वाल्मीकि का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

मैने अपने विषयकों को उचित रूप देने के लिये इनको निम्नलिखित छः अध्ययों में विभाजित किया है।

१. भूमिका

२. रामायण कालीन समाज

३. रामायण कालीन भूमि व्यवस्था

४. रामायण कालीन उधोग एवं व्यापार

५. रामायण कालीन समाज एवं अर्थ व्यवस्था पर वैदेशिक प्रभाव

६. उपसंहार- इस शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में विषय की सामान्य भूमिका प्रस्तुत की जायेगी। इसके अन्तर्गत वाल्मीकि का संक्षिप्त परिचय, एवं रामायण का रचनाकाल बताया जायेगा और रामायण के पूर्व का भारतीय समाज एवं संस्कृति कैसी थी? इसकी एक झलक प्रस्तुत की जायेगी।

इस शोध प्रबन्ध की द्वितीय अध्याय में आर्यो एवं अनार्यो की संस्कृति राक्षस, वानर, वर्ण, जाति व्यवस्था, परिवार, विवाह, प्रशासन, स्त्रियों की दशा, व्रत त्योहार, उत्सव,

तप, श्राद्ध, दान, खान-पान, वेशभूषा जैसे सामाजिक एवं धार्मिक पक्षों का अध्ययन किया जायेगा।

तृतीय अध्याय में रामायण कालीन भूमि व्यवस्था बतायी जायेगी। भूमि पर राजकीय नियन्त्रण के साथ-साथ सामूहिक नियन्त्रण की बातें दिखाई पड़ती है। भारतीय समाज एवं अर्थ व्यवस्था में भूस्वामित्व का प्रश्न अत्यन्त जटिल है। और भूमि पर व्यक्तिगत अथवा सामूहिक स्वामित्व के आधार पर भारत में सामन्तवाद की जड़े ढूंढीं जाती है। क्या रामायण कालीन समाज यूरोपीय समाज की तरह कबीलाई युग से सम्बोधित किया जा सकता है अथवा नहीं? इसका विवेचन किया जायेगा।

चतुर्थ अध्याय में रामायण कालीन अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित होगा इसमें यह देखना है कि समाज में पेशेवर लोगों का समूह कैसे-कैसे उधोगों में स्वयं को लगाये हुये था और इनकी सामाजिक हैसियत क्या थी, और भारत का व्यापार किस स्थिति में था, किन-किन वस्तुओं का व्यापार होता था इसका विवेचन किया जायेगा।

पंचम अध्याय रामायण कालीन समाज एवं अर्थ व्यवस्था पर वैदेशिक प्रभाव से सम्बन्धित होगा। इसमें यह बताया जायेगा कि भारत में होने वाले वैदेशिक आक्रमणों का भारतीय समाज एवं संस्कृति पर क्या प्रभाव पड़ा क्योंकि भारतीय सभ्यता पर आक्रमणों की कहानी अज्ञात नहीं है। छठा एवं अन्तिम अध्याय प्रस्तुत शोधप्रबन्धन में उठायी गयी सम्भावनाओं एवं उससे निकाले जा सकने वाले सम्भावित निष्कर्षो का प्रतिपादन इस अध्याय का अभीष्ट होगा। जिसने मुझे जीवन प्रदान किया, कार्य करने के लिये हाथ, पैर दिये है और सोचने, विचारने के लिये बुद्धि प्रदान की है, मैं उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ तथा उसकी मैं बड़ी आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा से मुझे शोध कार्य करने की प्रेरणा मिली, यह शोध प्रबन्ध उसी की महान अनुकम्पा का प्रतिफल है। भारतीय संस्कृति में गुरू की महिमा ईश्वर से बड़कर बताई गयी है। वे गुरू जिन्होनें वेदों और पुराणों की रचना करके संसार के व्यक्तियों को यर्थाथ का बोध कराया, उनके प्रति हम पूर्ण विश्वास रखते है। और हम यह अनुभव करते है कि यदि ये मनीषी महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना न करते तो यह शोध प्रबन्ध भी न होते। हम वाल्मीकि, वेदव्यास, स्मृतिकारों तथा ऋषि मुनियों को अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते है। भले ही वह इस समय संसार में नहीं है किन्तु उनके

द्वारा सृजित ग्रन्थों से हमें प्रेरणा मिली। हमारे वर्तमान गुरू, जिन्होनें हमें ज्ञान दिया उनके प्रति मैं आभारी हूँ। मेरे शोध निर्देशक पं० जे० एन० पी० जी० कालेज, बाँदा के इतिहास के सेवानिवृत विभागाध्यक्ष पूज्यनीय प्रो० बी० एन० रॉय जी ने मेरी बड़ी सहायता करी, इस शोध प्रबन्ध को अन्तिम चरण तक पहुँचाने, दिशा निर्देशन देने तथा पाण्डुलिपि को आघोपान्त पढ़कर संशोधन करने हेतु प्रो० बी० एन० रॉय जी ने अपना अमूल्य समय देकर मुझे जो सुझाव दिये है, इसके लिये मैं उनकी आभारी हूँ, मैं इस आभार को शब्दों में प्रकट कर पाना सम्भव नहीं समझ पा रही हूँ। इसलिये मैं उनकी आजीवन ऋणी रहूँगी।

संस्कृति विभाग के असिस्टेन्ट डायरेक्टर डा० लवकुश द्विवेदी जी, जो कि मेरे महाविद्यालय के इतिहास विभाग के भूतपूर्व प्रवक्ता भी रहे हैं, जिन्होने मुझे सहायक सामग्री प्रदान करने, प्रोत्साहित करने तथा अमूल्य समय देकर कार्य को गति देना, सही मार्गदर्शन करना बड़ा ही महत्वपूर्ण रहा है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के डा० जे० एन० पाण्डे जी जिन्होने मुझे मार्गदर्शन कराया, दिशा निर्देशन भी प्रदान किया, डा० ओम प्रकाश जी जिन्होनें महत्वपूर्ण किताबों का हवाला देते हुये सामग्री को सही स्थान पर मिलने का पता बताते हुये, स्वंय भी कुछ महात्वपूर्ण लेख द्वारा मेरी मदद की है, उनकी भी मैं आभारी हूँ।

पं० जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय बाँदा, जहाँ से मैंने शिक्षा प्राप्त की है तथा यहाँ के विभिन्न विद्वानों का मुझे मार्गदर्शन एवं सहयोग प्राप्त हुआ है। इनमें सर्वप्रथम प्राचार्य प्रो० आई० जे० सिंह जी की मैं विशेष आभारी हूँ जिन्होंने शोध कार्य हेतु मुझे पर्याप्त सुविधायें प्रदान कीं। इनके साथ-साथ सेवानिवृत संस्कृत विभागध्यक्ष डा० आर० ए० त्रिपाठी जी, हिन्दी विभाग के विभागाध्यक्ष डा० रामगोपाल गुप्ताजी, डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित जी', डा० ज्ञान प्रकाश त्रिपाठी जी, समाजशास्त्र के अध्यक्ष डा० जसवन्त नागजी, डा० शिवशरण गुप्त जी, राजनीतिशास्त्र के विभागाध्यक्ष डा० आ० पी० रॉय जी, डा० सी० पी० जैन, अर्थशास्त्र विभागाध्यक्ष डा० एस० के० त्रिपाठी जी, भूगोल विगाध्यक्ष डा० जे० के० बनर्जी जी, डा० अवधेश कुमार जी, शिक्षक शिक्षा संकाय विभाग के डा० वी० के० त्रिपाठी जी, डा० डी० आर० सिंह पाल जी एवं महिला महाविधालय की हिन्दी

विभागाध्यक्ष डा० रंजना सरहा जी, एवम समाजशास्त्र अध्यक्ष प्रवक्ता सुमन निगम जी, जिन्होने अपना अमूल्य समय देकर मेरे कार्य के गति प्रदान की, मैं उनकी भी आभारी हूँ। अर्तरा डिग्री कालेज के राजनीतिशास्त्र के प्रवक्ता डा० राजीव द्विवेदी जी जिन्होने महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करके मेरी मदद की। पं० जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, बाँदा के पुस्तकालय, राजकीय पुस्तकालय, नगरी प्रचारिणी पुस्कालय, वामदेव संस्कृत महाविद्यालय बाँदा के पुस्तकालय, इलाहाबाद विश्वविधालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के पुस्तकालय, के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ क्योंकि मुझे इन पुस्तकालयों से सहायता मिली है। इस शोध प्रबन्ध में मैंने जिन विद्वानों को पुस्तकों का सहयोग लिया है, मैं उनकी भी आभारी हूँ।

अपने मित्रों, सहपाठियों, एवं सहकर्मियों में श्री बरकत उल्ला जी, श्री संतोष तिवारी जी, शीतल त्रिपाठी, शैलजा शुक्ला, रमिता सिंह, सभी लागों ने समय-समय पर सहायक सामग्री प्रदान करके मेरी बड़ी मदद की है।

मेरे पूज्यनीय माता-पिता एवं अन्य परिवारीजन भी श्रद्धा और प्यार के पात्र हैं, जिन्होने इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने के लिये मुझे हर प्रकार के साधन उपलब्ध कराये। मेरे माता-पिता को मुझसे यह आशा थी कि मैं कुछ ऐसा कार्य करूं जिससे पूरा परिवार गर्व का अनुभव करें, मैने यह शोध कार्य उन्ही की प्ररणा एवं सहयोग से किया है। मेरी सांस शान्ती देवी, जो अतीत की स्मृतिमात्र है तथा जिन्होने मुझे सत्य एवं सन्मार्ग का रास्ता दिखाया तथा यह शोध कार्य उनके रहते हुये मैंने प्रारम्भ किया था उन्हें बड़ी खुशी थी मुझे यह दुःख है कि मैं यह कार्य उनके सामने पूरा नहीं कर पायी शायद जब वह इस संसार में नहीं रही है तभी मेरा यह कार्य पूरा हुआ लेकिन मुझे उनके रहते हुये मुझे पूरा सहयोग मिला था मैं उनकी बड़ी आभारी हूँ मैं जीवन भर उनके भूल नहीं सकती। मैं उनके लिये हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ।

मेरे परिवार में मेरे पति श्री बद्री नाथ जी अग्रवाल जिन्होंने इस शोध कार्य में मेरा बड़ा सहयोग प्रदान किया नहीं तो मैं यह कार्य नहीं कर पाती। बीच-बीच में बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ा। मेरे पति के छोटे भाई श्री केदारनाथ अग्रवाल उनकी पत्नी श्रीमती प्राची उन्होने मेरे कार्य में भी बहुत सहयोग प्रदान किया। मेरे चाचा जी श्री

ओम प्रकाश जी अग्रवाल तथा उनके पुत्र श्री शान्तनु अग्रवाल, राजीव अग्रवाल, प्रवीण अग्रवाल, पंकज अग्रवाल, नीरज अग्रवाल इन पारिवारिक जनों ने मेरे कार्य को गति प्रदान की तथा मेरी भाभी श्रीमती तृप्ति अग्रवाल जो भोपाल से मेरे लिये किताबें लेकर आई मैं इन सभी लोगों की बड़ी आभारी हूँ। बड़ी भाभी ने समय-समय पर मेरे कार्यो को देखा।

मेरी बहन श्रीमती रीता अग्रवाल, नीतू अग्रवाल, आरती अग्रवाल, सुरभि अग्रवाल, रीता जी स्वयं भी शोध कार्य कर रहीं है, उसके बावजूद भी समय निकालकर मेरा बड़ा सहयोग किया है, इसके बावजूद भी समय निकालकर मेरा बड़ा सहयोग किया है।

मैं स्वंय एक शिक्षिका हूँ तथा मेरे विद्यालय की समस्त शिक्षिकाओं मे श्रीमती सुमन लता, श्रीमती शान्ति देवी, श्रीमती सुनीता तिवारी, जिन्होनें अपना बहुमूल्य समय मुझे दिया।

इस शोध प्रबन्ध के स्वच्छ एवं आकर्षक कम्प्यूटर टाइप के लिये मैं मनोज कुमार गुप्ता जी राज, प्रेस, बाँदा को कोटिशः धन्यवाद देती हूँ। जिनके अथक परिश्रम से यह शोध प्रबन्ध वर्तमान रूप ले सका। अत्यन्त सावधानी के बाद भी यदि प्रूफ सम्बन्धी कुछ गलतियाँ रह गयी हो तो उनके लिये मैं क्षमा चाहती हूँ।

स्थान-बाँदा

दिनाँक- 7-12-2000 २००० ई०

भवदीया

गीता अग्रवाल
7-12-2000

(गीता अग्रवाल)

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

बाल्मीकि का संक्षिप्त जीवन परिचय एवं रामायण का रचनाकाल

रामायण की रचना संसार की पहली काव्य रचना है और साहित्य का प्रारम्भ काव्य से ही हुआ है। काव्य का पहला छन्द या श्लोक महाकवि बाल्मीकि ने क्रौंचवध होने पर रचा था, जिसे साहित्य का सबसे पहला सृजन माना जाता है।

मुनि वाल्मीकि अपने शिष्य भारद्वाज से कलश और वल्कल मँगाकर तमसा नदी के तट पर कीचड़ रहित स्वच्छ जल में स्नान करने जा रहे थे। वहीं क्रौंच पक्षियों का एक जोड़ा, 'जो कंभी एक दूसरे से अलग नहीं होता था, विचरण कर रहा था। वो पक्षी बड़ी मधुर बोली बोल रहे थे। ऋषि बाल्मीकि उस मनोरम जोड़े के प्रेम कलरव को सुनकर चकित हो रहे थे। उसी समय एक निषाद ने उनमें से एक पक्षी को अकारण ही बाण से मार दिया। वह पक्षी खून से लथपथ होकर वहीं भूमि पर गिरकर तड़पने लगा। अपने पति की हत्या हुई देखकर उसकी पत्नी क्रौंची करूणाजनक आर्तस्वर में चीत्कार कर उठी। हमेशा अपने पति के साथ आमोद-प्रमोद के रस में डूबी रहने वाली मैथुनरचता क्रौंची के लिये यह आघात असहनीय हो उठा। उस नारी का हृदय विदारक करूणा मुनि बाल्मीकि से, कवि हृदय मुनि से देखी न गयी। ऋषि ने कहा कि यह अधर्म हुआ ऐसा अनुभव करते हुये निषाद को सम्बोधित कर रहा-

मा निषाद प्रतिष्ठ! त्वमगमः शाश्वती! समाः।
यत क्रौंञच निथुनादेवकवधीः काममोहितम्।।

निषाद तुम्हें जीवन में कभी भी शान्ति न मिले क्योंकि तूने क्रौंच के जोड़े में से एक की जो काम से विमोहित था, अकारण ही, बिना अपराध हत्या कर डाली। किन्तु यह कह जाने के बाद अपने मुख से निकले शब्दों पर जब मुनि ने विचार किया तो उन्होंने अपने शिष्य से कहा कि तात! शोक से पीड़ित मेरे मुख से जो वाक्य निकल पड़ा है, यह चार चरणों में गुँथा हुआ है। 'पादबद्धोऽक्षर समस्तन्त्री लय समन्वितः,। शोकार्तस्य प्रवृत्तो' में श्लोको भवतु नान्यथा। इसके प्रत्येक चरणों में सम बराबर अर्थात आठ-आठ अक्षर हैं तथा इसे वीणा की लय पर गाया भी जा सकता है। गेय है, शिष्य ने प्रसन्नता से कहा- हाँ, यह वाक्य श्लोक रूप ही होना चाहिये।' ब्रह्मा जी, जो सृष्टिकर्ता और सरस्वती के श्री थे, ने

ऋषि वाल्मीकि से कहा कि मुनि, तुम्हारे मुख से निकला हुआ यह वाक्य जो छन्द बद्ध है, श्लोक रूप ही होगा।

रामस्य चरितं कृत्स्यं कुरु त्वमृषिसन्तम।
धर्मात्मनो भगवतो लोके रामस्य धीमतः।।

वृतं कथमधीरस्य यथा ते नारदाच्छुतम, नारद जी ने तो राम कथा वाल्मीकि जी को बता ही रखी थी। किन्तु ब्रह्मा जी ने कहा- 'श्रीराम, लक्ष्मण, सीता और राक्षसों का गुप्त प्रकट जो भी चरित्र है उसे इन छंदों में कहिये। क्योंकि बिना राक्षसों की कथा के रामकथा कैसे होगी।' विश्वास दिलाया कि इन श्लोकों में, छदों में जो कथा आप लिखेंगे वह झूठ नहीं होगी और तब इस कथा का प्रचार पृथ्वी पर होता रहेगा जब तक पृथ्वी पर नदियाँ रहेंगी, पर्वतों की सत्ता रहेगी। यही था विश्व काव्य की प्रथम रचना का प्रारम्भ।

इस नाटक की रचना का प्रयोजन क्या है?

इस नाटक को लिखने का मेरा प्रयोजन क्या है? यह एक स्वाभाविक प्रश्न है।

वास्तव में रामकथा एक ऐसे नायक की कथा है जो हजारों साल से जीवित है और हजारों साल तक जीवित रहेगी। वह जल की तरह है- समुद्र में अपनी तरह से, नदी में अपनी तरह से, नहर में अपनी तरह से, पोखर में अपनी तरह से नल में अपनी तरह से, अंजालि में अपनी तरह से! जहाँ भी है, जैसे भी है, वह तो जल ही है, चाहे वह हिमालय में बर्फ की तरह है या आँख में आँसू की। यह किसी को यह छूट है कि वह उसे किस तरह से लेता है और किस तरह से उसका उपयोग करता है या किस रूप में उसे पाता है। वाल्मीकि की लेखन क्रिया मुझे और रामायण के समय के सामाजिक संदर्भ में, आज की ज्वलन्त समस्याओं में, आज के राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में मुझे ऐसा लगा कि वाल्मीकि की लेखन क्रिया ऐसी है जो ज्यादा कारगर ढंग से लोगों तक न केवल पहुँच ही सकती बल्कि उन लोगों को मानसिक चेतना और परिवर्तन ला सकती है, जो कुम्हार के पक्केघड़े की तरह कच्ची और नयी मिट्टी को अपने में नहीं मिला सकती।

हमारी सांस्कृतिक पहचान का स्त्रोत- रामकथा हजारों सालों के इस दीर्घ अन्तराल में एक धार्मिक संस्कार बनकर इस देश क लोगों के मन पर एक जीवनी शक्ति की तरह छा गयी है। हाय राम, हरे राम, उई राम, राम होराम, अरे राम-राम आदि किसी शुभ या

अशुभ परिस्थिति को देखते सुनते ही हमारे मुख से अनायास ही साँस की तरह उच्छ्‌वाशित होता है। इसका कारण यह है कि हमारे रक्त में, हमारी साँस में, हमारी चेतना में जन्म से ही राम की कथा, राम का प्रभाव, राम का दुःख, राम की क्षमता, राम की समर्थता, राम का सुख, राम का सम्पूर्ण कथानक कल्पना की तरह नहीं लगता, सत्य लगता है। राम हमें अशोक, चन्द्रगुप्त, नन्द की तरह के राजा नहीं लगते। राम हमें बाबर, अकबर, औरंगजेब की तरह के बादशाह नहीं लगते। राम हमें महारानी विक्टोरिया, वारेन हेस्टिंग्ज, वाशिंगटन जैसे शासक भी नहीं लगते और जब राम लंका में पहुँचते हैं तो हमें सिकन्दर या नैपोलियन जैसे भी वह नहीं लगते। यह एक ऐसी कथा है कि राम हमें नितान्त अपने लगते हैं, अपने घर के जैसे, राम का बचपन अपने घर के बच्चे की तरह लगता है तो राजकुमार से राजा होने तक की उनकी सारी यात्रा अपने परिवार के ही किसी सदस्य की तरह लगती है। उनका दुःख हमारा दुःख बन जाता है और उनका सुख हमारा सुख। उनके दुःख से हमारी आँखों में दुःख के आँसू छलक जाते हैं तो उनके सुख में हमारी आँखों में हर्ष के आँसू उमड़ आते हैं। यह निजता जो हमें राम से, राम कथा क अन्य पात्रों से जोड़ देती है। इसीलिये मुझे ऐसे कोई कथा दूसरी नहीं लगती जो व्यक्ति को उसके अन्दर इतनी गहराई तक आन्दोलित करती है, मथ देती है।

रामकथा इस देश के जन-जन की, जन-मन की आस्था से जुड़ी हुयी है। हाँ धर्म के रूप में भी विचार के रूप में भी और जीवन पद्धति के रूप में भी। इसीलिये अगर इस देश में कोई वैचारिक क्रान्ति आ सकती है, तथा किसी सामाजिक-परिवर्तन की बात हो सकती है तो वह आयातित होकर नहीं आयेगी, वह इस देश की आस्था और मान्यता, संस्कृति, और विश्वास के साथ जुड़कर ही आ सकती है। इस देश के लोगों की आस्था, विश्वास रस्म, रिवाज, धर्म, दर्शन और सांस्कृतिक विरासत को तोड़कर इस देश में किसी तरह के नये समाज की रचना सम्भव नहीं है। हम अपनी आस्था, विश्वास, संस्कार की कीमत पर इस देश के लोग किसी बड़ी क्रान्ति के लिये एकजुट नहीं हो सकते। उनके पास न्याय, बलिदान, शोषण से मुक्ति और अराजकता को काट फेंकने की अपनी सांस्कृतिक परम्परा है। राजा शिवि से बड़ा न्याय किसी सांस्कृतिक विरासत में है? प्रतिबद्धता क्या राजा हरिश्चन्द्र के वचन से बड़ी किसी भी संस्कृति में है? शोषण के विरुद्ध राम और कृष्ण बड़े

संघर्षशील व्यक्तित्व भी किसी संस्कृति में हैं? वह कौन संस्कृति है जो राजा मकरध्वज से अधिक बड़ा बलिदान दे सके, बलि दे सके, वह कौन दानशील राजा रहा है किसी दूसरी संस्कृति में; जो दानवीर कर्ण से ऊँचा उठ सका हो? संस्कृतियाँ और भी तमाम हैं, किन्तु भारतीय संस्कृति कभी बौनी नहीं रही, न अवैज्ञानिक रही। अतः किसी पेड़ पर कलम भी तभी उग सकती है जब जड़ गहरी हो उस वृक्ष की।

मैने अपने विचारों को जनग्राह्य बनाने और जन-मन को आज की सामयिकता से साक्षात्कार कर सकने योग्य बनाने के लिये यह आवश्यक समझा कि राम से बेहतर और कोई माध्यम नहीं है जो इस देश की मिट्टी में, खून में, जल में, वायु में रची बसी है। उसमें अपने आप वह सारे तत्व पहले से मौजूद हैं जिन्हें आज हमें पहचानना है, अपनाना है और जो आज के हमारे समाज की उन्नति के लिये आवश्यक है, पथ-दर्शक हैं। विद्वानों ने, विचारकों ने अपने-अपने समय में सामाजिक आवश्यकता के अनुसार राम-कथा के अनुकूल तत्वों को रेखांकित कर लोगों तक पहुँचाया और उसी के माध्यम से जहाँ तक हो सका अपनी बात भी, अभिव्यक्ति भी लोगों तक पहुँचायी। उन्हें समाज हित के अनुरूप जो परिवर्तन आवश्यक लगे वे उन्होंने किये। समुद्र की तरह है यह राम-कथा। जितनी नदियाँ इसमें जुड़ती जाती हैं उतना ही नदियों का महत्व बढ़ता ही है, समुद्र न घटता है न वढ़ता है। शोषण मुक्ति और सामन्तवाद का विरोधी आख्यान- रामकथा के राम की चक्रवर्ती सम्राट के घर से विश्वामित्र के आश्रम तक और क़िष्किन्धा तथा लंका तक की बल्कि उसके बाद शत्रुघ्न को भेजकर लवणराज के वध तक की संघर्षशील यात्रा सामन्तों, आततायियों, आतंकवादियों से लड़ने, युद्ध करने की उस ज्वलन्त परम्परा को कायम करती है जो आज के समय-सापेक्षता भी है और शायद कल भी होगी। न शोषण और आतंक से कभी मुक्ति सम्भव है और न सामन्ती संस्कार किसी भी तरह की समाज रचना से कभी विमुख हो सकते हैं। उनके रूप बदल सकते हैं, प्रकृति बदल सकती है, उनसे छुटकारा पाना शायद मुश्किल ही होगा। अतः राम शाश्वत संघर्ष, अन्याय के विरुद्ध, शोषण की नीति से मुक्ति और विषमता के विरुद्ध एक प्रकाश-पुंज हैं, हारे-थके और कुचले हुये लोगों की आवाज है। विश्वामित्र जैसे शस्तज्ञ की भी जरूरत है और अगस्त्य जैसे परम तपस्वी और ज्ञानी की भी। वह सुग्रीव जैसे पीड़ित लोगों की भी पुकार है और विभीषण जैसे समतावादियों की

गुहार भी। राम कैकेयी के लिये भी उतने ही विश्वसनीय हैं जितने तारा, सुलोचना, मन्दोदरी लिये हैं। वह सीता के लिये उतने ही निरपेक्ष है जितने अहल्या जैसी परित्यक्ता नारी के लिये आत्मीय हैं। वह किसी भी तरह की सामजिक-सांस्कारिक मान्यता के विरुद्ध आचरण वाले के लिये उतने ही कठोर हैं जितने वानरराज वाली के लिये। वह राजा के घर भी पैदा होकर वन्य जीवन की कामना करते हैं। वह सुविधाओं के सागर में भी अभावों की कठोर चट्टानों पर नंगे पाँव दौड़ने के आकांक्षी हैं।

राम के समतामय शासन में जन-मन को यह जीवन प्रक्रिया निभाने को मिली हुयी है। निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थ कश्‍ि चदस्पृशत्?' वाल्मीकि के अनुसार कहीं भी उनके राज्य में कोई चोर, लुटेरे क्यों नहीं थे। कोई भी व्यक्ति अनर्थकारी कार्यों में हाथ क्यों नहीं डालता था? स्पष्ट है कि किसी को इसकी आवश्यकता नहीं पड़ती थी। केवल राज-भय नहीं था, सबकी जरुरतें अपनी आशाएँ पूर्ण रहती थीं। इससे लगता है कि आर्थिक विषमता नहीं थी। 'सर्वमुदित मेवासीत्' सब लोग सदा प्रसन्न रहते थे। अभावहीन थे। 'निरामया विशोकाश्च रामे राज्यं प्रशासति'। जनता को न किसी प्रकार का रोग होता था, न किसी प्रकार का शोक होता था। सबको शिक्षा व स्वास्थ्य-साधन सुलभ रहे होंगे, तभी न। क्योंकि 'न पर्य देंवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम्। न व्यधिजभय चाशीद् रामे राज्यं प्रशासाति।' उनके राज्य-शाषन काल में कभी भी विधवाओं का विलाप नहीं सुनाई पड़ता था, सर्प आदि दुष्ट जन्तुओं का भय नहीं था और रोगों की आशंका नहीं थी। पर्यावरणकी ओर राजसत्ता का विशेष ध्यान होगा तभी तो 'नित्यमूला नित्यफला स्तरवस्तु सुपुष्पिताः। कामवर्षीच पर्जन्यः सुख स्पर्शश्च मारुतः।' छायादार वृक्ष, फलों से लदे हुये फलदार वृक्ष थे।। मेघ लोगों की इच्छा, आवश्यकतानुसार बरसते थे। वायु मन्द गति से चलती थी, जिससे उसका स्पर्श, सुखद जान पड़ता था।

साहित्य में समय का सत्य तो होता है, कल्पना भी सत्य के आधार को छोड़कर तो नहीं होती। क्योंकि 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' कला के लिये, साहित्य के लिये अनिवार्य शर्त है यदि वाल्मीकि ने ऐसा लिखा है तो सत्य से परे तो नहीं हो सकता और ऐसे सत्य की आवश्यकता क्या आज नहीं है? क्या आज के सामाजिक जीवन का सत्य राम-राज्य की व्यवस्था की पुनः परिणति आज नहीं चाहता? अपना राज्य, शासक को बरस सकने का

साहस जिस व्यवस्था में हो, जहाँ लोभ, लालच, चोरी, डकैती न हो, जहाँ सबकी आवश्यकतायें पूर्ण हो जाती हों, जहाँ शिक्षा-स्वास्थ्य की पर्याप्त सुविधा हो जहाँलोगों में अपने-अपने कार्य के प्रति लग्न और निष्ठा हो, दुर्भावना न हो, मित्रता हो, एकता और अपनापन हो, जहाँ जन के शोषण का स्रोत सत्ता न हो सके, जन कल्याण के लिये शासन के स्रोत खुले रहते हों, समता हो, विषाद न हो, ऐसे ही समाज की कल्पना तो करता है आदमी।

इस नाटक को लिखने की प्रेरणा का यही कारण है कि मैं अपने जिन विचारों के साथ पाठकों को जोड़ना चाहती थी उसके लिये राम-कथा मुझे बेहतर माध्यम लगी। इसके द्वारा मेरा सोच, मेरे विचार, मेरी भावना इस देश के संस्कार निष्ठ लोगों तक इस प्रभावशाली सशक्त कथा के माध्यम से पहुँच सकती है, नाटक का रूप देने से मंचस्थ, आकाशवाणी, या दूरदर्शन के माध्यम से बड़े प्रेक्षागृहों, खुले रंगमंचों या गाँव की चौपालों पर खेले जाने से, इस कथा का, इसके पात्रों का सीधा साक्षात्कार एक बारगी ही अनेक लोगों से हो सकता है। जो स्वयं लेखक की बातों और विचारों से जुड़ जाते हैं।

इस नाटक को लिखने का एक कारण यह भी था कि भारत के गाँवों और नगरों में रामलीला नाटक धार्मिक सांस्कृतिक विश्वास के तहत भी अभिनीत करते हैं।

सबसे पहले मैने आकाशवाणी के 'रस भारती' कार्यक्रम में प्रसारित करने के लिये इसे नाटक के रूप में लिखा। रेडियो जैसे व्यापक माध्यम से सम्पूर्ण राम-कथा को धारावाहिक रूप देने का सन् १९८० में मैने पहला प्रयास किया था। उस समय लाखों लोगों ने गाँवों, नगरों में इसे बड़ी रुचि से सुना और यह अपने समय का लोकप्रिय कार्यक्रम सिद्ध हुआ। रेडियो-दूरदर्शन एक ऐसा माध्यम है जो धर्म, सम्प्रदाय की सीमाओं को लाँघकर सब घर-घर तक पहुँचाता है।

वाल्मीकि के समय में हिन्दुत्व की रक्षा का कोई प्रश्न नहीं था। केवल अन्याय, अनीति-अधर्म परपीड़न, उद्‌देश्यहीनता और पारिवारिक एवं सामाजिक संस्कारों में आ रहे ह्रास की समस्यायें रही होंगी। आचरणशील लोगों, तपस्वियों और साधुओं को सताये जाने की समस्या रही होगी। इसीलिये वाल्मीकि की काव्य रचना का उद्‌देश्य समय की आवश्यकता के अनुसार भिन्न रहा है। इसीलिये अपने कथानक की विश्वसनीयता और

प्रामाणिकता को बनाये रखने के लिये वाल्मीकि ने राम जन्म के पूर्व ही देवताओं द्वारा भगवान विष्णु से यह वचन ले लिया कि वह निःसंतान महाराज दशरथ के घर में जन्म लेकर मनुष्य रूप में ऐसी लीलाऐं करे जिससे देव संस्कृति की, देवत्व और मनुष्यत्व की रक्षा हो सके तथा राक्षस संस्कृति पराजित हो सके। उसके बाद उन्होंने श्रीराम को जन्म लेने के बाद से मनुष्यत्व का ही नायक बनाये रखा। यहाँ तक कि अहल्या पत्थर बन गयी थी और श्रीराम के चरण छूते ही सुन्दर नारी बनकर श्री राम की आरती उतारने के बाद पतिलोक को गयी थी, ऐसा कुछ नहीं दिखाया। पति द्वारा शापित अहल्या तपस्यालीन होकर राजपुत्र राम के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। उसका चेहरा कान्तिमय और देदीव्यमान था–'ददर्शचंमहाभागां तपसा द्योतिल प्रभाम।'

किन्तु वाल्मीकि जी ने गौतम पत्नी की गरिमा को बनाये रखते हुये उस महान विदुषी और तपस्विनी की श्रेष्ठता को उच्चता देते हुये–

'राघबौ तु तदा तस्याः पादौजगृह तुर्भुदा।
स्मरन्ती गौतम वचः प्रतिजग्राह सा हितौ'

कहा है कि उस समय श्री राम और लक्ष्मण नें बड़ी प्रसन्नता के साथ अहल्या के दोनों चरणों का स्पर्श किया। महर्षि गौतम के वचनों का स्मरण करके अहल्या ने बड़ी सावधानी के साथ उन दोनों भाइयों को आदरणीय अतिथि के रूप में अपनाया– स्पष्ट है कि राम–कथा का इस्तेमाल दिव्यास्त्र की तरह करके ही सामाजिक चेतना का विकास किया जा सकता है क्या उसे युगानुसार ढाला जा सकता है?

अतएव आज के वैज्ञानिक युग में जबकि अतीत हमारे लिये गौरव, भक्ति या स्वांतः सुख का विषय न होकर ज्ञान–वर्धन और प्रगति का भी एक साधन है, हमें चाहिये कि वाल्मीकि के महाग्रंथ का लौकिक दृष्टि से समुचित मूल्यांकन करें।

सामाजिक जीवन के प्रायः सभी पहलुओं पर वाल्मीकि ने रोचक सामग्री प्रस्तुत की हैं। समाज और परिवार के विषय में तत्कालीन आर्यो की धरणायें क्या थीं? समाज का संगठन कैसा था? वर्ण और आश्रम की व्यवस्थाकैसी थी? जन साधारण की स्थिति पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होती थी? उच्च वर्ण के लोगों को समाज क्या सुतिधायें प्रदान करता था? निम्न वर्णों की क्या निर्योग्यतायें थीं और उनका जीवन स्तर कैसा था? विवाह प्रणाली

कैसी थी और प्रेम का आदर्श क्या था? स्त्रियों के साथ समाज में कैसा व्यवहार किया जाता था? लोग अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ती किस प्रकार करते थे? शासन व्यवस्था युद्ध-संचालन, अस्त्र-शस्त्र, यातायात के साधन कैसे थे? इन प्रश्नों का उत्तर रामायण में ढूंढने से पता चलेगा कि तत्कालीन समाज का ठोस और व्यवहारिक स्वरूप कैसा था।

इस प्रकार समाजशास्त्रीय दृष्टि में वाल्मीकि रामायण का महत्व आंका जाये तो निश्चय ही हमारा अध्ययन अत्यंत रोचक, हृदयग्राही, ज्ञानवर्धक सिद्ध होगा। प्राचीन भारत के आर्यों ने अपनी संस्कृति के विषय में जो तथ्य वेदों, इतिहास, पुराणों, दर्शन ग्रंथों और काव्यों में लिपिबद्ध किये हैं, उनके आधार पर हमें उनके जीवन का जैसा सूक्ष्म, घनिष्ठ, और सच्चा परिचय प्राप्त होता है, वैसा अपने समकालीनों का भी प्राप्त होना कठिन है।

रामायण के कर्ता वाल्मीकि एक प्रतिष्ठित ऋषि एवं राम के एक समकालीन के रूप में हमारे सामने आते हैं। बालकांड में लिखा है कि वाल्मीकि तमसा नदी के किनारे एक आश्रम में रहते थे।

वाल्मीकि के पूर्व जीवन पर रामायण से कोई प्रकाश नहीं पड़ता। उनके डाकू होने और फिर तपस्वी बनने की कथाओं का आधार अन्य ग्रंथों में पाया जाता है। आध्यात्म रामायण के अनुसार, वाल्मीकि ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुयें थे, पर कुसंगति के कारण लूटमार में प्रवृत हो कर अपने परिवार का भरण पोषण करने लगे। एक बार उनके मार्ग में सप्तर्षिगण आये। उन्हें भी इस पतित ब्राह्मण ने लूटना चाहा। मुनियों ने इससे पूछा कि जिन कुटुबियों के लिये तुम लूटमार द्वारा धन कमा रहे हो, क्या तुम्हारे परिवार के लोग अधर्म के भागी बनेंगे? जब ब्राह्मणघर गया और अपनी स्त्री, बच्चों से यह प्रश्न किया, तब उत्तर मिला कि हम तो केवल तुम्हारे धन के भोगने वाले हैं, उसका पाप तो तुम्हें ही लगेगा। इससे ब्राह्मण के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और वह मुनियों की शरण में चला गया! सप्तर्षियों ने उसे 'राम' नाम को उलटा जपने का आदेश दिया-ब्राह्मण इतने ईीर्घ काल तक इस नाम का जप करता रहा कि उस पर मिट्टी का ढेर (बल्मीक) लग गया। बहुत समय बाद जब सप्तर्षि उधर से लौटे, तब उन्होंने उसका 'वाल्मीकि' नामकरण किया और इस नूतन जन्म पर उसका अभिनंदन किया।

जनश्रुति में वाल्मीकि का बचपन का नाम रत्नाकर है और उनकी भेंट सप्तर्षियों

के बजाय नारद से होती है। कृतिवासीय रामायण में इस जनश्रुति, का उपयोग किया गया है। शेष कथा अध्यात्म रामायण जैसी ही है।

वाल्मीकि के आरंभ में डाकू होने का आभास महाभारत के अरण्य पर्व और अनुशासन पर्व से भी मिलता है।

अन्य रामायणों में राम को विष्णु के अवतार के रूप में अधिक चित्रित किया गया है, वहीं वाल्मीकि-रामायण देव-चरित्र का ही कीर्तन है। जब वाल्मीकि ने आदर्श गुणों से मंडित किसी विभूति का परिचय पूछा, तब नारद ने एक मानव को ही उन अनुपम गुणों का भाजन बताया।१। अवश्य ही वाल्मीकि के समय की अनुश्रुतियों में राम का विष्णुत्व प्रकट होने लगा था जिनके प्रभाव से अछूते रहना कठिन था, फिर भी वाल्मीकि इने गिने लौकिक ऋषियों में से थे, जिनका दृष्टिकोण पूर्णतः मानवीय था।

आदिकवि वाल्मीकि- वाल्मीकि को बालकाण्ड, उत्तरकाण्ड और महाभारत के रचयिता माना गया है। इस प्राचीन परम्परा के विराध में कोई भी युक्ति संगत तर्क नहीं दिया जा सकता है। किन्तु जीवन वृत के सम्बन्ध में प्रामाणिक सामग्री का अभाव है।

आदिकवि से भिन्न तीन अन्य वाल्मीकि- तैत्तिरीय प्रतिशाख्य में एक वैयाकरण वाल्मीकि।२। का उल्लेख है जो निश्चित रूप से आदि कवि से भिन्न है। यह ए० वेबर।३। तथा एच याकोबी।४। आदि विशेषज्ञों की राय है। इससे इस बात का पता चलता है कि 'वाल्मीकि' का नाम प्राचीनकाल में प्रचलित था। हमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये यदि अन्यत्र भी वाल्मीकि नामक व्यक्तियों का उल्लेख मिल जाये।

महाभारत के उद्योगपर्व में गरुणवंशी विष्णु भक्त सुपर्ण पक्षियों की सूची में वाल्मीकि का भी नाम आया है। सुपर्ण वंश यह सप्तसिंधु की एक यायावर आर्य जाति थी।५।

अभिन्नता के विरोध में यह तर्क दिया जा सकता है कि सुपर्णवंश महाभारत में विष्णु भक्त माना गया है किन्तु वाल्मीकि के विषय में कहा गया है कि उन्होंने शिव की शरण ली थी। अतः यह प्रतीत होता है कि सुपर्ण वाल्मीकि तथा आदिकवि भिन्न-भिन्न है।

विशेषज्ञों (हॉप्किन्स, सुकठणकर) के अनुसार द्रोणपर्व का वर्तमान रूप बहुत ही परिवद्धित है और शांतिपर्व तथा अनुशासन पर्व निश्चित रूप से अर्वाचीन है। डा०

एस०के० देने पूना संस्करण में द्रोणपर्व की रामकथा को प्रक्षिप्त माना है। महाभारत में व्यास ने अपेक्षा कृत अर्वाचीन काल में कवि वाल्मीकि का परिचय प्राप्त किया है और बहुसंख्यक स्थल आदिकवि वाल्मीकि से भिन्न किसी अन्य वाल्मीकि नामक ऋषि से सम्बन्ध रखते हैं। जो कुछ भी हो इन स्थलों पर जीवन वृत विषयक सामग्री नहीं मिलती। इस प्रकार हमें अदिकवि से भिन्न तीन अन्य वाल्मीकियों का पता मिल गया है- वैयाकरण वाल्मीकि, सुपर्ण वाल्मीकि, महर्षि वाल्मीकि।

बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड- वाल्मीकि को रामायण की घटनाओं का समकालीन माना गया था। बालकाण्ड के प्रारम्भ में रामायण की उत्पत्ति की कथा मिलती है। वाल्मीकि नारद से रामकथा का सार सुन लेते हैं, अनन्तर श्लोक का आविष्कार करने के बाद, ब्रह्म के आदेश से रामकथा को श्लोक बद्ध करते हैं अपनी इस रचना को कुशीलव शिष्यों को सिखलाते हैं। ये दोनों सर्वत्र रामायण गाते हैं और एक बार उसे अयोध्या के राजमहल में भी राम और उनके भाइयों को सुनाते है।६। उत्तरकाण्ड के अनुसार लक्ष्मण परित्यक्ता सीता को वाल्मीकि के आश्रम के पास जंगल में छोड़ते समय उनको सान्त्वना देते हुये कहते हैं- वाल्मीकि के यहाँ आश्रय लेना, वे ब्राह्मण तथा दशरथ के सखा हैं।७।

बाद में सीता वाल्मीकि के आश्रम में लवकुश को जन्म देती हैं।८। वे वल्मीकि से रामायण सीख लेते हैं और उनका आदेश पाकर उसे राम के यज्ञस्थल पर सुनाते हैं।६। रामायण सुन लेने के बाद राम सीता को बुला भेजते हैं और वाल्मीकि सीता को ले आकर सभा के सामने सीता के सतीत्व का साक्ष्य देते हैं। इस अवसर पर वाल्मीकि अपना परिचय देकर कहते हैं कि मैं प्रचेता का दसवाँ पुत्र हूँ।१०। मैने हजारों वर्षे तक तपस्या की है। इसके अतिरिक्त वह इस बात पर बल देते हैं कि मैने कभी पाप नहीं किया है! मनसा, कर्मणा, वाचा भूतपूर्व न किल्विषम- इससे स्पष्ट होता है कि वाल्मीकि के दस्यु होने की जो कथा बाद में प्रचलित हो गई है वह उत्तरकाण्ड के रचयिता को मान्य नहीं है।

बालकाण्ड- दो और तीन के अनुसार वाल्मीकि का आश्रम तमसा, गंगा के समीप स्थित है। तमसा यहाँ पर अयोध्याकाण्ड (सर्ग पैंतालिस-छियालिस) की तमसा से भिन्न गंगा की कोई उप नदी है। उत्तरकाण्ड से पता चलता है कि वह नदी गंगा के दक्षिण में थी, क्योंकि लक्ष्मण और सीता अयोध्या से आकर गंगा पार करने के बाद वाल्मीकि के आश्रम के निकट

पहुँचते हैं।११। शत्रुघ्न के विषय में कहा जाता है कि वाल्मीकि आश्रम से पश्चिम की ओर जाते हुये वह 'यमुनातीरम' पर उतरते हैं।१२। बाद में एक अन्य परम्परा प्रचलित होने लगी, जिसके अनुसार वाल्मीकि का आश्रम गंगा के उत्तर में माना जाता था, रामायण के टीकाकार कटक तथा गोविन्दराज उपर्युक्त 'यमुनातीरम' के स्थान पर गंगातीरम शुद्ध मानते हैं।

रामायण के दक्षिणात्य पाठ।१३। के अनुसार जो अन्य दो पाठों में नहीं मिलता, राम, लक्ष्मण और सीता चित्रकूट के निकट ही वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचते हैं।

इसके अनुसार अध्यात्म रामायण (दो, छः), आनन्द रामायण (एक-छः), रामचरितमानस (दो, एक सौ चौबीस) आदि बहुसंख्यक अर्वाचीन रामकथाओं में वाल्मीकि का आश्रम यमुना के पार चित्रकूट के पास ही स्थित हैं आजकल भी यह बाँदा जिले में माना जाता है।

भार्गव वाल्मीकि– वाल्मीकि रामायण में भार्गव च्यवन का दो प्रसंगों में उल्लेख हुआ है– बालकाण्ड में सगर की कथाओं के अंतर्गत (सर्ग सत्तर, बत्तीस) तथा उत्तरकाण्ड में लवण वध के वृतान्त में (सर्ग साठ या चौसठ)। इन स्थलों पर च्यवन शब्द का वाल्मीकि से कोई संबंध नहीं मिलता, किन्तु उत्तरकाण्ड की रचना काल के समय तक वाल्मीकि का सम्बन्ध भार्गवों से जोड़ा गया था, क्योंकि वाल्मीकि को प्रचेता का दसवाँ पुत्र माना गया है।१४। बाद में वाल्मीकि को भार्गव की उपाधि मिल गयी है। महाभारत में रामचरित के रचयिता भार्गव का जो उल्लेख है वह वाल्मीकि ही प्रतीत होता है क्योंकि प्रचलित रामायण के दक्षिणात्य पाठ के एक श्लोक से मिलता-जुलता है। परवर्ती रचनाओं में वाल्मीकि को बहुधा भार्गव।१५। माना गया है। विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण में वाल्मीकि को भार्गव की उपाधि मिल गयी हो। वाल्मीकि की व्युत्पत्ति प्रायः 'बल्मीकि' से मानी जाती है। यह कथा प्रचलित होने लगी कि वाल्मीकि वास्तव में बल्मीकि (दीमकों की बाँबी) से निकला था। अब ध्यान देने की बात है कि भार्गव च्यवन के विषय में इस प्रकार की कथा व्यापक रूप से प्रचलित थी। महाभारत के आरण्यक पर्व के अनुसार भृगु के पुत्र च्यवन तपस्या करते हुये इतने समय तक निश्चित खड़े रहे कि उनका शरीर बल्मीकि से आच्छादित हो गया था। राजपुत्री सुकन्या ने उनको अंधा बना दिया और बाद में उससे विवाह भी कर लिया (अध्याय एक सौ बाईस)। यह वृतान्त भागवत पुराण (नौ, तीन) स्कंद पुराण (आवन्त्य खंड, चतुश्शीतिलिंग महात्म्य,

अध्याय बीस और प्रभास खंड, प्रभास क्षेत्र महात्स्य, अध्याय दो सौ इक्यासी), देवभागवत पुराण (छः, दो-तीन) और पद्म पुराण (पाताल खंड, अध्याय पन्द्रह) में मिलता है।

दस्यु वाल्मीकि- एक परम्परा के अनुसार वाल्मीकि पहले डाकू थे और दीर्घकालीन तपस्या के बाद ही रामायण की रचना करने में समर्थ हुये। इस कथा की प्राचीनता के सम्बन्ध में संदेह है। स्कंद पुराण में इसका पहले पहल विकसित रूप मिलता है। इस पुराण की अधिकाँश सामग्री आठवीं शताब्दी ई० के बाद की है। और इसमें बहुतसे प्रक्षेप जोड़े गये हैं जिनका रचनाकाल अज्ञात है।१६। फिर भी महाभारत के अनुशासन पर्व में प्रस्तुत कथा का प्रथम आभास विद्यमान है। वाल्मीकि युधिष्ठर से कहते हैं कि किसी विवाद में मुनियों ने मुझको ब्रह्महन कहा था। इस कथन मात्र से मैं पापी बन गया था। मैने शिव की शरण ली और उन्होंने मुझको पाप से मुक्त करके कहा- "तेरा यश श्रेष्ठ होगा"। इस उद्धरण में वाल्मीकि को आदिकवि मानना युक्तिसंगत है क्योंकि अग्निहोतृ मुनियों के शाप से ब्रह्महत्या का दोष लगा था। आगे चलकर उनका वास्तव में ब्रह्मध्न तथा दस्यु माना जाना अनुशासन पर्व के इस प्रसंग का स्वाभाविक विकास प्रतीत होता है।

स्कंद पुराण में वाल्मीकि के विषय में चार कथायें विद्यमान हैं। वैष्णवखंड के वैशाखमास माहात्म्य में एक व्याघ्र का वृतान्त मिलता है, जिसका नाम नहीं दिया गया है। वह राम नाम का जप करके यह वरदान प्राप्त कर लेता है कि वह अपने अगले जन्म में बल्मीकि नामक ऋषि के कुल में उत्पन्न होगा। वाल्मीकि का नाम धारण करके यशस्वी बनेगा। कृणु नामक तपस्वी के शरीर के चारों ओर बल्मीक बन गया था। जिससे उसका नाम वाल्मीकि ही पड़ा था। व्याध उसी बल्मीकि के पुत्र के रूप में प्रकट हुआ, वाल्मीकि के नाम से विख्यात होने लगा और दिव्य रामकथा की रचना करने में समर्थ हुआ।१७।

प्रस्तुत कथा में वाल्मीकि अपने पूर्वजन्म में ही व्याध थे तथा उनके पिता के शरीर में वाल्मीक बन गया था। अवंतीखंड के आवान्त्य क्षेत्र माहात्म्य अध्याय (चौबीस) में अग्नि शर्मा की कथा वर्णित है। वह डाकू था, किसी दिन सात ऋषियों से भेंट हुई। वह उनको मार डालना चाहता था कि ऋषियों ने उसे उसके परिवार से यह पूछने भेजा कि "क्या तुम लोग मेरे पाप-फल के भागी बनने के लिये तैयार हो?" इस पर परिवार ने इन्कार किया। अग्नि शर्मा ऋषियों के पास लौटा और उनका परामर्श हंद्रयगम कर ध्यान तथा मंत्र जप

करने लगा। तेरह वर्ष बाद सात ऋषि फिर उस स्थल पर पहुँचे और उन्होंने उसके शरीर के चारों ओर वाल्मीक बना हुआ देख लिया। तब उन्होंने उसको निकालकर उसका नाम वाल्मीकि रखा और उसको रामायण लिखने का आदेश दिया।

नागरखंड में लोहजंघ नामक द्विज की कथा मिलती है।१८। प्रभासखंड के प्रभासक्षेत्र माहात्मय।१६। में निम्नलिखित मिलती-जुलती कथा है।

उपर्युक्त कथाओं का सबसे प्रचलित रूप।२०। अध्यात्म रामायण के अयोध याकाण्ड (सर्ग छः, श्लोक बयालिस-अठासी) में मिलता है। राम, लक्ष्मण, सीता निर्वासित होकर चित्रकूट के पास पहुँचे, उन्होंने अपना निवास स्थल निश्चित करने के लिये वाल्मीकी का परामर्श मांगा, वाल्मीकि ने राम की स्तुति करने के पश्चात् रामनाम महात्मय दिखलाने के उद्देश्य से अपनी राम कथा सुनाई।

अहं पुरा किरातेषु किरातैः सह वर्धितः।

जन्ममात्रद्धिजत्वं में शूद्राचाररतः सदा।। पैसठ।।

रामचरित मानस में कई स्थलों पर उपर्युक्त कथा की ओर संकेत मिलते हैं।

जान आदि कवि नाम प्रतापू, भयऊ युद्ध करि उल्टा जापू।। पाँच (बालकाण्ड, दोहा उन्नीस)

उलटा नामु जपत जगु जाना।

वाल्मीकि भय ब्रह्म समाना।। आठ।। (अयोध्याकाण्ड, दोहा, एक सौ चौरानवें)

गनिका अजामिल व्याध गीध गजादि खल तारे धना (छंद) (उत्तरकाण्ड, दोहा एक सौ तीस) तत्वस ग्रह रामायण में भी दस्यु वाल्मीकि की कथा को मिलता-जुलता रूप देखने को मिलता है।

आनन्द रामायण के राज्यकाण्ड (अध्याय चौदह) में जो कथा मिलती है उसमें वाल्मीकि के तीन जन्मों का वर्णन किया गया है। पहले जन्म में वह स्तंभनामक ब्राह्मणहै। द्धितीय जन्म में व्याध है। तीसरे जन्म में कृणु का पुत्र है। और तपस्या करने के पश्चात वाल्मीकि बन जाता है। अंत में रामायण की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि शंभु ने ब्रह्म से सुन लिया और बाद में उसे वाल्मीकि को सुनाया। तब क्रौंच के अवसर पर श्लोक की उत्पत्ति के पश्चात् वाल्मीकि ने 'शतकोटि विस्तरम्' रामायण की रचना की।

कृतिवासीय रामायण में अध्यात्म रामायण की कथा का किंचित परिवद्धित रूप पाया जाता है। व्याध का नाम रत्नाकर है वह च्यवन का पुत्र माना जाता है। सात मुनियों के स्थान पर ब्रह्म और नारद से भेंट होने का वर्णन है। वैराग्य उत्पन्न होने के बाद रत्नाकर ब्रह्म के कहने पर नदी में नहाने चला जाता है। नदी पर उसकी दृष्टि पड़ते ही वह सूख जाती है। तब ब्रह्म रत्नाकर को रामनाम का जप करने का परामर्श देते हैं किंतु उसका पापी मुँह इस पावन नाम का उच्चारण करने में असमर्थ है। इस प्रकार रत्नाकरको 'म-रा' जपने का परामर्श दिया जाता है।

तोरवे रामायण (एक या दो) के अनुसार भारद्वाज ने क्रौंच नामक वन में रहने वाले व्याघ्र को आशीर्वाद दिया। बाद में उस व्याघ ने बहुत समय तक तपस्या की और ब्रह्म से परमर्षित्व प्रदान किया। वह बल्मीक (बाँबी) से निकला, जिससे वह वाल्मीकि कहलाने लगा। एक अन्य कथा के अनुसार शिव और नारद से व्याध की भेंट होती है।२१। डे पोलिये के अनुसार वाल्मीकि दो ऋषियों के कहने पर बारह वर्ष तक तपस्या करके 'भावी रामायण' लिखने में समर्थ हुये।२२। डब्लू० क्रूके।२३। ने इस कथा के अनुसार गुरु नानक को वाल्मीकि के पास भेजा था, गुरु नानक के अनुरोध पर वाल्मीकि ने अपनी पत्नी से पूछा- क्या तुम मेरे लिये प्राण देने को तैयार हो? नकारात्मक उत्तर सुनकर वाल्मीकि तपस्वी के रूप में चंडालगढ़ (चुनार, उ०प्र०) के गदा पहाड़ पर निवास करने लगे। वह स्थान बाद में भंगियों का तीर्थ स्थान बन गया। बलराम दास के उत्तरकांड में वाल्मीकि की पत्नी का नाम धर्मवती है।

वाल्मीकि तथा भंगियों का जो सम्बन्ध सूचित किया गया है वह कई शताब्दियों से चला आ रहा है। इसमें वाल्मीकि को स्वपच कहा गया है। तुलसीदास ने विनय पत्रिका में लिखा है। स्वपच खल-भिल्ल जमनादि हरि लोकगत नामवल।२४। आजकल उत्तर भारत के हिन्दू भंगी अपने को वाल्मीकि के भक्त मानकर उनकी पूजा करते हैं।२५। पंजाब में यह कथा प्रचलित है कि जब तक नागरिक भंगियों की ओर देखने से इनकार करते थे तब तक वाल्मीकि की लाश प्रति-दिन बनारस में दिखाई पड़ती थी।२६। मुसलमान भंगी अपने को लालबेगी कहकर पुकारते है, उर्दू लिपि में वाल्मीकि को आसानी से लालबेग पढ़ा जा सकता है। डॉ० हरदेव बाहरी।७। ने कई कथाओं का संकलन किया है, जिसमें लालबेग की उत्पत्ति

वाल्मीकि से जोड़ी जाती है।

सारलादास के उड़िया महाभारत।२७। के अनुसार वाल्मीकि का जन्म इस प्रकार हुआ था ब्रह्म किसी समय गंगातट के मनुमेखला नामक स्थान पर तपस्या करने गये थे। वहाँ आठ देवकन्याओं के स्थान के पश्चात् गंगा से निकलते देखकर ब्रह्म का वीर्यपात हुआ था। उन्होंने वीर्य का एक अंश मेरु पर्वत पर फेंक दिया जिससे मेरुशूल ऋषि की उत्पत्ति हुई, शेष वीर्य नदी के बालू पर फेंका गया और उससे वाल्मीकि उत्पन्न हुये। उड़िया में बालू को बालि कहते हैं, संभव है बालि और वाल्मीकि का सादृश्य इस कथा की कल्पना में सहायक हुआ हो। इस कथा में वाल्मीकि को एक तपस्वी के तेज से उत्पन्न होता है।

प्रस्तुत विवेचन से स्पष्ट होता है कि वैयाकरण वाल्मीकि तथा सुपर्ण वाल्मीकि के अतिरिक्त महाभारत के प्राचीनतम पर्वों में जिन महर्षि वाल्मीकि की चर्चा है वह आदिकवि वाल्मीकि से भिन्न प्रतीत होते हैं।

रामायण के बालकाण्ड से पता चलता है कि लगभग प्रथम शताब्दी ई०पू० से आदि कवि वाल्मीकि तथा महर्षि वाल्मीकि की अभिन्नता सर्वमान्य होने लगी थी तथा वाल्मीकि को रामायण की घटनाओं का समकालीन बना दिया गया था। उत्तरकाण्ड के रचनाकाल में वाल्मीकि का अयोध्या के राजवंश से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया गया था। वाल्मीकि दशरथ के सखा माने गये उनके आश्रम में सीता के पुत्र उत्पन्न हुये और उनके शिष्य बन गये। तथा राम के अश्वमेध अवसर पर वाल्मीकि न सीता के सतीत्व का साक्ष्य दिया। उस समय तक उनको ब्राह्मण की उपाधि मिल गई थी और वह प्रचेता के दसवें पुत्र माने जाने लगे। बाद में उनको विष्णु का अवतार भी माना गया है।२७।

वाल्मीकि नाम की व्युत्पत्ति के आधार पर यह प्रसिद्ध होने लगा कि तपस्या करते समय उनका समस्त शरीर वल्मीक से समावृत हो गया था। दूसरी ओर महाभारत के अनुसार भार्गव च्यवन के विषय में भी इस प्रकार की कथा प्राचीन काल से ही प्रचलित थी। इस प्रकार च्यवन और वाल्मीकि के वृतान्तों का सम्मिश्रण हुआ और वाल्मीकि को भार्गव की उपाधि मिल गई।

महाभारत के अनुशासन पर्व में वाल्मीकि को किसी विवाद में एक बार 'ब्रह्महन' कहे जाने का उल्लेख है। क्या वाल्मीकि की इस निन्दा का वृतान्त में उनकी नीच जाति

प्रतिध्वनित है? क्या इसीलिये रामायण के उत्तरकाण्ड में उनके हजारों वर्ष तक तपस्या करने पर इतना बल दिया गया है? यह कष्ट कल्पना नहीं कही जा सकती है। बालकाण्ड में इसका स्पष्ट उल्लेख है कि वाल्मीकि के शिष्य कुशीलव ही थे। और कुशीलवों का समाज में कोई आदर नहीं था। जैसा कि नाम से (कु-शील) प्रतीत होता है।२८। जो कुछ भी अनुशासन पर्व के इस प्रसंग में उन कथाओं का विकास हुआ होगा जिनमें तपस्या करने के पूर्व वाल्मीकि के दस्यु होने का वर्णन है। उन कथाओं के मूलरूप में रामनाम का उल्लेख नहीं है। राम भक्त के होने के ही वाल्मीकि का यह वृतान्त रामनाम के गुणगान में परिणित कर दिया गया ।

रामायण का रचनाकाल- प्रथम शताब्दी के पूर्व में रामायण सर्वप्रथम पश्चिम में विख्यात होने लगा था। उस समय के विभिन्न विद्वानों के मतानुसार इसकी रचना अत्यन्त प्राचीनकाल में हुयी थी इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी कह सकना कठिन है। किन्तु इस विषय में कुछ प्रमुख मत इस प्रकार हैं-

ए० श्लेगल के अनुसार ११वीं श०ई०पू० तथा जी० गोरेशियो के अनुसार लगभग १२वीं शताब्दी ई०पू०। किन्तु इसके विपरीत जी०टी० ह्वीलर तथा डा० वेबर ने बौद्ध तथा यूनानी प्रभाव स्वीकार करते हुये अपेक्षाकृत उसकी रचना आर्वाचीन (नवीन) मानी है।

कालान्तर में विद्वानों ने रामायण को दो भागों आदि रामायण तथा वाल्मीकि रामायण में बाँटकर इनके रचनाकाल को अलग-अलग निर्धारित किया है।

आदि रामायण तथा वाल्मीकि रामायण के विभिन्न पाठों की तुलना के आधार पर अधिकांश विद्वान प्रचलित वाल्मीकि रामायण का वर्तमान रूप कम से कम दूसरी शताब्दी ई० का मानते हैं।

एच० याकोबी पहली अथवा दूसरी शताब्दी ई० को प्रचलित रामायण का काल मानते हैं, जबकि एम० विंटर नित्स दूसरी शताब्दी ई० को अधिक समीचीन समझते हैं।

सी०वी० वैद्य इसके काल को दूसरी श०ईपू० तथा दूसरी शताब्दी ई० के बीच में मानते हुए वह पहली शताब्दी ई०पू० को अधिक उपयुक्त समझते हैं। कालिदास के समय में रामायण ने अपना प्रचलित रूप धारण कर लिया था अतः अधिक संभव है कि प्रचलित रामायण का रूप दूसरी श०ई० के बाद का नहीं है। आदि रामायण तथा प्रचलित रामायण

की भिन्नता से स्पष्ट है कि इसके विकास में कई शताब्दियाँ लगी होंगी। अतः वाल्मीकि कृत रचना क्रम से कम तीसरी श०ई०पू० की होगी।

एम० मोनियेर विलियम्स तथा सी०वी० वैद्य के अनुसार प्रामाणिक वाल्मीकि कृत रामायण की रचना पाँचवीं श०ई०पू० अथवा बुद्ध के पूर्व हुई होगी।

डा० याकोबी रामायण का रचनाकाल पाँचवीं श०ई०पूर्व, छठी और आठवीं श०ई०पू० के बीच में मानते हैं।

ए०ए० मैकडोनेल के अनुसार रामायण दूसरी श०ई० के अंत तक अपना वर्तमान रूप धारण कर चुका था। किन्तु ए०वी० कीथ यकोबी के मत का खण्डन करते हुये आदि रामायण की रचना चौथी शताब्दी ई०पू० निर्धारित की है। एम० विंटर नित्स प्रायः ए०वी० कीथ से सहमत हैं, लेकिन वे वाल्मीकि को तीसरी शताब्दी ई०पू० का मानते हैं अतः अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि वाल्मीकि ने लगभग ३०० ई०पू० अपनी रचना की सृष्टि की है।

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर स्पष्ट होता है कि विन्टरनित्स का विचार अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है इनके अनुसार मूलतः इस ग्रंथ की रचना ८० ई०पू० चौथी शताब्दी में हुयी तथा इसका अंतिम रूप दूसरी शताब्दी ई० के लगभग निश्चित हुआ था।

रामायण को लिपीबद्ध करते समय विभिन्न पाठ, प्रसंग तथा श्लोकों के क्रम उसी रूप में लिखे गये, जिस रूप में भिन्न-भिन्न प्रदेशों के सूत और गायक उन्हें गाकर सुनाया करते थे। फलतः भारत के विभिन्न भागों में रामायण के पृथक-पृथक पाठ प्रचलित होगये। इन पाठ-भेदों के आधार पर पिछले डेढ़ सौ वर्षों में रामायण के अनेक संस्करण छपे। सबसे पहले सन् १८०६ में सिरामपुर के डा० पिलियम केरी और डा० जोशुआ मार्शमैन नाम के दो पादरियों ने रामायण के प्रथम दो कांड अंग्रजी अनुवाद सहित प्रकाशित किये। उनका आधार रामायण का पश्चिमोत्तरीय पाठ था। १८२६ में जर्मन विद्वान श्लीगल ने प्रथम दो कांड लैटिन अनुवाद भूमिका और टिप्पणी सहित प्रकाशित किये। संपूर्ण रामायण का सर्वप्रथम मुद्रित संस्करण राजा चार्ल्स अलबर्ट के व्यय से इटली के विद्वान गोरोशियो ने १८४३ से १८६७ के बीच प्रकाशित किया। यह संस्करण बंगाल में प्रचलित पाठ पर आधारित था। तत्पश्चात् उत्तर भारत में प्रचलित देवनागरी पाठ के आधार पर सन् १८८८

में निर्णय सागर प्रेस, बंबई, ने रामायण का संस्करण छापा तथा १६१२-२० में गुजराती प्रेस, बंबई, में तीन टीकाओं सहित सात जिल्दों में एक संस्करण निकाला। बंबई में छपे इन संस्करणों का पाठ कुंभकोणम (१६०५), श्री रंगम् (१६१७-८) तथा मद्रास (१६३३) के ही समान है, जिनमें दक्षिणात्य पाठ का अनुसरण किया गया है। पश्चिमोत्तरीय पाठ के आधार पर रामायण का लाहैर संस्करण १६२३-४७ में पं० भगवद्दत, पं० रामलभाया और पं० विश्व बंधु ने संपादित करके प्रकाशित कराया।

इन सबमें तीन संस्करण महत्वपूर्ण हैं- गोरेशियो का वंगीय संस्करण, बंबई और मद्रास का दक्षिणात्य संस्करण तथा लाहौर का पश्चिमोत्तरीय संस्करण। प्रत्येक पाठ में बहुत से श्लोक ऐसे मिलते हैं जो अन्य पाठों में नहीं पाये जाते। दक्षिणात्य तथा गौडीय पाठों की तुलना करने पर देखा जाता है कि प्रत्येक पाठ के श्लोकों की एक तिहाई संख्या केवल एक ही पाठ में मिलती है। इसके अतिरिक्त जो श्लोक तीनों पाठों में पाये जाते हैं उनका पाठ भी एक नहीं है और इनका क्रम भी बहुत स्थलों पर भिन्न।२६।

इन पाठान्तरों का कारण यह है कि वाल्मीकि रामायण प्रारंभ में मौखिक रूप से प्रचलित था और बहुत काल के बाद भिन्न-भिन्न परम्पराओं के आधार पर स्थायी लिखित रूप धारण कर सका। फिर भी कथानक के दृष्टिकोणों से तीनों पाठों की तुलना करने पर सिद्ध होता है कि कथावस्तु में जो अंतर पाये जाते हैं वे गौण हैं। मैने इस दृष्टिकोण से तीनों पाठों की विस्तृत तुलना की है।३०। इस तुलना से स्पष्ट हे कि उत्तरकांड की रचना बहुत बाद में हुयी थी। इस कांड में तीनों पाठों में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं मिलता। केवल दक्षिणात्य पाठ में सीता त्याग का कारण यह बताया जाता है कि भृगु ने अपनी पत्नी की हत्या के कारण विष्णु को शाप दिया था। यदि उत्तरकांड प्रारंभ से रामायण का एक अंग होता तो अन्य कांडों की तरह इस कांड के तीन पाठों में भी अंतर पाये जाते। तथा प्रचलित रामायण में चौबीस हजार श्लोक तथा सात कांड हैं जिसका अलग-अलग रचना काल निर्धारित करते हैं।

उपर्युक्त तीन पाठों की पाचीनतम हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर बड़ौदा विश्वविद्यालय के ओरियेंटल इन्स्टिट्यूट द्वारा रामायण का एक वैज्ञानिक (क्रिटिकल) संस्करण सन् १६६० ई० से प्रकाशित हो रहा है। वह अब तक समाप्त नहीं है। अतः प्रस्तुत

प्रबंध में रामायण के संदर्भ निम्नलिखित संकेताक्षरों द्वारा प्रचलित संस्करणों के अनुसार दिये गये हैं- रा० अथवा दा०रा० अर्थात् दक्षिणत्य पाठ (गुजराती पिंटिग प्रेस), गौ०रा० अर्थात् गौडीय पाठ (कलकत्ता संस्कृत सिरीज) तथा प०रा० अर्थात् पश्चिमोत्तरीय पाठ (लाहौर संस्करण)। और शांति पर्व के संक्षिप्त राम चरित से तथा अन्य निर्देशो से मिलता है।३१। ये आख्यान आज अपर्याप्त हैं, पर वाल्मीकि के समय में ये उपलब्ध रहे होंगे। निश्चय ही उन्होंने एक विस्तृत सुसंबद्ध राम-कथा की रचना करने में इनका प्रयोग किया होगा।

जहां तक रामायण की घटनाओं का प्रश्न है, पुराण विशेषज्ञ पार्जिटर ने वंशावलियों के आधार पर यह सिद्ध किया हे कि राम-रावण और कौरव-पांडव युद्धों के बीच पांच शताब्दियों का अंतर था। उनके अनुसार महाभारत युद्ध ११००ई०पू० में हूआ था।३२। इस प्रकार राम १६०० ई०पू० में हुये ओर रामायण की घटनायें इसी काल में घटित हुयी।

रामायण काल का पूर्ववर्ती युग उपनिषदों का समय माना जाना चाहिये, उपनिषदों क दार्शनिक महाराज दशरथ सीता के पिता राजा जनक से अठारह पीढ़ी पहले हुये थे।३३। और राम का समय प्राचीन उपनिषदों से लगभग चार सौ वर्ष बाद का रहा होगा।३४। किंतु ये सब तिथियाँ विवाद ग्रस्त हैं तथा अधिक शोध की अपेक्षा रखती हैं।

इस प्रसंग में महत्वपूर्ण प्रश्न की चर्चा कर लेना आवश्यक है, वह यह कि रचनाकाल की दृष्टि से रामायण और महाभारत में कौन पूर्ववर्ती है? रामायण की काव्य-शैली परिष्कृत और अपने समय की साहित्यिक प्रगति के अनुरूप है, तथा महाभारत की भाषा शैली में प्राचीनता और अस्तव्यस्तता दृष्टगोचर होती है, कई विद्वानों का कहना है कि महाभारत की रचना रामायण से पहले हो चुकी थी। लेकिन इस संबंध में यह स्मरण रखना चाहिये कि महाभारत कई हाथों की रचनाओं की 'संहिता' है, इसीलिये उसमें भाषा की विभिन्नता और कावयशैली का अपरिष्कार दिखाई पडना स्वाभाविक है। रामायण एक हाथ की रचना है।

रामायण और महाभारत में चित्रित सामाजिक व्यवस्थाओं में कौन अधिक प्राचीन है? महाभारत में वर्णित सभ्यता अशांतिमय एवं अव्यस्थित है, किंतु रामायण की सभ्यता अपेक्षाकृत अधिक शांत, व्यवस्थित, सुसंस्कृत और आदर्श है। इस आधार पर पाश्चात्य

विद्वान यह अनुमान करते हैंकि महाभारत कालीन समाज रामायण कालीन समाज की अपेक्षा प्राचीनतर है। रामायण केमुख्य पात्र आर्यो के अतिरिक्त वानर, ऋक्ष और राक्षस जैसे आदिवासी हैं, जबकि महाभारत के मुख्य पात्र सुसंस्कृत मनुष्य ही हैं।रामायण के वीर का नैतिक आचरण सहज है अन्यथा भाव संभव नहीं। महाभारत के वीर अधिकतर सजातीय समाज में चमके हैं, परन्तु रामायण के वीर विजातीय परिवेष्टन में चमके हैं। महाभारत के क्षत्रिय वीर अनेक प्रकार के कालोपयेगी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हैं, तत्कालीन प्रचलित नवीनतम युद्ध-कौशलों और युद्ध-रूढ़ियों के अभ्यस्त हैं, पर रामायण के वीर- हनुमान, सुग्रीव, जाबवान-न तो इन कौशलों के जानकार हैं और न रूढ़ियों के कायल।३५। रामायण काल का आर्थिक जीवन भी महाभारत के अर्थिक जीवन से पिछड़ा हुआ है।३६।रामायण का समाज, अपने सीमित भौगोलिक दायरे में अधिक सुगठित, व्यवस्थित और संघर्ष रहित है, जबकि महाभारत के समाज की भौगोलिक सीमाएं अधिक विस्तृत और संघर्ष-सकुंल है। रामायण कालीन भारत के राजनीतिक मानचित्र में छोटे-छोटे राज्यों का बाहुल्य तथा किसी सार्वभौम सत्ता का अभाव पाया जाता है, तो महाभारत चौथी शता०ई०पू० की राजनीतिक स्थिति की ओर इंगित करता है, जब पूर्वी भारत में जरासंघ का शक्तिशाली साम्राज्य मगध के अतिरिक्त अन्य राज्यों को अपने भीतर समेटे हुये था। यदि रामायण कालीन संस्कृति महाभारत कालीन संस्कृति की अपेक्षा अर्वाचीन है तो रामायण में महाभारत के सुप्रसिद्ध राज्यों का उल्लेख कैसे नहीं हुआ? रामायण क्योंकि इक्ष्वाकु नृपतियों के गौरवशाली युग से संबंधित है और महाभारत के समय कोसल राज्य को मगध साम्राज्य ने उदरस्थ कर लिया था, इसीलिये रामायण काल निश्चय ही महाभारत काल का पूर्ववर्ती है। रामायण की उत्तर भारतीय आर्य सभ्यता को महाभारत काल के विस्तृत भारत वर्ष में व्याप्त होते-होते काफी समय होने लगा होगा। तब यवन, शक, हूण, चीन और अन्य विदेशी जातियां भारत के विभिन्न भागों में बस चुकी थीं। दुर्योधन के दरबार में क्षत्रियेतर, म्लेच्छ, यवन आदि का उल्लेख केवल दो बार हुआ है और उनका देश के राजनीतिक जीवन में नगण्य स्थान है।३७।

इसके अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वान महाभारत की अपेक्षा रामायण को परवर्ती सिद्ध करने में जो यह तर्क देते हैं कि महाभारत की विषम एवं अव्यवस्थित संस्कृति में

परिणित हो गई, उसके मूल में विकासवाद का सिद्धांत है, जिसके अनुसार मनुष्य उत्तरोत्तर सभ्य एवं शिष्ट बनता जाता है। हमारा भारतीय दृष्टिकोण इसके विपरीत है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, और कलियुग का क्रम मनुष्य की उत्तरोत्तर ह्रासोन्मुखी प्रकृति का ही परिचायक है। रामायण की समुन्नत संस्कृति का महाभारत काल में जाकर काल क्रम में ह्रास हो गया। उस समय के आदर्शवाद में शिथिल पड़ गये। कहां श्री राम का परम और उदान आचरण और कहाँ युधिष्ठिर का द्यूत कर्मों में लगा रहना, कहां राम और भरत की राज्य के प्रति अनिच्छा और कहां दुर्योधन की राज्य लिप्सा। इस प्रकार दोनों कालों की संस्कृति में महान अंतर है। कहां सती साध्वी सीतां का पातिव्रत्य और श्री राम का एक पत्नी व्रत ओर कहां कुन्ती का कुमारावस्था में ही संतानोत्पत्ति! इस प्रकार जहाँ रामायण परवर्ती सत्ययुग की झांकी कराती है, वहाँ महाभारत परवर्ती कलियुग के आगमन की सूचना देता है। रामायण सुख, शांति, समृद्धि का पतिनिधित्व करती है तो महाभारत प्रचंड, संक्षोभ, विप्लवकारी परिवर्तन तथा संहारकारी युद्ध के युग का दिग्दर्शन करता है।३८।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पहले अध्याय में हमने विषय की सामान्य भूमिका प्रस्तुत की, अब इसी संदर्भ अन्तर्गत हम रामायण की रचना काल को बताने का प्रयास कर रहे हैं तत्पश्चात हम रामायण के पूर्व का भारतीय समाज एवं संस्कृति की एक झलक प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

रामायण के पूर्व का भारतीय समाज एवं संस्कृति की एक झलक–

सामाजिक व्यवस्था– रामायण के पूर्व का भारतीय समाज वर्ण और आश्रमों के नियमों से बँधा हुआ था। स्मृतियों में आर्य, अनार्य के अतिरिक्त कुछ मिश्रित जातियाँ भी थीं। इनमें अवैध सन्तान और कर्म से रहित लोगों की गणना की जाती थी। स्मृतियों में दासों का काफी उल्लेख हैं सामाजिक जीवन पूर्वकाल की भाँति था। स्त्रियों को वेदाध्ययन के अधिकार से वंचित कर दिया गया था।

प्राग्मौर्य युग अथवा परिवर्तन का युग– समाज में लोगों के दो वर्ग उभर कर आते थे।

१. वैदिकधर्म, कर्मकाण्ड, ब्रह्मणों को दान–दक्षिणा देना तथा देवी–देवताओं को पूजने में

सन्तुष्टि का अनुभव करता था।

२. जो इस प्रकार की रीति-रिवाज से केवल असंतुष्ट ही नहीं था वरन् उनके विरुद्ध प्रतिक्रिया भी अभिव्यक्त कर रहे थे। गणतन्त्र प्रणाली के कारण व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को बढ़ावा मिला हुआ था। यह युग वैदिक धर्म द्वारा प्रतिष्ठापित सामाजिक व्यवस्थाओं में विश्वास खोता जा रहा था।

छठीं शती ई०पू० के काल को हम भारतीय इतिहास का परिवर्तन युग या संक्रमण काल भी कह सकते हैं। इस काल की वैचारिक प्रवृत्ति पुरातन मान्यताओं को उनके मूलरूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं था। इस क्रान्ति ने ब्राह्मण धर्म को लुप्त कर दिया।

सामाजिक जीवन-

वर्ण व्यवस्था- समाज का आधार वर्ण-व्यवस्था थी। यद्यपि बौद्ध और जैन धर्म ने वर्ण व्यवस्था का घोर विरोध किया पर समाज में वर्ण व्यवस्था प्रचलित थी। महावीर का कहना था कि किसी व्यक्ति का वर्ण जन्म से ही निश्चित नहीं होना चाहिए अपितु कर्म से होना चाहिए। जाति-पाँति के विरुद्ध थे, फिर भी यज्ञ, पूजा-पाठ कम होने के कारण ब्राह्मणों की स्थिति में अन्तर आ गया था। बौद्ध धर्म के द्वार सभी के लिये खुले थे। लौकिक जीवन में चरित्र और नैतिकता पर विशेष बल दिया जाने लगा था। अश्पृश्यता के भाव पर बौद्ध ध र्म ने अंकुश लगा रखा पर जब बौद्ध धर्म का ह्रास हुआ तो यह भाव और बढ़ गया। समाज में शूद्र भी थे परन्तु उनके साथ छुआ-छूत जैसी कोई भी भावनायें नहीं थीं।

यद्यपि जाति व्यवस्था और भेदभाव की जटिलता थी फिर भी विभिन्न वर्ग के लोग परस्पर विवाह करते थे। जैन, बौद्ध धर्म ने आश्रम व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था दोनों का विरोध किया। इसके अतिरिक्त दैनिक जीवन की नैतिकता शुद्ध और पवित्र आचरण, सेवा, संयम का महत्व माना जाता रहा था।

इस युग में नगरों का विकास हो रहा था, संयुक्त परिवार प्रथा विद्यमान थी। वयोवृद्ध ही परिवार का मुखिया होता था। बौद्ध, जैन धर्म के प्रभाव के कारण पशुवध क्रूर, नृशंस, घृणास्पद माना जाता था। इससे प्राणिमात्र के प्रति दया की भावना लोगों में विकसित हुयी। भोजन में माँस का प्रयोग कम होता गया। भोजन में गेहूँ, जौ, चावल, दालें, साग-सब्जी, फल, दूध, दही, घी, छाछ, तेल, तिल, मधु का प्रयोग किया जाता था।

लोग सूती, ऊनी, रेशमी वस्त्रों का उपयोग करते थे। स्त्री-पुरुष आभूषण प्रिय थे।

इस युग की स्त्रियों की दशा में वैदिक युग की अपेक्षा अधिक पतन हो गया था। सन्यासी प्रवृत्ति बढ़ने के कारण स्त्रियों की निन्दा भी की जाती थी। इस समय स्त्रियों को पुरुष के समान अधिकार नहीं थे। उनकी स्वतन्त्रता सीमित थी। वह पुरुष पर आश्रित मानी जाती थी। परन्तु स्त्रियों के साथ आदर का व्यवहार किया जाता था। कन्याओं की शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी। अशोकावदान से पता चलता है कि पर्दा प्रथा नहीं थी, सती प्रथा नहीं थी, बाल विवाह नहीं थे, विवाह प्रायः वयस्क अवस्था में ही होते थे।

यह काल वह काल था जिसमें सम्पूर्ण उत्तर भारत में सभी पहलुओं पर निश्चित दिशा में परिवर्तन हो रहे थे। उत्तर वैदिक काल में समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित था। ब्राह्मण, क्षत्रिय विशेषाधिकार सम्पन्न थे। वैश्य, शूद्र भी निम्न थे और वे उत्पादन के लिये उत्तरदायी थे। इन सभी वर्गों में आपस में तनाव की स्थिति दिखाई पड़ती है। इस युग में एक ओर यज्ञ अनुष्ठान एवं कर्मकाण्डीय व्यवस्था थी तो दूसरी ओर उनका विरोध किया जा रहा था। कर्मकाण्ड में ब्राह्मणों का स्वार्थ निहित था। आरम्भ में क्षत्रियों ने इनका समर्थन किया किन्तु जब उत्पादन पर अधिकाधिक अधिकार करने की भावना बलवती हुयी तो कर्मकाण्ड का विरोध भी होने लगा। महाकाव्यकालीन सभ्यता और संस्कृति का सम्बन्ध रामायण और महाभारत में वर्णित विषयों में से है। भारतीय इतिहास में इन दोनों ग्रन्थों का उतना ही महत्व है जितना यूनानियों के लिये 'इलियड' तथा 'औडेसी' का है।

महाकाव्यकाल में अतिथि की बड़ी महिमा थी। अतिथि का आशीर्वाद सौ यज्ञों के पुण्य से बड़ा माना गया। इस युग में सामान्य जन स्वाभाव से सरल, सत्यप्रिय, मधुरभाषी, सीधे-सादे थे। आत्मसंयम सबसे बड़ा धर्म माना जाता था।३९। वेशभूषा साधारण, सूती, ऊनी, रेशमी, ऊनी वस्त्रों का प्रयोग होता था। भोजन सादा था पर अब माँस का प्रयोग भी अधिक होता था। राजा रन्तिदेव के यहाँ प्रतिदिन दो हजार पशु काटे जाते थे और उनका माँस प्रजा में बाँट दिया जाता था।४०। गेहूँ, जौ, बाजरा, चावल, विभिन्न दालों के अतिरिक्त दूध, दही, फल, हरी सब्जियों का प्रयोग किया जाता था। अनुष्ठानों, त्यौहारों पर सुरा का प्रचलन था। अभी भी संयुक्त प्रथा थी पर उसमें से कठोरता समाप्त होती जा रही थी। परिवार पितृ प्रधान था। लोगों के जीवन में नैतिकता को प्रमुख स्थान प्राप्त था। जीवन

आनन्द और उल्लास से परिपूर्ण था। "कृष्ण, बल्देव, अर्जुन हजारों स्त्रियों को लेकर वन को जाते हैं, माँस मदिरा से, नाच गाने से, हँसी मजाक से, आनन्द प्रमोद करते हैं।"४१। रामायण में व्यक्तिगत चरित्र का आदर्श अति उच्च है। मृदुता, शान्ति, दया, शौर्य, संयम तथा कृतज्ञता को चारित्रिक गुण माना जाता था।४२।

विभिन्न प्रथायें- महाभारत के काल में बाल विवाह प्रथा विद्यमान थी। अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का विवाह सोलह वर्ष की आयु में हो गया था। अनुशासन पर्व में भीष्म ने कहा है कि "तीस वर्ष की आयु का पुरुष दस वर्ष की कन्या से विवाह कर सकता है।" महाकव्यकाल में नियोग की प्रथा भी प्रचलित थी। पाण्डवों की माता कुन्ती ने युधिष्ठिर आदि को नियोग द्वारा उत्पन्न किया था, क्योंकि पाण्डु इस कार्य में असमर्थ थे। महाभारत की एक कथा के अनुसार परशुराम ने बहुत से क्षत्रियों का विनाश कर दिया तो क्षत्रिय स्त्रियों ने ब्राह्मणों के साथ नियोग करके सन्तानें उत्पन्न कीं और अपने वंश को चलाया।

उस समय वेश्यावृत्ति का जन्म हो चुका था। महाभारत में कहा गया है कि शान्तिवार्ता के लिये आने पर श्रीकृष्ण का स्वागत वेश्याओं ने किया। पाण्डवों की सेना में मनोरंजन के लिये वेश्यायें भी सम्मिलित थीं। प्रमाणों द्वारा विदित होता है कि विभिन्न अवसरों पर वेश्याओं के नृत्य का आयोजन होता था तथा उसे मंगलकारक समझा जाता था।

कौरव-पाण्डवों ने भी अनेक प्रकार के यज्ञ किये थे। राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ भी प्रचलित थे। पशुबलि धीरे-धीरे समाप्त हो रही थी। सोलह संस्कार तथा पंच महायज्ञ जीवन के आवश्यक कृत्य थे।

ऋग्वैदिक काल में देवी-देवताओं की पूंजा अब कुछ कम हो गयी परन्तु उत्तर वैदिक काल में देवी-देवता अभी भी परम् पूज्यनीय थे। इस काल में ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, दुर्गा, पार्वती पूजे जाते थे। वैदिक काल में ब्रह्म की उपासना की जाती थी। विष्णु यज्ञ के प्रमुख देवता माने जाते थे।

कर्मवाद तथा पुनर्जन्मवाद का विकास हो रहा था तथा भक्तिमार्ग पर जोर दिया जा रहा था। दर्शन की भी उन्नति हुयी, वैदिक दार्शनिक विचारधारा के रूप में इस काल के प्रतिष्ठित ऋषियों ने महान चिन्तक कर सांख्य योग तथा पूर्वभीमाँसा जैसे दार्शनिक विषयों एवं धाराओं को जन्म दिया।

महाकाव्ययुगीन संस्कृति– यह युग अपने दोषों से परिचित हो चुका था, उनके निराकरण के उपायों की खोज में था। महाभारत में इसका स्पष्ट संकेत था। ''सच्चाई अपने ऊपर काबू रखना, तपस्या, उदारता, अहिंसा, धर्म पर डँटे रहना– इससे सफलता प्राप्त होती है.....सच्चे आन्द के लिये कष्ट उठाना जरूरी है......... रेशम का कीड़ा अपने धन के कारण मरता है........... असंतोष उन्नति के लिये उकसाता है।

सूत्रकालीन समाज– सूत्रकालीन समय में गृहस्थाश्रम में किये जाने वाले संस्कारों का विवरण नियमन है।

खान-पान में चावल, जौ, सेम के बीज, सरसों प्रमुख हैं। दूध, दही, मक्खन खाया जाता था। शहद नमक तथा अवसरों पर सोमरस का प्रयोग था।

वेशभूषा सादी थी, कमर के नीचे अन्तरीय, ऊपर उत्तरीय वस्त्र पहना जाता था। अवसरों पर पगड़ी पहनी जाती थी। ऊनी, सूती, रेशमी वस्त्र थे। कम्बल को पवित्र माना जाता था। सूत्रकाल में गायन, वादन, नृत्य, नाटक, द्यूत, शारीरिक क्रीड़ायें, आखेट प्रचलन में थे।४३।

स्त्रियों की दशा– स्त्रियाँ यज्ञ के लिये स्वतन्त्र नहीं थीं। वशिष्ठ के अनुसार स्त्रियाँ 'स्व' (सम्पत्ति) के अन्तर्गत रखी जाती थी।४४। उन्होने स्त्रियों की स्वतन्त्रता भी सीमित कर दीं।४५। सती प्रथा का प्रचलन नहीं था। विधवा विवाह की अनुमति का उल्लेख मिलता है।

सूत्रकाल में वर्ण व्यवस्था के अधिकार एवं कर्तव्यों की सीमायें निर्धारित कर दी गई थीं। इस व्यवस्था का लचीलापन केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को ही सुलभ था, शूद्रों को नहीं। इस काल में चारो आश्रमों का पालन करना पड़ता था। इस युग में यज्ञ को महत्व दिया जाता था। अनेक देवी-देवताओं का भी जन्म हुआ। शैव सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव भी इसी काल में हुआ। वासुदेव सम्प्रदाय का भी जन्म हुआ। मूर्तिपूजा बढ़ने लगी। सूत्रों में ग्रामीण जीवन का विवरण है, नगर जीवन का नहीं। समुद्र यात्रा, विदेश यात्रा और म्लेच्छों की भाषा सीखने का निषेध इसके प्रमाण हैं। यह सब होते हुए भी यह युग सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

स्मृति गृन्थों में वर्णित संस्कृति– स्मृतियाँ, धर्मशास्त्र भी कही जाती है। प्राचीन भारत की सभ्यता और संस्कृति के सम्बन्ध में पर्याप्त सूचना देती है। इनका जो वर्तमान रूप है

उसमें रामायण और महाभारत की भाँति अनेक अंश बाद में जोड़ा गया है। स्मृतियों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये कर्तव्यों, अधिकारों, सामाजिक नियमों तथा आसन विधियों को व्यवस्थित रखने के लिये है।

नारी जीवन उच्च, आदर्शवादी तथा प्रतिष्ठित था। रामायण में कहा गया है "अनन्य रूपा पुरुषस्य द्वारा" (पत्नी रूप में स्त्री पुरुष का अनन्य रूप है) महाभारत के अनुसार स्त्री पुरुष की सर्वप्रिय सखा तथा अर्धांगिनी है, "माता गुरुतरा भूमैः" (माता रूप में नारी भूमि से भी उच्च है), "गुरुणाम चैव सर्वेषाम् माता परमकौ गुरुः" (वह माता रूप में गुरु से भी श्रेष्ठ है। इन उल्लेखों द्वारा नारी के सम्मान का पता चलता है। महाभारत में नारी को अबध्य बताया गया है। रामायण में भी रावण ने सीता का वध नहीं किया, कारण यह था कि स्त्री-वध नैतिकता के विरुद्ध था।

वर्ण व्यवस्था इस काल में विस्तृत हो गई थी। अब एक ही वर्ण के मध्य कई वर्ण बनते जा रहे थे। ब्राह्मण में ६ वर्ग ब्रह्मसम, देवसम, चाण्डालसम, क्षत्रियसम, वैश्यसम। राजसत्ता क्षत्रियों के हाथ में थी। क्षत्रिय ब्रह्मविद्या का अध्ययन तो कर सकता था परन्तु उसे यज्ञ का अधिकार नहीं था। इसके विपरीत द्रोणाचार्य जैसे ब्राह्मण ब्रह्मविद्या के अतिरिक्त क्षत्रियजनित गुणों में भी पारंगत थे तथा महाभारत के युद्ध में योद्धा रूप में उन्हें विशेष ख्याति प्राप्त हुयी। वैश्यों के भी कई वर्ग बन गये थे, वह राजनीतिक क्षेत्रों में अधिक शक्तिशाली होता जा रहा था। शूद्र वर्ण समाज का निम्नतर वर्ण था। जैसा कि रामायण में वर्णित है कि शम्बूक शूद्र को रामचन्द्र जी ने इसीलिये मार डाला कि वह तप कर रहा था। महाभारत में विदुर ने कहा कि "शूद्र को मैं शिक्षा नहीं दे सकता।"

धार्मिक जीवन– उत्तर वैदिक युग की यज्ञों की प्रथा विद्यमान थी। रामायण काल में यज्ञों का खूब महत्व रहा। राम ने स्वयं यज्ञ किये। महाभारत में भी यज्ञ विलुप्त नहीं हुए थे। मौर्य तथा मौर्योत्तर काल की संस्कृति– मौर्यकालीन समाज की रचना का ज्ञान हमें कौटिलीय अर्थशास्त्र में मेगस्थनीज के विवरण से प्रप्त होता है। इसके अतिरिक्त अशोक के शिलालेखों तथा यूनानी लेखकों के विवरण हैं। वर्णाश्रम व्यवस्था निर्दिष्ट स्तर तक स्थिर हो चुकी थी। इसका पालन करना प्रमुख कर्तव्य माना जाता था। दासों को मारना-पीटना, अपशब्द कहना वर्जित था। ऋण चुकाकर दासवृत्ति से मुक्ति पायी जा सकती थी। दासों को वेतन भी दिया

जाता था।

खान-पान में खाद्यान्न, दूध, शाक, भाजी, माँस का प्रयोग होता था, इसीलिये अशोक ने हिंसा पर रोक लगाई थी। विशेष प्रकार की मदिरा का भी प्रावधान था।

मौर्यकाल में स्त्री-पुरुषों को आभूषण से बड़ा प्रेम था। नागरिकों का सामान्य आचरण सरल तथा मितव्ययी था। अहिंसा, दान, क्षमा, सत्य, प्रेम आदि गुणों पर बल दिया जाता था। पारिवारिक जीवन में विवाह को विशेष महत्त्व दिया जाता था। बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। विशेष परिस्थितियों में तलाक का भी प्रवधान था। नियोग प्रथा भी विद्यमान थी। स्त्री का स्त्रीधन पर अधिकार होता था। रांजनीति में भाग लेना निषेध बताया गया है।। कौटिल्य ने स्त्रियों को न निकलने वाली कहा है।४७। इस समय स्त्रियों की दशा पूर्वकाल की तरह महत्वपूर्ण उन्नत नहीं थी।

हम यह कह सकते हैं कि स्त्री को सम्पत्ति पर अधिकार था। अपने पति के अत्याचार के विरुद्ध न्यायालय की शरण में जा सकती थी। जीवन साथी चुनने का अधिकार था। अनेक स्त्रियाँ दर्शनशास्त्र करती थीं। सार्वजनिक हित के कार्य में दानादि वितरण करने की स्वतन्त्रता थी। इस समय वैदिक यज्ञों का पुनः प्रचार होने लगा था। मूर्तिपूजा विद्यमान थी। मौर्य साम्राज्य की ओर से जैन धर्म को अन्य धर्मों के समान आदर व सम्मान प्राप्त था।

मौर्योत्तरकालीन संस्कृति (२०० ई०पू० से ३०० ई० तक)-

सामाजिक दशा- अधिकतर विद्वानों के अनुसार रामायण, महाभारत की उनके वर्तमान रूप में रचना २०० ई०पू० से लेकर २०० ई० के बीच हुयी थी। मौर्यकाल में हमें व्यक्ति, परिवार, समाज के मध्य मधुर सम्बन्धों को जोड़ने वाला अशोक का धर्ममित्र। वह धर्म के सहारे लोगों में आत्मसंयम, दूसरों के प्रति सहिष्णुता तथा परिवार के सम्बन्ध को ठीक बनाये रखना चाहता था। २०० ई०पू० के उपरान्त के समाज में ऐसे विचारों का प्राबल्य रहा। रामायण में कहा गया है कि चरित्र ही धर्म है, मन का संयम, इन्द्रियों पर नियन्त्रण, कर्तव्यपालन चरित्र का लक्षण होता है। समाज की व्यवस्था बनाये रखने में यही धर्म योगदान करता है। भगवान राम के माध्यम से महर्षि वाल्मीकि ने संतुलित समाज, व्यवस्थित राष्ट्र, मर्यादित आचार और संयत व्यवहार की आधारशिला पर धर्म का सुदृढ़ प्रसाद खड़ा किया।

महाभारत में चारो वर्णों के नौ कर्तव्य बताये गये हैं। इन कर्तव्यों के पालन से समाज में व्यवस्था रहेगी, इसके अनुसार जब लोग धर्म का पालन नहीं करते तब समाज में अव्यवस्था फैल जाती है।

इस समय जाति के सिद्धान्त को अधिक महत्व दिया जाने लगा था। उनका मत था कि जो व्यक्ति अपने वर्ण के अनुसार कार्य न करे, उसे राजा दण्ड दे। प्रथम व द्वितीय शताब्दी ई० में वशिष्ठ के कथन से भी इसकी पुष्टि होती है। पहली शताब्दी में वर्ण जाति में परिवर्तित होने लगे थे। यह सर्वविदित है कि सातवाहन समाज व्यवसाय के आधार पर चार भागों में विभाजित था। यह विभाजन जाति के आधार पर नहीं था। इस समय अर्न्तजातीय विवाह होते थे। वसिष्ठीपुत्र पुलूमावी के भाई ने एक शक कन्या से विवाह किया। शूद्रों के लिये तीनों वर्णों की सेवा करना बताया है। शूद्र अध्यापकों और शिष्यों का उल्लेख किया है इससे पता चलता है कि वे शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। परन्तु वैदिक ग्रन्थ न ही पढ़ सकते थे और न ही यज्ञ कर सकते थे। शूद्रों की स्थिति खराब होते हुये भी अब सुधर रही थी।

जाति प्रथा– इस काल की प्रमुख घटना यवन, पहलव, शक तथा कुषाणें आदि अनार्य जातियों का उल्लेख किया गया है। इन जातियों की अपत्ति अर्न्तजातीय विवाहों से हुई।

संयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित थी। दास प्रथा भी विद्यमान थी। पर उनकी स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। स्वामी अपने दास को बेच सकता था, किराये पर दे सकता था, दान दे सकता था।

स्त्रियों की दशा– समाज में पुत्री की अपेक्षा पुत्र को ज्यादा महत्व दिया जाता रहा है। 'थेरीगाथा' के पर्दो से मौर्य काल में अनेक भिक्षुणियों को धर्म दर्शन का अच्छा ज्ञान था। गीता में एक स्थान पर स्त्री को शूद्र के समकक्ष माना गया है। इससे यह स्पष्ट है कि समाज में २०० ई०पू० स्त्रियों की दशा में गिरावट आने लगी थी। प्रथम शताब्दी ई० को रचित 'गाथा सप्तशती' से पता चलता है कि इस काल में स्त्रियों को पर्याप्त शिक्षा मिलती थी। इस काल में विवाह १२–१३ वर्ष में हो जाता था। इस काल में अधिक आयु वाली कन्या को अविवाहित रहना पाप समझा जाता था। इस प्रकार के विवाह प्रचलित थे। महाभारत में क्षत्रियों को राक्षस से विवाह करना उचित बताया गया है। थेरीगाथा से पता चलता है कि

इस समय विदेशी जातियों का बड़ी संख्या में भारत में प्रवेश होने से सामाजिक क्षेत्र में कई समस्याएँ और नवीन प्रवृत्तियाँ सामने आयी। बहुसंख्यक यूनानी, शक, कृषाण, पहलव आदि भारत में आक्रमणकारियों के रूप में आये।

हम निष्कर्ष रूप में यह कह सकते है कि २०० ई०पू० में बौद्ध धर्म ने ब्राह्मण सामाजिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया था, पर २०० ई०पू० के उपरान्त छिन्न भिन्नता पर नियन्त्रण स्थापित कर दिया। वर्ण व्यवस्था के नियम थोड़े शिथिल पड़ गये। शुंग सातवाहन काल में आश्रम व्यवस्था को पुनः स्थापित करने की चेष्टा की गई। इससे पहले आश्रम व्यवस्था इसलिये समाप्त हो रही है कि अनेक लोग युवावस्था में भिक्षु बन जाते थे।

कई दृष्टिकोणों से यह युग सामाजिक व्यवस्था का संक्रमण काल जैसा प्रतीत होता है। इस युग में भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ और सामाजिक जीवन में कई परिवर्तन आये। जो विदेशी भारत आये उनकी अपनी कोई सामाजिक पद्धति नहीं थी, किन्तु भारत में बसने पर भारतीय समाज में उनका जो अद्भुत सामाजिक विलीनीकरण हुआ वह निश्चिय ही भारतीय संस्कृति की शस्त्रविहीन विजय थी। समन्वित भारतीय संस्कृति की सामाजिक उदारता ने भररतीय समाज को विदेशी आक्रमणकारियों की तीव्रता से मुक्ति दिलाई।

महायान का उदय और ईश्वरवादी उपासना- इस अध्ययनकाल में धार्मिक क्षेत्र में कई धार्मिक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। बौद्ध धर्म में नवीनता का समावेश हुआ। यूनानी, शक, पार्शियन और कुषाण भारत में आकर अपना अस्तित्व खो बैठे। कुछ विदेशी शासकों ने बौद्ध धर्म को अपनाया। प्रसिद्ध यूनानी मिनेण्डर बौद्ध बना। अनेक कुषाण शिव और बौद्ध दोनों के ही प्रति समान उपासना भाव रखते हैं। इनन दोनों का अंकन कुषाण मुद्रओं पर है।

१८४ ई०पू० में मौर्य साम्राज्य का पतन हो गया। उसके बाद के युग में कण्व और अन्य राजवंश शासन करते रहे। इनमें से कई ने काफी कविस्तृत साम्राज्य स्थापित किये। इसी काल में दूसरी सदी ई०पू० से दूसरी सदी ई० तक उत्तर और पश्चिम भारत में कई विदेशी शासकों ने राज्य किया। शुंगकाल ब्राह्मण संस्कृति के पुनुरुद्धार का काल था। अशोक ने अहिंसा का प्रचार करके यज्ञों में बलि देने की प्रथा को समाप्त किया था, किन्तु

पुष्यमित्र शुंग के उपरान्त कुषाणों का उत्थान हुआ। कुषाणों का सबसे शक्तिशाली राजा कनिष्क प्रथम था। इसके काल में देश का पर्याप्त सांस्कृतिक उत्थान हुआ। धर्म, साहित्य, कला के क्षेत्र में नवीन तथ्यों ने जन्म लिया और इन्होंने भारतीय संस्कृति पर अपना प्रभाव डाला। कुषाण संस्कृति पर विदेशी संस्कृति की छाप थी। इस काल में भारत का विदेशी व्यापार उन्नत अवस्था में था।

कुषाण काल भारतीय, ईरानी, रोमन और चीनी संस्कृतियों का सेगमकाल था। कनिष्क स्वयं बौद्ध था और कला का बड़ा पुजारी था। कुषाण संस्कृति भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में समन्वयवादी संस्कृति है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

१. तैर्युक्त : श्रूयतं नरः १,१७

२. मद्रास वि०वि० द्वारा प्रकाशित तैत्तिरीय प्रतिशाख्य में (सन् १६३०) में तीन स्थलों पर वाल्मीकि का उल्लेख ५, ३६,६,४,१८,६।

३. दे० ऑन दि रामायण, पृ० १७ टिप्पणी।

४. दे० उस रामायण, पृ० ६६ टिप्पणी।

५. दे० ए०सी० दास, ऋग्वैदिक इण्डिया, पृ० ६५ और १४८।

६. दे० बालकाण्ड, सर्ग १-४

७. राज्ञो दशरथवस्यैव पिर्तुम मुनिपुंगवः (छह) सखा परमको विप्रो वाल्मीकिः सुमह्ययशाः, सर्ग ४७

८. उत्तर काण्ड, सर्ग ४७

६. उत्तर काण्ड, सर्ग ६३-६४

१०. दक्षि० रामायण (उत्तर काण्ड) ।।।, ।। में वाल्मीकि को प्रचेता का पुत्र कहा गया है किन्तु अन्य पाठों में नहीं।

११. उत्तरकाण्ड, सर्ग ४७

१२. उत्तर काण्ड, सर्ग ६६, १५

१३. केवल पश्चिमोत्तरीय पा० (दे०, २, १०५-१४) में भरत के वाल्मीकि आश्रम होकर चित्रकूट पहुँचने का उल्लेख है।

१४. प्रचेता तथा वरुण एक हैं (दे० कुमार संभव २, ११, ८ ऋग्वेद ६, ६५ और १०, १६) में भृगु का नाम वरुणि कहा गया है तथा शतपथ ब्राह्मण में इसका स्पष्ट उल्लेख है कि भृगु वरुण के पुत्र हैं, (दे० ११, ६, १, १३) भागवत पुराण में कहा गया है कि वरुण की पत्नी चर्षणी से दो पुत्र भृगु तथा वाल्मीकि उत्पन्न हुये थे (दे० ६, १८, १)।

१५. रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ के अन्तिम श्लोक में वाल्मीकि को भार्गव की उपाधि दी गई है (दे० ७, १२२, ३१)

१६. दे० हाजरा, आर० सी० पुराणिक रेकार्डस्, पृष्ठ १६५।

१७. स्कन्दपुराण, अध्याय २१

१८. दे० अध्याय १२४

१९. दे० प्रभासखण्ड, अध्याय २१८

२०. मद्रास कैटलॉग (आर ३८१४) में जैमिनी रामायण की पुस्तिका इस प्रकार है- इति जैमनी रामायणे रामनाम महात्मये व्याधस्य सप्तर्षिदर्शनम्।

२१. दे० इ० ए० भाग ३१, पृ० ३५।

२२. दे० मिथालॉजी डेस इंदू भाग १, पृ० १७८। इस वृतान्त में वाल्मीकि को ब्रह्मा का अवतार कहा गया है। दे० आगे अनु० ३६।

२३. दे० ट्राइन्स एण्ड कांस्ट्रस, भाग १, पृ० २६२-३। कलकत्ते में अनुसूचित जातियों द्वारा हर साल आश्विन र्भीमा (कार्तिक स्नानारम्भ) के दिन वाल्मीकि की जयन्ती धूमधाम से मनायी जाती है।

२४. दे० ४६-६१

२५. दे० टेंपल आर०सी०, लेंजडस ऑन दि पंजाब, भाग-१, पृ० ४२६ और ई०ए० भाग-२७, पृ० ११२

२६. दे० लाल बेग की उत्पत्ति, जनपद बनारस भाग-१, अंक ३, पृ० १६-२

२७. दे० सभापर्व, पृ० २५०। प्रकाशक राधारमण पुस्तकालय, कटक १९४२

२८. अर्थशास्त्र में लिखा है कि शूद्रों का धर्म है- द्विजाति की सेवा, वार्ता, शिल्प तथा कुशीलव कर्म (शूद्रस्य द्विजाति शुश्रुषा वार्त्ताकारु कुशीलवकर्म, प्रकरण १, पद ३) गणिकाध्यक्ष नामक प्रकरण में इसका उल्लेख आठ वर्ष तक राजा के लिये कुशीलव कर्म करने से वेश्या पुत्र अपने को मुक्त कर सकता है (प्रकरण, ४३, २) बाद में कुशीलवों ने राम के पुत्रों के नाम कुश और लव रखकर अपने ही नाम की एक व्युत्पत्ति की कल्पना की।

२९. दे० एच० याकोबी : इस रामायण पृ० ३

३०. दे० सी० बुल्के : दि जनेसिस ऑन दि वाल्मीकि रामायण, रिसेन्शन्स। ज० ऑ० इं० भाग ५, पृ० ६६-६४

३१. 'रामकथा' पृ० ३०

३२. 'एन्शियेन्ट इंडियन हिस्टॉरिकल ट्रैडीशन' अध्याय १५

३३. बालकाण्ड, सर्ग ७१, के अनुसार विदेह वंश में जनक इक्कीसवीं पीढ़ी में हुए थे : विदेह-निमिमिथि (मिथिला के संस्थापक) जनक प्रथम- (११) हर्यस्व (२०) ह्रस्वरोमा (२१)जनक द्वितीय (सीता के पिता)।

३४. देखिये वी०वी० दीक्षित- रिलेशन ऑफ द एपिक्स टु द ब्राह्मण लिटरेचर (पूना ओरियंटलिस्ट, जिल्द ६-७)

३५. द्विवेदी हजारी प्रसाद- संस्कृत के महाकाव्यों की परंपरा (आलोचना) अक्टूबर १९५१, पृ० १४

३६. जे०एन० समद्दर, - 'एकानामिक कंडिशंस इन एन्शयेन्ट इंडिया, पृ० ६८

३७. नगेन्द्रनाथ घोष- 'द रामायण एण्ड महाभारत एसोशियोलॉजिकल स्टडी' (सर आशुतोष मुखर्जी, सिल्वर जुबली वाल्यूम, ओरियेंटेलिया, भाग-२, पृ० ३६१) (१, ५४, २१, २३)

३८. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० २६-८

३९. शान्तिपर्व राजधर्म, १६०, २२०

४०. आदि पर्व २३, २५, वनपर्व २०८।

४१. हरिवंश १४६-४७

४२. अयोध्याकाण्ड, आदिपर्व ६४

४३. बौधा० २, ५०, ५२

४४. वशिष्ठ, ५, १

४५. "पिता रक्षति कौमारेभर्त्ता यौवने। रक्षन्ति स्थविरे पुत्राः न स्त्री स्वातन्त्रयमर्हाति।

४६. आपस्तम्ब, १, ३, २, १८ तथा वसिष्ठ ६, ४१, १

४७ "स्त्रीणामनिष्कासिनीनाम" - कौटि० अर्थ० ३, १

४८. रूपणीवा भोगद्वयगुणं मासं दद्युः। कौटि० अर्थ० २, २७

द्वितीय अध्याय

रामायण कालीन समाज

आर्य और अनार्य

रामायण कालीन समाज में केवल दो जाति समूह थे एक 'आर्य' और दूसरा 'अनार्य' अथवा 'दास' कहते है कि आर्य बाहर से आये थे और अनार्य भारत के मूल निवासी थे। आर्य आक्रामक थे और अनार्य आक्रान्त, दोनों वर्गों में वर्षो युद्ध चला। आर्यो के देवता इन्द्र थे, जिनके सहयोग से आर्यो ने 'दस्यु' और 'दास' पर विजय प्राप्त की थी। इन दोनों जाति-समूहों में शरीर रचना, रंग और आचार-विचार में भेद था। आर्य गौर वर्ण, ऊँचे कद, उन्नत नासिका और आर्कषण व्यकित्व के थे तथा अनार्य छोटे कद, कृष्ण वर्ण अनुन्नत नासिका और अनाकर्षक व्यक्तित्व के थे। आर्यो और अनार्यो की सामाजिक व्यवस्था में अन्तर था। जहाँ आर्यो का समाज वर्णाश्रम व्यवस्था में क्रमबद्ध था वहीं अनार्यो का समाज जाति रहित था। आर्यो का प्रभुत्व गंगा सिन्धु के प्रायः सारे मैदान पर फैला हुआ था, जबकि अनार्यो का स्थान दक्षिण के वन ही वन थे, जिसमें अनार्य जातियाँ निवास करती थी। कहते है कि आर्यो ने अपनी श्रेष्ठ बुद्धि, बल, आत्मसंयम के बल पर, संस्कृति की श्रेष्ठता के बल पर धीरे-धीरे सारे देश पर अधिकार कर लिया था जबकि अनार्यो ने कुछ लोगों ने तो आर्यो को सहयोग दिया था कुछ ने सहयोग के स्थान पर उनका डटकर विरोध किया। इन विरोधी जातियों को भी अन्त में पूर्ण परास्त होकर आर्यो की प्रभुत्त को स्वीकार करना पड़ा।

वाल्मीकि रामायण के नायक श्रीराम ने इसी राक्षस जाति के विरूद्ध अभियान किया था। जिसका विस्तृत वर्णन वाल्मीकि रामायण में मिलता है। राक्षस लोग गलत कार्य को करते थे। जैसे, ऋषि मुनियों के आश्रम को ध्वशं कर देते थे, उनकी वैदिक क्रियाओं में विघ्न डालते थे स्वेच्छानुसार आकार बदलने वाले निशाचरों के रूप में चित्रित किया है।

भारतवर्ष के राजनीतिक इतिहास में राक्षसों का महत्वपूर्ण स्थान था। उनकी सभ्यता महान और परिष्कृत थी, फिर भी वो लोग अपनी इच्छा से भोग लिप्सा, दुष्टता और क्रूरता के कारण कुख्यात थे। खान-पान में भी वो आर्यो से भिन्न थे। यौन सम्बन्धों में भी उनका आचरण निर्लज्ज अमर्यादित था। नर मांस भी उनके लिये मना नहीं था। अनार्य मांस खाने, मदिरा पीने के शौकीन थे इसका विवरण भी देखने को सुन्दर काण्ड के ११वें सर्ग

से मिलता है। हनुमान ने स्वयं अपनी आँखों से मोर, मुर्गे, सुअर, गेंडा, हिरन, मयूर का मांस रखा हुआ लंगा में देखा था जो ये पदार्थ दही, नामक लगाकर रखे गये थे।१। इसके अतिरिक्त कुछ दिव्य सुराऐं और कृत्रिम सुराएँ भी रखी थी उनमें शर्करासव१, माध्वीक२, पुष्पासव३, फलासव४, भी थे। '२' नर-नारी दोनों ही मदिरा का सेवन करते थे। इस प्रकार अनार्यो का खानपान तामसिक प्रवृत्ति का होता था आर्यो का सात्विक शाकाहारी भोजन करते थे।

शिष्टाचार और लोक व्यावहार में भी राक्षस प्रायः आर्यो का अनुसरण करते थे। कुम्भकर्ण जब युद्ध क्षेत्र में जानें लगा तब अपनी बड़े भाई रावण को आलिंगन करके उसकी प्रदक्षिणा की और सिर से अभिवादन किया। जब रावण राम के साथ युद्ध करके पहली बार जाने लगा, तब मंत्रों के पवित्र घोष से उसके लिये मंगल कामना की गयी३। राम की शरण में जब विभीषण आये तो समय के अनुसार विनम्रता और सम्मान भावना व्यक्त की थी।

आर्यो और अनार्यो में परस्पर विवाह सम्बन्ध के उदाहरण भी मिलते है। रावण सीता जैसी पवित्र नारी से विवाह करने का इच्छुक था। शूर्पणखा राक्षसी होते हुये भी राम-लक्ष्मण जैसे विजातियों में विवाह करना चाहती थी। कहते है कि रावण का घर उनकी राक्षससजातीय पत्नियों तथा पराक्रमपूर्वक हरकर लायी हुयी राजकन्याओं से भरा हुआ था४।

जिस प्रकार देवताओं और गन्धर्वों की स्त्रियों देवराज इन्द्र के पीछे चलती है, उसी प्रकार अशोकवन में जाते हुये रावण के पीछे-पीछे एक सौ सुन्दरियाँ गयी थीं।५।

रावण सीता को जब हर ले जाता है तो सीता उन्हें लालच देकर कहती है कि हे भीरू (तुम यह न सोचो कि मैने कोई अधर्म किया है) परायी स्त्रियों के पास जाना अथवा बलात्कारपूर्वक हर लाना यह सदैव राक्षसों का अपना धर्म रहा है।६। अतः अब मुझे छोड़ दो। और सीता जी कहती है कि एक मानवकन्या किसी राक्षस की भार्या नहीं हो सकती।७। राक्षसों और वानरों के अतिरिक्त तत्कालीन भारत में और भी कई जातियाँ निवास करती थी जिसका रामायण में इस प्रकार उल्लेख है। निषाद, गृध्र, शबर, यक्ष, नाग जैसी अनार्य जातियाँ थीं।

प्राचीन भारत में कुछ घुमंतू जातियाँ थी जो अपने स्वभाव के कारण पक्षियों गृहों या सुपर्णो के नाम से जानी जाती थी।८।

गृद्ध जाति भारत के पश्चिमी समुद्र तट पर और उसके आस-पास को पर्वतों में रहा करती थी। इस जाति में मुख्य संजाति और जटायु नाम के दो भाई थे, जिनकी जीवन-लीला समाप्त होने के साथ ही इनका राजनीतिक अस्तित्व भी समाप्त हो गया। इस जाति का रामायण में विस्तृत जानकारी नही पर सूक्ष्म रूप में जटायु महाराज दशरथ के सखा थे।९। राम-लक्ष्मण जब एक दिन शिकार पर गये हुये थे तब सीता का भार उन्ही पर आ पड़ता है। रावण से सीता को छुड़ाने में जटायु ने अपने प्राण तक गँवा दिये थे। रावण ब्राह्मण के वेश में आकर सीता को हर लेता है और रथ में बिठा कर जब ले जा रहा होता है तो सीता जी तेजी-तेजी से चिल्लाकर रोतीं है तो रावण सीता को फटकारता है और फिर रथ पर बिठा देता है।१०। उसी समय जटायु देखते है तो रावण को ललकारते हुये कहते है कि हे धीर वह कार्य न करो जिसकी दूसरे लोग निन्दा करें। जैसे पराये पुरूष से अपनी स्त्री की रक्षा की जाती है, उसी प्रकार दूसरों की भी स्त्री की रक्षा करनी चाहिये।११।

राम ने जटायु का अंतिम संस्कार अपने निकटतम वधु की ही भाँति किया था।

ददाहो रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुखितः।

सीता की खोज पर जब वानर दक्षिण दिशा से वापस दुःखी होकर लौट रहे थे तब संपत्ति के पर्वत गुफा में से निकलकर अपने भाई जटायु का परिचय दिया। और अपने दिवंगत भाई के पितरों को जलांजलि भी दी थी।१२। इस प्रकार स्पष्ट है कि गृध्र जाति ने आर्यो की धार्मिक रीतियों को अपना लिया था। जटायु ने राम के प्रति प्राणियों की उत्पत्ति का वर्णन किया था। संपत्ति ने वानर पक्षियों के विविध भेद बताये थे।

राम-लक्ष्मण सीता की खोज करते-करते शवरी के आश्रम पर पहुँचें शवरी एक तपस्वी स्त्री थी। जो पंपासरोवर के किनारे रहने वाली शवर जाति की स्त्री थी। आधुनिक समय में शवरों का प्रतिनिधित्व मध्यप्रदेश की पहाड़ियों में निवास करने वाली इसी नाम की एक जाति रहती है।१३।

यह शबरी की कथा अनार्यो की संस्कृति से प्रभावित हो चुकी थी। वाल्मीकि ने शबरी को 'श्रमणी' की संज्ञा दी है। शबरी के पास जब राम-लक्ष्मण पहुँचे तब उनका कृपाभाजन बनकर उसने अपने को धन्य समझा।

यक्ष जाति भी अनार्यो से परिचित है। यह जाति अपनी सुन्दरता, शारीरिक बल

के लिये प्रसिद्ध थी। ताटका रक्षसी बनने से पहले सुन्दर शक्तिशाली यक्षणी थी। यक्ष और राक्षस दोनों सजातीय थे। वैवाहिक उदाहरण मिलते है।

जहाँ तक असुरों का प्रश्न है तो रामायण में राक्षसों और असुरों को अलग-अलग माना है, यद्यपि बाद के पुराणों में दोनों को एक ही जाति का बताया गया है। असुरों की माता का नाम दिति था, और देवों की माता का नाम अदिति की सौत था। असुर लोग ऋषि-मुनियों के द्वेषी थे, मांस-भक्षी और ब्रह्म हत्यारे थे। वातापि और इल्वल उनके मुखिया थे, जो अगस्त्य के हाथों मारे गये। दंण्डकारण्य में असुरों को मारने के लिये ऋषियों ने राम से प्रार्थना की थी। वाल्मीकि ने असुरों को पाताल के निवासी और अधर्म के पोषक के रूप में अंकित किया है।१४। देवों और राक्षसों में हमेशा पटती नहीं थी। दशरथ ने एक बार दंण्डकारण्य में जाकर असुरों पर धावा बोला था, देवासुर युद्ध में दशरथ इन्द्र के लिये शम्बासुर के विरूद्ध युद्ध करते है तथा आहत होकर कैकेयी द्वारा रणभूमि से हटाये जाते है। इसके लिये कैकेयी दशरथ से दो वर मांग लेती है। हनुमान ने रावण को मारा तो वह अचेत होकर गिर पड़ा, तब असुर बड़े प्रसन्न हुये थे।१५। देवों के सौतेले भाई होने के कारण असुरों को भी आर्य श्रेणी में गिना जा सकता है।

उर्पयुक्त जातियों के अतिरिक्त रामायण में देवों, गन्धर्वों, चारणों, सिद्धों, किन्नरों अप्सराओं की भी चर्चा आती है। देवों को जहाँ स्वर्ण के देवता माना गया है आर्यो के यज्ञों में देवों का एक भाग नियत रहता था। राक्षस उनके चिर शत्रु थे और वे प्राय राक्षसों के विनास का उपाय ढूँढते रहते थे।

गंधर्व लोग अलौकिक संगीतज्ञों के रूप में समादृत थे। कवि का कहना है कि गंधर्वो का काई भी समारोह बिना गीत, पुष्पों की वृष्टि के बिना संभव नहीं होता था। किन्नर एक स्त्रैण जाति थी, जो हमेशा श्रृंगारिक गीतों और क्रीड़ाओं में मन रहती थी। सिद्धों और चरणों को वाल्मीकि ने अंतरक्षि के निवासी बताया है जो वीरतापूर्ण कार्यो के सम्पादन पर प्रशंसा की बौछार किया करते थे।

रामायण में अप्सराओं का भी उल्लेख बार-बार मिलता है। कहते है कि अप्सरायें गणिकाओं तथा वारांगनाओं से भिन्न नहीं थी, सौन्दर्य और विशेष आर्कषणों के कारण समाज उन्हें स्वर्ण की सुंदरियां समझने लगा। कहते है कि अप्सराओं की उत्पत्ति समुद्र मंथन

से हुई पर उनको न देव न दानव पत्नीरूप में ग्रहण करने को तैयार न हुये, जिससे वे साधारण स्त्रियाँ बन गई-

न ताः स्म प्रतिगृहलन्ति सर्वे ते देवदानवाः।

अप्रतिगृहणादेव ता वै साधारणः स्मृताः।।

कहते है कि रावण ने अनेक अप्सराओं का उपयोग किया कहीं पर अप्सरा एक देव से अनुरक्त थी तो कहीं कोई देव अधिक अप्सराओं से प्रेम करते थे।१६।

रंभारावण प्रसंग से भी अप्सराओं की वेश्यावृत्ति देखने को मिलती है। जिसमें रावण का कहना है कि अप्सराओं का कोई पति नहीं होता- पति रप्सरसा नास्ति पौराणिक कथा के अनुसार जब कोई शूरवीर युद्ध क्षेत्र में प्राण त्यागकर इंद्रलोक पहुँचता है तो अप्सरायें उनका स्वागत एवं मनोरंजन करती थी।१७। ऋषि मुनियों के समय को भंग करने के लिये वे पृथ्वी पर उतरती थी और उन्हें अवरत तपस्या से होने वाले पुण्य से वंचित कर देती थी। अप्सराएं नृत्य, गान में विशेष दक्ष होती थीं, जिनके बल पर वे संसारी प्राणियों के चिन्त को लुभाया करती थी।

रामायण में राक्षसों की तीन शाखाओं का स्पष्ट रूप से पता चलता है, जिनमें प्रत्येक का अपना अलग वंश था। ये सभी अपने सामान्य नाम से जानी जाती थी। इनकी पहली शाखा विराथ शाखा थी, जो दंडकारण्य के उत्तरी भाग में निवास करती थी। इस शाखा का मुखिया विराथ नामक राक्षस था, जिसके कथनानुसार जब और शतहृदा उसके पूर्वज थे। विराध की आकृति बड़ी भयानक थी। राम लक्ष्मण के हाथों उसका वध हुआ था। राक्षसों की दूसरी शाखा दनु की संतति होने के कारण दानवों के नाम से प्रसिद्ध हुयी। इस शाखा का प्रतिनिधि कबंथ राक्षस था। उसकी आकृति बड़ी विचित्र थी, उसकी भुजापाश में आनेवाला प्रत्येक प्राणी उसका आहार बन जाता था। उसकी मृत्यु होने पर लक्ष्मण ने उसका शव एक गड्डे में डालकर जला दिया था। रावण ने दानवों के कई सरदारों का वध किया था। तीसरी शाखा जो राक्षस अथवा रक्ष के नाम से विख्यात थी, सबसे अधिक क्रूर और शक्तिशाली थी। उसके अन्तर्गत लंका के निवासी गिने जाते थे, जो पुलस्य और दिति वंशज रावण के अधीन थी। लंका के राक्षसों का वाल्मीकि ने विशेषतः सुन्दरकाण्ड में, विचार से वर्णन किया है।

उनकी उत्पत्ति के पौराणिक वर्णन से यह अनुमान होता है कि वे समुद्र तट के निवासी और जलीय प्रदेशों के संरक्षक थे। यक्षों की तुलना में वे पेटू और अभक्ष्यभक्षी थे। उनका प्रधान निवास-स्थान भारत का दक्षिणी समुद्री किनारा और लंका द्वीप था इस जाति के कुछ अवशेष आज भी अण्डमान, बोर्नियो, सुंद तथा भारतीय महासागर के अन्य द्वीपों में पाये जाते हैं। यह भी उल्लेख है कि रावण मातृ पक्ष की ओर से सालक टंकटा के वंश में उत्पन्न हुआ था। चिंतामणि विनायक वैद्य के अनुसार इन नाम में निःसन्देह एक आदि वासीपन झलकता है और यह माना जा सकता है। कि इस नाम की एक नर-भक्षक जाति राम से पूर्व ही लंका में रहती थी।१८।

रावण युद्ध करने में बड़ा ही प्रबल और राक्षस था कहते है कि उसने बहनोई मधु के साथ सुरलोक पर धावा बोला। देवों और राक्षसों के बीच घमासान युद्ध हुआ। रावण के पुत्र मेंघनाद ने छद्म युद्ध करके देव सेना में भीषण आतंक मचा दिया ओर देवराज इन्द्र की धरपकड़ कर ली। इसमें ब्रह्म के बीच बचाव करने पर ही देवराज मुक्त हो सके। अनार्यो में वानरराज बाली ही एक मात्र ऐसा व्यक्ति था। जिसने रावण को कोख में दबोचकर पशु की भाँति चारों समुद्रों तक घुमाया था (येनाहं पशु व दगुहा भ्रमित श्चतुरोडर्खावान,)। रावण ने अपने प्रतिद्वन्दी का लोहा मानकर उससे संधि कर ली थी। राम के समक्ष बाली की यह दर्पोक्ति उचित ही थी कि यदि आपने मुझे पहले बताया होता तो मै आपकी भार्या का अपहरण करने वाले दुरात्मा राक्षस के गले में रस्सी बाँधकर ले आता।१६।

रावण ने यक्षों पर भी प्रबल आक्रमण किया। यक्षों को जीतकर उसने कुबेर से युद्ध किया और युद्ध की लूट के रूप में उनका विख्यात 'पुष्पक' विमान छीन लिया। मनुष्य लोक को अधीन करके रावण ने यमपुरी पर आक्रमण किया रसातल की ओर अपना विमान मोड़कर वह समुद्र के ऊपर से निकला। रावण ने वासुकि की राजधानी को भी प्रहार किया। अंत में वह अपना विमान क्षीर सागर के तट पर स्थित वरूणालय पर ले गया। वरुण पुत्रों कों पराजित कर उसी मार्ग से लंका लौट गया जिससे वह आया था। पाताल लोक पर रावण का यह धुंआधार हमला शीघ्रता, आकस्मिकता और प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से एक आधुनिक हवाई आक्रमण के समय जान पड़ता है।

राजनीतिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण राक्षसों और आर्यो का संघर्ष था। सुप्रसिद्ध

राम-रावण युद्ध से पहले भी इन दोनो जातियों के बीच संघर्ष की अनेक घटनायें हो चुकी थीं। रावण ने रसातल विजय के बाद पंचवटी के समीप अपनी उत्तरी सैनिक चौकी स्थापित की, वहाँ पर उसने खर-दूषण के सेनापतित्व में चौदह हजार सेना रक्षसों की रखी थी। उत्तरी भारत के कुछ भागों पर राक्षसों ने अधिपत्य जमा रखा था। रावण का भतीजा लवणासुर यमुना पर स्थित मधुपुरी (मथुरा) नगरी का शासक था। तालका ओर उसके पुत्र मारीच ने जो रावण के सम्बंधी ये, सोन और गंगा नदियों के बीच के प्रदेश पर अपना अधिकार कर रखा था, जो उन दिनों 'मलद' और 'करूष' के नाम से ख्यात था। विश्वामित्र के आश्रम में राक्षस लोग उत्पात मचाकर उनका यज्ञ भंग कर दिया करते थे। बलि को पराजित करने के संकल्प से वामन ने सिद्धाश्रम में तपस्या की थी। ये दोनों आश्रम गंगा के उत्तर में अयोध्या और मिथिला के मार्ग में पड़ते थे। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि राक्षस उत्तरी भारत में कितनी दूर-दूर तक अपना आतंक फैलाये थे। आर्यावर्त के राजाओं को भी रावण ने नहीं छोड़ा। उसका आक्रमण महमूद गजनवी और महमूद गौरी के हमलो के समान था जिसके सामने उत्तर भारत के हिंदू राजा एक-एक करके धराशायी होते गये। केवल एक ही वीर राजा कार्तवीर्य अजुन था जिसके आगे रावण को मात खाना पड़ा। इस तरह संधि करके उन्हें रावण ने अपने पक्ष में मिला लिया था। अन्य सभी आर्य राजा दुष्यन्त, सुरथ, गाधि, गय, पुरूखा, लंकेश के सम्मुख नतमस्तक थे। अयोध्या पर भी रावण ने दो बार आक्रमण किया था। एक बार अनरण्य के शासन काल में दूसरी बार मांधाता के राज्यकाल में। अनरण्य रावण के हाथों काम आये और मांधाता ने राक्षसराज से संधि कर ली।

राक्षसों और आर्यो की शत्रुता का एक प्रधान कारण यह था कि दोनो एक-दूसरे के क्षेत्रों के घुसने का प्रयास करते थे। आर्यो ने दक्षिण की ओर विध्यं पर्वत प्रदेश पर अपना प्रभुत्व बना लिया था जो बहुत कठिन था जिसका श्रेय अगस्त्य मुनि को मिला जो दक्षिण में आर्यो की बस्तियाँ स्थापित करने में आग्रगामी थे। विंध्य के बीहड़ जंगलों को पार-पार करते-करते दक्षिण के दूर तक चले गये, जन्स्थान निकट गोदावरी के ऊपरी तटों के पास दण्डकारण्य में उन्होनें एक आर्यो की आश्रम मंडल की स्थापना की। अगस्त्य एक तपस्वी के साथ-साथ शस्त्रास्त्री से सम्पन्न थे उन्होने स्वंय राक्षसों से मोर्चा लेकर दक्षिण प्रदेश को

निशाचरों के आतंक से मुक्त कर दिया। अगस्य का अनुसरण करके अनेक ऋषि-मुनि दक्षिण में जाकर बस गये और राम के समय में गोदावरी के उत्तर में, आर्यो के अनेक समृद्धिशाली आश्रम बने हुये थे। ये आश्रम एक प्रकार से दक्षिण में आर्य प्रसार के अग्रिम संनिवेश ही थे।

वैसे तो आर्यो और राक्षसों के बीच छोटे-मोटे झगड़े देश के कई भागों में होते रहते थे, पर गोदावरी नदी के निकट वाला प्रदेश, जहाँ आर्यो की बस्ती दण्डकारण्य और राक्षसों की चौकी जनस्थान पास-पास थीं, उनके आपसी लड़ाई का रंगमंच था। महाराज दशरथ भी कई बार इस मोर्चे में लड़ने गये थे। मंदाकिनी (चित्रकूट) से लेकर गंगा तक के प्रदेश में राक्षसों ने भीषण उत्पात मचा रखा था।२०। इन्द्र की पराजय के बाद राक्षसों से जूझने का उत्तरदायित्व अगस्त्य पर आ पड़ा। उसे उन्होने भारत के राजनीतिक गगन में राम के अविभार्व के बाद इन्हीं को सौंप दिया और इसमें कोई सन्देह नहीं है कि राक्षसों से लोहा लेने वालों में राम अपने युग में सर्वश्रेष्ठ आर्य योद्धा थे। बचपन से ही उन्होने अपने बल-वीर्य शस्त्रास्त्रों का उपयोग राक्षसी आक्रमणों से आर्य-ऋषियों की रक्षा करने में किया, जैसा कि सोलह वर्ष की आयु में उनके विशवामित्र की यज्ञ रक्षार्थ जाने से प्रकट है। अपने वनवास काल में जब राम ने दण्डकारण्य में प्रवेश किया तब राक्षसों से प्रबल होकर वहाँ के ब्राह्मणों ऋषि-मुनियों ने अनेक आगमन का एक वरदान के रूप में स्वागत कया। राम के साथ रावण के युद्ध का प्रत्यक्ष कारण लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा का विरूपीकरण या जिससे रावण द्वारा सीता के अपहरण ने मानों आग में घी का काम किया। वास्तव में यह युद्ध रावण के वध के बाद भारत की राजनीति में राक्षसों का महत्व सदा के लिये मिल गया। लपलापाती जीभ, पर्वताकार डीलडौल, अंगारों के समान आँखें, तीखे नख और रोये, टेढ़े मेढ़े दाँत, डरावनी और आगे को निकली हुयी टेढ़ी, फैला मुँह वाले प्राणी होते थे। कुछ तो कबंध की तरह अंग-प्रत्यंग वाले राक्षस भी होते थे, जैसे मस्तक रहित धड़, छाती में एक आंख, पेट में एक भयंकर मुंह और दो फैली लम्बी भुजायें, राक्षसी स्त्रियाँ भी विकराल होती थी, जैसे ताटका एक बड़े भयानक आकार-प्रकार की स्त्री थी। अयोमुखी कुरूप मुंह, लंबे पेट, तीखे दाँत, सूखी त्वचा वाली महाकाय, राक्षसी थी। रावण ने सीता को डराने के लिये उनके चारों ओर भयानक राक्षसियाँ तैनात कर रहती थीं। उनमें एक त्रिजटा थी जो सीता

को बहुत चाहती थी। सीता, राम के वियोग में रो रही थीं। त्रिजटा उनकी निगरानी कर रही थी तभी वह सीता को समझाती हुयी कहती है कि हे मिथलेश कुमारी तुम्हारा शील स्वाभाव, निर्मल चरित्र है इसलिये तुम मुझे पसन्द आयी हो इसलिये मैने न तो तुमसे पहले कभी झूठ बोला था न अब बोलूंगी।२१। इसके अतिरिक्त त्रिजटा ने अन्य राक्षसों को फटकारा भी तुम लोग नीच हो अपने आप को खा जाओ। तुम लोग सीता जैसे प्यारी जनक की बेटी, दशरथ की प्रिय पुत्रवधु सीता जी को नही खा सकोगे।२२। सीता पर पहरा देने वाली विकराल राक्षसियों के वर्णन से यह सूचित होता है कि वे रावण ने अपने विकराल रूप वाली स्त्रियाँ रख छोड़ी थी। २३। इस प्रकार स्पष्ट है कि सीता का निरन्तर पहरे देने वाली राक्षसियों को देखते हुये सीता के मन में आतंक जम गया था। किंतु रामायण में ऐसे स्थल बहुत कम है जिनमें राक्षसों की विकरालता को दिखाया गया हो। अन्यथा वे सामान्य मनुष्यों की तरह चित्रित किये गये हैं। राक्षसों को भयानक या विकराल इसीलिये कहा गया है कि वे आर्य जाति के जन्मजात और वंशागत शत्रु थे। ब्रिफिथ महोदय के अनुसार ' रामायण में राक्षसों का संबोधन एक विरोधी और घृणास्पद जाति के लिये किया गया है।

राक्षसों के सामान्य मनुष्य होने का प्रमाण हमें युद्धकाण्ड में देखने को मिलता है। जहाँ राम वानरों से कहते है कि तुम लोगों में से कोई भी मनुष्य का रूप धारण करके न लड़े जिससे हमारे पक्ष में (मैं लक्ष्मण तथा विभीषण और उनके चार अनुयायी इन्हें मिलाकर) कुल सात मनुष्य को निःशंक होकर मृत्यु के घाट उतार सकते हो।२४। इससे यह स्पष्ट होता है कि विभीषण और उनके समान रावण की ओर के सभी राक्षस मनुष्य रूप थे। हनुमान का रावण का राक्षसी पत्नी मंदोदरी कासीता समक्ष लेना राक्षसों और सामान्य मनुष्यों की आकृतियों में कोई अन्तर नहीं था।

इस प्रकार रामायण में दो महत्वपूर्ण स्थलों पर रावण को दस सिर और बीस भुजाओं वाला बताया गया है। पंचवटी में सीता को डराने के लिये रावण भिक्षु का रूप त्यागकर दस सिर और बीस भुजाओं से युक्त महाकाय निशाचर बन गया था। इसी प्रकार जब हनुमान बंदी के रूप में राक्षस के दरबार में लाये गये तब वहाँ उन्होंने रावण को मंदर पर्वत के शिखरो के समान दस सिरों तथा चंदन चर्चित भुजाओं से सुशोभित पाया था। इसमें टीकाकार तिलक कहते है कि जब हनुमान ने रावण को देखा होगा तब उसने रूप धारण

कर लिया लोग जैसे वह युद्ध में करता था। किंतु हम देख चुके है कि रावण ऐसा नहीं करता था। रामायण में रावण के एक ही सिर दो हाथ होने का ही प्रचुर प्रमाण है, उनके सामने दोनों स्थलों का विरोध असंगत, अप्रमाणिक जान पड़ता है।

राक्षसों की जाति में खान-पान का भी अपना अलग अस्तित्व था। नरमांस भक्षण की प्रवृत्ति इन्हें एक विकृत और कुरूप जाति बनाने में सहायक हुयी। नर मांस के लिये इस जाति को बर्बर जाति के नाम से पुकारा जाता था। इसीलिये उन्हे बार-बार नरमांसाशिना कहा गया है। राक्षसी ताटका के लिये कहा जाता है कि एक बार वह गरजती हुयी आगस्य ऋषि को खाने के लिये झपटी थी। मारीच राक्षस भी ऋषियों का मांस खाते हुये दण्डकारण्य में विचरण किया करते थे। जब हनुमान को लंका में सीता नहीं दिखायी पड़ी तो उन्हें शक हो गया कि कहीं राक्षस या उनकी स्त्रियों ने तो उन्हें नहीं खा डाला हो। उत्तरकाण्ड में वर्णन है कि रावण ने कुबेर के दूत को तलवार से काटकर राक्षसों के यक्षणार्थ के लिये फेंक दिया था। इसके अतिरिक्त रावण के अमात्यों ने कार्तवीर्य अर्जुन के आमात्यों को कच्चा ही चबा डाला था। विराध राक्षस को ऋषियों का मांस विशेष प्रिय था। सीता की राक्षसी पहरेदारनियाँ इस आशा में बड़ी खुश थी कि हम लोगों को खुशी के साथ-साथ सीता का मांस भी खाने को मिलेगा। त्रिजटा ने निशाची रक्षकों को फटकारा कि तुम लोग अपने आपको खा जाओ राजाजनक की प्यारी बेटी दशरथ की पुत्रवधु सीता को नहीं खा सकोगी।२५। नर मांस के अतिरिक्त अन्य प्रकार के मांस का भी यक्षण किया करते थे। 'पिशिताशन' ओर मांसाशन' उनके सामान्य विशेषण है। सुन्दरकाण्ड के ग्यारहवें सर्ग में रावण के भोजन के वर्णन में विविध प्रकार के मांस पदार्थ गिनाये गये हैं।

इसके अतिरिक्त नर और नारी दोनों भरपूर मंदिरा का सेवन किया करते थे। नर रक्त भी उनका प्रिय पेय था (मांस शोणित भोजनाः)। विराध ने राम-लक्ष्मण को भी धमकी दी थी कि हम तुम दोनों पापियों का खून पीकर रहूँगा।

युवसोंः पाप योश्चाहं पास्यामि रूधिर मृघ।

शूर्पणखा राम-लक्ष्मण-सीता का खून पीने के लिये व्याकुल थी। गाढ़ी नींद में जागने पर कुम्भकर्ण छककर रक्त पान कर सके, इसके लिये पहले से ही खून से भरे हुये घड़े तैयार रखे गये थे।

राक्षसों में भी आर्यो की ही भाँति विवाह संस्कार के अवसर पर अग्नि को पवित्र मानकर किया जाता था। रावण ने मंदोदरी से विवाह इसी प्रकार किया था। वधु का अपहरण करके विवाह करने की प्रथा, जो बाद में राक्षस विवाह कहलाई, जो राक्षसों में व्यापक रूप से प्रचलित थी। रावण की भतीजी कुंभीनसी को मधु दैत्य ने अपहरण करके विवाह किया था। राक्षस लोग किसी भी स्त्री से चाहे वह विवाहित हो या अविवाहित समागम करने में स्वच्छन्द थे। जब रावण को यह परामर्श दिया गया कि आप सीता का उपभोग करने के कुक्कुट की तरह पाशविक बल का प्रयोग क्यों नहीं करते।२६। तब उसने कहा कि मै इस विधि का सहारा नहीं ले सकते। क्योंकि पुजिंकस्थला अप्सरा पर बलात्कार करने के कारण मैं ब्रह्म के शाप का भागी बन चुका हूँ। यह विवरण राक्षसों के अमार्यादित यौन संबेधों में एक आवश्यक सुधार का सूचक है। एक तरफ नारी की दयनीय दशा दूसरी तरफ आर्य जाति का आदर्श, इन दोनों ने राक्षसों को इस आवश्यक समाज-सुधार के लिये प्रेरणा दी। आर्यो और अनार्यो के विवाह के भी उदहरण मिलते हैं। रावण सीता जैसी आर्य-रमणी से विवाह करने का इच्छुक था। शूर्पणखा राक्षसी होते हुये भी राम-लक्ष्मण जैसे विजातियों से विवाह करना चाहती थी। अनेक राजार्षियों, विप्रो, गंधर्वों, दैत्यों की कन्याएं कामासक्त होकर स्वेच्छा से रावण की पत्नियाँ बन गयी थी।२७।

राक्षसों में धार्मिक कृत्य के रूप में स्वस्त्ययन नाम की एक मांगलिक क्रिया बहुत प्रचलित थी। रावण ने कुम्भकर्ण और अपने पुत्रों को आर्शीवचन देकर रण-भूमि में भेजा था। विश्वविजय के लिये विमान पर आरूढ़ होनें से पहले रावण ने स्वस्त्ययन किया था। अनेक राक्षस वीरों को युद्ध में जाते हुये स्वस्त्ययन करके दिखाया गया है- कृलस्वस्त्ययना, सर्वे रणाभि मुखा यथुः।

राक्षस यज्ञ आदि अनुष्ठान भी किया करते थे। ये लोग जादू-टोने (अर्थवेदीय) क्रियायें अधिक करते थे। रावण स्वंय ही एक याज्ञिक और अग्निहोत्री था, उसके अग्नि होत्र की अग्नि से उसकी चिता प्रज्वालित की गयी थी। इन्द्रजित ने लंका युद्ध के दौरान छद्म शक्ति पाने के लिये एक यज्ञ किया था जिसका वाल्मीकि ने वर्णन किया है। इससे स्पष्ट होता है यह यज्ञ गीता के अनुसार एक तामस यज्ञ था।

राक्षसों की कुल देवी निकुंभिला थी। लंका नगरी में देवी के नाम पर एक उद्यान

बना था।२८। स्पष्ट है कि गुप्त रहस्यमय के बाद भी राक्षस लोग एक सुशिक्षित जाति थे। वैदिक शिक्षा का उनमें बहुत प्रचार था। लंका के भवन में हनुमान ने वैदिक मन्त्रों का घोष सुना था और राक्षसों को स्वाध्याय में संलग्न पाया था।२६। रात्रि के चौथे प्रहर में अशोक वाटिका में उन्हें मंत्र वेदों के ज्ञाता और यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले ब्रह्मराक्षसों की वेद ध्वनि सुनाई दी थी।३०। रावण के राजमहल की ओर जाते समयं विभीषण को अपने भाई के सम्मान में की जाने वाली वैदिक विद्वानों की प्रशस्तियाँ सुनाई पड़ी थी।३१। और उन्हें ऐसे वेदवेन्ता विप्र भी दिखाई पड़े थे, जिनका नागरिक लोग उपहारों से सम्मान कर रहे थे।३२। रावण महान वैदिक विद्वान था। तमिल ग्रन्थों में इसकी भी चर्चा की गयी है। कहते है कि स्वर सहित वेद पाठ करने की प्रणाली का अविष्कार उसी ने किया था। सामवेद के स्त्रोतों से उसने नर्मदा के तट पर भगवान शंकर की अराधना की थी–

तुष्टाव वृषभध्वजम।

सामभिर्विविधैः स्तोत्रै प्रणम्य सदशाननः।।

आर्यो की भाँति राक्षस भी नियमपूर्वक तपस्या करते थे परलोक सुधार के लियेतप करते थे, विराध राक्षस ने तपस्या करके किसी भी शस्त्र से अवध्य बन जाने का वर प्राप्त किया था। तितिक्षा ने भी तप व्रत किया था। मारीच ने अपने प्रारम्भिक दुष्कर्मो के बाद मृग–चर्म और जटाओं का तपस्वी वाना पहन लिया था। नियताहार रहकर वह तप करने में प्रवृत्त हो गया था। हनुमान– के अनुसार, रावण की तपस्वी पुण्य इतना अधिक था कि सीता का स्पर्श करने पर भी वह नष्ट नहीं हुआ।३३। राक्षस लोग तपस्या सिद्धि का प्रयोग हमेशा अधर्मचरण में किया करते थे। लेकिन विंभीषण इससे विपरीत थे। 'न तु' राक्षस चेष्टित कहकर वाल्मीकि ने दुर्जनों की बीच एकाकी सज्जन बताया है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि रावण वदों में 'वेदाविद्याव्रतस्नातक' है। क्योंकि लंका युद्ध में इसने अपने पुत्रों और बंधु–बांधवों को मारे देखकर रावण ने सीता का वध करना चाहा तो एक बुद्धिमान राक्षस ने बैठे सुपार्श्व ने उसे समझाया कि आप तो बढ़े 'विधाव्रंतरंनातक' है फिर आप स्त्री वध कैसे कर रहे है।३४। इसका अर्थ यह है कि रावण ने नियमानुसार किसी आश्रम में रहकर वैदिक शिक्षा का अध्ययन किया तत्पश्चात् वैदि विध के अनुसार स्नातक की दीक्षा ली और गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया था।

रावण के कनिष्क पुत्र अतिकाय के बारे में कहा गया है कि वह ज्ञानी, वृद्धजनों की सेवा करने वाला, वेदों मे पारंगत, शस्त्रों में कुशल, घोड़े, हाथी की सवारी में निपुण, धनुर्विघा में सिद्धहस्त, राजनीति और कूटनीति के अलावा साम, दान, दण्ड, भेद की चाल में भी निपुण था। रण क्षेत्र में जाने से पहले कुम्भकर्ण ने रावण की सभा में जो वक्तृता दी थी, उसमें अर्थशास्त्र और राजनीति शास्त्र का उल्लेख हुआ है। इसी अवसर पर महोदय नामक एक अन्य राक्षस ने चार पुरूषार्थो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के सिद्धान्तों की विवेचना की थी।

राक्षस संस्कृत बोल सकते थे। अशोकवाटिका में सीता को संबोधित करने से पूर्व हनुमान् ने सोचा था कि यदि मैं सीता से एक ब्राह्मण की तरह संस्कृत बोलूंगा तो वह मुझे रावण समझकर डर जायेगी। इल्वल और वातापि नामक असुर- वधु परिष्कृत संस्कृत बोलकर ब्राह्मणों को श्राद्धों में आमंत्रित किया करते थे।३५। जब रावण राम के साथ पहली बार युद्ध में जाने लगा, तब मंत्रों के पवित्र घोष से मंगल कामना की गयी।३६। मारीच ने अपने आश्रम में रावण का पाध, अर्ध्य, आसन और श्रेष्ठ भक्ष्य भोज्य पदार्थो से स्वागत किया। राम की शरण में विभीषण जब आये तब उन्होंने भी विनम्रता और सम्मान दिया था। राक्षसों में पितृ पक्ष से वंश चलने की प्रथा नहीं थी। रावण मातृ पक्ष से राक्षसों का सम्राट था।

राक्षसों में शवों को गाड़ने का रिवाज प्रचलित था।२७। विराध के शव को राम-लक्ष्मण ने एक गड्ठे में डालकर पाट दिया था। कबंध राक्षस का अन्तिम संस्कार राक्षसों और आर्यो की मिली जुली पद्धति से किया गया। आर्य लोग शव को जलते थे। राक्षस लोग गाड़ देते थे। और साधारण सैनिकों के शव को रण-भूमि में गीधों ओर मांसाहारी पशुओं के लिये छोड़ दिये जाते जाले थे। राक्षस शूरवीर प्रायः डीग हाँका करते थे कि हम अपने शत्रुओं की भेंट चढ़ायेंगे।३८।

राम राक्षसों में आर्य प्रथायें प्रवेश करवाना चाहते थे इसलिये रावण के मरने के बाद विभीषण के न चाहते हुये भी रावण का पितृमेघ संस्कार आर्य पद्धति से करवाया। मरणन्तानि मेघ वैराणी (मृत्यु होने के बाद बैर समाप्त हो जाता है), इसलिये राम ने आग्रह करके रावण की अंत्येष्टि ब्राह्मी विधि से करवाई। जिसमें द्विजों, याजकों और अध्वर्युओं का

सहयोग लिया गया (विभीषण का राज्याभिषेक भी राम के हाथों वैदिक रीति से हुआ था (विधिना मन्त्रदृष्टेन, इस प्रकार राक्षसों को आर्य सभ्यता से दीक्षित कर लिया गया। विभीषण को लंका के राज्य पर आभिषिक्त देखकर राक्षस मंत्री बहुत प्रसन्न हुये। साथ में लक्ष्मण और राय को भी प्रसन्नता हुयी।३८। राक्षसों में एकमात्र विभीषण ही ऐसे है जिन्हें श्वेत छंत्र सफेद माला श्वेत वस्त्र धारण किये हुये तथा श्वेत चन्दन और अंगराग लगाये देखा।४०।

रावण के शासन काल में राक्षसों का साम्राज्य भौतिक समृद्धि के शिखर पर पहुँच गया था। त्रिकूट पर्वत पर स्थित लंका का दुर्ग एक चमत्कारी किला था। उसकी निर्माण योजना अद्भुत, धन ऐशवर्य का वर्णन वाल्मीकि ने सुंदरकाण्ड में किया है। जिसकी कल्पना प्रशंसा करना थोड़ा ही है।

उक्त चारों दरवाजों के सामने उन खाइयों एवं मचानों के रूप में चार संक्रम (लकड़ी के पुल) हैं, जो बहुत ही विस्तृत थे। उनमें बहुत बड़े-बड़े यन्त्र लगे हुये थे और उनके आस-पास परकोटे पर बने हुये मकानों की पंक्तियाँ हैं।४१। कहते हैं कि रावण के दुर्ग पर जब शत्रु की सेना आती थी तब उन लकड़ी के पुलों में जो यन्त्र लगे थे उसी के द्वारा रक्षा की जाती थी। और उन लोगों को खाइयों में यन्त्र द्वारा गिरा दिया जाता था। शत्रु सेना को फेंक दिया जाता था।४२। दुर्ग के दरवाजे विशाल यन्त्र लगे हुये, जो तीर पत्थरों के गोले बरसाते हैं। शत्रु की सेना आगे बढ़ने से रोकी जा सकती है।४३। उन दरवाजों पर लोहे की चार गदायें सजाकर रखी गयी हैं। रावण का महल एक पर्वत शिखर पर स्थित था।

उसकी रक्षा राक्षस लोग किया करते थे। चाँदी सोने के दरवाजे थे, लड़ाई के लिये रथों के आने-जाने का रास्ता भी था। कुछ नियत दूरी पर हाथी दांत की प्रतिमाएं थीं, घुड़सवार सैनिक तैनात रहते थे। उसका महल मोरों के स्थान से युक्त था, ध्वजा लहलहाती रहती थी, रत्न, भंडार, खजानों से भरा पूरा था। उसका भवन कुबेर के भवन के समान जान पड़ता था। राजोचित्त सामग्री से पूर्ण था, रमणी रत्नों से भरा हुआ था- नुपूरों की झनकार सुनाई पड़ती रहती थी। महल में अटारियाँ थीं, जो वैदूर्य मणियों से जड़ी सोने की खिड़कियाँ थीं, उसमें शंख, शस्त्रास्त्र धनुष की शालाएं थीं। महल के बाहर में सैनिकों के लिये सभी साधनों सहित निवास स्थान बने थे। उनके पास में लंबे चौड़े मैदान होते थे जो

पशु पक्षियों से पूर्ण थे। उद्यानों को कलात्मक ढंग से सजाया जाता था। पास में ही घोड़ों, हाथियों की सवारी रखने के स्थान बने हुये थे। ये सब सोने के बहुमूल्य धातुओं की जातियों से बने थे।

रावण का शयनकक्ष बड़ा, सुन्दर, स्वच्छ, विशाल था। कई कमरे बने थे मढ़ियों की सीढ़ियाँ स्फटिक का फर्श, रत्न जटित स्तम्भ, हाथी दाँत की बनी मूर्तियाँ थीं। फर्श पर कालीन, दीवारों पर पर्दे टंगे थे। जिसका रंग आस-पास की वस्तुओं से मेल खाता था। तत्रच विन्यस्तैः सुश्तिष्टशयनासनैः कमरे सुगन्धित रहते थे, दीवारों पर पुष्ट पालाओं, वंदनवारों से सजी रहती थी। महल के दूसरे भाग में नृत्यशाला, संगीत शाला, पास में ही नंदन-वन के समान सुन्दर रमणीय रावण की अशोक वाटिका थी, जिसमें नाना प्रकार के पशु-पक्षी के भवन थे। कमल-कमलिनी से परिपूर्ण एवं बावलियों, लता-कुंजों तथा कर्णिकार, किंशुक, पुन्नाग, चंपक, अशोक, चंक्ष मौलसिरी से सुशोभित यह वाटिका वास्तव में नेगमनः कान्तम् थी।४४। अशोक वाटिका में हनुमान ने थोड़ी ही दूर पर एक गोलाकार ऊँचा मन्दिर देखा, जिसके अन्दर एक हजार खंभे थे। मूँगे की सीढ़ियाँ थीं, सोने की वेदी थी, वह महल दर्शकों को चकाचौंध पैदा करने वाला था।४५।

लंका में सामान्य राक्षसों के निवास स्थान भी समृद्ध, बहुमूल्य, अनेक कक्ष, सोने के बने थे। उनमें सुन्दर चन्द्रशालाएं बनी थीं रत्नों के झरोखे थे। जो माठी और मूँगों से चित्रित थी। सतमहले, अण्महले मकान थे। क्रौंच, मोर के शब्दों की तरह भूषणों की झनकार सुनाई पड़ती थी। वानरों के आग लगा देने पर तोरणों, अटारियों, शिवरों से युक्त वे महल इट-इट कर जमीन पर गिरने लगे थे। हनुमान ने केवल विभीषण का घर छोड़कर क्रमशः सभी घरों में आग लगा दी।४६। इस प्रकार हनुमान ने वहाँ नाना प्रकार के रत्नों से सुशोभित ऐसे-ऐसे घर देखे, जिनकी देवता और असुर भी प्रशंसा करते थे। बेघरः सम्पूर्ण दोषों से रहित थे जिन्हें रावण ने स्वयं अपने पुरुषार्थ से प्राप्त किया था।४७। वे भवन बड़े प्रयत्न से बनाये गये थे जो बड़े अद्भुत थे, मानों साक्षात दानव ने ही उनका निर्माण किया हो। रावण के घर इस भूतल पर सभी गुणों में सबसे बढ़-चढ़कर थे।४८।

रावण ने अपने भाई कुम्भकर्ण के लिये शयनागार बनवाया जो विश्वकर्मा के समान सुयोग्य, शिल्पयों को घर बनाने के लिये आज्ञा दे दी, दो योजन लंबा, एक योजन

चिकना घर बनाया उसमें किसी प्रकार की बाधा का अनुभव नहीं था। उसमें सर्वत्र स्फटिकमणि सुवर्ण के खंभे जो भवन की शोभा बढ़ाते थे। उसमें नीलम की सीढ़ियाँ थी। सभी ओर घुंघरूदार झालरें लगायी गयी थी। उनका सदर फाटक हाथी दाँत का था, हीरे, तथा स्फटिक मणि की वेदी एवं चबूतरे शोभा दे रहे थे।४६।

हनुमान ने लंका में जो कुछ देखा है, उसमें कवि ने अतिरंजना का आश्रय लिया है। इस सारे अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन में सत्य का अंश निस्संदेह विद्यमान है, भले ही पहले के समय के बाद आज की परवर्तित परिथतियों में, यह कल्पनाजन्य प्रतीत होता हो। कहते हैं कि राक्षस-राजधानी में सुवर्ण और मणि रत्नों की बहुलता है। यह कवि का ही कहना नहीं है। जब हम यह सुनते हैं कि मैक्सिको के लोगों के पास सोना ज्यादा था, पेरू (दक्षिण अमरीका) के विशाल सूर्य-मंदिर की दीवारें सोने की हैं, आज भी तिब्बत की राजधानी ल्हासा के बौद्ध मन्दिर की छत सोने की पटी है, तो इस प्रकार से स्पष्ट है कि लंका में भी राक्षसों ने अपने घरों और दीवारों को मणि से सजाया होगा। सम्भव है कि दक्षिण भारत और लंका में सोना खानों, और नदियों की रेत में से काफी निकलता था प्राचीन समय में। अतः वाल्मीकि कृत सुवर्णमयी लंका का वर्णन अतिशयोक्ति पूर्ण भले ही हो, पर निरा कवि-कल्पना-प्रसूत नहीं है।५०।

राक्षस लोग सर्वथा राजनीतिक बुद्धिमता से शून्य थे। राक्षसराज! नीतिज्ञ पुरुष को चाहिये कि धर्म, अर्थ, काम समय से सेवन करे और जो राजा ये नहीं समझता उसके लिये अनेक शास्त्रों का अध्ययन व्यर्थ है।५१।

मारीच और विभीषण, दोनों ने सीता को मुक्त करने के लिये रावण को बहुत समझाया था कि आप ऐसा न करें नहीं तो राक्षस जाति का विनाश संभव है। यह तो मृत्यु का भय था जिसने मारीच को सीता हरण के षडयन्त्र में रावण को सहयोग देने के लिये विवश किया। अंतर्राष्ट्रीय नीति नियमों से भी राक्षस अनभिज्ञ नहीं थे। विभीषण के यह बताने पर कि दूत अवध्य होता है।५२। रावण ने हनुमान को नहीं मारा था। रावण का स्त्री दाक्षिण्य इस बात से प्रकट है कि बार-बार ठुकराये जाने पर भी उसने सीता का वध नहीं किया।

कुंभकर्ण ने राजनीति दृष्टिकोण रखते हुये अपने बड़े भाई रावण को युद्ध में जाने

से रोकना चाहा था से स्पष्ट हो जाता है कि उसमें अपने भाई की आलोचना करने, और परामर्शदाताओं का पर्दाफाश करने का नैतिक साहस भी था। विभीषण ने भी रावण को बड़ा भाई मानकर मैं आपके हित के लिये सच्ची बात कह रहा हूँ कि आप राम को उनकी पत्नी सीता लौटा दें।५३। विभीषण के इस प्रकार समझाये जाने पर रावण ने उन्हें कटु वचन कहे, उन पर देश द्रोही लांछन लगाया, तभी विभीषण ने रावण से अलग होकर राम की ओर जाकर न्यायपूर्वक पक्ष लेकर नैतिक कर्तव्य निभाया था। इसी प्रकार रावण की पत्नी मंदोदरी भी रावण के घमंड को चरितार्थ करती है कि आप अपने घमंड में मतवाले हो रहे हैं। आपने मारीच, कुम्भकर्ण तथा मेरे पिता की बात नहीं मानी इसी का यह फल आपको प्राप्त हुआ है।५४।

राक्षसों में एक सुनिश्चित सैन्य व्यवस्था थी। चर्तुरंगणी सेना थी जिसमें एक सेनापति अनेक नायक (बलाध्यक्ष) होते थे। रावण मंत्रियों में विचार विमर्श करते थे। राम के आक्रमण के समय रावण ने मंत्रियों से शीघ्र निश्चय करके धौंसा बजाकर सभी सैनिकों को इकट्ठा कर लिया किन्तु इसका कारण न बताया।५५।

रावण ने मायामय मृग के बहाने राम-नक्ष्मण को आश्रम से दूर हटाया और उनकी पत्नी सीता को चुराकर ले आये यह कितनी बड़ी कायरता है।

लंका के दुर्ग फाटकों पर कड़ा पहरा रहता था। दुर्ग में कई 'कूटागार' बने थे। जो भूगत मार्ग पर सैनिकों को छिपाने के तहखाने थे। जहाँ आर्य लोग युद्ध में उचित और निष्कपट साधनों का सहारा लेते थे, परन्तु राक्षस शत्रु को परास्त करने में धोखा धड़ी का सहारा लेते थे। रामायण में जगह-जगह पर कूटयोधिनः (छिपकर युद्ध करने वाले) कहा गया है।

राक्षसों पर सामनीति के लिये तो कोई गुंजाइश ही नहीं थी इन पर दान, भेद, युद्ध (दण्ड) नीति का प्रयोग भी सफल होता नहीं दिखाई देता था।५६। इसके अतिरिक्त जादू, टोने, आग, विष, माया द्वारा बल को प्रकट करते थे।

मारीच 'महामाया विशारद' था। रावण भी युद्ध में कपटी था। मायासृष्टा रमाहवे। लंका युद्ध के समय राक्षसों के छल-कपट के अनेक उदाहरण मिलते हैं। कहते हैं कि राक्षसी सेना नकाब पहनकर भी युद्ध करती थी। जब रावण पहली बार रण-भूमि में गया तब उसके

साथ-साथ बाघ, घोड़ा, ऊँट, हरिण, पशुओं के मुखवाले प्राणी भी चले थे।५७। छद्म रूपों का भी प्रयोग करते थे जिसमें असली-नकली अन्तर समझ में नहीं आता था।

राक्षसों एक अपना जासूस विभाग भी था। सूर्पणखा ने रावण को गुप्तचर व्यवस्था रखने की आवश्यकता समझायी थी, क्योंकि जासूस ही राजा को दीर्घ दृष्टि प्रदान करते हैं (चारेण तस्मादुच्यन्ते राजानो दीर्घचक्षुषः)। सीता हरण के बाद रावण ने आठ जासूसों को इस काम में लगा दिया था कि राम-लक्ष्मण की गति-विधि की सूचना बराबर देते रहें। ये लोग फूट डालने की पद्धति का भी सहारा लिया करते थे। राम और सुग्रीव में फूट डालने के लिये रावण ने अपने गुप्तचर शुक को नियुक्त कर रखा था। राम की वानर सेना का रहस्य जानने के लिये भी उसने शुक, सारण, शार्दूल के नेतृत्व में कई जासूस भेजे थे। राक्षस वीर रथों में बैठकर रण क्षेत्र में जाते और युद्ध करते थे। वानरों की भाँति वे शास्त्रास्त्रों के प्रयोग में अनभिज्ञ नहीं थे। इंद्रजित, रावण, अतिकाय, महारक्ष वीर, धनुर्धर थे। आकाश युद्ध में भी राक्षस कुशल थे। उत्तरकांड में रावण और वरुण पुत्रों के बीच हुये एक आकाश युद्ध का वर्णन आता है। बाहु युद्ध, गदा युद्ध, मुष्टि युद्ध, द्वारा भी राक्षस अपने प्रति पक्षी का सामना करते थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि राक्षसों को आर्यों से भयानक हार खानी पड़ी , क्योंकि राक्षस लोग व्यक्तिगत रूप से तो बलवान थे, पर युद्ध में संगठित मोर्चा बनाकर लड़ने की बजाय एक भारी और अव्यवस्थित भीड़ बनाकर शत्रुपक्ष से भिड़ते थे इस प्रकार संख्या ज्यायंदा की बजाय लाभ नहीं उठा पाते थे। ऐसे समय में राम ने अकेले ही खर की चौदह हजार राक्षसी सेना को खदेड़ा (संख्या अतिरंजित हो सकती है) राम की विजय का कारण धनुष बाण का प्रयोग तथा युद्ध-कौशल में राक्षस-पक्ष का कोई वीर उनसे बाजी नहीं मार सकता था।५८।

राक्षस आर्यों के यज्ञों को नष्ट ही नहीं करते थे, बल्कि भाग लेने वाले लोगों कोमौत के घाट उतार देते थे। रावण को 'ब्रह्महन' ब्रह्म हत्यारा कहा गया है। उत्तरकांड में वर्णन है रावण ने राजा मरुत के माहेश्वर यज्ञ में आये हुये ऋषियों को खाकर उनका खून पीकर अपने को तृप्त किया था। इसके अतिरिक्त दंडकराण्य में रहने वाले निवासियों ने उन्हें राक्षसों द्वारा मारे गये ऋषि-मुनियों की हड्डियाँ दिखायी थीं।५६। इन्द्रजित-वध के पश्चात देवता, दानव, गंधर्व आकर यह कहने लगे कि अब ब्राह्मण निर्भय होकर पृथ्वी पर विचरण

करेंगे।६०। इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मणों के जीते जी यह कितना अभिशाप तुल्य है। राक्षसों के घृणित कार्य ने उनको संसार की दृष्टि में निंदित बना दिया था। जिसमें स्त्री बलात्कार प्रमुख है। पराई स्त्रियों का उपभोग करना अथवा बलपूर्वक हर लेना राक्षसों का सदा से ही प्रचलित स्वधर्म रहा है।६२। कहते हैं कि राक्षस जिस कन्या अथवा स्त्री को दर्शनीय रूप से सुन्दर देखता, उसके रक्षक का वध करके, उसे विमान पर बिनकर रोक लेता था।६३। मंदोदरी अपने पति से कहती है कि भगवती सीता अरुन्धती, रोहणी से भी बढ़कर पतिव्रता है। सबकी पूजनीय सीता देवी है आपने उसका तिरस्कार करके बड़ा गलत और अनुचित कार्य किया है।६४। और ये भी कहा कि महाबाहो। मेरे देवर विभीषण सत्यवादी थे, जो भूत-भविष्य वर्तमान के ज्ञाता थे। उन्होंने हर कर लायी हुयी सीता को देखकर मन ही मन विचार करके लम्बी साँस छोड़ी और कहा कि अब प्रधान-प्रधान राक्षसों के विनाश का समय आ गया हो तो उनकी यह बात ठीक ही निकली।६५। कुंभ्कर्ण नर हत्या, आश्रम-विध वंश, परस्त्री-हरण के लिये प्रसिद्ध था। रावण ने अपनी त्रैलोक्य-विजय में स्त्रियों की खुलेआम लूट मचा दी थी। मन्दोदरी को पता चला कि वह देवों और असुरों की कन्याओं को देख-विदेश से हरकर लाया था। देवासुरकन्या नामाहतरिं ततस्ततः,। पंजिकस्थलः और रंभा जैसी अप्सराओं पर उसका बलात्कार, किंतु सीता के अपहरण में रावण को आर्यों की क्रोधाग्नि की आहुति बना दिया, जिसमें राक्षस अपना विनाश कर बैठा।

रावण धर्म-कर्म और शिक्षा-स्वाध्याय में रहने के साथ-साथ अनीति अधर्म, अत्याचार, विलास में लिप्त रहता था। उसकी वैभवशालिता से हनुमान कहते थे कि- ''अहो इसका रूप और धैर्य अद्भुत है! इसका साहस अनोखा और कांति निराली है! इस राक्षस में सभी राजोचित लक्षणों का होना महान आश्चर्य की बात है। यदि इसमें अधर्म की प्रबलतान होती हो यह देवलोक, इन्द्र का भी रक्षक होता।६६। सच पूछा जाये तो राक्षसों के नाम से ही, आर्य ऋषि-मुनियों के प्रति उनकी हिंसा वृत्ति के कारण देश-भर में कुख्यात और कलंकित हो चुके थे। यज्ञों का विध्वंश करना उनका व्यापार बन गया था। जब विश्वामित्र ने यज्ञ आरम्भ किया, तब मारीच और सुबाहू ने यज्ञ वेदी पर गाढ़ा खून वरसाया था।६७। रावण अनेक यज्ञों को नष्ट करने वाला (नैकयज्ञविलोप्तारम), धर्म की व्यवस्था को तोड़ने वाला (धर्म व्यवस्थ भेत्तारम्) तथा नैतिक धर्मो को न मानने वाला (उच्छेत्तार धर्माणाम्)

था। अतुल शक्ति सम्पन्न होने के कारण वह यज्ञ-भूमि से मंत्रपूत सोम रस को छीनकर ले जाता था। इसीलिये यज्ञ-भूमि में किसी राक्षस का प्रवेश गंदे कुत्ते का प्रवेश की तरह अशुभ, अपवित्र माना जाता था। ६८। राक्षस लोग आर्यो की चर्चा 'नर' मनुष्य' या 'मानुष' के नाम से किया करते थ। नर-मांस के प्रति स्वाभाविक अभिरूचि होने पर भी उनके और मनुष्यों के बीच सौहाद्रपूर्ण संबन्ध देखने को मिलते है। रावण की अशोक वाटिका में हनुमान ने हर्षमग्न मनुष्य देखे थे, इससे स्पष्ट है कि नरभक्षी बर्बरों के राज्य में मनुष्य आदर पूर्वक रह सकते थे। राक्षस उन्हीं मनुष्यों का मांस खाते जो युद्ध में बंदी बनाकर जिनसे शत्रुता होती थी, उनके समाज के अंग बनकर उन्हीं के बीच बस जाने वाले मनुष्यों को वे कोई हानि नहीं पहुँचाते थे। ब्राह्मण की आर्यो की भाँति अपना ली थी।

उदाहरण- जब राक्षस सेनापति रणक्षेत्र को जाता था तब बहुत से राक्षस उसकी मंगल कामना के लिये ब्राह्मणों को प्रणाम करने लगे थे।६९। स्पष्ट है कि जिन ब्राह्मणों ने राक्षसराज की यजमान वृत्ति स्वीकार कर ली थी, वे राज्य में निःशंक होकर बस सकते थे।

किन्तु अन्य दृष्टियों में राक्षस लोग मनुष्यों को हीन दृष्टि से देखते थे। अपने को उच्चतर मानते थे। रावण मनुष्यों को कुछ भी नहीं मानता था। ब्रह्म से गरूड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस देवता आदि जातियों से वरदान मांगते समय मनुष्यों से भय मुक्त होना उचित नहीं समझा। क्योंकि मनुष्य को तिनके के समान मानता था।

'तृणभूता हि ते मन्ये प्राणिनों मानुषादयः'

जब मारीच ने रावण से राम की वीरता के बोर में बताया तब रावण ने उसका उपहास करते हुये कहा कि 'अपनी इस बकवास से तुम मुझे उस राम से भयभीत नहीं कर सकते, जो मूर्ख है, पापी है और विशेषकर एक मनुष्य है।७०।' शूर्पणखा ने राम-लक्ष्मण जैसे मनुष्यों को मारने में असमर्थ खर को 'निःसत्व और अल्प वीर्य कहकर लताड़ा था।' मंदोदरी सीता को कुल, रूप, गुण, किसी बात में अपने से बढ़कर नहीं समझती थी।७१। ताड़का आरम्भ में एक यक्षिणी थी, पर जब वह अगस्त्य ऋषि पर झपटी तब उन्होनें नरभक्षी हो जाने का शाप दे दिया था। उसका पुत्र मारीच भी राक्षस बना दिया गया। राक्षसत्वं भजस्वेति मारीचं व्याजहार सः। उत्तरकाण्ड में राजा कल्माषपाद की कथा इस तरह है। राजा वसिष्ठ को (भ्रमवंश) नर मांस परोस दिया, तब मुनि ने उसे नरभक्षी राक्षस बन जाने का शाप दे दिया।

इस प्रकार एक आर्य जाति भी शाप मिलने के कारण राक्षस जाति बन गयी।

यह सत्य है कि रामायण के समय भारत के दक्षिणी छोर पर लंका में एक काली खूंख्वार जाति निवास करती थी, इस जाति के अवशेष आज भी जावा में है।७२। उसकी ध्वंसात्मक प्रवृत्तियाँ भारतीय महासागर के द्वीपों तक फैली थी। आर्यो के प्रवेश के पहले इस जाति ने विश्व में घटनाचक्र में भाग लिया था। डा० जान फ्रेजर का मत है कि खिलोन के मूल निवासी आर्यो से पहले पनपने वाली एक काली जाति के लोग थे और दक्षिण भारत की द्रविड़ जातियाँ उसी से निकली है। भारत में आर्यो के आ जाने से यह जाति दक्षिण पूर्वी एशिया के प्रायद्वीप में तथा इंडोनेशिया और ओशियनिया के द्वीप में चली गई तथा मलेशिया के निवासी उसके वर्तमान प्रतिनिधि है।७३।

वानर

रामायण ही भारतीय साहित्य का सबसे प्राचीन एक मात्र ग्रंथ है, जिससे हम वानर सभ्यता की निकट से झांकी पा सकते है।

वानरों को कवि ने बलवान प्राणी बताया है जो शूरवीर, वायु के समान वेगवान, माया को जानने वाले, बुद्धिमान, नीतिज्ञ, विष्णु के समान पराक्रमी, किसी से परास्त न होने वाले, दिव्य शरीर-धारी और देवताओं की तरह सभी शस्त्रास्त्रों के प्रयोग में कुशल थे। कामरूपिणः राम लक्ष्मण से पहली बार भेंट के समय हनुमान ने अपना कपिरूप त्यागकर भिक्षु रूप धारण कर लिया था। लंका में सीता खोज के समय गुप्त ढंग से अनेक रूप बदले। वानर अपने दाँतों, नखों का शस्त्रों के रूप में प्रयोग करते थे। वाद्य की तरह पैने दाँत से उनकी आकृति रोंगटे खड़े कर देने वाली हो जाति थी।७४। विशालकाय होने के नाते उनकी व्याख्या महागजों, वटशल वृक्षों, पर्वतों, मेघ से स्थापित की गयी है। सुग्रीव को हेमपिंगल कहा गया है। उनका वर्ण सोने की तरह होता था। वाली को कनक प्रभः कहा गया है। लंका पर धावा बोलने वाले वानरों का मुख तांबे जैसा रंग सोन जैसा था (ताम्रवदना; हेमाभाः)। लंका में सीता की पहरेदारियों ने 'तुमसे बाते क़रने वाला ताम्रमुख कपि'।७५। कहकर हनुमान की ओर संकेत किया था। वानरों के शरीर पर सुन्दर रोये होते थे। सुग्रीव के महल में दिव्य वस्त्र और मालाधारी 'प्रियदर्शन' वानर मौजूद थे। लक्ष्मण ने रूप यौवन से गर्वित वानर स्त्रियाँ देखी थी।७६। फिर भी यह अंदेशा है कि रामायकालीन वानर पूंछ नाम

'लोचदार मृदु उप करण से' से मुक्त थे, जो आज़कल के वानरों की पहचान है।

वानर बड़े भावुक प्राणी थे। शोक या हर्ष में दुःख-सुख का अनुभव करने लगते थे। लंका में मंदोदरी को सीता समझकर किस प्रकार खुशी से नाचने-कूदने लगे, और किलकारियाँ मारने लगे थे यह वर्णन वाल्मीकि ने बड़े सुन्दर ढंग से किया है।७७। प्रथम परिचय के समय लक्ष्मण ने सुग्रीव को सीता हरण की घटना सुनाई, तब वानरराज उद्विग्न हो उठे कि कवि की उनका वर्णन करने के लिये राहु ग्रस्त सूर्य से घटकर कोई अपमान ही नहीं मिला राम-लक्ष्मण को नाग-पाश में जकड़ा देखकर उनके नेत्रों से आंसुओं की गंगा-यमुना बहने लगी।

वानरों में कुटुहल की भावना विद्यमान थी। पुष्पक विमान अयोध्या के निकट आने पर बैठे वानर उत्सुकता वश उचक-उचक कर नगर देखने लगे थे।७८। साथ ही साथ बात फैलाना और शोरगुल करने की आदत भी इनमें थी। युद्ध के समय विभीषण को देखकर वे एकदम परेशाम हो गये कि विकराल इंद्रजित समझकर आपस मे कानाफूसी करने लगे (कर्णे कर्णे प्रकथिताः)। बात बहुत अधिक करने की प्रवृत्ति के कारण संपाति को समझाना पड़ा कि सीता के विषय में जो कुछ भी बता रहा हूँ, उसे बिना शोरगुल के सुनो (कृत्व निःशब्दमेकाग्राः शृण्वन्तु हरयो मम) राम के महाप्रयाण के समय भी वानर किलकारियाँ मारने लगे थे।७६।

वानर जाति में चपलता का गुण भी विधमान था। राम ने बाली पर यह आरोप लगाया था। रावण की दृष्टि में वानरगण चपल, उद्धत, अस्थिर चित्त थे-चपला ह्यविनीताश्च चलचिताश्च वानराः। रावण ने अपने गुप्तचर शुक से हँसकर कहा था कि कहीं तुम चंचल वानरों के फंदे में तो नहीं पड़ गये थे।८०। भरत ने हनुमान के कथानुसार राम को नियत समय पर अयोध्या लौटने नहीं पाया, तब उन्हें यह संदेह हुआ कि हनुमान (वानरी चंचलता) कापेयी चलचित्तता से तो संलग्न नहीं।८१। हनुमान ने वानरों की इस दुर्बलता, अस्थिर मतित्व को स्वीकार किया था- नित्यमस्थिरचिन्ता हि रूपयो हरिपुंगव। वानरों का स्वभाव तेज, गरम मिजाज होता था। चंड (भीषण) विशेषण कईबार प्रयोग हुआ है। उनके साथ समझौता करना मुश्किल काम हाता था।८२। वानरों को शरारती होने के कारण मंगल ऋषि ने मंगल वन से अलग कर रखा था। मधुवन में वानरों के अनिमंत्रित आमोद-प्रमोद का

वर्णन करके कवि ने प्रकृति कपीनाम (वानरी स्वभाव) का अत्यन्त मनोरंजक चित्र उपस्थित किया है।

वानरों का स्वभाव सीधा-साधा था, बहकावे मे जल्दी आ जाते थे। एक बार पर्वत पर कुंभकर्ण को देखते है सभी वानर भागे इसे रोकने के लिये विभीषण ने राम को सलाह दी कि कहे लंका में एक यंत्र खड़ा किया गया है, वे निडर हो जायेगा।८३। तभी अंगद ने भागते हुये वानरों से कहा कि ये राक्षस नहीं है, इसकी शक्ल ही डरावनी है, यह राक्षस की भेज़ी गयी एक विभीषिका (डराने की चीज) मात्र है। 'तुम लोग महान होकर भी यदि भागोगे तो तुम्हारी स्त्रियाँ तुम्हारा उपहास उड़ायेगी तुम हथियार डालकर क्यों भाग रहे हो क्योंकि तुम इस प्रकार डींग समुदाय में बैठकर क्यों हाका करते थे कि हम प्रचंड वीर है और स्वामी के हितैषी है, ये सब बातों का क्या प्रयोजन?' अंगद की बात सुनकर वानर वीर लौटे और हाथों में वृक्ष लेकर फिर रणभूमि में गये। इन्द्रजित ने इन लोगों के मन को पहचान लिया था, उसने माता सीता की हत्या रची थी डराने के लिये। इस कपट से उसे निकुंभिला देवी के मंदिर में होम का समय मिल गया, जिससे कारण अपने को वह अज्ञेय बना लेना चाहता था। स्वंय हनुमान भी इंद्रजित की माया धोखा खा गये थे, एक बार लंका में हनुमान ने मंदोदरी को सीता समझ लिया था। किष्किधा नगर वानरों का गढ़ था। रावण के गुप्तचर शुक के अनुसार 'सौवृद्ध, एक सहस्र शंकु और इक्कीस सहस्र कोटि वानर किंष्किधा में सुग्रीव के संग-साथी थे। इसके अतिरिक्त पर्वत, वन प्रदेश, नदियों, समुद्रतट पर, पेड़ों पर निवास करते थे।

वानर हमेशा समूहों में निवास करते थे। सीता की खोज करते समय ये लोग कभी एक-दूसरे से अलग नहीं हुये। समूह प्रेम के कारण अंगद, हनुमान, जाबवान आदि वानर नेताओं ने कभी दल की छोटी-छोटी टोलियाँ नहीं बनाई। सीता खोज करते समय हताश होकर अंगद ने अनशन करके प्राणत्याग करने का निश्चय किया तथा सभी साथियों ने बिना सोचे-समझे स्वभाव वश ऐसा ही विचार कर लिया। वानर पराक्रमी भी थे। राक्षस वीर अंकपन की बाण वर्षा से भागने वाले वानर सैनिकों और कप्तानों ने जब अकेले हनुमान की पूछने के लिये तैयार देखा, तब वे लोग भी साहस बटोरकर लौटआये।

वानर जीवन की यह विशेषता-उनका गुफा में निवास करना या तो कवि की

कल्पना है या आदिम जाति के अर्ध-सभ्य तरीकों की ओर एक संकेत है।८४। वाल्मीकि ने कई स्तरों पर वानरों की घनी आवादी का उल्लेख किया है, जिसने राम को उनकी सहायता के लिये प्रेरित किया।

वानरों का समाज 'हरिगण' के नाम से ख्यात था। 'हरि' शब्द वानर का ही पर्यायवाची है। वानरों का समाज यूथों, वर्गो में विभक्त था, जिनका मुखिया 'यूथप' कहलाते थे। दुर्धर केसरी, गवाक्ष, नील प्रसिद्ध यूथप थे। इनके ऊपर संनादन, जो जंबवान् जैसे महायूथप हुआ करते थे। और इन सब पर (भ्रवान सेनापति) का नियंत्रण रहता था। वानरों में राजाका पद परंपरागत होता था, ज्येष्ठ पुत्र उसका उत्तराधिकारी होता था। मंत्री मंडल का भी स्थान था। गुप्तचर व्यवस्था भी थी।

वाल्मीकि के पिता के मरणोपरान्त उसके मंत्रियों ने ज्येष्ठ पुत्र वाली का ही राजतिलक किया था। सुग्रीव के निःसंतान होने के कारण बाली के पुत्र अंगद को युवराज बनाया गया। राम सुग्रीव की मित्रता की सूचना गुप्तचरों ने अंगद को दी थी और अंगद ने तारा को।८५। हनुमान को भी इसी के बारे में पूरा पता था। सुग्रीव की मोह निद्रा से जगाते समय उन्होने राजकीय 'कोष' की ओर संकेत किया था। कुछ लक्ष्मण को शांत करने के लिये तारा ने कहा था कि राम का प्रिय करने के लिये सुग्रीव मुझे, रूमा, अंगद राज-पाट, धनधान्य और पशुओं को भी छोड़ सकते है।८६।

वानर लोग वनचर जाति होने के कारण फल-फूल जैसे प्राकृतिक आहार से ही अपना पेट भरते थे। वानर नर-नारी दोनों ही मघ-पान में अत्याधिक आसक्ति थे। ये आर्यो और राक्षसों से पिछड़े हुये थे। वानर लोग बंदरों की तरह नंग-घड़ंग नहीं घूमते थे, वरन् सुन्दर वस्त्र, आभूषण पहनते थे दो वस्त्र पहनते थे। इसका वर्णन राम के प्रति सुग्रीव के इस कथन से चलता है कि बाली ने मुझे मात्र एक वस्त्र देकर ही निकाल दिया।८७। सुग्रीव ने लंगोट से अपनी कमर खूब कस लेने के बाद गांठ परिहित; बाली को ललकारने के लिये आकाश भेदी गर्जना की थी। बाली की अंत्येष्टि पूर्ण होने के समय शोकमग्न सुग्रीव ने गीले वस्त्र पहने हुये देखा था (वेष्टितार्जुनवस्त्रम्)।

वानर आभूषणों का अधिक व्यवहार करते थे। राम के चरणों में प्रणाम करते समय सुग्रीव के गले से आभूषण लटकने लगे थे (प्रलम्बीकृत भूषण)। ये लोग पुष्प, गंध,

प्रसाधन और अंगराग के शौकीन थे।

उपहार आहार प्रदान करते थे। सुग्रीव के राज्याभिषेक के समय हनुमान ने राम से साग्रह प्रार्थना की कि आप कृपापूर्वक किष्किंधापुरी पधारे जिससे उपकृत वानरराज पुष्पों और रत्नों से आपका सत्कार कर अपना आभार प्रकट कर सकें।

वानरों की राजधानी किष्किंधा नगरी सुख वैभव की क्रीड़ा स्थली थी। लक्ष्मण प्रवेश के समय कवि ने लेखनी से जो चित्रण प्रस्तुत किया है, वह वानर राज्य की आर्थिक समृद्धि पर है।

वाल्मीकि ने वानरों के यौन संबधों में अनियमितता दिखाई है। एक बार केसरी वानर की पत्नी अंजना, रूप यौवन से शोभित होकर, पर्वत, शिखर पर भ्रमण कर रही थी। उसके झीने वस्त्र की वायु ने धीरे से हर लिया, जिससे उसके अंगांग का सौन्दर्य निवारण हो गया। वायु ने काम के वशीभूत होकर दोनों भुजायें बढ़ाकर उसका अलिंगन कर लिया अंजना के गर्भ में वायु का प्रविष्ट हो गया। उसके विरोध करने पर वायु ने उसे अपने ही समान तेजस्वी पुत्र प्रदान करने का आश्वासन दिया। इसे वह प्रसन्न होकर एक निर्जन गुफा में जानकर हनुमान को जन्म दिया। यद्यपि जांबवान ने हनुमान को वायु का औरस पुत्र और केसरी का क्षेत्रज पुत्र।८८। बताया था। बालि दुंदुभि से युद्ध करते-करते दीर्घ समय तक गुफा से नहीं निकला, तब सुग्रीव ने एक वर्ष तक गुफा द्वार पर बैठकर उसकी प्रतिक्षा की, फिर उसे मरा समझकर किष्किधा लौटकर राज्य के साथ-साथ अपनी पत्नी रूमा और बाली की पत्नी तारा पर भी अधिकार कर लिया-राज्य च सुमहत्प्राप्य तारां चरूमया सह। किन्तु जब वाली दुंदुभि को परास्त करके लौटा, तब उसे रूमा को छीनकर सुग्रीव को बाहर निकाला। अंत में बाली की मृत्यु होने पर सुग्रीव ने अपनी पत्नी रूमा तो फिरसे पा ही ली, बाली की पत्नी तारा को भी पा लिया। मृत शत्रु की विधवा को युद्ध की लूट के रूप में ले लेने का यह रिवाज वानर जाति में बर्बर प्रथाओं का सूचक है।

यह एक विचारणीय प्रश्न है कि अपनी पत्नी रूमा को फिर से लेने पर भी सुग्रीव ने उसकी कोई शुद्धि नहीं कराई, न अग्नि परीक्षा ली। पर पुरूष की रखैल बनकर रहने वाली अपनी मार्या का पुनः स्वीकार करने में कोई अपत्ति नहीं थी। लब लक्ष्मण बेरोके वानरराज के अंतपुरः में पहुँचे, तब सुग्रीव रूमा और (तारा) के साथ विलास में डूबे

हुये थे।६०।

वानरों में पारिवारिक प्रेम की बहुलता अधिक थी। घर से दूर विचरण करने वाले वानरों का महत्वपूर्ण कार्य यह था कि लक्ष्य प्राप्ति करके शीघ्र घर लौटे। हनुमान ने सीता की खोज करते समय अंगद को सचेत कर दिया था कि इन चंचल चित्त वानरों को अपने स्त्री, पुत्रों से बिछुड़े काफी समय हो गया है, कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि वे उनकी याद में उद्धिग्न है, तुम्हारी आज्ञा मानने से इन्कार कर दे। समस्त इंद्रियों की शुभ या अशुभ क्रियाओं में प्रवृत्ति का कारण मन ही है। और मेरा मन निर्विकार रहा है।
बाली की घटना आज भी आलोचना के रूप में नैतिक तर्क का एक ज्वंलत उदाहरण है।

वानरों की जाति मुस्कृत एवं सुशिक्षित थी। हनुमान रामायण ने प्रमुख वानर है जिन्होनें अपनी संस्कृति और शिक्षा से राम को प्रभावित किया था। कहा गया है कि हनुमान की वाणी शुद्धि के आठों गुणों से भूषित थी। वह अपनी वाणी का सहारा लेकर ही अपने स्वमी का मनोरथ पूरा कर लिया करते है। तलवार लेकर वध करने को उतारू शत्रु का हृदय भी उनकी वाणी से बदल सकता है। लक्ष्मण ने आरम्भ में ही इन्हें 'विद्धान' कहकर संबोधित किया था।

सुग्रीव ने अपने बल, बुद्धि, पराक्रम, देशकाल के अनुसार आचरण और नीति इन गुणों का समवाय पाया था। उनमें सिद्धि मति, व्यवसाय, शूरता और शास्त्र-ज्ञान सबकुछ प्रतिष्ठित थे। विभीषण ने राम की शरण में आने पर हनुमान से सही राय देकर अन्य वानर वीरों की तुलना में अपनी श्रेष्ठता सिद्धि की थी, वह सभ्य विनीत और शास्त्र संस्कार से संपन्न थे, वचन मधुर, सारगर्भित संक्षिप्त थे, तर्क, स्पर्धा, संघर्ष, बुद्धि के अभिमान अथवा किसी प्रकार की कामना से उन्होने सम्मति नहीं दी थी। अपरिचितों से परिचय बनाने में हनुमान सक्षम थे। पहली बार में ही वह शालीन शब्दों से राम के प्रिय बन गये थे।

सुग्रीव ने पहली बार अपने श्वसुर सुषेण के पास जाकर नम्रतापूर्वक चरणों में प्रणाम किया फिर अंजलि, बद्ध होकर सीता की खोज में पश्चिम दिशा की ओर गये। गुरूजनों के प्रति शिष्टाचार का पालन वानर भली-भाँति जानते थे। सुग्रीव ने अपने राज्यभिषेक के बाद पहले-पहल राम के दर्शनार्थ प्रसवण पर्वत पर गये, दूर से ही पालकी से उतर पड़े और पास जाकर हाथ जोड़ चरणों में गिर पड़े। अन्य वानरों ने भी अंजलि

पुत्रों द्वारा राम का अभिवादन किया।

रामायण के अध्ययन से वानरों के धर्म-कर्म की जानकारी मिलती है। वे देवताओं की पूजा-अर्चना करते, वे पितरों के श्राद्ध, तर्पण करते थे। राज्यभिषेक के अवसर पर सुग्रीव ने रत्न, वस्त्र, भोज्य पदार्थों का दान देकर द्विजो को प्रसन्न किया था।

हनुमान औषधियों का ज्ञान रखते थे, सुषेण और जांबवान की तरह भले ही योग्य न हों।

वानर लोग दूर देशों की यात्रा के शौकीन थे। उत्तरकाण्ड मे वर्णन आता है कि बाली संध्योपासना के लिये प्रतिदिन चारों समुद्रों की यात्रा करते थे।६१। अपनी ज्ञान पिपासा के लिये हनुमान ने विश्व भ्रमण किया था। जांबवान का समुद्र मंथन के समय इक्कीस बार पृथ्वी परिक्रमा की थी। विभिन्न देशों से परिचित होने के कारण वानरों को औषधियों और उनकी प्राप्ति स्थानों का पता था। सच बात यह है कि वानर उस युग के श्रेष्ठ चिकित्सक थे। लंका युद्ध के समय राम, लक्ष्मण अनेक वीरों का जीवन रक्षा वानर वैध सुषेण की चिकित्सा से संभव हुयी थी। स्वरूप उद्धृत किये थे। वास्तव में तारा पहले बाली के द्वारा फिर सुग्रीव के द्वारा किष्किंधा राज्य का संचालन करती थी- सुग्रीव जब भोग-विलास में संलग्न थे तब तारा ने ही सजा रहकर सीता की खोज का प्रबंध करवाया था। सीता ने तारा के व्यक्तित्व को भली-भाँति परखा होगा, तभी उन्होने लंका से अयोध्या की विजय यात्रा में सम्मिलित होने के लिये तारा को भी आमंत्रित किया था।

सुग्रीव का पकृटिस्थ होने पर राम का सौहाद्र मिलने पर सुग्रीव ने रमणीय वेश-भूषा से सज्जित होकर (दर्शनीयतमो भूत्वा) अपना हाथ बढ़ाकर मैत्री का प्रस्ताव किया।

प्रायः यह स्वीकार किया गया कि प्राचीन भारत से पशुओं के नाम से कई जातियाँ निवास करती थीं, जैसे नाग (सांप), ऋक्ष (भालू), वानर (बंदर)।

श्री मन्मथ नाथ राय।६२। ने वानरों को भारत के मूल निवासी व्रात्य माना है जो बाद में आर्यो के आने पर दक्षिणी पठार के अपजाऊ भू-भागों में जाकर बस गये। श्री० के० राय० रामस्वामी शास्त्री।६३। ने वानरों को आर्य जाति माना है। जो दक्षिण में बस जाने के कारण अपने उत्तर भरतवासी मूल बंधुओं से दूर पड़ गई बाद में आर्य संस्कृति से प्रभावित होने लगी।

गोरेशियो, व्हीलर विद्वान, वानारों को दक्षिण भरत की पहाड़ियों में निवास करने वाली अनार्य जाति बताते है।

वर्ण

रामायण युग में आर्यो का समाज निश्चित रूप में जाति-पाति में बँट चुका था, यह विभाजन सुविधा के लिये किया गया एक प्रकार का श्रम विभाजन था। वाल्मीकि ने चारो वर्णो (चातुर्वर्ण्य) का स्पष्ट उल्लेख किया है।६४। महाराज दशरथ के अश्वमेघ यज्ञ में सहस्रो की संख्या में ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्व, शूद्र आमंत्रित किया गये थे।६५। रामायण वसिष्ठ ने सुमंत्र से कहा कि इस पृथ्वी पर जो-जो धार्मिक राजा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आने के लिये कहा है।६६। यज्ञ में अयोध्या नारी के वर्णन में बताया गया है। कि अपने-अपने कर्मो में संलग्न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बसते थे- ब्राह्मणैः क्षत्रियैः वैश्यैः स्वकर्म निरतैः सदा। यज्ञ समारोहो में ब्राह्मणों, राजाओं (क्षत्रियों) तथा नागरिकों (जो अधिकाँश वैश्य होते थे) के लिये पृथक् निवास् स्थान बने रहते थे। वन जाते समय राम जब नाव में गंगा पार कर रहे थे तब उन्होनें ब्राह्मणों, क्षत्रियों के लिये विहित मंत्रो का जप किया था। सार्वजनिक उत्सवों में प्रत्येक वर्ण के व्यक्ति के साथ उसकी यथारूप स्थित के अनुसार व्यवहार किया जाता था।

जहाँ तक वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति का प्रश्न है, रामायण में वैदिक 'पुरूष युक्त' द्वारा प्रतिपदित इस मत को स्वीकार किया गया है कि विराट् पुरूष के मुख से ब्राह्मण, क्षत्रिय को भुजाओं से, जांघो से वैश्य, पैरों से शूद्र उत्पन्न हुये।६७। ये वर्णन रूपक शैली में श्रम विभाजन की दृष्टि से समाज का चारों भागों में बँटवारा किया गया है। वाणी के स्थान मुख से प्रकट होने वाले ब्राह्मण मनुष्य जाति के शिक्षक के रूप में माने गये। दूसरी वर्ग में बल, वीर्य सूचक भुजाओं से संबद्ध होने के कारण क्षत्रियों का कर्म शस्त्र धारण करना और प्रजा की रक्षा बन गया जो स्वभाव से दुर्घर्ष और साहसी थे। तीसरे वर्ग में वे शामिल किये गये है जो शरीर के अधेभाग, जांघो से निकलने वाले वैश्यों का काम श्रमपूर्वक धन और अन्न का उत्पादन करके समाज का भरण पोषण करना निर्धारित किया गया है। चौथे वर्ग में उन लोगों को रखा गया, जो अविशेष स्वभाव, साधारण रूचि और सामान्य शिल्प के थे और जो तीनों में से किसी से भी समस्थ न हो सकते थे, इनको 'शूद्र' की संज्ञा दी गयी है। इस वर्ग को अन्य सभी वर्णो का सेवक भी बताया गया है। प्रथम तीन वर्ण 'द्विज' (दो बार जन्म

लेने वाले) कहलाते थे।९८। अयोध्या में रहने वाले चारो वर्ण ब्राह्मणों के अनुयायी, देवताओं और अतिथियों के पूजक, कृतज्ञ, उदार शूर, पराक्रमी, धर्म और सत्य का पालन करने वाले थे।९९। वल्कत मृगचर्म, यज्ञोपवीत जटा, समिधा, डोरी आदि देते थे।१००।

वर्ण व्यवस्था के आरम्भ से ही वेदों का पठन-पाठन (स्वाध्याय) और तपस्या ब्राह्मणों के मुख्य कर्म रहे है। वेदवेत्ता ब्राह्मणों (ब्राह्मणावेदपारगाः), का रामायण में स्थल-स्थल पर उल्लेख हुआ है। किन्तु ब्राह्मण के लिये शूद्र को वैदिक ज्ञान देना निषिद्ध बताया है। इसी प्रकार लंका में विलाप करती हुयी सीता के कथन से आभास होता है कि मैं अनार्य रावण को अपना अनुराग वैसे ही अर्पित नहीं कर सकती, जैसे ब्राह्मण शूद्र को मंत्र-ज्ञान नहीं दे सकता भाव न चास्या हमनुप्रदःतुमल द्विजो मंत्रमिवा द्विजाय।

अध्ययन अध्यापन का कार्य ब्राह्मणों के लिये जीविका का परिचय साधन नहीं रहा होगाा क्योंकि रामायण से पता चलता है कि उन्हें यज्ञों में पौरोहित्य कर्म करने का एकमात्र अधिकार मिला हुआ था। कुछ ब्राह्मण कौटुबिक पुरोहित हो गये थे कुछ श्रौत, स्मार्त कर्मो में ऋत्विजो का काम करने लगे थे। बालकाण्ड से ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों के लिये उन पात्रों का पुरोहित बनना वर्जित एवं अशोभनीय था। कहते है कि ब्राह्मणों ने अपने पौरोहित्य विषयक अपने अधिकार को सुरक्षित रखने के लिये अपना एक संगठन बना लिया था। यदि कोई दूसरा उनके अधिकारों को हड़पने की चेष्टा करता तो उसका तीव्रतर विरोध किया जाता था। उदाहरणार्थ, जब वसिष्ट के पुत्रों ने राजा त्रिशुंक के यज्ञ में पुरोहित बनना अस्वीकार कर दिया, तभी त्रिशुंक ने किसी और को अपना पुरोहित बनाने की इच्छा प्रकट की । इसे वसिष्ठ के पुत्रों ने अपने एकाधिकार पर प्रहार समझकर कुद्ध होकर राजा को चांडाल हो जाने का शाप दे दिया। जब विश्वामित्र ने (जो तब तक ब्राह्मणत्व नहीं पा सके थे) त्रिशुंक का यज्ञ कराना स्वीकार कर लिया, तब देवताओं ने उसे यज्ञ बलि देने से इन्कार कर दिया, क्योंकि जिस यज्ञ में याज्ञक क्षत्रिय हो और यजमान चांडाल हो, उस यज्ञ की बलि हम कैसे ग्रहण कर सकते हैं?

क्षत्रियो याजको यस्य चाण्डालस्य विशेषतः।
कथं सदसि भोक्तारो हविस्तस्य सुरर्षय।।

जिस यज्ञ का संचालन ब्राह्मण पुरोहित नहीं करते थे, वह यज्ञ समाज की दृष्टि

में अमान्य और बहिष्कार योग्य हो जाता था। दशरथ के मंत्रिपदिषद में वसिष्ठ और वामदेव ऋत्विज तथा अन्य कूटनीतिक परामार्शदाता थे।

ब्राह्मणों को अन्य वर्णो से दान या प्रतिग्रह लेने का अधिकार था। समाज ने उनके लिये आजीविका का एक और द्वार खोल दिया था। भूख से पीड़ित होने पर पारिवारिक पोषण से याचना कर सकती थी, जैसाकि बहुत पुत्रों वाले निर्धन त्रिजट ने किया था। स्वाध्याय में संलग्न रहने के कारण यदि कोई ब्राह्मण जीविकोपार्जन से विमुख रहता है तो उसे राजा से सहायता पाने का अधिकार था। अयोध्या के आचार्य सुधन्वा अर्थशास्त्र, विशरद और युद्धविद्या में निपुण थे, जिनकी तुलना महाभारत के द्रोणाचार्य से की जाती है। राम को धनुर्वेद की शिक्षा इन्हीं सुन्धवा से मिली थी। वनवास में भी राम ने इनको श्रद्धा से स्मरण किया था।१०१। इसी प्रकार परशुराम और अगस्त्य ने ब्राह्मण होते हुये भी शस्त्र धारण किया था। त्रिजत ब्राह्मण ने वैश्यों की तरह हल कुदाली चलाकर जीविका चलायी।१०२। उसका यह कार्य हीन दृष्टि से नहीं देखा जाता था, यद्यपि महाभारत कालीन समाज तक आकर ब्राह्मण का कृषि करना निर्दित बन गया था।१०३। रामायण कालीन ब्राह्मणों को उनके कर्मानुसार पाँच भागों में बाँटा गया है।

१. **नगरवासी ब्राह्मण**– जो प्रतिदिन स्नान, संध्या, जप होम, अतिथि देव-पूजा और बलि वैश्य देव करते थे बड़े सत्यावादी और सदाचारी थे। अयोध्या वर्णन में ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मण बसते थे, जो वेदों के छः अंगों में पारंगत थे, यज्ञ-यागदिक करते थे, जो सहसों आर्शीवाद दिया करते थे जो प्राचीन महाषियों की प्रतिमूर्ति लगते थे।१०४।

२. **वनवासी ब्राह्मण**– जो वन में रहकर तपस्या करते, फल-फूलों को खाकर निर्वाह करते थे। प्रतिदिन श्राद्ध करते थे।

३. **ब्रहावादी ब्राह्मण**– जो वेदांत का अध्ययन करते तथा अनासक्त रहकर सांख्य और योग का चिंतन करते थे। दशरथ ने अपने अश्वमेघ यज्ञ में ब्रह्मवादी वेदवेत्ता, ऋत्विजों को आमंत्रित किया था। १०५।

४. **शस्त्रोपजीवी ब्राह्मण**– जो क्षत्रियों की भाँति शस्त्र धारण और युद्ध करते थे।

५. **श्रमजीवी ब्राह्मण**– जो कृषि, गोपालन, द्वारा अपना निर्वाह करते थे।

ब्राह्मणों का बड़ा आदर सम्मान किया जाता था जो उन्हें कष्ट पहुँचाता, उनकी

सम्पत्ति छीनता, उसे कठोर दंड दिया जाता था चाहे वह राजकुमार ही क्यों न हो। ननिहाल से लौटते समय भरत कैकेयी से पूछ बैठे कि कहीं राम ने किसी ब्राह्मण का धन तो नहीं हर लिया था, जिसके कारण उन्हें वन में निर्वासित कर दिया गया हो?–

कच्चिन्नं ब्राह्मणधनं हृत्तं रामेण कस्याचित्।

कस्मात्स दण्डकारण्ये भ्राता रामो विवासितः।।

ब्राह्मणों को दैनिक जीवन में प्राथमिकता दी जाती थी। राजकीय जुलूसों में उन्हें आगे रखा जाता था। लंका-विजय से लौटने पर जिस जुलूस से राम नदिग्राम से अयोध्या गये, उसमें महात्मा वसिष्ठ, द्विज लोग भागे-भागे चल रहे थे।१०६। ब्राह्मणों के प्रति प्रमाण भक्ति प्रदर्शित करना राजाओं का धर्म था।

राज्यव्यवस्था में भी ब्राह्मण पुरोहित को ऊँचा पद प्राप्त था जो परंपरागत होता था। इक्ष्वाकु वंश के परम्परागत पुरोहित वसिष्ठ वंशी ब्राह्मण थे। राजकुल में पुरोहित सम्मान और शिष्टाचार का विशेष पात्र (मानार्ह) होता था। राम ने भरत से चित्रकूट पर यही प्रश्न पूँछकर कि तुम वसिष्ठ के प्रति अपनी आदर-भावना व्यक्त करते हो न हो। पुरोहित के आने पर राजा लोग सिंहासन से उठकर खड़े हो जाते थे। दशरथ की सभा में भी राजा वसिष्ठ के आने पर समस्त सभासद् उनके सम्मान में खड़े हो गये थे।१०७।

राजकीय क्रियाकलापों पर भी पुरोहित का बड़ा प्रभाव था। पुरोहित की सत्यवादी आज्ञा का उल्लंघन करना संभव नहीं था।१०८। राज्यसभा में राजा के बाद पुरोहित का ही स्थान होता था। वह राजा का दाहिना हाथ होता था। दशरथ अपने पुरोहित से परामर्श किये बिना कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं करते थे। पुत्रेष्ठि यज्ञ का संचालन वशिष्ठ के हाथ में था। राम-सीता के विवाह की स्वीकृति भी वसिष्ठ से ली थी। राम के यौवराज्याभिषेक का सारा प्रबन्ध वसिष्ठ के हाथों में था। आपत्ति काल में पुरोहित के अधिकार और भी बढ़ जाते थे। राम के वन जाने के बाद राजा दशरथ का जब देहांत हो गया तो कोसल में कोई राजा नहीं रह गया, तब राजकर्तार, (सभा के वसिष्ठ सदस्यों) ने वसिष्ठ से ही पथ प्रर्दशन की आशा की, क्योंकि वह राज पुरोहित (धर्माध्यक्ष) और मंत्री थे।१०६। इस कारण पुरोहित को अधिकार था कि वह राजा की अनुपस्थित में सभा का अधिवेशन करे, अध्यक्ष का पद ग्रहण करें। और राजा के उत्तराधिकारी को आमंत्रित कर उसे राजगद्दी सौंप दे। वसिष्ठ ने भरत

को केकय देश से तुरन्त बुलवाया। और भरत को राज्य स्वीकार करने को कहा तो भरत नहीं माने, तब वसिष्ठ ने राम को लिवा लाने के लिये चित्रकूट गये, वहाँ उन्होंने महत्व के विचार-विमर्श में प्रमुख भाग लिया।

महाभारत की अपेक्षा रामायण में घबराते थे। दशरथ ने अनिच्छा रखते हुये भी विश्वामित्र से डरकर सुकुमार, अल्पवयस्क राम को उनके सुपुर्द कर दिया था। पंचवटी में सीता द्विजवेश धारी रावण का स्वागत करने के लिये विवश हो गई, क्योंकि उसे भय था कि यदि हम ब्राह्मण का सत्कार नहीं करेंगे तो शाप दे देगें।११०। सुंमत्र ने कैकेयी को चेतावनी दी थी कि यदि तुम भरत को राज्य दिलाने का दुराग्रह करोगी तो कोई ब्राह्मण तुम्हारे राज्य में नहीं रहेगा।१११।

उत्तरकाण्ड के समय ब्राह्मणों के प्रभाव में और भी अधिक वृद्धि हो गई। निम्न वर्णो से उनके हितों की रक्षा के लिये विशेष विधि-विधान बनाये गये। जो व्यक्ति दान देकर वापस लेता, तो उसका तो बंधु-बांधवों सहित सर्वनाश हो जाता था, दोषी ब्राह्मण को भी प्राणदंड नहीं दिया जा सकता था।११२। राजा दशरथ भी द्विजो को मानते थे वह कहते थे कि मेरे पास में बैठे हुये समस्त द्विजों की अनुमति लेकर प्रजाजनों के हितकार्य में मैं अपने पुत्र राम को नियुक्त करके अब मैं राजकार्य से विश्राम लेना चाहता हूँ।११३।

ब्राह्मण लोगों के लिये उन दिनों विशेष प्रकार के रथ होते थे। जिन्हें 'ब्राह्म रथ' कहते थे। राम के यौवराज्याभिषेक के दीक्षा देने के लिये महार्षि वसिष्ठ ब्राह्मणों के योग्य एक उत्तम रथ में बैठकर महल तक गये थे-

ब्राह्मं रथवरं युक्तमास्थाय स सुघृतव्रतः।

जब राम ने रथ देखा तो समझ गये कि ये रथ ब्राह्मण का है। क्योंकि उसके बाहरी चिन्ह अलग तरह के होते है।

ब्राह्मणों को पवित्र माना जाता था। उनका व्यक्तित्व गौओं की तरह होता था। ब्राह्मणों की सुरक्षा के लिये बड़े-बड़े युद्ध मोल लिये जाते थे। ब्रह्म हत्या करना भयंकर पाप था। जिसकी मुक्ति पाने के लिये अश्वमेघ यज्ञ करना आवश्यक था। परशुराम को ब्राह्मण जानकर राम ने उन पर वाण नहीं चलाया था। जब दशरथ ने हाथी के धोखे में अंधमुनि के पुत्र को मार डाला, तब उन्हें सोचकर मार्मिक वेदना हुई कि मैने किसी

ब्राह्मण सुकुमार को मारकर ब्रह्म हत्या का पाप तो नहीं करडाला।११४।

पाश्चात्य विद्वानों ने रामायण की एक ब्राह्मण प्रधान कृति के रूप में आलोचना की है। और राम राज्य के सामाजिक जीवन में ब्राह्मणें का बड़ा भारी हाथ था ऐसा विचारकों का कहना है। लेकिन हम ऐसा नहीं मानते क्योंकि वे अपना प्रभाव छल-कपट या पराविक शक्ति द्वारा नहीं करते थे। बल्कि आत्म त्याग, वेदों में स्वध्याय, धर्मपरायण आचरण, अध्ययन-अध्यापन के सहारे प्रभावशील बनाते थे। सच देखा जाये तो ब्राह्मण-संस्कृति एक अनुशासनपूर्ण संस्कृति है। ब्राह्मणों को जो अधिकार अन्य वर्णो ने स्वंय ही दे रखे थे उसके लिये ब्राह्मणों को भिक्षाटन और दरिद्रता का व्रत अपनाना पड़ता था। जिसके लिये उन्हें सादा जीवन उच्च विचार, मिले हुये अर्थो पार्जन से निवृत्ति तथा देश की संस्कृति संरक्षण का प्रसार करना उनका आदर्श था। अयोध्या के ब्राह्मण पवित्र, स्वकर्म निरत, जितेन्द्रिय, दान और अध्ययन में संलग्न तथा प्रतिग्रह लेने में सचेष्ट रहते थे।

क्षत्रियों का कर्तव्य था कि देश को ब्राह्म और आतंरिक संघर्षो से बचाना था, राम के अनुसार दान देना, यज्ञों में दीक्षा ग्रहण करना और युद्ध में देह का त्याग करना क्षत्रियों का कर्तव्य धर्म है (दान दीक्षा च यज्ञेषु तनुत्यागो मृघेषु हि)।

क्षत्रियों को ब्राह्मणों और गौओं की रक्षा करनी पड़ती थी, शरण में आये हुये किसी भी प्राणी को अभयदान देना उनका धर्म था। जैसे माता अपने गर्भ की रक्षा करती है, वैसे राजा को तपस्वियों की रक्षा करनी चाहिये।११५। राम ने कहा था कि क्षत्रिय लोग धनुष इसीलिये धारण करते है। कि पृथ्वी पर आर्त-शब्द (दुःखी प्राणियों का हाहाकार) न हो- क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति।

इन सेवाओं के बदले राजा को यह कानूनी अधिकार मिला हुआ था कि वह अपनी प्रजा का छठा हिस्सा कर के रूप में ले। यह कर 'बलि षड़भाग' कहलाता था। प्रजा में धर्माचरण करने वाले राजा को तपस्वियों द्वारा अर्जित पुण्य ये भी एक चौथाई हिस्सा मिलता था।११६।

दंड और न्याय का यथोपित विधान राजा का कर्तव्य था। दंड का प्रयोग प्रजा के रक्षार्थ होना चाहिये, उसके उत्पीड़न के लिये नहीं। अपराधी पर प्रयोग किया जाने वाला दंड राजा को स्वर्ण का अधिकारी बना देता था। बालकाण्ड में कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रियों को कष्ट ना पहुँचाकर न्यायोचित धन से राजा का खजाना भरते थे। अपराधी को देखकर

व्यवहार करना चाहिये।११७। राजा का अधिकार केवल क्षत्रियों को ही था। ब्राह्मणों ने भी शासन करने में अपने को असमर्थ बताया था। दशरथ ने अश्वमेघ यज्ञ में ब्राह्मणों को समस्त पृथ्वी दान में दे दी, तब उन ब्राह्मणों ने कहा– 'राजन' आप ही पृथ्वी का शासन करने के योग्य हैं। हमें भूमि लेकर क्या करना है। उसका पालन करने में हम असमर्थ हैं। हम लोग तो सदा स्वाध्याय में लगे रहते है। आप इस भूमि के बदले सुवर्ण, हीरे–मोती, गौओं का उपहार दीजिये, भूमि से हमें कोई प्रयोजन नहीं। वन को जाते समय राम ने भी सीता से कहा था कि मेरी अनुपस्थित में तुम ब्राह्मणों की पूजा करती रहना।११८। लंका में भी सीता ने अग्नि परीक्षा से पहले ब्राह्मणों को नमस्कार किया था।११९। ब्राह्मणों को प्रसन्न रखना क्षत्रिय भी जानते थे। इसका ज्वलंत उदाहरण महाराज अलर्क हैं, जिन्होनं एक ब्राह्मण की याचना पर अपनी आँखें निकालकर दे दी थी।१२०।

क्षत्रिय राजा को ये महान विशेषता होता था कि जो लोग अपनी इच्छा से क्षत्रिय धर्म में स्थित हो समराग्डाण मे माने जाते हैं, इस तरह नष्ट होने वाले लोगों के विषय में शोक नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार आज रावण को जो गति प्राप्त हुई है। द्विज होने के नाते वैश्यों को भी ब्राह्मण क्षत्रिय की ही भाँति अधिकार प्राप्त थे। उन्हें यज्ञ में उपस्थित, वेदपाठ का अधिकार था। वैश्य ऋषि अंधमुनि ने दशरथ के हाथों माने गये अपने पुत्र के लिये विलाप करते हुये कहा था कि अब ब्राह्म बेला में मुझे कौन वेदों या अन्य शास्त्रों का मधुर घोष सुनायेगा।१२१। क्षत्रियों की तरह वैश्यों को भी पुरोहित के अधिकार से वंचित रखा जाता था।

वैश्यों ब्राह्मण क्षत्रियों की अपेक्षा ज्यादा था। उनके लिये बस्तियाँ भी। अयोध्या में व्यापरियों की सुव्यवस्थित दुकाने थीं, सुविभक्तान्तरापणाम्। अपनी संख्या और धन के कारण वैश्य अयोध्या में सबसे प्रभावशाली नागरिक थे। स्वायत संस्थाओं में उनका महत्व था। ये लोग अपने धंधे के कारण अपने–अपने गण और नैगमों जैसी संगठनों में विभाजित थी।

वर्ण व्यवस्था में शूद्रों को सबसे निम्न स्थान प्राप्त था। उनका कार्य तीनों वर्णो की सेवा करना था। ये लोग घरेलू नौकरी या दासवृत्ति किया करते थे। शूद्रों का यज्ञों में उपस्थित होना मना नहीं था क्योंकि दशरथ ने अश्वमेघ यज्ञ में हजारों शूद्रों को आमंत्रित किया था। पर उन्हें अन्य वर्णो के कुछ अधिकारों से वंचित रखा था। उन्हें वेदों के अध्ययन

का अधिकार नहीं था। यज्ञ का भी अधिकार नहीं था। उस यज्ञ में शूद्रों को भी भोजन प्राप्त थे। तापस श्रमण भोजन उत्तरकाण्ड में जहाँ शूद्रों को तपस्या को अधिकार नहीं दिया गया है, वहाँ मौलिक कांडों में शूद्र निर्विध्न तपस्या करते है, यही नहीं, उनकी तपस्या सम्मान वरदान के समान समझी जाती थी। शबर उस शबर जाति की स्त्री थी, जो आर्यो की वर्ण व्यवस्था में नही है। फिर भी राम ने उसके आश्रम पर जाकर उसके प्रति कृपा दिखलाई। आयोध्या काण्ड में अंधमुनि और उनकी पत्नी, जो क्रमशः वैश्य और शूद्र थे, तपस्वी कहे गये और मरने के बाद स्वर्ग के अधिकारी माने गये है। किंतु उत्तरकाण्ड में संकुचित जातीय वातावरण में शूद्र के लिये तपस्या करना वर्जित बन गया। सशरीर स्वर्ग प्राप्ति के लिये तपस्या करने वाले शूद्र मुनि शंवूक को राम ने वध के योग्य समझा। इससे स्पष्ट है कि शूद्रों की सामाजिक स्थित उत्तरोत्तर बुरी होती गयी। शूद्रो के बारे में कहा गया है कि ये लोग गलत कार्य को करते थे जैसे गोहत्या, बाह्मण हत्या, चोरी करना यही अपना धंधा था मैं सदा दूसरे प्राणियों की हिंसा में लगा रहता था। और वेश्याओं में असक्त रहता था, पूर्वजन्म में मैं मालति नाम शूद्र था।१२२।

पता चलता है कि चांडाल समाज के सर्वाधिक उपेक्षित और हीन व्यक्ति माने जातें थे (योनीनाम अधमा वयम)। वे नीले रंग कि वस्त्र पहनते, शरीर काला, रूखा, केश छोटे-छोटे थे। वे लोहे के गहने पहनाते थे। शरीर पर भस्म लगी रहती थी। ये लोग नगर के बाहर शमशान को रहा करते थे।

अस्पृश्य लोगों को भी समान अधिकारों से वंचित रखा जाता था। वे लोग मंदिर राजप्रसाद, ब्राह्मणों के घरों, पूजा स्थान में नहीं जा सकते थे, किन्तु राजा का आदेश पाकर सभा या संसद में प्रवेश कर सकते थे।

त्रिशुंक के आख्यान से पता चलता है कि मनुष्य जन्म से चांडाल नहीं होते बल्कि वर्णाश्रम व्यवस्था से च्युत होने पर ही चांडाल बन जाया करता था। जय करने पर व्यक्ति को चांडाल बना दिया जाता था। जैसे राजा त्रिशुंक ने कहा है कि मैं वसिष्ठ पुत्रों के अलावा किसी भी पुरोहित से अपना यज्ञ संपादित करा लूंगा, तब वसिष्ठ पुत्रों ने क्रोधित होकर राजा को चांडाल होने का श्राप दे दिया। राजा का यह परिवर्तन देखकर उसके मंत्री, नागरिक उसे छोड़कर भाग गये। यह भी स्पष्ट है कि चांडाल अस्पृश्य माना जाता था उसके स्पर्श से उच्च

जाति के लोग दूर रहते थे।

त्रिशुंक के उदाहरण से प्रकट होता है कि जब उच्च वर्ण के व्यक्ति का जाति-च्युत हो सकता था तो क्या निम्न वर्ण का व्यक्ति क्या ऊँचे वर्ण का सदस्य बन सकता था? ऐसा संभव नहीं था, इसका प्रसिद्ध उदाहरण विश्वामित्र का है, जिन्होने क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था।

किन्तु उत्तराकाण्ड में जातीय कठोरता बन गयी है। मौलिक रामायण में विभिन्न वर्णों में कर्तव्यो का बँटवारा हो चुका था। लोग अपने-अपने कर्मो से संतुष्ट थे- स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते कुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः। अयोध्या के वर्णन में कहा गया है कि क्षत्रिय ब्राह्मणों को अपना नेता मानते, वैश्य क्षत्रियों की आज्ञा पालन करते, शूद्र अपने कर्तव्य का आचरण करते, ये तीनों वर्णो की सेवा में संलग्न रहते थे।१२३। चारों वर्णो के हित के लिये विश्वामित्र ने राम का ताड़का का वध करने का आदेश दिया था।१२४।

रामायण के बारे में कहा गया है कि यदि ब्राह्मण पढ़े तो विद्वान हो, क्षत्रिय पड़े तो पृथ्वी का राज्य प्राप्त करे, वैश्य को व्यापार में लाभ हो और शूद्र भी प्रतिष्ठा प्राप्त करे।१२५।

प्राचीन भारत की वर्ण-व्यवस्था को राज्यकीय स्वीकृति प्राप्त थी, अतः उसका पालन करना लोगों के लिये अनिवार्य था। लक्ष्मण ने सुग्रीव के सम्मुख अपने पिता का परिचय देते हुये कहा था कि वह चारो वर्णो का धर्मपूर्वक पालन करते थे।१२६। राम भी सभी वर्णो की आबल-वृद्धो के प्रति दया रखते थे।१२७। इसीलिये राम के युवराज के लिये रगर की सभी तरह की स्त्रियाँ देवताओं से प्रार्थना किया करती है।१२८। हनुमान भी कहते है कि राम लोक में चातुर्वर्व्य के रक्षक है, सामाजिक मर्यादाओं का पालन करने वाले और कराने वाले थे।१२९। राम अपने स्वभाव और कर्तव्य के कारण सभी लोगों के साथ अच्छा व्यवहार करते थे। जिससे देश में सुख संतोष छाया हुआ था।

सर्वमुदितमेवासीत् सर्वो धर्मपरोडभवत्।
राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन परस्परम्।।

आश्रम

प्राचीन आर्य-ऋषियों के अनुसार मानव-जीवन निरन्तर आत्म-शिक्षण एवं आत्म

अनुशासन का समय था। इस शिक्षण काल को उन्होने आश्रम के नाम से कई भागों में बाँट दिया था। इन्ही पर मनुष्य का सांसारिक जीवन टिका हुआ है। प्राचीन ग्रन्थों में कुछ विद्वानों ने तीन आश्रमों को खोजा है।१३०। किन्तु रामायण के समय में आश्रमों की संख्या निश्चित रूप से चार हो चुकी थी, जैसे- (१) विद्यार्थी के लिये ब्रह्मचर्याश्रम (२) विवाहितों के लिये गृहस्थाश्रम, (३) अर्थोपार्जन से विरत वनवासी तपस्वी के लिये वानप्रस्थाश्रम, (४) संसार-त्यागी वैरागी के लिये सन्यासश्रम आश्रम जीवन क्रम का विभाजन है। इसे अपनाने से व्यक्ति सुखी और समाज समुन्नत रहता है। प्रगति क्रम रूकने नहीं पाता। सन्तुलन बना रहता है। भौतिक और आत्मिक प्रगति के दोनों ही द्वार खुले रहते हैं। जीवन अवधि को चार भागों में विभाजित किया है। यही चार आश्रम हैं। प्रथम चरण में ऋषियों द्वारा निर्धारित विद्या एवं बल सम्पादन हेतु नियोजित ब्रह्मचर्य की अवधि के पश्चात् व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। यह मात्र दो कायाओं का गठबन्धन ही नहीं, सुसंस्कारिता उपार्जन की प्रयोगशाला भी है, जिसमे सभी परिवारिक जनों के साथ रहते हुये सहकारिता, अध्यपसाय एवं आत्मावलम्बन का प्रशिक्षण लिया जाता है। वस्तुतः परिवार समस्त मानव समुदाय के रूप में फैले सृष्टा के वृहत परिवार की एक छोटी इकाई है। हर मनुष्य या अपने परिवार तक ही सीमित न रहकर चिन्तन को वृहत विस्तार दे एवं विराटविश्व को अपना कार्य क्षेत्र मानें, परिवारिक भावना का विस्तार कर इस उद्यान को समुन्नत बनाए, ऐसी ऋषिगणों की इच्छा रही है।

गृहस्थ-धर्म अन्य सभी धर्मो में अधिक महत्वपूर्ण माना गया है महर्षि व्यास के शब्दों में 'गृहस्थ्मेव हि धर्माणां सर्वेणां मूलमुच्यते' गृहस्थाश्रम ही सर्व धर्मो का आधार है। 'धन्यों गृहस्थाश्रम' जिस तरह समस्त प्राणी माता का आश्रय पाकर जीवित रहते हैं, उसी तरह सभी आश्रम गृहस्थाश्रम पर आधारित है।

श्री राम को गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता बताते हुये चित्रकूट में भरत जी कहते है।

धर्मेण चतुरो वर्णान्पालयन् क्लेशमाप्नुति।
चतुर्णामाश्रणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमाश्रमम्।।

धर्मानुसार ब्राह्मणादि चारों वर्णो के पालन करने का कष्ट आप स्वीकार कीजिये, क्योंकि हे धर्मज्ञ! चारों आश्रमों में गृहस्थ आश्रम ही धर्मज्ञशील लोग सर्वोत्तम बतलाते है।

उपनयन संस्कार के बाद ब्रह्मचर्याश्रम आरम्भ होता था। इसमें विधार्थी रहकर

कठोर एवं अनुशासनमय जीवन व्यक्ति करता था। गुरू की सेवा और शास्त्रों का अध्ययन उसके दो प्रमुख कर्तव्य थे। अगस्त्य, भरद्वाज, वाल्मीकि आदि ऋषि-मुनियों के आश्रमों में अंसख्य विधार्थी आकर अपने कुलपति की अधीनता में शिष्य वृत्ति से रहते थे। शिक्षा-क्रम की समाप्ति पर छात्र का समावर्तन संस्कार होता था, जो इस आश्रम की समाप्ति का सूचक था, और वह स्नातक कहलाता था। रामायण में तीन प्रकार के स्नातकों का उल्लेख है 'विद्या स्नातक' 'व्रत स्नातक' और विद्या व्रत स्नातक। ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति पर युवक स्नातक विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था।

गृहस्थ आश्रम को ज्येष्ठ और श्रेष्ठ दोनों कहा गया है। व्यास का कहना है कि गृहस्थ धर्म का अनुसरण करने वाले को अपने गृह में ही कुरूक्षेत्र नैमिषारण्य, हरिद्वार और केदार तीर्थ की प्राप्ति हो जाती है, जिनके सभी पाप घुल जाते है।१३१। गृहस्थ आश्रम में ही देवताओं, पितरों और अतिथियों की प्राप्ति इसी आश्रम में होती है (धर्म, अर्थ, काम) की प्राप्ति भी इसी आश्रम में होती है।१३२। गृहस्थ आश्रम में रहते हुये व्यक्ति को तीन ऋणों से उऋण होना भी बतलाया गया है, देव ऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण। मनु ने यह व्यवस्था हो कि इन तीनों ऋणों को पूरा करके मन को मोक्ष में लगाये। बिना इन ऋणों को पूरा किये मोक्ष (सन्यास)-सेवी व्यक्ति नरक में जाता है।१३३। मनुष्यों पर देवी देवताओं की अनुकम्पा रही है, उस अनुकम्पा को देवऋण माना गया। उससे उऋण होना गृहस्थ का प्रधानलक्ष्य था। वेदों का अध्ययन देवऋण से मोक्ष था, पुत्रों को उत्पन्न करना पितृऋण से मोक्ष था, पुत्रों को उत्पन्न करना पितृऋण से मोक्ष तथा यज्ञों का अनुष्ठान करना ऋषिऋण से मोक्ष था।

इसके अतिरिक्ति मनु ने पाँच पापों (चुल्ली, पेषणी, उपस्कर, कण्डनी और जलकुम्भ) से मुक्ति के लिये पाँच यज्ञों का विधान किया है।१३४। वेद का अध्ययन-अध्यापन करना ब्रह्मयज्ञ था, तर्पण करना पितृयज्ञ, हवन करना देययज्ञ बलिवैश्व देव करना भूतयज्ञ तथा अतिथियों का भोजन सत्कार करना नृयज्ञ।१३५। गृहस्थों का पंचमहायज्ञ इसलिये करने को कहा गया है कि वे अपने परिवार, समाज, संस्कृति एवं धर्म का श्रद्धा से पालन कर सके। प्रत्येक गृहस्थ को त्रिऋण के साथ-साथ पंचमहायज्ञ सम्पन्न करने का भी विधान किया गया है। ऐसे गृहस्थ चार प्रकार के बताये गये है- कुसूलधान्य, कुभधान्य, अश्वस्तन और

कपोतीमाश्रित।

आश्रम व्यवस्था में स्त्री का स्थान– जिस प्रकार आश्रम व्यवस्था पुरूषों के लिये आवश्यक थी उसी प्रकार यह व्यवस्था स्त्री के लिये आवश्यक नहीं थी। पूर्ववैदिक युग के बाद उसका ब्रह्मचर्य जीवन भी आवद्ध हो गया था। गृहस्थ जीवन के अतिरिक्त वानप्रस्थ और सन्यास का जीवन भी बधंनग्रस्त था। यद्यपि स्त्रियों अनेकानेक अधिकारों से प्रतिबन्धित थी।

ब्रह्मचर्य आश्रम– पुरूषों जैसा ब्रह्मचर्य का जीवन स्त्री का नहीं था। वह पूर्णरूप से घर में ही रहकर गृहस्थ बनने की आशा करती थी। किन्तु वैदिक युग में उसे ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिये निर्दिष्ट किया गया था।१३६। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाली स्त्रियों की संख्या वैदिक युग में भी किन्तु कालान्तर में यह व्यवस्था समाप्त हो गयी थी। कुशध्वज ऋषि की कन्या वेदवती ऐंसी थी जिसने आजीवन विवाह नहीं किया था।१३७। शिक्षा ग्रहण करने के बाद जो स्त्री का विवाह कर दिया जाता था, उसे 'सधोवधू' कहा जाता था। जो कन्या आजीवन शिक्षा ग्रहण में लगी रहती थी, वह 'ब्रह्मवादिनी' कही जाती थी।१३८। वैदिक युग के बाद स्त्रियों का ब्रह्मचर्य जीवन समाप्त हो गया। ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ अत्यन्त विदुषी और पंडिता होती थी। गार्गी, मैत्रेयी, घोषा, अपाला आदि स्त्रियों अपनी विद्वत्ता के क्षेत्र में द्वितीय थी।१३९।

गृहस्थ आश्रम– स्त्री के सहयोग से ही गृहस्थ आश्रम प्रारम्भ होता है बिना उसके सहयोग के गृहस्थ जीवन प्रयोजनहीन है। स्त्री ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थ जीवन ही अपना सकती थी न कि वानप्रस्थ और सन्यास। किन्तु बिना विवाह के यह सम्भव नहीं था।१४०। यह उल्लेख मिलता है कि कुविगर्ग की पुत्री सुभ्रू ने मोक्ष प्राप्ति के लिये वृद्धावस्था तक अपना सम्पूर्ण जीवन तपश्चर्या में व्यतीत किया बिना विवाह के यह संभव नहीं थी।१४१। परिणामस्वरूप उसने अपनी तपस्या का आधा भाग एक ऋषि को प्रदान कर विवाह किया।१४२। और तब गृहस्थ आश्रम में प्रवेश किया। वैदिक युग में स्त्रियाँ प्रायः यज्ञ में भाग लेती थी। कौशल्या राम के राज्याभिषेक के अवसर पर प्रातःकाल से ही यज्ञ करती रही।१४३। सुग्रीव से होने वाले युद्ध के लिये प्रस्थान करने पर बालि की पत्नी तारा ने भी यज्ञ सम्पन्न किया था।१४४। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्त्री के लिये गृहस्थ का जीवन

निभाना अनिवार्य था।

वानप्रथ आश्रम– इस आश्रम यदि स्त्री की इच्छा हो तो वह अपने पति के साथ वन में रहती थी यदि न हुयी तो वह अपने पुत्रों के साथ गृहस्थ आश्रम में ही रहती थी। मान्धता ने अपनी स्त्रियों के साथ वानप्रस्थ में प्रवेश किया था। अगस्त्य ऋषि ने अपनी पत्नी के साथ प्रवेश किया था। सुकन्या, रेंणुका, सीता आदि स्त्रियों ने वनगमन किया था। किन्तु उनका वनगमन वैकल्पिक था। जो कालान्तर में आकर पूर्णतः व्यवहार से हट गया।

वैदिक युग में अनेक स्त्रियाँ अपना जीवन तपस्या और साधना में लगायी थी। अरून्धती, मांधवी मृत्युदेवी, अत्रिभार्या, सुलभा आदि स्त्रियाँ था। जिन्होने कठिन तपस्या की थी। भगवान शिव की प्राप्ति के लिये हिमालय-पुत्री पर्वती ने भी कठोर तपसाधना की थी। किन्तु इस प्रकार उदाहरण विरले ही है। साधारणता स्त्रियाँ आजीवन गृहस्थ आश्रम में ही रहा करती थी।

सन्यास आश्रम– प्रायः हिन्दू धर्मशास्त्रकारों ने स्त्री के लिये सन्यास आश्रम का कोई उल्लेख नहीं किया है। युद्ध आश्रम की व्यवस्था केवल पुरूषों के लिये ही थी न कि स्त्रियों के लिये।

बौद्धयुग में आकर ही स्त्री सन्यासी अथवा भिक्षु का जीवन प्रारम्भ हुआ। भगवान बुद्ध इसके मत के पक्ष में नहीं थे, लेकिन अपने परम शिष्य आनन्द के समर्थन पर उन्होनें बौद्ध संघ के लिये भिक्षुणियों की स्वीकृत दी।१४५। राम रावण का भयानक युद्ध भी इस काव्य का मुख्य उद्देश्य नहीं है, वह तो राम-जानकी, पति-पत्नी की परस्पर विशुद्ध प्रीति को पुषत करने का एक उपकरण भाग है।१४६। किन्तु वृत्र और अशुमान जैसे राजाओं के आख्यानों से पता चलता है कि वे पुत्रों को राज्य सौंपकर वन चले गये थे। पुत्रों को राजपाट सौंपकर वनवासी बन जाने की प्रथा में लक्ष्मण ने भी संकेत किया था।१४७।

वानप्रस्थाश्रम में पत्नी या तो पुत्रों के संरक्षण में रहती थी या पति के साथ वनगमन करती थी। रामायण में अधिकांश तपस्विगण अपनी पत्नियों के साहचर्य में वैरवानस व्रतों का पालन करते थे।

वानप्रस्थी गृहस्थ वन में संयम और त्याग का जीवन व्यतीत करता, सब प्राणियों के हित में रट रहता, भिक्षाटन और यज्ञों का अनुष्ठान करता वेदों के स्वाध्याय में संलग्न

रहता था। किसी वृक्ष के नीचे उसका आवास होता, इंद्रियों पर संयम रखता, फल-फूलों से अपना निर्वाह करता था।१४८। बुद्धि पर अज्ञान का पर्दा डालने वाले शस्त्रों से उसे कोई प्रयोजन न रहता।१४६। उसके लिये 'देश-धर्म' का तपोवन के अनुरूप कर्तव्यों का पालन ही वांछनीय था, देशधर्मस्तु पूज्यताम। वानप्रस्थ समाज में निरन्तर सदज्ञान, सद्भव एवं लोकोपकारी रचनात्मक सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने तथा कुप्रचलनों, मूदयान्यताओं आदि के निवारण का कर्म करते हैं। यह शाश्वत परम्परा है जो प्रत्येक युग में व्यक्तियों को इसका अनुसरण करना चाहिये।

जिस प्रकार समय-समय पर हर स्थान की सफाई होती है उसी प्रकार समाज रूपी परिवार के परिशोधन हेतु, दुष्ट प्रवृत्तियों के निवारण एवं सत्प्रवृत्तियों के संवर्धन हेतु लोकमंगल हेतु समर्पित व्यक्तियों की आवश्यकता निरन्तर पड़ती है।

इस आश्रम व्यवस्था के सम्बन्ध में शास्त्रकारों के स्पष्ट निर्देश हैं-

शास्त्र सम्मति एवं वनाश्रमेतेष्ठ्निन, पातयश्चैव किल्विषम्।

चतुर्थ माश्रमंगच्छेत्, सन्यासविधिना द्विजः।।

गृहस्थ के बाद वानप्रस्थ गृहण करना चाहिये। इससे समस्त मनोविकार दूर हो जाते हैं। और निर्मलता आती है। जो सन्यास के लिये आवश्यक है। ढलती आयु में पुत्र को गृहस्थी का उत्तरदायित्व सौंप दें। वानप्रस्थ गृहण करें और देव, पितर ऋषियों का ऋण चुकावें।

महर्षि पितृदेवानां गत्वाऽऽनृण्यं यथाविधि।

पुत्रे सर्व समासज्य वसेन्माध्यस्थ्यमास्थितः।।

अंतिम आश्रम 'सन्यास' पर रामायण में विशेष प्रकाश नहीं डाला गया है। उसमें 'सन्यासी' शब्द का प्रयोग न होकर 'भिक्षु' और 'परिव्राजक' नाम आते हैं। रामायण कालीन परिब्राजक या सन्यासी का परिचय पाने के लिये हमें रावण का उस समय का वर्णन देखना चाहिये, जब वह सीता के सम्मुख उपस्थित हुआ था।

वाल्मीकि ने व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व प्रदान किया, साथ ही वह, समाज-व्यवस्था को हानि पहुँचाये बिना, व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिये सभी सुविधाएं देने को तैयार थे। राम का समग्र जीवन इस सिद्धान्त से अनुप्राणित था कि जहाँ

व्यापक या सामूहिक हितों की रक्षा का प्रश्न खड़ा हो, वहाँ संकुचित व निजी हितों की बलि देना श्रेयस्कर है। उन्होंने अपने परिवार में व्यक्तिगत स्वार्थों का संघर्ष उठने पर कैकेयी को संतुष्ट करने के लिये अपने राज्याधिकार के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था, जिससे कि पारिवारिक कलह की वजह से देश में अराजकता न फैल जाये। अपने जीवन में उन्होंने अनेक कठिन परिस्थितियों का सामना किया। ये सब कार्य उनकी सत्यवादिता न्यायप्रियता, और दूसरों के हित साधन के लिये उनके स्वार्थ त्याग की है।

रामायण में अनेक ऐसे उदाहरण हैं जो दूसरों के उचित अधिकारों का सम्मान करना सामाजिक दृष्टि से नितांत आवश्यक है और इस नियम का उल्लंघन करने वाला दंड का पात्र बना है। वाल्मीकि ने सर्वप्रथम श्लोक से यह शिक्षा मिलती है कि प्रकृति के छोटे से छोटे प्राणी को भी ढंग से हर्ष मनाने का अधिकार प्राप्त है और उसमें हस्तक्षेप करने वाले हम कोई नहीं होते। अंधमुनि के पुत्र की हत्या करने से दशरथ को पुत्र-शोक का भागी बनने का शाप मिला, क्योंकि राजा ने अंधमुनि को उनके सुखपूर्वक रहने के अधिकार से वंचित कर दिया था। राम को अपनी ओर आकर्षित करने की धृष्टता कर शूपर्णखा ने सीता के वैवाहिक अधिकार को चुनौती दी और वाली ने वुग्रीव की पत्नी का उपभोग कर उनके स्वत्व को छीना। इन दोनों को उचित दंड देना शासक का कर्तव्य था। अंत में रावण ने दंडकराण्य में राम-सीता के सुखपूर्वक रहने के अधिकार को छीनकर अपने को सर्वनाश की ओर ढकेला। व्यक्तिगत अधिकारों की सुरक्षा समाज हित की दृष्टि से अनुपेक्षणीय है, इसका वाल्मीकि ने सर्वत्र उद्घोष किया है।

आश्रम व्यवस्था का प्रचलन– आश्रम व्यवस्था का उद्भव उत्तरवैदिक युग में किसी समय हो चुका था, यद्यपि कई आधुनिक विचारकों का मत है कि इसका प्रचलन बुद्ध के बाद अथवा पिटक की रचना के बाद हुआ, क्योंकि इन रचनाओं में इसका उल्लेख नहीं किया है। आश्रम व्यवस्था से संबंधित शब्दों का उल्लेख उत्तरवैदिक कालीन अनेक ग्रन्थों में हुआ है। 'ब्रह्मचारी' ।१५०। 'गृहस्थ' ।१५१। और 'मुनि' या 'यति८ ।१५२। के उदाहरण वैदिक ग्रन्थों में मिलते हैं। जाबलोपनिषद में सर्वप्रथम चारों आश्रमों का उल्लेख हुआ है।१५३। अतः व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का चार भागों में विभाजित होने का सन्दर्भ उत्तरवैदिक कालीन है। उपनिषदों में भी आश्रम शब्द का वर्णन मिलता है। इससे स्पष्ट है

कि इस समय तक आश्रम का प्रचलन हो चुका था। याज्ञवल्क्य ने जनक को चारों आश्रमों की व्याख्या करके सुनाई थी।१५४। इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि उपनिषद काल तक आश्रम निर्माण की व्यवस्था निश्चित हो रही थी, जो सूत्रों के काल में आकर पूर्ण रूप से व्यवस्थित हुई। स्मृति-युग तक आकर आश्रम व्यवस्था का पूर्ण विकास हो चुका था।

महाभारत और पुराणों में आश्रम व्यवस्था का उद्भव ब्रह्म से मानकर इसे दैवी अभिव्यक्ति दी गयी है ताकि लोगों की रुचि इसे स्वीकार करने में हो, न कि अस्वीकार करने में।

इस प्रकार आश्रम व्यवस्था का पालन समाज में लोगों के लिये अत्यन्त आवश्यक माना गया था। इसका पालन करने वाला प्रशंसनीय था और उलंघन करने वाला निन्दनीय समझा जाता था।

जाति

तत्कालीन समाज में चार वर्णो के अतिरिक्त अनेक प्रकार की प्रधान श्रेणियां व व्यवसायिक जातियाँ उत्पन्न हो चुकी थीं। जैसे चर्मकार जो चमड़े का काम करते थे।१५५। कापीर, लोहार, बढ़ई इस वर्ग में लोहे के अस्त्र-शस्त्र बनाते थे जो युद्ध में काम आते थे।

मपित, भिक्षक, वैव आदि जातियाँ थीं।१५६। वाय शब्द का प्रयोग जुलाहे के लिये किया गया है। यहीं व्यवसायिक समूह विभिन्न सामाजिक वर्गों के रूप में विकसित हुए जिन्हें कालान्तर में जाति व्यवस्था के अन्तर्गत शूद्र की श्रेणी में रखा गया। अतः ऋगवेद कालीन समाज में विभिन्न प्रकार के शिल्पी और व्यवसायी जातियाँ प्रकाश में आ चुकी थीं।१५७। जो कालान्तर में पृथक जाति के रूप में विकसित होकर आर्थिक जीवन में सम्बृद्ध करते रहे।
उत्तर वैदिक युग- इस युग में आर्यो ने अनार्यों को पराजित कर उन्हें शूद्र नामक चौथे वर्ण में रखा। यजुर्वेद में ऋगवेद के समाज चारों वर्णो की उत्पत्ति बतायी गयी है। इस युग में पहली बार भेद परक भावना का विकास हुआ इस भावना के विकास में प्रधान भूमिका साहित्य की थी जिसने शूद्रों को अछूत की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया औरउसके धार्मिक अधिकार छीनकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को दिये जाने लगे।१५८। यज्ञोपवीत में भिन्नता की जाने लगी। तीनों का भिन्न-भिन्न ऋतुओं में अग्निहोत्र का निर्देश दिया गया जैसे- ब्राह्मण के लिये बसन्त, क्षत्रियों के लिये ग्रीष्म में, वैश्य के लिये शीत में,। एक व्यवसायिक वर्ग

रथकार का भी उल्लेख तैत्तिरीय ब्राह्मण में किया गया है और उसे वर्षा ऋतु में अग्निहोत्र करने का निर्देश दिया गया है।१५९। इस युग में ब्राह्मणों का महत्व बढ़ गया था इन्हें दिव्यवर्ण का कहा गया है।१६०। और कहा गया है कि "यदि ब्राह्मण को कष्ट मिलता है तो जल में टूटी नाव की तरह इस राजा का राज्य नष्ट हो जाता है।१६१। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि पुरोहित के बिना अर्पित की गयीं राजा की आहुतियाँ देवताओं को स्वीकार नहीं थी। शतपथ ब्राह्मण में ब्राह्मण में ब्राह्मण की हत्या को जघन्य अपराध माना गया है। जबकि ब्राह्मणों को दण्ड देने की व्यवस्था भी बहुत कम थी।

अध्यापन कार्यों पर ब्राह्मण को ही अधिकर था। इसीलिये ब्राह्मणकी गुरू होने के अधिकारी थे।१६२। पढ़ना और पढ़ाना ब्राह्मण का स्वधर्म कहा गया था विद्वान ब्राह्मण सब जगह पूज्य था।१६३। इस प्रकार अध्यापन कार्य पर ब्राह्मण का एकाधिकार था। ब्राह्मणों के लिये विद्यार्थी जीवन आवश्य था।१६५।

छान्दोग्योपनिषद में ऐसा उल्लेख मिलता है कि सत्यकाम जाबाल ने आचार्य गौतम के पास जाकर गुरुकुल में प्रवेश के लिये प्रार्थना किया इस पर आचार्य ने जब जाबाल से उसके वंश के विषय में पूछा तो उसने उत्तर दिया कि उसे अपने गोत्र का पता नहीं है लेकिन उसकी माँ परिचारिका है और पिता के विषय में कुछ पता नहीं है। इस पर आचार्य प्रसन्न हो गये तथा उस सत्यकाम से लकड़ी लाने के लिये कहा। क्योंकि आचार्य सझ गये थे कि एक सच्चे ब्राह्मण के अतिरिक्त कोई इतना सत्य नहीं बोल सकता इसके बाद गौतम ने सत्यकाम को यज्ञोपवीत पहनाकर अपने आश्रम का विद्यार्थी बना लिया।१६५। यही सत्यकाम कालान्तर में एक प्रसिद्ध आचार्य बना इससे ऐसा लगता है कि उस युग में ब्राह्मणों को ही शिक्षा दी जाती थी। और गुरु उससे प्रश्न पूछता था तथा संतुष्ट होन पर ही प्रवेश देता था। उत्तर वैदिक युग में ब्राह्मणों और क्षत्रियों की प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो गयी थी और क्षत्रियों ने ब्राह्मणों की चुनौती को स्वीकार किया तथा अनेक ऐसे क्षत्रिय शासक हुये जिन्होंने अपनी विद्वता के बलबूते पर ब्राह्मणों को अपना शिष्य बनाया। इनमें जनक, अश्वपति, कैकेय, काशिराज, अजातशत्रु और प्रावाहण जाबालि ऐसे क्षत्रिय राजा थे जिन्होंने अपने ज्ञान से ब्राह्मण वर्ग को चकित ही नहीं किया बल्कि प्रभावित भी किया।१६६। क्षत्रियों में पंचाग्नि विद्या का प्रारम्भ किया था जिसमें आवागमन के सिद्धान्त का विकास किया गया। इसी

प्रतिद्वन्दिता के क्रम में जाबालि ने ब्राह्मण श्वेतकेतु के पिता उद्धालक को पंचाग्नि विद्या प्रशिक्षा दी थी। इसी प्रकार क्षत्रिय कैकेय नरेश के यहाँ कुछ विद्वानों के साथ ब्राह्मण ऋषि-उद्धालक वैस्वानर विद्या के अध्ययन के लिये गये थे। अश्वपति ने उनका विनय के साथ स्वागत करने के पश्चात् उपदेश दिया।१६७। क्षत्रिय शासक विदेह ने याज्ञवल्क्य को उपदेश दियां। राजा जनक स्वंय गोष्ठियाँ आयोजित किया करते थे जिनमें दर्शनशास्त्र पर विचार-विनिमय किया जाता था।१६८। धर्म-दर्शन के बाद-विवाद में राजा जनक ने ब्राह्मणों को परास्त किया था जिसके बदले में ब्राह्मणों ने उन्हें 'राजन्य बन्धु' की उपाधी दी थी।

उत्तर वैदिकयुग में कुछ क्षत्रिय कन्याओं से ब्राह्मणों के विवाह के भी उदाहरण मिलते हैं। लेकिंन किसी ब्राह्मण कन्या के साथ किसी क्षत्रिय के विवाह का प्रमाण नहीं मिलता। साथ ही वैश्य-शूद्र में भी विवाह सम्बन्ध का उल्लेख नहीं मिलता।१६९। उत्तर वैदिक काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय के बाद ही वैश्यों की गिनती होती थी। इसका मुख्य कार्य कृषि, पशुपालन होता था। किसी गाँव का मुखिया बनने की इनकी इच्छा हुआ करती थी जिसे ग्रामीण कहा जाता था।१७०। और याज्ञिक कर्मकाण्डों में वैश्य समुदाय का सहयोग आवश्यक माना जाता था।१७१। लेकिन वैश्य स्त्री के पुत्र का कभी राजतिलक नहीं हो सकता।१७२।

शूद्र वर्ग का स्थान समाज में चौथा था इनका मुख्य कार्य सभी वर्णो की सेवा करना था। वह तीनों वर्णो की सेवा तो कर सकता था लेकिन यज्ञ में हत्य के लिये उसके द्वारा लाया गया दूध निषिद्ध था।१७३। यहाँ तक कि यज्ञ में उपस्थित होने पर उन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। शूद्र के लिये कहा गया है कि वह विद्या का उपदेश नहीं दे सकता।१७४। इसके अलावा और भी कई विद्वान ऋषि हुये है, जिनकी उत्पत्ति शूद्र से हुई थी उदाहरण के लिये पारासर ऋषि स्थावक जाति की स्त्री से उत्पन्न हुये थे व्यास ऋषि धीवर जाति की कन्या से पैदा हुये थे वशिष्ठ ऋषि गणिका के पुत्र थे, ऋषि मदन पाल नाविक जाति के स्त्री के पुत्र थे। कुछ उदाहरण ऐसे भी मिलते है जिसमें शूद्र जाति के लोगो ने ऋषियों द्वारा ज्ञान प्राप्त किया था। जैसा कि छान्दोग्य उपनिषद से ज्ञात होता है कि जनजाति शूद्र था जिसे प्राण और वायु का ज्ञान महर्षि रैक्व ने दिया था।१७५।

इन चारों जातियों के अतिरक्ति उत्तर वैदिक काल में ही अनेक व्यवसायिक संघों

और शिल्पों का विकास प्रारम्भ हो गया था। नये उधोग-धंधों के कारण व्यवसायिक कार्यो का गठन हुआ जो आगे जलकर जाति के रूप में परवर्तित हो गयी। इस समय समाज का उत्कर्ष हो रहा था। जिसमें सभी व्यवसायिक वर्ग तन, मन, धन से अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने में लगे थे। जैसे लोहार, रथकार, बढ़ई अपने शिल्पकार्यो में नयी-नयी तकनीकि विकसित कर रहे थे। बढ़ई लगड़ी का कार्य करता था। रथकार रथों का निर्माण या लोहार लोहे की वस्तुऐं बनाता था। लेकिन इन तीनों वर्गो में रथकर की स्थिति ऊँची थी क्योंकि उसे अग्निहोत्र आदि का अधिकार प्राप्त था।१७६। कर्माव और लोहार को भी समाज में आदर की दृष्टि से देखा जाता था इसी लिये उसे मनीषी शिल्पकाल भी कहा गया है।१७७। स्वर्ण की वस्तुओं को नयी तरह से गढ़ने के कारण उसे हिरण्यकार भी कहा जाता था।१७८। वस्त्रों का निर्माण करने वाले को वायू कहा गया है।१७९। ऊनी वस्त्रों के सुनने वालों को तन्तुषाय कहा जाता था।१८०। मिट्टी के बर्तन बनाने वाले वर्ग कुम्हार का समाज में विशेष स्थान था। कालान्तर में यही वर्ग पृथक-पृथक व्यवसाय में लगे रहने के कारण पृथक-पृथक जातियों के रूप में विकसित हुये। जिनमें अधिकांश को शूद्र की श्रेणी में रखा गया था।

इस प्रकार उत्तर वैदिककाल में वर्ण व्यवस्था जन्म पर आधारित होकर पैतृक हो गयी।१८१। समाज में और भी कई जातियों का उदय हो गया था जैसे-चाण्डाल, निषाद, आयोगव आदि। लेकिन पाणिक्कर ने कहा है कि "उत्तर वैदिककाल में जाति परिवर्तन हो सकता था तथा विभिन्न जातियों में विवाह भी हो जाते थे।१८२।" लेकिन मुकर्जी का विचार है कि 'समस्त वैदिक साहित्य में ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जिसमें वैश्य को पुरोहित या क्षत्रिय का पद प्रदान किया गया हो।१८३। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सिर्फ दो उच्च जातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय) में ही घनिष्ठता थी।१८४।

धर्मशूत्र युग

इस युग में प्रत्येक जाति का एक निश्चित कर्म निदिष्ट किया है। ब्राह्मणों का पुनर्गठन इस काल में किया गया। इनकी उत्पत्ति का आधार जन्म था।१८५। इसी समय जैन और बौद्ध धर्म का उदय हुआ था। ब्राह्मण आपत्तिकाल के समय जीविकोपार्जन के लिये अन्य कार्यो को भी कर सकता था। गौतम ने कहा है कि संकटकाल में ब्राह्मण सैनिक वृत्ति अपनाकर शस्त्र ग्रहण कर सकता है।१८६। गौतम और बौद्धायन ने यह भी कहा है कि

यदि ब्राह्मण सैनिक वृत्ति से अपनी जीविका नहीं चला सकता था तो वह ब्राह्मण कृषि और व्यवसाय भी कर सकता था।१८७। शूत्र युग में क्षत्रियों का मुख्य कार्य प्रशासन, सुरक्षा, युद्ध करना था जिसमें वह ब्राह्मणों की सहायता लेता था। ब्राह्मण का अपमान करने वाले क्षत्रिय को।१८८। कार्षापण देना पड़ता था किन्तु इसी अपराध में क्षत्रिय का अपमान करने वाले ब्राह्मण को पू० कार्षापण देना पड़ता था।१८६। यदि कोई ब्राह्मण, ब्राह्मण की हत्या करता है तो उसको वही दण्ड देना चाहिये और यदि कोई दूसरा व्यक्ति किसी ब्राह्मण की हत्या करता है तो उसे मृत्यु दण्ड देना चाहिये।१६०। इस प्रकार क्षत्रिय शिक्षा प्राप्त कर सकता था और शिक्षक बन सकता था। गौतम ने यह व्यवस्था दी थी कि विपरीत परिस्थितयों में वह अपनी रक्षा के लिये वैश्य अथवा शूद्र का कार्य कर सकता था।१६१। लेकिन बौद्धायन के अनुसार क्षत्रिय किसी को ऋण नहीं दे सकता था।१६२।

इस युग में वैश्य कृषि, व्यापार और पशुपालन करते थे। वैदिक काल में वह विधाध्यन भी करता था लेकिन इस युग में उसने विद्या अध्ययन छोड़कर कृषि-व्यापार तक ही अपना कार्य रखा। बौद्धायन ने आपत्ति काल में वैश्य को धर्म के विरूद्ध आचरण करने की दृष्टि दी है।१६३। वह गाय, ब्राह्मण धर्म की रक्षा के लिये शस्त्र ग्रहण कर सकता था या क्षत्रिय कर्म अपना सकता था।१६४। तथा अपनी से नीची जातियों का भी कर्म अपना सकता था।१६५। सूत्र युग में आते-आते शूद्रों की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी थी समाज में उसको चौथा स्थान दिया गया था। उनका मुख्य कार्य तीनों वर्गो की सेवा करना था।१६६। बौद्धायन ने बताया है कि उसकी हत्या करने वाले को वही दण्ड दिया जाता था जो दण्ड किसी कौवे, उल्लू, मेंढक, कुत्ते की हत्या करने में दिया जाता था।१६७। गौतम ने कहा है कि शूद्र को धन संग्रह करने का कोई अधिकार नहीं और उसके पास जो भी धन होता था वह (उच्चवर्ग) या उसके स्वामी का माना जाता था।१६८। गौतम ने कहा है कि कोई शूद्र वैदिक मंत्रो को सुन ले तो कान में लाख या टीन गर्म करके भर देना चाहिये।१६६। और वेदमंत्र पड़ने पर जीभ काट देना चाहिये।२००। इस प्रकार उन्हें सभी संस्कारों से वंचित कर दिया गया था। उपनयन न होने के कारण उसे विद्यापाठ यज्ञ आदि क्रियाओं से अलग कर दिया गया था।२०१।

इन चार जातियों के अतिरिक्त समाज में और भी अनेक जातियाँ थी जिनका

उल्लेख धर्म सूत्रों में किया गया है और उनकी उत्पत्ति अनुलोम, प्रतिलोम विवाह से वतायी गयी है।२०२। इन जातियों में अम्बष्ठ, आयोगव, उग्र, निषाद, मागध, रथकार, वेदेहक, सूत, पेड़, आभी, वात्ता, चाण्डाल, आदि थे। अम्बष्ठ की उत्पत्ति बौधायन ने ब्राह्मण पुरूष और वैश्य स्त्री से बतायी है।२०३। अयोगव की उत्पत्ति वैश्य स्त्री और शूद्र पुरूष से प्रतिलोम विवाह से मानी गयी है।२०४। निषाद की उत्पत्ति बौद्धायन ने ब्राह्मण पुरूष और शूद्र स्त्री के अनुलाम विवाह से बताया है।२०६। मागध की उत्पत्ति गौतम ने प्रतिलोम विवाह से बताते हुये उसे हीन जाति का माना है।२०६। इसी प्रकार वेण जाति की उत्पत्ति वर्णसंकरता के माध्यम से बतायी गयी है।२०७। इस प्रकार सूत्रयुग में चार प्रधम जातियों के अतिरिक्त और भी अनेक जातियों का उल्लेख धर्मशास्त्रकारों ने किया है।

महाकाव्य काल– उत्तर वैदिक कालीन समाजिक व्यवस्था को महाकाव्यकाल के रूप में स्वीकार किया गया है। इस समय भी ब्राह्मणों की स्थित सर्वोच्च बनी हुयी थी और समाज में उसका आदर होता था। इस युग में ब्राह्मण के लिये गायत्री मंत्र का जानना अनिवार्य था जो ब्राह्मण गायत्री मंत्र नहीं जानता था वह शूद्र के समान माना जाता था।२०८। और जिन ब्राह्मणों ने अपना धर्म छोड़कर दूसरी जातियों का कार्य अपना लिया था ऐसे ब्राह्मणों को छः श्रेणियां महाभारत में दी गयी है– ब्रहमूसम ब्राह्मण, देखकर, शूद्र सम, चाण्डाल सम, क्षत्र सम, और वैश्य सम, ब्राह्मण आदि उस समय समाज में रहते थे। द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृषाचार्य ब्राह्मण छोड़कर क्षत्रिय का कार्य करते थे। अतः उन्हें क्षत्रिय ब्राह्मण कहा गया है। कुछ ब्राह्मण पशुपालन, कृषि भी किया करते थे उन्हें वैश्य ब्राह्मण कहा गया है।२०६। ऐसे ब्राह्मणों की महाभारत में निन्दा की गयी है।२१०। महाभारत में ब्राह्मणों के और भी कई प्रकार मिलते है जैसे चोर ब्राह्मण, नट ब्राह्मण, नर्तक ब्राह्मण आदि ब्राह्मणों को शूद्र और चाण्डाल भी कहा गया है।२११। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय ब्राह्मणों के कई प्राकार हो गये थे जो अपने स्वधर्म का पालन करने में असमर्थ थे। लेकिन ज्ञान और दर्शन को लेकर ब्राह्मण क्षत्रियों में प्रतिस्पर्धा की जानकारी रामायण से प्राप्त होती है कि वशिष्ठ और विश्वामित्र में इसी को लेकर बहुत दिनों तक युद्ध हुआ जिसमें अन्त में विश्वामित्र को ब्रह्मऋषि पद दिया गया था।२१२।

क्षत्रियों का मुख्य कार्य युद्ध तो माना ही गया है महाभारत में तो क्षत्रियों को भी

शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है।२१३। लेकिन रामायण में इन्हें शिक्षा प्राप्त करने से अलग रहने को कहा गया था। महाभारत में क्षत्रिय के लिये कहा गया है वह यज्ञ कर सकता है लेकिन शिक्षा नहीं दे सकता और न ही यज्ञ कर सकता है।२१४।

वैश्य वर्ग के लोगों ने अध्यन और यज्ञ न छोड़कर व्यापार कृषिकर्म को स्वीकार कर लिया था।२१५। इसके लिये वह गाय पालते थे और व्यापार करते थे।२१६। और इसी से समाज को आर्थिक दृष्टि से सबल करते थे। क्योंकि समाज में इसी वर्ग के पास सबसे अधिक धन होता था जिससे राजा को सबसे अधिक कर यही लोग देते थे। कुछ वस्तुओं का व्यापार ये नहीं करते थे जैसे 'मघ' मांस, लोह, चमड़े का व्यापार नहीं करते थे। दासवृत्ति इनका प्रधान कार्य बतलाया गया था।२१७। इस समय शूद्र वर्ण में कई जातियाँ उत्पन्न हो चुकी थी, जैसे पोड्रक, ओड्र, द्रविड़, कम्बोज, यवन, शक, पारद, किरात, पहली, करद, रवस आदि जातियों को शूद्र वर्ण में सम्मिलित कर लिया गया था।२१८। और इनको दास बना लिया गया था। शूद्रों को तप करने पर पूर्ण प्रतिबन्ध थे इसीलिये शम्बूक नामक शूद्र के तप करने पर राम ने वर्ण धर्म की रक्षा के लिये उसका वध कर दिया था।२१६। महाभारत में विदुर ने स्वीकार किया कि शूद्र होने के कारण वह शिक्षा नहीं दे सकते।२२०।

महाकाव्यकाल में शूद्रो की स्थित दयनीय हो गयी थी लेकिन कुछ शूद्रों ने अपने अच्छे कार्यो से समाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कर लिया था। महाभारत से ज्ञात होता है कि विदुर, कायव्य और मतंग ऐसे ही जन्मना शूद्र थे जिन्होने अपने कर्म से समाज में उच्च स्थान प्राप्त किया था। अपनी इच्छा से वह दूसरे कर्म भी कर सकते थे जैसे कृषि, पशुपालन व्यापार, उधोगधन्धे आदि कर सकते थे।२२१। महाभारत में दोनो प्रकार के विचार व्यक्त किये गये है। पहला कठोरतावादी और दूसरा व्यवहारवादी। व्यवहारिक रूप से तो शूद्रों के प्रति उदारता का व्यवहार किया गया था और उसे अनेक बंधनों से मुक्त किया गया था। युधिष्ठर ने अपने राजसूय यज्ञ में शूद्र प्रतिनिधियों को निमन्त्रित किया था।२२२। इसके अतिरिक्त समाज में और भी जातियाँ थी एक जगह पर ऋषि पाराशर ने स्तेन, सूत, निषाद और स्थावक नामक चौदह प्रकार शूद्रों में भी अनेकों जातियाँ बन गयी थी।

बौद्ध युग– प्राचीन काल से जो सामाजिक व्यवस्था चली आ रही थी उसको बौद्ध युग में तीव्र झटका लगा और जाति-पाँति, ऊँच-नीच आदि की कटु आलोचना तत्कालीन ग्रन्थों

में ही गयी है क्योंकि इस युग में ब्राह्मण और क्षत्रियों के बीच प्रतिस्पर्धा तीव्र हो गयी थी। धार्मिक कर्मकाण्डों से पूरा सामाजिक ढाँचा चरमरा रहा था ऐसे ही माहौल मे दो नये धर्मो का उदय हुआ जो बौद्ध और जैन धर्म के नाम से जाने गये इन धर्मो के प्रर्वतकों ने जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था को कर्म पर आधारित करने का प्रयास किया। बौद्ध युग में सबसे बड़ा आघात ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा को लगा क्योंकि इस युग में जातियों के लिये जन्म का आधार स्वीकार करके कर्म को आधार माना गया था। बुद्ध ने कहा कि " उच्च कुल में जन्म लेने से कोई उच्च नहीं हो जाता बल्कि सत्कर्म सदाचरण और सचरित्र से ही वह उच्च हो सकता था" यह युग ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा को क्षीण करने का युग था। उस युग के समाज में विद्वान ब्राह्मण, अविद्वान ब्राह्मण, सदाचारी और दुराचारी हर तरह के ब्राह्मण पाये जाते थे। लेकिन सच्चा ब्राह्मण उसे माना गया था जो तीन वेदों का ज्ञाता हो इतिहास व्याकरण, लोकायत आदि का अध्येता हो।२२३। जो ब्राह्मण शास्त्र सम्मत कर्तव्यों से विमुख हो गये थे उन्हें दूसरी श्रेणी में रखा गया था।२२४।

वैदिकयुग तक क्षत्रियों का स्थान समाज में दूसरा था लकिन बौद्धकालीन ग्रन्थों में उसे सर्वप्रथम कहा गया है।२२५। बुद्ध ने स्वय क्षत्रिय को श्रेष्ठ माना है। क्योंकि इस समय समाज मे श्रेष्ठता के लिये प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ थी। बौद्धकाल में बुद्ध और महावीर के क्षत्रिय वंश में जन्म लेने के कारण इस वर्ग का अभिमान और बढ़ गया जिसमें उसने प्रशासनिक क्षेत्र के अतिरिक्त विद्या और शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रवेश किया।

इस युग में वैश्यों में अनेक संगठन हो गये जैसे वेस्स, महपति, सेट्ठि, कुटुम्बिक आदि यही कालान्तर में जातियों के रूप में बदल गये थे। गहपति शब्द इस युग में ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिये प्रयोग किया गया है।२२६। लेकिन बौद्ध साहित्य में इसका प्रयोग केवल वैश्य के लिये किया गया था।२२७। वैश्यों का जो समूह दूर-दूर प्रदेशों में जाकर व्यापार करता था उसे "सार्थवाह" कहा जाता था। यह देश के कोने-कोने में सामग्रियाँ पहुँचाते थे। कुटुम्बिक का अर्थ गहपति से लियाा गया है जिसे ग्रहपति भी कहा गया है। जो व्यापारिक नगर में रहकर क्रय-विक्रय करते थे उसे कुटुम्बिक कहा गया है।२२८। वैश्यों का शहर में जो सबसे धनी वर्ग था उसे सेट्ठ कहा जाता था। यह समय-समय पर राजा की सहायता करता था।२२९। अनाथ पिण्डल नामक श्रेष्ठि ने जेतवन विहार खरीदकर भिक्षु संघ को दान

में दिया था।२३०।

शूद्रों की स्थित बहुत दयनीय थी उनकी प्रतिदिन की मजदूरी डेढ़ मासक मानी जाती थी।२३१। इस वर्ग में अनेक व्यवसायिक जातियाँ बन गयी थी जैसे- लोहार, जोकि हथोड़े, कुल्हाड़ी आदि बनाते थे। और शूद्रों की जातियाँ इस युग में थी जो अपने पेशे के कारण समाज में विख्यात थीं जैसे- बुनकर, बढ़ई कर्मार, लोहार, दन्तकार, कुम्भकार आदि अनेक जातियाँ थीं।२३२। शूद्र जाति के अन्तर्गत कुछ ऐसी भी जातियाँ थी जो घूम-घूमकर अपना व्यवसाय करती थीं जैसे-नट, गन्धर्व, सपेरे, भेरीवादक आदि जातियाँ थी जो समाज में अपना कार्य दिखाकर जनता का मनोरंजन करती थीं और इसी से अपना जीवन यापन करती थी। इसके अतिरिक्त पशुपालक, गोपालक आदि जातियाँ थीं।२३३। इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में शूद्र की पुरानी स्थिति बनी रही। अभी भी वह अधिकार विहीन थे और समाज में निम्न कर्म करने वाले लोगों को इसी के अन्तर्गत रखा गया था।

मौर्य युग- मौर्य काल में सभी जातियों के उत्थान का प्रयास मौर्य राजाओं ने किया था क्योंकि अशोक ने अपने पाँचवें अभिलेख में भिक्षुओं, ब्राह्मणों, अनार्यो, गृहस्थों आदि धर्मावलम्बियों के लिये महामात्र नियुक्त किये थे।२३४। साथ ही विदेशी आक्रमण के कारण कुछ विदेशी जातियाँ भी आकर यहाँ बस गयी थीं जिनकी सामाजिक स्थित के निर्धारण के प्रयत्न किये जा रहे थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ब्राह्मण के छः कर्म बताये हैं- वेद पढ़ना, वेद पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना, कौटिल्य ने राजा के मंत्रिमण्डल में पुरोहित को प्रधान स्थान दिया जाना आवश्यक बतलाया है। कौटिल्य के अनुसार राजा का पुरोहित ब्राह्मण ही होना चाहिये। सामाजिक और धार्मिक क्रियाओं का संचालन ब्राह्मण पुरोहित करता था प्रारम्भ में मंत्रों की सहायता से यज्ञ किया जाता था लेकिन बाद में मंत्रोच्चारण के साथ हाथों का भी प्रयोग किया जाने लगा।२३५।

बौद्धयुग में क्षत्रियों की श्रेष्ठता स्थापित हो चुकी थी लेकिन मौर्ययुग में उनकी स्थित में कुछ कमी हुयी थी मौर्य राजा बौद्ध थे। अतः स्थिति में उतना सुधार नहीं हुआ जितना कि प्रथम सदी में हुआ था कौटिल्य ने क्षत्रियों को अध्ययन करना, यज्ञ, दान, शस्त्रविद्या में निपुण होना प्रधान कर्तव्य बनाये थे। क्षत्रिय को दण्ड के लिये कौटिल्य ने कहा था कि यदि क्षत्रिय ब्राह्मण की निन्दा करता है तो उसे १२ पण अर्थ दण्ड देना पड़ता था।

वैश्यों के लिये तो कृषि और व्यवसाय निश्चित किये गये थे। वैश्यों की और भी जातियाँ बन गयी थी। जैसे वणिक, श्रेष्ठि, सार्थवाह आदि यह वर्ग समाज को सुदृढ़ और सुसंगठित करते थे। तत्कालीन समाज में शूद्रों में भी कई जातियाँ बन गयी थी जिन्हें समाज में निम्न स्थान प्राप्त था। द्विजों की सेवा करना और उन्हीं पर निर्भर रहना शूद्रों का कर्तव्य बन गया था शूद्रों को दास अनार्य कृष्णवर्ण कहकर बुलाया जाता था। उन्हें वेद, यज्ञ करने का अधिकार नहीं था।

प्रथम सदी ई० से बाहरवीं सदी तक जातियों का विकास– प्रथम शताब्दी ई० में स्मृतियों की रचना हुई इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों जातियों को ब्रह्म के शरीर से विभिन्न भागों से उत्पन्न कराकर इनके कर्तव्य निश्चित किये गये तथा उनका कठोरता से पालन करने का निर्देश दिये गये। क्योंकि इस युग में वर्ण शंकर जातियों की संख्या तेजी से बढ़ रही थी अतः इसे रोकने के लिये स्मृतकारों व बाद के लेखकों ने कठोर नियम बनाये।२३६। चूँकि इस व्यवस्था पर बौद्ध युग में बहुत करारी चोट की गयी थी जिसे कालान्तर में शुंग राजाओं ने पुनः स्थापित किया तथा सातवाहन काल में जाति व्यवस्था को स्थापित ही नहीं किया गया बल्कि सातवाहन नरेश गौतमीपुत्र शातकर्णि ने जातियों में संकृत्व को रोकने का भी प्रयास किया। मनु ने इतनी कठोर व्यवस्था दी कि वह आगे चलकर भारतीय समाज को जर्जरित करने का कारण बनी। हर्ष ने तत्कालीन समाज में रह रही जातियों की स्थिति को बनाये रखा था।२३७। स्वान, च्वांग ने परम्परानुसार चार जातियों का उल्लेख किया है।२३८। ग्यारहवीं शदी के लेखक अलबरूनी ने कहा है कि राजा जातियों के क्रम को टूटने से रोकता था और समाज में श्रेणी बनाकर उन्हें भिन्न कार्य सौंपता था। इन श्रेणियों के लोगों को अपने कार्य से हटकर दूसरी जाति के कार्य करने की आज्ञा नहीं थी।२३६।

वैदिककाल से ही समाज में ब्राह्मणों की प्रधानता रही है लेकिन बौद्धयुग और मौर्य युग में इनकी श्रेष्ठता को आघात लगा था लेकिन मौर्य युग के पतन के बाद ब्राह्मणों की व्यवस्था फिर तेजी से आगे की ओर बढ़ने लगी। चूँकि अशोक ने ब्राह्मणों और श्रमणों को एक कोटि में ही रखा था जिसमें ब्राह्मणों की श्रेष्ठता पर आक्षेप लगता था। लेकिन शुंगवंश के राजाओं ने ब्राह्मण धर्म की पुनः स्थापना की और उसमें लगे हुये सभी

प्रतिबन्धों को हटा दिया। प्रथम सदी में तो ब्राह्मणों की श्रेष्ठता इतनी बढ़ी कि मनु ने कहा कि जातियों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है और वही सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी है।२४०। दसवीं सदी के एक मुस्लिम लेखक ने लिखा है कि ब्राह्मण जाति के लोगों में कुछ लोग कवि हैं तो कुछ ब्राह्मण राजा के दरबार में रहते हैं, ज्योतिष, दार्शनिक और इन्द्रजाल जानने वाले भी होते है। और इन्हीं को ब्राह्मण कहा जाता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि पूर्व मध्ययुग में भी ब्राह्मण की स्थिति प्राचीनकाल जैसी थी। प्राचीन समय में समाज में क्षत्रिय का दूसरा स्थान रहा है। उसका प्रधान कर्म देश की रक्षा करना था और जब-जब देश पर शत्रुओं का आक्रमण हुआ क्षत्रियों ने साहस के साथ देश की रक्षा की।२४१। श्वान-च्वांग का कहना है कि क्षत्रिय जाति के लोग प्रारम्भ से शासन करते आ रहे थे उसने क्षत्रियों की वंशावली बताते हुये सूर्यवंश और चन्द्रवंश नामक दो क्षत्रिय वंश थे।२४२। अलबीरूनी ने लिखा है कि चोरी के अपराध में उसका अंग काट दिया जाता था।२४३। मनु ने अपत्तिकाल के समय वैश्य कर्म को अपनाने की छूट दी थी और व्यापार के निमित्त कुछ वस्तुएँ निर्धारित की थी जिनमें रस, तिल, नमक, पत्थर, पशु, दूध, मधु, मांस, रांगा, शीश, लोहा काव्यापार नहीं कर सकता था।२४४। क्षत्रियों को सूद में धन देने से मना किया है।२४५।

तीसरे स्थान पर वैश्य जाति थी कृषि और व्यवसाय इनका मुख्य कार्य था। दक्षिण भारत में भी इस जाति के लोग व्यापार करते थे। बारहवीं सदी के लेखक हेमचन्द्र ने वैश्यों के लिये छह शब्दों का प्रयोग किया है वैश्य, अर्या, भूमिस्पर्श, वैश्य, ऊख्या, असजा, विषः राजपूत काल में वैश्यों के पाँच प्रकार बताये गये थे। (१) स्थानिक वणिक (२) 'कारवाँ'- जो दूर-दूर देशों से व्यापार करते थे (३) सामुद्रिक व्यापारी (४) वणिक (५) साधारण व्यापारी, ताम्बूलिक, पत्थर तोड़ने वाले आदि वैश्य जातियाँ जाति थीं।२४७। हेमचन्द्र ने व्यापार करने वाली ८ जातियों का उल्लेख किया है- वाणिज्य वाणिक, क्रय-विक्रयक, पण्याजीवी, आपणिक, नैगम, क्रयी आदि।२४८। मद्य, मांस, लोहा, चमड़ा, बेचना वैश्यों के लिये निषिद्ध माना जाता था लेकिन वस्तुओं के बेचने वाले का छठा भाग कर के रूप में राजा को प्राप्त होता था। पूर्व मध्यकाल में वैश्यों का कार्य व्यापार और व्यवसाय मुख्य रूप से था। क्योंकि इस युग में लगातार मुस्लिम आक्रमण से पूरे समाज में विषमता व्याप्त थी। अपने से ऊँची जाति के लोग निर्धारित कर्म से हटकर शूद्रों के कर्म करने लगे थे।

शूद्रों का समाज से चौथा स्थान था इनका मुख्य कार्य द्विजों की सेवा करना था पुराणों में तो शूद्रों के दो ही कर्म माने गये थे शिल्प और भृत्ति ।२४६। लेकिन श्राद्ध का बचा भोजन शूद्र को नहीं दिया जाता था नहीं तो उसका फल समाप्त हो जाता था। हेमचन्द्र ने पृश्य और अस्पृंश्य दो प्रकार के शूद्र बताये हैं ।२५०। पूर्व मध्यकाल में तो शूद्र ऊँचे-ऊँचे पदों पर स्थित थे अलबरूनी ने लिखा है कि प्रत्येक वह कार्य जो ब्राह्मण का विशेषाधिकार था शूद्र के लिये वर्जित था ।२५१। ऋग्वेद काल में जो दास अनार्य थे वही उत्तर वैदिककाल में शूद्र कहे गये। और कालान्तर मे जातीय वैमनस्य के कारण इनकी स्थित और निम्न हो गयी स्मृतिकाल में और कठोर नियम बनाये गये। फिर विदेशियों के आक्रमण हुये जिनमें इण्डोग्रीक, शक पहलव, कुषाण, पहलव आदि थे। इन विदेशियों ने युद्ध किया शासन किया, और यहाँ के सामाजिक जीवन में घुलमिल गये और अलग जाति के रूप में विकसित हुये। महाभारत में इन विदेशी जातियों, शक, पहलव, ककी, किरात का उल्लेख है। पतन्जति व मनु ने भी इन जातियों का उल्लेख करते हुये शूद्र की श्रेणी में रखा है। पतन्जलि ने शूद्रों की दो श्रेणियाँ बतायी है पहला छूत और दूसरा अछूत जिसके अन्तर्गत चाण्डाल व भृतप जैसी जातियाँ थी। इस प्रकार हम देखते है कि पूर्ववैदिक काल में कवीलायी समाज था कालान्तर में इसी समाज से आर्य और अनार्य नामक दो वर्ग बने जो आगे चलकर चार वर्णो में विभक्त हुये इन चारों वर्णो में भेद परक भावनां का विकास हुआ जिसे कालान्तर में कठोर रूप ले लिया जिससे नयी-नयी जातियों की उत्पत्ति होने लगी इससे स्पष्ट प्रमाण महाकाव्य काल में मिलने लगते है ।२५२। और यह जातियों की उतपत्ति का क्रम उत्तर वैदिककाल से प्रारम्भ हुआ था बाहरवीं सदी तक अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया और अजारों जातियों भारतीय समाज में दिखाई पड़ने लगी इन जातियों की संख्या में वृध्दि होने के कारणों में सम्प्रदायिकता, रीति-रिवाज, छुआ-छूत तथा प्रादेशिकता की भावना प्रमुख रही ।२५३।

परिवार

परिवार एक छोटा राष्ट्र या समाज है। उसमें सीमित लोग रहते हैं। कहते हैं कि जैसा सोंचा हो वैसा ही मूर्तिकार की रचना ढलेगी। समाज एक ऐसी मूर्ति है, जिसका साँचा परिवार है। आदर्श परिवार ही किसी सशक्त समाज की आधार शिला बनाते हैं। परिवार एक

पवित्र, संयुक्त संगठन है। उसकी सुव्यवस्था पारस्परिक सद्भाव-सत्कार की बहुलता से जान पड़ती है।

पाश्चात्य परम्परा में परिवार को स्थूल व्यवस्था के लिये बनाया गया एक ठेका माना गया है। पहले तो यह व्यवस्था अच्छी लगी फिर क्षोभ, असन्तोष उभरने लगा। वहाँ लोग एक दूसरे की स्वतन्त्रता में बाधक नहीं बनता लेकिन पति-पत्नी, बच्चों माँ-बाप के बीच सघन स्नेह नदारद हो गया, जिसे मानवीय अन्तःकरण की खुराक माना जाता रहा है।

अनेक सर्वेक्षणों के आधार पर यह पाया गया है कि अमेरिका जैसे सम्पन्न राष्ट्र में ८० प्रतिशत व्यक्तियों को सोने के लिये नींद की गोली लेनी पड़ती है। उनमें से आधे से अधिक मानसिक तनाव का कारण उसके पारिवारिक जीवन में स्नेह सद्भाव, आत्मीयता का पूर्ण अभाव पाया जाना है।

मानव सभ्यता का जितना विकास वर्तमान समय में दिखलाई पड़ता है, उसका श्रेय परिवार प्रथा को दिया जाता है।

प्राचीनकाल के इतिहास से प्रतीत होता है कि कुछ थेड़े से अपवादों को छोड़कर प्रायः सभी गृहस्थ थे। योग साधना एवं वनवास के समय उनकी पत्नियाँ साथ रहतीं थी। परिवार को यहाँ एक प्रयोगशाला, पाठशाला एवं व्यायामशाला की उपमा देते हुये एक ऐसी तक साल बताया गया है, जहाँ समर्थ राष्ट्र के लिये अभीष्ट महामानवों की ढलाई होती हैं मनुष्य का सारा जीवन भाँति-भाँति की परीक्षाओं से निपटते हुये कहा है। परिवार रूपी प्रयोगशाला में युग, कर्म, स्वभाव की अच्छी खासी परीक्षा हो जाती है। जहाँ पारिवारिक वातावरण श्रेष्ठ कोटि का होगा, वहाँ के निष्कर्ष भी अनुपम होगें।

परिवार एक पूरा समाज एक पूरा राष्ट्र है। भले ही उसका आकार होता तो, पर समस्यायें वे हैं जो एक राष्ट्र या समाज सामने प्रस्तुत रहती है। प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति को जो बात अपने देश को समुन्नत बनाने के लिये सोचनी या करनी पड़ती है, वही व्यवस्था परिवार को एक सहयोग समिति, गुरूकुल के रूप में विकसित करनी पड़ती है, जिसमें परिवार का वातावरण अच्छा बने। परिवार ही एक ऐसी इकाई है जो सामाजिक कर्तव्यों का पालन कराने के लिये मानवीय व्यक्तियों का पालन कराने के लिये मानवीय व्यक्तित्व के विकास में योग देता है, इसका ज्वलंत उदाहरण दशरथ के परिवारिक जीवन में उपलब्ध

होता है। वास्तव में रामायण एक कौटुम्बिक महाकाव्य है। रागद्वेष, हर्ष शोक, ममता-मोह त्याग आदि का चित्रण इसमें दर्शाया गया है।

परिवार का रूप निसंदेह पैतृक था। परिवार में वृद्ध पिता मुखिया होता था, जिसका पालन सभी करते थे। पत्नी गृहस्वामिनी थी, किन्तु गृहस्वामी पर आश्रित थी। पुत्र-पुत्रियाँ पर पिता का नियन्त्रण रहता था। पिता की अनुमति के बिना वे अपना जीवन साथी नहीं चुन सकते थे। उदाहरणार्थ, राम ने धनुर्भग करके भी सीता को विवाह की अनुमति पिता के पूँछे बिना नहीं दी। इन्कार कर दिया।

दीयमानां न तु तदा प्रतिजग्राह राघषः।
अविज्ञाय पितृश्छन्दमयोहयाघिपतेः प्रभो।।

परिवार में पिता ही सर्वोसर्वा था। उसकी संपत्ति स्वेच्छा से पुत्रों में बँटती थी। दशरथ ने कैकेयी के पिता को अपने बूते यह वचन दिया था कि इसी का पुत्र कोसल-राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा। जब भरत ने चित्रकूट पर राम से कोसल राज्य स्वीकार करने की प्रार्थना की, तब राम ने कहा कि मुझे मृगछाला, चीर वल्कल पहनाकर जंगल में भेजने या राज गद्दी पर बैठाने दोनों में मेरे पिता समर्थ है।२५४।

रामायण में बहुत से ऐसे दृष्टान्त आये है, जिन्होनें परिवार का निष्ठापूर्वक पालन बनाये रखा दशरथ ने अपनी राज्यसभा के समक्ष यह घोषणा की थी कि प्रजा की रक्षा में रहकर मैने अपने पूर्वजों के मार्ग का ही अनुसरण किया है।२५५।

राम वन को जाते समय माता कौशल्या से अनुमति माँगते समय कहते हैं कि मै अपने पिता की आज्ञा मानकर मैं पूर्वकाल के धर्मात्मा पुरूषों द्वारा सेवित मार्ग पर ही चल रहा हूँ-

पूर्वेरममभिप्रेतो गतो मार्गोडनुगम्यते।

कैकेयी ने इक्ष्वाकुल के कल्याण की अवहेलना की जभी उसने अपने पुत्र के लिये राज्य चाहा तो उसकी स्वार्थ भावना थी। तभी दशरथ ने अपने महान वंश पर आने वाली घोर विपत्ति से भयातुर हो उठे थे।२५६। सुमंत्र ने कैकेयी की आलोचना करते हुये कहा कि-इस कुल में यही रीति है कि राजा के मरने बाद आयु के अनुसार पुत्र राज्य का अधि ाकारी बने। इस सनातन प्रथा को तुम महाराज के जीते जी तोड़ देना चाहती हो। कैकेयी

बड़ी स्वार्थी, परिवार की प्रतिष्ठित परम्पराओं को तोड़ने वाली स्त्री थी। उसके यह स्वभाव से सभी लोग संशकित हो गये थे। उसे स्वकुलोपघातिनी कुलच्छनी, कुतपांसनी आदि विशेषणों से संबोधित किया जाता था।२५७। किन्तु उसी माँ का पुत्र भरत प्रशंसा का पात्र बना क्योंकि पारिवारिक प्रथाओं को निर्मूल कर दिया। जब भरत से गद्दी सभालने का आग्रह किया गया तो उसने यही कहा कि हमारे वंश में बड़े पुत्र को ही शासन करने का अधिकार होता है।

ज्येष्ठ राजता नित्यमुचिता हिकुलस्य नः।

परिवार में पुत्र का स्थान बहुत महत्पूर्ण था, क्योंकि पुत्र से ही वंश चलता है। (वंशकाः) पुत्र नामक नरक से बेटा पिता की रक्षा करता है। पितरों की सब प्रकार से रक्षा करने वाला होता है।२५८। पितृ ऋण से उऋण होना भी आवश्यक माना गया है। भरत जैसे धर्मात्मा पुत्र को पाकर महाराजा दशरथ ऋण मुक्त हो गये थे।२५९। परिवार में पुत्र का स्थान बहुत महत्वपूर्ण होता था, पुत्र के अभाव में पिता माता का अद्विग्न रहना स्वाभाविक ही था (विनात्मजेनात्मवतां कुलो रति)। पुत्र प्राप्ति के लिये यज्ञ, तपस्या, बड़े उद्योग किये जाते थे। लोगों में यह आम धारणा होती थी कि ऐसा करने से योग्य पुत्र की प्राप्ति होती है। महाराज दशरथ को कठोर तपस्या, परिश्रम, विभिन्न मंत्र-तंत्रों से राम सदृश शुभ लक्षणों से सम्पन्न पुत्र की प्राप्ति हुई थी।२६०। राज जैस पुत्र पाकर उनका जीवन धन्यथा। परिवार के बड़े पुत्र का स्थान अधिकार पूर्ण था। वंशगत ओर भावानात्मक दोनों कारणों से वह पिता का अधिक प्रीति-पात्र था।२६१। गुणवती रानी कौशल्या के गुणवान पुत्र होने के नाते राम के प्रति दशरथ का आर्कषण और भी बढ़ा हुआ था।२६२। विश्वामित्र ने राम को यज्ञ-रक्षा के लिये दशरथ से माँगा तो दशरथ नहीं भेजना चाहते थे कि वह उनके बड़े बेटे थे।२६३। कैकेयी निःसंदेह दशरथ की प्राणप्रिय आर्या थी, पर राम उससे भी अधिक प्यारे थे।२६४। कैकेयी की मांगे पूरी करने का वचन देते हुये उन्होंने राम की शपथ खाई थी- तेन रामेण कैकेयी शवे ते वचनक्रियाम। बड़े पुत्र को कानून विरोध अधिकार देता था। उसे अपने छोटे भाई से पहले गद्दी पर बैठने का अधिकार था।२६५। पिता की अंत्येष्टि, पितरों के श्राद्ध में पिंड दान करने का पहला अधिकार ज्येष्ठ पुत्र द्वारा प्रदत्त पिंड आदि से पितृलोग में अक्षय हो जाते है।२६६।

बड़े भाई को विवाह की प्राथमिकता दी जाती थी। उससे पहले विवाह कर लेने वाला 'परिवेत्ता' कहलाता था और नरक का भागी बनता था।२६७। जब कुंभकर्ण ने लंका की राज्य सभा में रावण की राजधर्म पर उपदेश दे डाला तब रावण ने उत्तेजित होकर फटकारा कि मैं तुम्हारा बड़ा भाई, आचार्य की तरह मानवीय है, फिर तुम मुझे इस तरह क्यों उपदेश दे रहे हो-

भान्यों गुरूरिवाचार्यः किं मां त्वभनुशासले।

इसी प्रकार भरत को ज्येष्ठानुवर्ती भाई का आज्ञापालक कहा गया है। वन गमन के समय में सुमित्रा ने लक्ष्मण को जो उपदेश दिया, उसमें छोटे भाई के लिये बड़े भाई का सामना कितना पात्र था। बड़ा भाई भी छोटे भाई को पुत्र जैसा मानता था। राम अपने छोटे भाई से हर समय सलाह-परामर्श लेते थे। रामपिता की आज्ञा का पालन सर्वोसर्वा करते थे। पिता के कहने से आग में कूदने, तेज जहर खा लेने और समुद्र में भी गिर पड़ने को तैयार थे, पिता और उनके गुरू ही सब-कुछ थे।२६८। अपनी माता के संमुख राम ने पिता की आज्ञा को धर्म समझकर मना न करते हुये आज्ञा का पालन किया, चाहे वह आज्ञा क्रोध, प्रेम, वासना के वशीभूत होकर ही क्यों न दी गई हो-

गुरूश्च राजा च पिता च वृद्धः क्रोधात्प्रहर्पादय वापि कामात्।
यद् व्यादि कार्यमवेक्ष्य धर्म कस्तंन कुर्यादनृश सवृतिः।।

राम के सामने कई उदाहरण थे जैसे कंडु ऋषि का पिता की आज्ञा से गो हत्या करना और सगर की आज्ञा से उनके पुत्रों को धरती खोदकर मृत्यु का ग्रास बनना, ये पूर्व कालीन उदाहरण राम के सामने मौजूद थे। इसी प्रकार पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना राम की शक्ति से बाहर की बात थी।

एक प्रश्न यह उठता है कि यदि माता-पिता के आदेश में अन्तर है तो किसका रहना पुत्र मानें। यों तो धर्मात्माओं की पिता में जितनी बुद्धि होती है उतनी ही माता में भी।२६९। तथापि रामायण में ऐसी विषय स्थिति में पिता की आज्ञा को ही अधिक महत्व दिया गया है। कौसल्या और राम के संवाद से यह सिद्ध होता है कि जब राम ने पिता की आज्ञानुसार वन जाने की अनुमति माता से माँगी, तब कौशल्या ने उनसे कहा-"हे धर्मज्ञ, यदि तुम धर्म का आचरण करना चाहते हो तो यहीं रहकर मेरी सेवा करो।" कश्यप ऋषि

अपने घर में ही माता की सेवा में लगे रहे और अन्त में स्वर्ग गये। मैं तुम्हें वन जाने की आज्ञा नहीं देती। इसी लिये न जाओ। इसके उत्तर में राम ने पशुराम का उदाहरण दिया, जिन्होंने पिता की आज्ञा का आँख मूंदकर पालन करके अपनी माता रेणुका का सिर फरसे से काट डाला था, माता से अधिक प्यार होने से भी पिता के वचन अधिक मानवीय राम समझते थे, क्योंकि पिता की आज्ञा पालन करने से कोई भी धर्म नष्ट नहीं होता।२७०। शुक्रनीति के अनुसार पिता के पुण्य प्रभाव से परशुराम को अपनी माता पुनः मिल गई और राम को अपना राज्य पुनः मिल गया, जबकि पिता की आज्ञा की अवहेलना करके ययाति और विश्वामित्र के पुत्र निम्नतर स्थित्त को प्राप्त हुये। सामान्यतया यही कहा जाता है कि पुत्र के लिये माता-पिता दोनों के ही वचनों का पालन महत्वपूर्ण है लेकिन पितृ प्रधान परिवार में पिता को प्रमुख स्थान मिलता है।

राजकीय परिवारों में ज्येष्ठ पुत्र विवाह के बाद भी पिता को दैनिक कार्य-कलाप में सहयोग देता था। सीता से विवाह के बाद भी राम अपने पिता की सेवा करते थे, उनकी आज्ञा से राजकाज देखना, प्रजाजनों के हित में लगा रहना। समय-समय पर वह अपनी माताओं, गुरूजनों की सेवा करने का ध्यान रखते थे। उनके इस कार्यो से राजा दशरथ, नरगरवासी, वेदवेत्ता ब्राह्मण, वैश्य महाजन सभी संतुष्ट और प्रसन्न रहते थे।

परिवार के सदस्यों का सौहार्दयम संबन्ध ही आर्य संस्कृति का प्रधान संबल है। रामायणकार ने संयुक्त परिवारके विभिन्न सदस्यों के बीच स्नेह और सद्भावनापूर्ण सम्बन्धों का एक उत्कृष्ट चित्र प्रस्तुत किया है। दशरथ के परिवारिक जीवन का चित्रण कर वाल्मीकि ने पिता, पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी, देवर-भौजाई, सास, बहु आदि के स्नेहसिक्त एवं अनुकरणीय सम्बन्धों के समुज्जवल उदाहरण उपस्थित किये हैं कैकेयी की ईर्ष्या भावना इस सुखी परिवार पर काली छाया की तरह आ पड़ी थी।

दशरथ में यदि आदर्श पिता, राम के आदर्श पुत्र, तो लक्ष्मण, भरत में आदर्श भाई, कौशल्या और सीता में आदर्श प्राणी का रूप निखरा है। रामायण कालीन समाज का कोई भी अध्ययन, इन विशिष्ट चरित्रों के परिवारिक आचरण का समुचित मूल्यांकन किये बिना, पूर्ण नहीं हो सकता। राम और उनके तीन भाइयों के बीच प्रगाह भातृ प्रेम था। जैसे गाय के खुर अथवा प्रोष्ठपद नाम के तारे दो-दो के जोड़े में अनुरक्त रहते हैं। वैसे ये सभी

चारों भाई दो-दो के जोड़े में अनुरक्त रहते हैं (प्राष्ठपदोपमाः)। राम को अपने भाई प्राणो से अधिक प्यारे थे। वन जाते समय उन्होने सीता को घर पर रहने के लिये समझाते हुये कहा था कि प्राणप्रिय भरत और शत्रुघन का तुम अपने भाई और पुत्र के समान विशेष ध्यान रखना। भाइयों से प्रेम का व्यापार चित्रकूट पर प्रज्जवलित हुआ था। लक्ष्मण ने राम के लिये निःस्वार्थ आत्मोत्सर्ग कर रखा था और राम के भी वह मानों ब्राह्य प्राण ही थे (बहि, प्राण इवापर) भरत और राम का प्रेम भी अनुपम था। राम का भरत के राज्यभिषेक के प्रस्ताव से आनन्दित होकर अपना अधिकार छोड़ देना तथा भरत का उसे स्वीकार न करना और तपस्वी रूप में जीवन-यापन करना एक-दूसरे से बढ़कर आदर्श उपस्थित करते है। दशरथ की रानियों का व्यवहार नितांत सौहार्दपूर्ण था। कौशल्या का कैकेयी के प्रति भगिनीवत् व्यवहार था। सुमित्रा ने अपनी स्थित गौण बना रखी थी उसने कौशल्या के हितों ने ही अपने पुत्र को जैसे भाई के प्रति-पूर्ण अनुरूप बनने देने में ही गौरव का बोध किया था। मंथरा के द्वारा बहकाये जाने पर कैकेयी उसके पहले राम को अपना बड़ा पुत्र मानती थी, उसका स्नेह राम और भरत में समान था। राम का भी अपनी विमाता के प्रति माता जैसा व्यवहार था। राम को षड़यंत के मालूम होने पर भी माता के व्यवहार
में कोई अंतर नहीं आया। दशरथ के अंतःपुर में जहाँ हजारों नर-नारी थे, राम से कोई अप्रसन्न नहीं था-

बहूना स्त्री सहस्राणां बदूना चोपजीविनाम।
परिवादोडपवादो वा राघवे नोपपघते।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि माता-पिता की भक्ति सन्तानों का प्रेम, पति-पत्नी की अनुशक्ति, अतीत की परंपराओं में आस्था तथा पूर्वजों का स्मरण ये ही वे हेतु थे जो परिवार के सदस्यों को परपस्पर बाँधे रहते थे। परिवार का नष्ट-भृष्ट हो जाना एक महान विपत्ति था। वाल्मीकि कहते है कि राजा रहित प्रदेश में परिवारिक जीवन और नैतिक जीवन का पतन हो जाता है तब पिता और पुत्र में संघर्ष होने लगता है। स्त्रियाँ भी हाथ से बाहर निकल जाती है।

नाराजके पितुः पुत्रो भार्या वा वर्तवे वंशे।

रामायण में कहा गया है कि मनुष्य का चरित्र निर्माण परिवार में ही रहकर होता

है। कुल या परिवार ही एक शिक्षालय है, जिसमें व्यक्ति स्नेह, गुरूजनों के प्रति आदर, भक्ति भाव, सामूहिक कल्याण की भावना पनपती है। अपने जीवन में राम ने जिन भलौकिक गुणों का परिचय दिया उनके जड़े परिवार में बड़ी मजबूती से जमी हुयी थी। उन्होंने सत्य, दान, तप, त्याग, मिथ्या, पवित्रता, सरलता, विद्या, गुरूसेवा, जैसे सद्गुणों का विकास किया था। वहीं उन्होंने प्रजाजनों को सत्य से, दीनों को दान से, गुरूजनों को सेवा से शत्रुओं को धनुष से जीतना सीखा। शत्रु और मित्र के प्रति उनका व्यवहार सदा एक सा था। वे अपने उद्भव और विकास के लिये पारिवारिक सहयोग, अनुशासन, पारिवारिक वातावरण के ही ऋणी थे। वस्तुतः राम का समग्र जीवन परिवार के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक सत्प्रभाव का उज्जवल दृष्टांत है।

विवाह

विवाह का उद्देश्य एक दूसरे की सहायता करते हुये आध्यामित्क उन्नति तथा सामाजिक सुव्यवस्था है। इन दोनों में कोई छोटा बड़ा नहीं है। दाम्पत्य जीवन समानता पर आधारित है। यद्यपि राम ने स्वंयवर की शर्त पूरी की थी किन्तु वैवाहिक परम्परा के अनुसार राम और लक्ष्मण के लिये सीता और उर्मिला की याचना करते हुये वशिष्ठ जी जनक से कहते हैं- 'हे राज हम राम और लक्ष्मण के लिये आपकी कन्याओं का वरन् करना चाहते हैं। आपकी दोनों कन्यायें राम-लक्ष्मण के समाज हैं, अतः इनका विवाह कर दीजिये।'

राम-लक्ष्मणयोरर्थे त्वत्सुते वरये नृप। सदृशाल्यां नरश्रेष्ठ सदृशे दातुर्महसि।।

इस तरह समानता के आधार पर पति-पत्नी विवाह द्वारा दाम्पत्य के पवित्र बंधन में बँधते और उस समय की गई प्रतिज्ञाओं का आजीवन पालन करते हैं। मनु ने उसे स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों को मर्यादा में रखनेवाली कल्याणकारी लौकिक प्रथा माना है-

एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्री पुंसयोः शुभा।२७१।

रामायण काल में विवाह पारम्परिक और शास्त्रीय आधारों पर पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुका था। सामान्यता विवाह प्रत्येक प्राणी के लिये आवश्यक माना जाता था। स्त्रियों के लिये तो विवाह एक प्रकार से नूतन जन्म संस्कार माना जाता था, जैसे उच्चवर्ण का व्यक्ति अपनयन द्वारा द्विजत्व प्राप्त करता है, उसी प्रकार पाणिग्रहण द्वारा अपने व्यक्तित्व का उत्कर्ष करती है।२७२।

विवाह संकार के माध्यम से उपयुक्त वातावरण बनाकर वर-वधु को उनके उत्तरदायित्व का बोध कराया जाता है। दम्पत्ति एक दूसरे के धार्मिक गुणों एवं परस्पर प्रेम के आधार पर समर्पण भाव से रहते है। वधु नये घर आती है, उसे उस घर तथा वातावरण के अनुसार निर्वाह करना पड़ता है। पति को चाहिये कि स्नेह और शील के साथ यह परिवर्तन पत्नी में लाये। राम ने भी यही किया था। परस्पर गुण, शील, प्रेम के प्रभाव से सीता का हृदय परिवर्तित होकर पति के प्रति दूना प्रेम हो यगा है। दाम्पत्य जीवन में दोनों के भाग्य परस्पर जुड़ जाते है। बनगमन से पूर्व सीता राम के कहती हैं-

भर्तुभाग्यं तु भार्ये का प्राप्नोति पुरूषर्षभ।
अंतश्चैवाहमादिष्टा बने वस्तव्यिमप्यपि।।

हे पुरूषर्षभ? पति के भाग्यानुसार पत्नी भी फल पाती है। अतः आपके साथ मेरा वनवास निश्चित है।

पति के सहायक रूप में अपने आप को प्रस्तुत करना उसका कर्तव्य है। राम की वन यात्रा से पूर्व सीता ने अपने यही भाव व्यक्त करते हुये श्रीराम से कहा-

"यदि त्वं प्रस्थितो दुर्ग वनमहैव राघव।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृदगन्ती कुशकष्टकान"।।

यदि तुम आज वन को जा रहे तो मैं तुम्हारे आगे-आगे कुश और काँटों को हटा, रास्ता साफ करती ही पैदल चलूँगी। राम ने सीता को समझाते हुये कहा कि मैं सब भाँति तुम्हारी रक्षा कर सकता हूँ, किन्तु मुझे तुम्हारे मन का अभिप्राय मालूम नहीं था, इसलिये मैं तुम्हे वन में ले जाना उचित नहीं समझता था।

उन दिनों विवाह से पहले किसी वर-वधू से कोई मित्रता नहीं होती थी। उच्च कुल की कन्यायें एकान्त में रहती थीं, सीता, मंदोदरी, कुशनाभ कन्याऐं, ऋत्यश्रृंग की पत्नी शांता, इन लोगों ने विवाह से पहले कभी भी पति के दर्शन नहीं किये थे। शिष्ट वर्गो में विवाह से पहले प्रेम को हीन दृष्टि से देखा जाता था, जैसे कि अरजा, वेदवती, कुशनाभ कन्याओं के कथन से पता चलता है।

रामायण काल में गोत्र, प्रवर, सपिंड आदि का ध्यान रखा जाता था या नहीं, उल्लेख के अभाव में बता पाना कठिन है। जन्म कुंडली का भी रिवाज परवर्तीकाल का लक्षण

माना जाता है। अंर्तजातीय विवाहों का प्रचलन था जैसे, क्षत्रिय राजकुमारी शांता और ब्राह्मण ऋत्यश्रृंग का विवाह अनुलोम विवाह का उदाहरण है, जिसमें उच्च वर्ण का व्यक्ति निम्न जाति की लड़की से विवाह करता है। दशरथ ने जिन मुनिकुमार को अज्ञान वश मार डाला था, उसके पिता वैश्य, माता शूद्र थीं।२७३। उत्तरक़ाण्ड के समय अनुलोम, प्रतिलोम विवाह की संख्या बढ़ी। क्षत्रिय ययाति और ब्राह्मण देवयानी का सम्बन्ध प्रतिलोम विवाह का उदाहरण है, जिसमें निम्न जाति का व्यक्ति उच्च वर्ण की स्त्री से विवाह करता है। विवाह के समय वर-वधु की कोई इच्छा स्वतंत्र नहीं होती थी। माता-पिता ही विवाह करते थे। कन्या को पिता के अधीन पितृ वशा, बताया गया है। जब वायु ने कुशनामभ-कन्याओं से अपनी पत्नी बनने के लिये कहा, तब उन्होने उत्तर दिया कि हे मूर्ख ऐसा समय कभी न आये, जब हम अपने सत्यावदी पिता की अपेक्षा कर अपने मन से स्वंयवर करले। पिता ही हमारे लिये देवता है वह जिनको हम दे देंगे, वही हमारा पति होगा-

यस्य नो द्वास्यति पिता स नो भती भविष्यति ।

कहा जाता है अच्छे शिष्ट परिवारों में गन्धर्व विवाह का प्रचलन नहीं था। राम के विवाह में सीता को माँगने के लिये राजा लोग अपना प्रस्ताव पिता जनक से रखते थे।२७४। राजा दंड ने शुक ऋषि की पुत्री अरजा से समागम की इच्छा व्यक्त की, तब उस मुनि कन्या ने असहमति प्रकट करते हुये कहा कि "मैं कुमारिका हूँ और अपने पिता के वश में हूँ। आप मेरा बलपूर्वक स्पर्श न करें। नर श्रेष्ठ, मेरे तेजस्वी पिता से मेरी याचना करते"-

मा में स्पृश बलाद्वाजन कन्या पितृवशा सहम।

वरयस्व नरश्रेष्ठ पितरं में महाघुतिम।।

कुछ लोगों का कहना है कि सीता का विवाह स्वंयवर प्रणाली से स्वेच्छा संमत ढंग से हुआ था। यद्यपि सीता ने अनुसुइया से स्वंय अपने विवाह को स्वंयवर बताया था। प्रचीन भारत में स्वंयवर को दो प्रणाली प्रचलित थी। एक तो वह, जिसमें वधू एक नियत स्थान परकट्ठे हुये वरों में से अपनी रूचि से पति को चुन लेती थी, दूसरी वह जिसमें निर्धारित शर्तो को पूरा करने वाला ही कन्या का अधिकारी होता था। पहली प्रथा कहते हैं कि रामायण के समय प्रचलित नहीं थी। दूसरी प्रचलित थी, किन्तु इसमें भी वधू की स्वंतन्त्रता नहीं थी।

सीता का विवाह भी स्वंयवर प्रथा से हाता है लेकिन इसमें स्वंयवर महोत्सव का प्रबन्ध उसके पिता जनक ने किया था, घोषणा की थी कि जो व्यक्ति शिव धनुष को उठाकर तान देगा, उसका विवाह मेरी क़न्या से होगा।२७५। इस प्रकार रामायणकालीन स्वंयवर प्रथा में कन्या की अपेक्षा पिता का हाथ विवाह में अधिक होता था। इसमें भी जो व्यक्ति को आमन्त्रित किया जाता था वही आते थे। जब कुशनाभ कन्याओं ने वायु से कहा कि हम पिता की उपेक्षा करके विवाह नहीं करना चाहते।२७६। यहाँ पर स्वंयवर का अर्थ (स्वेच्छा से पति चुन लेना) था। इस स्वंयवर को उस युग की संभ्रांत कन्याएं अनादर दृष्टि से देखती थी। ब्राह्मणों तथा अन्य वर्णो की कन्याओं के विवाह में स्वंयवर का रिवाज नहीं था।

पुत्रों के विवाह में भी पिता की आज्ञा जरूरी थी। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघन की शिक्षा समाप्ति के बाद दशरथ ने उनका विवाह करने का निश्चय किया था। जनक ने भी राम-सीता के विवाह की स्वीकृति प्राप्त करने के लिये अपने दूतों को अयोध्या भेजा था।

इस प्रकार विवाह के सम्बन्ध में पिता का सबसे अधिक अधिकार होता था। सीता, मंदोदरी का विवाह पिता वश ही हुआ था इसलिये वो लोग सुखी थे। पति प्रेम पर्याप्त मात्रा में मिला। सीता राम की प्रिय इसलिये थी कि वे अनेक पिता दशरथ की अनुमति से प्राप्त हुयी थी-

प्रियातु सीता रामख्य दासः पितृकृता इति।

कभी-कभी पिता के अतिरिक्त अन्य लोग सम्बन्ध कराते थे जैसे अयोध्या और मिथिला के राज परिवारों में विश्वामित्र ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उन्हीं के सुझाव से जनक की दोनों भतीजियों और सीता की बहनों से भरत, शत्रुघन का विवाह हुआ था। सीता और उनकी बहने विवाह के बाद अपने-अपने पतियों के साथ एकांत में विहार करने लगी थीं।

रेमिरे मुदिताः सर्वे भर्त्रभिर्मुदिता रहः।

इसमें उनकी युवास्था प्रमाणित होती है। विवाह के समय उनके माता ने अग्नि के समय जो उपदेश दिया था, उनकी याद सीता को नहीं हुई थी।२७७। अतः निश्चय है कि सीता की आयु उपदेश गृहण करने योग्य हो गयी थी। जनक ने विश्वामित्र से यह कहा कि मेरी पुत्री की इच्छा के लिये अनेकों राजा आये पर परीक्षा में सफल न होकर निराश

होकर चले गये। इस सभी प्रमाणों से सिद्ध होता है कि सीता विवाह के समय एक पूर्ण वयस्क, पति के अनुकूल बुद्धिमती थी। जिन्हें अपने माता-पिता से पत्नी होने के कर्तव्यों की पूरी शिक्षा मिल चुकी थी।२७८। यह वर्णन अरण्यकांड के स्थल से देखने को मिलता है।

कन्याओं के वयस्क होने का विवरण बालकाण्ड, उत्तरकाण्ड से पता चलता है। जैसे कुशनाम कन्यायें जिन्होने विवाह बन्धन के ठुकरा दिया था। तृणबिन्दु की कन्या पुलस्त्य से विवाह के समय जो गर्भावस्था में थी। इसी प्रकार पुत्रो का भी विवाह वयस्क होने पर ही किया जाता था। जब दशरथ ने अंधुमुनि के पुत्र की धोखे से हत्या की थी तब वे युवराज थे उनका विवाह नहीं हुआ था।२७९। राम-लक्ष्मण भीं विवाह के समय उनका व्यक्तित्व सुगठित, कांतिमान था दर्शक देखते ही रह जाते। पति-पत्नी की आयु में भी अन्तर पाया जाता था जैसे दशरथ ने वृद्धावस्था में कैकेयी से विवाह किया था। तरूण कैकेयी दशरथ को प्राणों से भी प्यारी थी- स वृद्धस्तरुणीं भार्या प्राणेम्योडापि गरीयसीम। वृद्ध ब्राह्मण त्रिजट की पत्नी भी तरुणी थी।

विवाह का उद्देश्य अच्छी सन्तान को जन्म देकर वंश को बढ़ाने का था। इसलिये माता-पिता इस बात का ध्यान रखते थे कि पुत्र-पुत्री को अच्छा जीवन साथी मिले। इसीलिये सीता का विवाह राम से, उर्मिला का लक्ष्मण से सभी प्रकार से ठीक था। धर्म की दृष्टि से रूप माधुरी थी।२८०। रावण की अशोकवाटिका में सीता को देखकर हनुमान कह उठे कि 'स्वभाव अवस्था, चरित्र, कुल, शुभ लक्षणों की समानता के कारण यह काली आँखों वाली सीता राम के योग्य हैं और राम वैदेही के।'

तुल्यशील वयोवृत्तां तुल्याभिजनलक्षणाम। राघवोऽर्हति वैदेहीं तं चेयमसितेक्षणा।।

विवाह के समय वधु में सौभाग्य मंगल सूचक कुछ लक्षण देखे जाते थे। कहा जाता है कि रामायण में छः प्रकार के विवाहों का वर्णन आया है। प्रथम प्रकार के विवाह में कुशानाभ कन्याओं और कांपिल्या के राजा ब्रह्मदत्त का विवाह है। इस विवाह में वर को कन्या के पिता ने आदर से आमंत्रित किया वैदिक विधि से कन्या को दे दिया। रोमपाद की पुत्री शांता तथा तृणबिंदु और ऋषि भारद्वाज की कन्याओं के विवाह इस विधि से हुये थे। इसे ब्रह्म विवाह का ही पूर्व रूप कहते है।

दूसरे प्रकार के विवाह में राम-सीता का है। जनक ने सीता को सभी आभूषणों

से सजाकर राम को एक 'सहधर्मचरी' के रूप में देदिया इस प्रजापत्य विवाह कहा जाने लगा। बाद में वर से कुछ धन लेने का रिवाज उत्तरी पश्चिमी सीमांत के आर्यो में था विक्रय देश के राजा ने दशरथ से अपनी कन्या तक शर्त पर ब्याही थी कि उसके पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बनायेगा। इस विवाह को बाद में आसुर विवाह कहा जाता है। गान्धर्व विवाह आर्येतर जातियों में अधिक देखने को मिलता है। कुछ स्त्रियाँ अपनी इच्छा से आकर रावण की पत्नियाँ बन गयीं थी।२८१। राम के आकर्षण ने शूर्पणखा को कामातुर बना दिया था और वह अपना पति बनाने को तैयार हो गयी थी। चिराय भव में भर्ता उत्तरकाण्ड में वधू और दूल्हा दोनो प्रणय सूत्र से आबद्ध हुये थे।

कुछ लोग कन्या का अपहरण करके विवाह करते थे जैसे, कुछ दुष्ट राक्षस ऐसा किया करते थे। रावण ने सीता का अपहरण करके उससे अपनी पत्नी बनने का आग्रह किया तो सीता ने कहा कि यह आपत्ति है में राम की पत्नी हूँ, अतः तुम्हारे अयोग्य हूँ तब रावण ने कहा कि मुझे अपनाने में तुम्हें धर्म की आशंका नहीं करनी चाहियें क्योंकि राक्षसों में यह प्रथा विद्यमान है। आर्षोऽयं देवि निष्पन्दः। परन्तु टीकाकारों ने यहाँ पर आर्ष का अर्थ जिस ऋषिगण राक्षस विवाह कहते है किया है। यहाँ पर आर्ष का अर्थ उस विवाह से है जो अर्ध सभ्य जातियों में प्रचीन काल से प्रचलित था।

राक्षस बलात्कार करने में अभ्यस्त थे। स्मृतिकारों ने उस प्रकार के विवाह को पैशाच विवाह की संज्ञा दी है। इसमें पुरूष किसी युवती को पाशविक बल के वश में करके अपनी वासना तृप्त करता है। पुंजिकस्थला, रंभा आदि अप्सराओं का रावण ने उपभोग इसे इस बलात द्वारा किया था।

इस प्रकार विवाह के बाद कन्या की स्थित पर क्या प्रभाव पड़ता था यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है। ब्राह्म, प्रजापत्य विवाह में लड़की का पिता वर को कन्यादान करता था, इस विवाह में वधू का दान किया जाता था। प्रजापत्य विवाह की प्रथा थी कि पिता वर को अपनी पुत्री देते समय 'सहधर्मचरी' के रूप में अर्पित करता था, वह वर के साथ शर्त करता था कि वधू को वह यज्ञ, दान में सहयोगी बनायेगा। किसी दूसरी स्त्री से विवाह नहीं करेगा। आसुर विवाह में वर को वधू प्राप्ति के लिये कुछ कीमत चुकानी पड़ती थी। गांधर्व विवाह में वधू की इच्छा सर्वोपरि थी, उसमें पिता द्वारा कन्यादान का कोई महत्व नहीं था। राक्षस

और पैशाच विवाह में कन्या अभिशाप के समान थी, इसमें कन्या का अपहरण करके विवाह किया जाता है।

रामायण काल में दहेज प्रथा नहीं थी। विवाह में वर को जो उपहार दिये जाते थे, वे स्वेच्छा से कोई तय नहीं होता था जैसे कि बाद के युगों में हो गया है। विवाह के समय 'कन्याधन' के नाम से उपहार दिया जाता था। राजा जनक ने सीता के विवाह पर कन्या धन दिया था। गौएं, केवल, रेशमी, सूती वस्त्र, अंलकृत हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, सिपाही, सखी रूप सौ कन्याएं, दास-दासियाँ, बहुत से मूँगे-मोती, सुवर्ण। यह कन्या धन वैवाहिक जीवन में स्त्री धन का रूप ले लेता था। ये सब स्वच्छा से जनक ने दिये थे। कोई तय नहीं हुआ था।

सीता को पाने के लिये राम ने धनुर्भग करके 'वीर्य-शुल्क' (पराक्रम का मूल्य) चुकाना पड़ा था, कैकेयी को पाने के लिये वृद्ध दशरथ को 'राज्य शुल्क' (उसके पुत्र को राजा बनाने का वचन) देना पड़ा था। रामायणकालीन विवाह शस्त्रीय विधि से, जो वैवाह्म' कहलाती थी, मंगली घड़ी में किया जाता था शुभ नक्षत्र, मुहूर्त का ध्यान रखा जाता था, वाल्मीकि ने उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र को, जिसके अधिपति भग देवता है, विवाह के लिये उपयुक्त समय बताया है।२८२।

राम-सीता के विवाह से विवाह प्रणाली का पूर्ण परिचय मिलता है, जिसमें पांच दिन लगते थे। इसके तीन भाग स्पष्ट पहचाने जा सकते है। (१) प्रारंभिक औपचारिक कृत्य, (२) मूल संस्कार अथवा विवाह (३) समुद्वाह अधीत् पति गृह जाने पर किये जाने वाले मांगलिक कार्य।

वर-प्रेषण- विवाह के लिये वर के पिता के पास दूत भेजना, जिसे आजकल 'लगुन भेजना कहते है'। धनुष भंग होने के बाद जनक ने सबसे पहले अपने दूत अयोध्या भेजकर महाराज दशरथ से राम-सीता के विवाह के लिये अनुमति मांगी और विवाह संपन्न कराने के लिये पुरोहित सहिता मिथला पधारने का निमंत्रण दिया। सीमांत-पूजन (बरात का स्वागत) मिथला पहुँचने पर दशरथ का जनक ने अच्छी प्रकार से स्वागत किया और रहने की व्यवस्था की। जनक ने दशरथ जी से कहा कि वरिष्ठ ऋषि-मुनियों आप अपने पुत्रों का विवाह मेरी कन्याओं से कराईये। दशरथ ने यह बात स्वीकार की।

वंशावली कथन– (दोनों पक्षों की वंशावलियों का पाठ) जनक ने अगले दिन दशरथ, और सभी पुत्रों, मंत्रियों को अपने निवास स्थान पर बुलाया। इन लोगों के आने पर राम और सीता के महान् पूर्वजों की वंशावलियों का पाठ किया जाने लगा। दशरथ के कहने पर वसिष्ठ ने इक्ष्वाकु वंश की वंशावली को सुनाया और बाद में राम–लक्ष्मण, सीता–उर्मिला की मांग की, विदेह वंशावली का पाठ जनक ने स्वंय किया था, क्योंकि उनका मत यह था कि कन्या के परिवार वालों को ही वंशावली पाठ करना चाहिये।

वर–वधु गुण–परीक्षा– वंशावली की समाप्ति बाद विश्वामित्र ने इक्ष्वाकु और विदेह राजवंशों के बीच इस वैवाहिक सम्बंध की श्रेष्ठता बतायी। वर–वधू की अनुरूपता पर हर्ष प्रकट किया।

वाग्दान– जनक ने दोनों पक्षों के पुरोहितों और सम्बंधियों की उपस्थित में अपना यह संकल्प घोषित किया कि मैं राम के लिये सीता और लक्ष्मण के लिये उर्मिला दे रहा हूँ–

सीतां रामायं भद्रं ते उर्मिलां लक्ष्मणाम् वै।
ददामि परमप्रीतो वहवौ ते मुनिपुंगव।।

तत्पश्चात राम, लक्ष्मण के कल्याण के लिये दशरथ ने गो–दान तथा मांगलिक कार्य किये। वाग्दान के बाद वर पक्ष के लोग वधु के पिता को धन्यवाद देकर लौट आये।

नांदीश्राद्ध– महाराज दशरथ ने लौटकर अपने निवास स्थान पर यथाविधि तरीके से श्राद्ध–कर्म किया। दूसरा दिन भी समाप्त हो गया।

गोदान– तीसरे दिन प्रातःकाल दशरथ ने एक वृद्ध गो दान समारोह किया। अपने पुत्रों के हित के लिये हजारों गौओं का दान ब्राह्मणों को किया। सींग सोने के थे, वछड़े और कांसे के दुहने के पात्र थे। ब्राह्मणों को कई मूल्यावान उपहार भी दिये।

वधुनिष्क्रमण– चौथे दिन में (वधू अपने निवास स्थान से निकलकर मंडप में आयी) जनक की पुत्रियों से सभी मांगलिक कार्यो को करके मंडप में प्रवेश किया।

वधू–गृह आगमन (वर का वधू के घर आगमन)– शुभ समय पर राम और उनके भाई सुंदर वस्त्र, आभूषण धारण करके वधू के निवास पर आये। जनक ने स्वागत किया तत्पश्चात् मंडप में वे लोग पधारे।

वेदी–करण (यज्ञ–मंडप में वेदी का निर्माण)– जनक ने वर पक्ष के पुरोहित वसिष्ठ से

विवाह कराने की प्रार्थना की। कन्या पक्ष के पुरोहित शतांनद की सहायता से वसिष्ठ ने मंडप के बीच वेदी बनाई, उसमें गंध, पुरूष, अंकुरों से युक्त घड़ों, अक्षतों, दर्भो, होम के सुवर्ण पात्रों से सुसज्जित किया था।

अग्नि-स्थापन और होम- वेदी के बाद वसिष्ठ ने मंत्रोच्चारण से अग्नि प्रतिष्ठा की और आहुतियां डालनी शुरू की।

वध्वागमन (वेदी के निकट वधू का आगमन)- जनक ने 'सर्वाभरण भूषिता' सीता को अग्नि के प ास राम के पास बैठा दिया।

कन्यादान- अग्नि को साक्षी समझकर जनक ने राम को सम्बोधित करते हुये कहा-

इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव।

प्रतीच्छ चैनां भद्र ते पाणि गृहीष्ण पाणिना।।

पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा।

"यह मेरी पुत्री सीता है। धर्म पालन में तुम्हारी सहचारी बनेगी। इसे स्वीकार करो! तुम्हारा कल्याण हो! स्वीकृत के रूप में इसका हाथ अपने हाथ में लो। यह पतिव्रता, शुद्ध आचरण वाली, छाया की भाँति तुम्हारा अनुमान करने वाली होगी।" इतना कहकर राम के हाथ पर जनक ने मंत्रपूत जल छिड़क दिया। क्रमशः राम के तीनों भाइयों को उर्मिला, मांडवी, श्रुत कीर्ति को हाथ सौंपे।

पाणिग्रहण (वर द्वारा वधू का हाथ पकड़ना)- जनक ने कन्यादान के बाद चारों वरों ने अपनी-अपनी वधुओं के हाथ स्वीकृत रूप से पकड़ लिये।

अग्नि परिणयन (वर-वधू द्वारा अग्नि की परिक्रमा)- चारों पुत्रों ने चारों वधुओं का हाथ पकड़कर, यज्ञवेदी, जनक तथा ऋषियों को प्रदक्षिणा की, अग्नि में हवन किया। इस समय पुष्प वर्षा हुयी। अप्सराओं ने ताल मिलाते हुये नृत्य किया। गंधर्वो ने गान गाया। तीन बार परिक्रमा करके विवाह संस्कार को समाप्त किया। फिर जुलूस बनाकर जनवासे गये। पीछे-पीछे दशरथ, ऋषिमुनि, तथा सम्बंधी गये।

पाँचवें दिन नववधुओं ने पति-गृह को प्रयाण किया। जनक ने अपनी पुत्रियों को उपहार देकर विदा किया। अयोध्या नगरी नवविवाहित दंपतियों के स्वागत के लिये खूब सजायी थी। अयोध्या में भी निम्नलिखित मांगलिक कार्य सम्पन्न किये गये थे।

गृह प्रवेश (पति के गृह में प्रवेश, वधू का स्वागत)– अयोध्या के महलों मे राजमाताओं ने अपनी पुत्रवधुओं का मंगल गीतों से स्वागत किया।

गृह प्रवेशनीय (पति गृह प्रवेश के बाद किया जाने वाला होम)– नववधुओं के आने से अग्नि में आहुतियां डाली गई और आर्शीवाद की याचना की गई।

देवकोत्थापन (उन देवताओं का विसर्जन, जिनका आवाहन विवाह से पूर्व किया गया था)– देवालयों में प्रणाम, अभिवादन, वृद्ध जनों को नमस्कार के बाद नवविवाहित वधुएं अपने–अपने पतियों के साथ एकांत में विहार करने लगीं।

मनु की तरह वाल्मीकि भी पति–पत्नी सम्वंधन को मृत्यु के बाद परलोक में भी अक्षुण्ण मानते थे–

इहलोके च पितृभिर्या स्त्री यस्य महावल।
अदिभर्दत्ता स्वधर्मेण प्रेत्यभावेडपि तस्यसा।।

अर्थात् इस लोक में पिता द्वारा जो स्त्री जिसे पुरूष को धर्मानुसार जल से संकल्प करके दी जाती है, वह मरने के बाद भी परलोक में भी उसी की पत्नी है। सीता की यही श्रद्धा थी कि मरने के बाद मेरा राम से ही संगम होगा।

प्रेत्यभाव हिकल्याणः संगमों में सदा त्वयां।

वैवाहिक सम्बन्धों के विच्छिन्नता के भी उदाहरण मिलते है। वाल्मीकि ने एक स्थिल पर उपमान के रूप में बताया है, कौशल्या ने ऐसी पत्नियों का उल्लेख किया है जो पति पर विपत्ति पड़ने पर उसे छोड़ देती है।२८३। एक ऐसे राज्य में जहाँ कोई राजा नहीं, अराजकता फ़ैली हो, स्त्रियों को वश में रखना कठिन हो जाता है और वे पति की आज्ञा का तिरस्कार कर देती है।२८४। अहल्या व्यभिचार के कारण, कैकेयी स्वार्थ परायण के कारण पति के जीवन को तुच्छ मानने के कारण कैकेयी की माता तथा उत्तरकाण्ड में लोकपावाद के कारण सीता के परित्याग की घटना का विवरण कवि ने अंकित किया है।

रामायण युग में बहुपत्नी प्रथा थी। चाहे आर्य हो या वानर, राक्षस अनेक स्त्रियों वाले विशाल अंतःपुरों के स्वामी होते थे। दशरथ भी चार रानियों के अतिरिक्त तीन सौ स्त्रियाँ भी थीं। रावण की अनेक पत्नियाँ थी। वाल्मीकि ने तो राक्षसों के अतंपःर को तो स्त्रीवनम् की संज्ञा दी है। सुग्रीव, बाली भी इससे अछूते नहीं थे। जनक के भी अधिक

रानियाँ थी सीता के पालन पोषण के लिये अपनी बड़ी रानी को सौंपा था।२८५।

ब्राह्मण, क्षत्रिय भी इससे परिपूर्ण थे। कश्यप ऋषि के आठ स्त्रियाँ थी। उत्तरकाण्ड में ब्राह्मण मुनि विश्रवा यें पहले भरद्वाज की कन्या देववार्णिनी से फिर सुमाती की पुत्री कैकयी से विवाह किया था। यह प्रथा समाज के संभ्रान्तशाली वर्गो में ही थी, मध्यम, दरिद्र वर्ग इससे अछूते थे। दरिद्र ब्राह्मण त्रिजट के एक ही पत्नी थी।

इसके अतिरिक्त आर्य-राजाओं के चार रानियाँ मुख्य रूप से होती थी जो क्रमशः महिषी, परिवृक्ति, वावाता, पालाकली कही जाती थी। जो क्रमशः पटसनी पद पर, परिवृक्ति राजा की उपेक्षित भार्या थी और वातावा विशेष प्रीति पात्र की थी। कुछ टीकाकारों ने महिषी को क्षत्रिया, परिवृक्ति, को वैश्य, वावात को शूद्रा रानी बताया है। डा० एस० सी० सरकार के अनुसार, पालाकली कोई निम्नवर्ण की स्त्री थी इससे संकेत मिलता है कि उच्च राजकीय कर्मचारी अपनी लड़कियों का, किसी राजनीतिक लाभ की दृष्टि से, राजा से विवाह कर देते थे।२८६। इस प्रकार यही बाद दशरथ की रानियों में क्रमशः यही थी कि कौशल्या को महिषी, सुमित्रा को परिवृक्ति, कैकेयी को वावात रानी माना है। रामायण में दशरथ की पालाकली रानी का उल्लेख नहीं हुआ है उसे 'अपरा' कहा गया है। दशरथ की चार रनियों के होते हुये भी वह छोटी रानी कैकेयी की सुन्दरता को देखते हुये उसी तरफ ज्यादा आर्कषण रखते थे। अधिक समय उसी के महल में बिताते थे।

कहने का तात्पर्य यह है कि बुढ़ापे में राजा को मिली थी, इसलिये उसने शीघ्र ही राजा को अपने कब्जे में कर लिया था। राजा दशरथ जब कैकेयी को अधिक प्यार करते थे तो अन्य रानियों की स्थिति दयनीय हो जाती थी। फिर भी वो लोग आयु-पद के होते हुये भी उफ नहीं करती थी। पर आपस में इन चारों की नहीं पटती थी। एक-दूसरे से जलती थी। राम के यौवराज्याभिषेक के समय कौशल्या और कैकेयी के बीच लड़ाई हुयी थी। मंथरा ने कैकेयी को बहका कर कहा कि सौत का बेटा शत्रु के समान होता है। उसकी समृद्धि मृत्यु के समान-

अरेः सपत्नी पुत्रस्य वृद्धि मृत्योरिवागताम्।

पति के लिये सभी स्त्रियों को खुश रखना बड़ा मुश्किल काम था। महलों में एक अलग से कोपभवन होता था जो स्त्री रूठकर गन्दे कपड़े पहनकर, गहने उतारकर लोटती

रोती रहती थी तो राजा जब उसे मनाने के लिये जाता था तब वह तब तक नहीं बोलती थी जब तक उसकी माँगें पूरी होने की शपथ न दिला दे। अशोकवाटिका को एक अंतः पुर की उपमा देते हुये कवि ने कहीं पति की गोद छोड़कर जमीन पर लोट जाने वाली प्रियतमा का, कहीं सखियों द्वारा मनाई जाने वाली कुपित स्त्री का, कहीं मान छोड़कर पति के अनुकूल बन जाने वाली भार्या का रमणीय शब्द चित्र उपस्थित किया है।

बहुपत्नी प्रथा आर्य संस्कृति को बहुत परेशान किये हुये थी। आयेदिन राज परिवार में लड़ाई होती रहती थी। यह प्रथा दशरथ के परिवार में उनके कुल की पुरानी चली आ रही परम्परा थी। इक्ष्वाकु राजा विभिन्न परम्पराओं वाले राज्यों की राजकुमारियों से विवाह करके अपने अंतःपुर में विरोधी तत्वों को एकत्र कर लेते थे, जिनके स्वार्थो और उद्देश्यों में संघर्ष होता रहता था। केकय देश के राज एक पत्नी-व्रती थे। इसलिये कैकेयी राजा को अपनी ओर खींचकर अन्य रानियों की संतानों तक की उपेक्षा कराई। अंतपुर की रानियों ने अपनी-अपनी सर्मथकों, सम्बंधियों और अनुचरों के गुट बना रखे थे, जो अपनी-अपनी संरक्षिका के हित में लगे रहते थे। इसी प्रकार अयोध्या में भी दशरथ।२८७। कौशल्या और सुमित्रा।२८८। तथा केकेया।२८६। के समर्थकों ने अपने अलग-अलग दल थे जो अपनी स्वामिनी को सदैव ध्यान रखते थे। इस प्रकार अतःपुर में कूटनीतिक चालों की वजह से सारे कोशल प्रदेश में राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक संकट ही नहीं उत्पन्न हुआ था बस राजा का अन्तकाल भी समीप आ गया था। इस लड़ाई से राष्ट्र के राजनैतिक जीवन पर दुष्प्रभाव पड़ता था।

इस प्रकार माना जाता है कि बहुपत्नी प्रथा की बजाय एक पत्नी व्रत महान आदर्श के रूप में माना जाता था। इसका ज्वंलत उदाहरण राम का है। अंधमुनि ने दशरथ के हाथों मारे गये पुत्र की पितृ सेवा का पुरस्कार इस आर्शीवाद से दिया कि तुम दिव्य लोको को प्राप्त करो, जहाँ एकपत्नी व्रत का आचरण करने वाले प्रयाण करते है।२६०। रामायण में एक-दो स्थलों पर राम की अनेक पत्नियाँ होने का अनुमान लगा लेती है। कैकेयी के कान भरते समय मंथरा ने राम की उन परमाः स्गियः (श्रेष्ठ स्त्रियों) का उल्लेख किया है, जो उनके राज्याभिषेक से हर्षमय हो उठी थी।२६१। किन्तु कवि ने सीता के अतिरिक्त किसी स्त्री से विवाह का कोई संकेत नहीं मिलता। सीता भी राम के वन गमन के समय अपने

ऐसे पति की पत्नी बताती थी जिसने दूसरी स्त्री से विवाह नहीं किया है। मंथरा का कथन यहाँ पर गलत है। उसने सोंचा कि राम भी अपने पिता की तरह विवाह कई स्त्रियों से कर लेगें। पर राम अपने समय के दास नहीं थे। न च कालवशनुगः। परन्तु परम स्त्रियाँ जो राम के लिये वंदनीय थी। इसका अभिप्राय सीात की दासियाँ और सखियों से भी हो सकता है। (क्योंकि जनक ने सीता के साथ कई सहचरी कन्यायें भेजी थी)।

सीता लंका में सोचा करती थी कि मेरे मरने के बाद राम अपना व्रत समाप्त (करके अयोध्या जाकर) स्त्रियों के साथ रमण करेगे।२६२। यहाँ पर रमण का अर्थ दाम्पत्य नहीं है। इसका तात्पर्य स्त्रियों के नृत्य-गान से मनोरंजन हो सकता है, जो उस समय प्रचलित था। वास्तव में ऐसा ही हुआ। सीता का प्राणात हुआ नहीं पर राम में दापत्य जीवन बिताया।

उत्तरकाण्ड में सीता के अदृश्य होने पर भी राम ने दूसरा विवाह नहीं किया, राम को अश्वमेघ यज्ञ में सीता की जरूरत पड़ने पर सोने की प्रतिमा रखी, पर दूसरी पत्नी को स्वीकार नहीं किया।२६३। रामायण के अतिरिक्त राक्षस जातियों में बहुपति प्रथा (बहुनाम एक पत्निता) के उदाहरण मिलते है। किंष्किथा में तारा, रूमा, सुग्रीव और बाली दोनों से सम्बन्ध रखा था। राम ने बाली को रूमा से अनुचित सम्बंध रखने के कारण दंड का पात्र समझा। यह प्रथा निश्चित मानी जाती थी। इसक आभास हमें पृथ्वी पार्वती प्रंसग से भी मिलता है, जिसमें पार्वती ने पृथ्वी को अनेकों की पत्नी बनने का शाप दिया था।

कुछ विद्वानों का कहना कि सीता राम-लक्ष्मण दोनों की पत्नी थीं इसकी पुष्टि उनके अनुसार, इस तीन घटनाओं से होती है-(१) वन में मरिच वघ में संलग्न राम की वाणी सुनकर जब लक्ष्मण गये, तब सीता ने उस पर लांछन लगाया कि तुम्हारी नियत राम को अपनी राह से हटाकर मुझे पाने की दिखती है।२६४। (२) लंका विजय के बाद राम ने कहा कि सीता चाहे लक्ष्मण अथवा भरत के साथ रहलें।२६५। (३) सीता को वन में राम-लक्ष्मण के साथ देखकर राक्षस ने यह अनुमान लगाया कि दोनों एक स्त्री के साथ रहने वाले पापी है।२६६।

ये तीनों बाते परिस्थिति से सम्बंधित होने के कारण सामान्य स्थिति का बोध नहीं कराती। सीता को बहुपतित्व बताने की बात तो अस्पष्ट, अपर्याप्त गलत है। क्योंकि वह एक

आदर्श नारी के रूप में उपस्थित है। सीता ने लक्ष्मण को जब वन में लांछित किया तो लक्ष्मण ने स्त्री जाति का स्वभाव ही बताया है। क्योंकि उस समय पति के प्रति आतुरता ने उसका विवेक हर लिया था।२९७। सीता ने भी दृष्टा से कहा कि मैं राम की भार्या होकर किसी दूसरे को अपना पति बनाने की इच्छा कैसे कर सकती हूँ।२९८। सम्पूर्ण रामायण में लक्ष्मण का सीता के प्रति आदरपूर्ण व्यवहार था। देवर-भाभी का रिश्ता पूज्यनीय था। सीता ने एक पत्नी व्रत की शपथ खाकर हनुमान की पूँछ की आग से शीतल होने को कहती है,।२९९। शत्रुग्रह में अपने कैदी पर विलाप करते समय, अपने पतिव्रत की सफलता के लिये रोने लगती है।३००।

प्रेम

वाल्मीकि रामायण में अनेक प्रेमीजनों के प्रति आर्कषण एवं अनुराग के विषयांक उपलब्ध हैं। रामायण में इस पक्ष को बहुत महत्व दिया जाता है। महाराज दशरथ जो एक अत्यन्त समझदार, नीतिज्ञ, कुशल राजा थे लेकिन उनकी बुद्धि भी 'काम' के प्रति वशीभूत होकर उन्हें अपनी प्रिय रानी कैकेयी के प्रति लगाव रखकर आगे का भविष्य न सोंचते हुये उनकी मति भ्रष्ट हो चुकी थी। यह सिर्फ 'काम' के कारण ही ऐसा हुआ था। राम का कहना है कि धर्म अर्थ की अपेक्षा काम को ही अधिक बलवान बताया है- काम स्वार्थधर्माभ्यां गरीयानिति मेमतिः। राम स्वंय अपने में भी काम के कारण जो उनकी पत्नी सीता की याद कराता रहता था जोकि वह अपने पति से बहुत दूर जा चुकी थी जिसको शीघ्र ही प्राप्त नहीं किया जा सकता था-

अहोकामस्य वामत्वं यों गतामपि दुर्लभाम।
स्मारषिष्यति कल्याणी कल्याणतरवादि नीम।।

रावण अपनी शत्रु-पत्नी सीता की हत्या के लिये बार-बार प्रेरित होता था किन्तु सीता के गुलाबी और चिकने तलवे, लाल-लाल नखों वाले सुडौल पै उसके काम-भाव को जाग्रत कर देते थे।३०१। और उसका रोष स्नेह से परिणित हो जाता था।३०२। कहते है कि युद्ध की तरह प्रेम भी रामायण के वीरों का उद्दाम व्यापार था, उस समृद्ध युग में नारी के प्रति पुरुषों का प्रेम अंगीभूत था। प्रणय क्रीणाओं में स्त्रियों और पुरूषों की स्वरथ, स्वाभाविक अभिरुचि रहती थी।

रावण के रनवास में उसकी रानियों के सौंदर्य का अनुपम दृश्य था। कुछ सुंदरियां सुरा पान, काम क्रीड़ा और नृत्यादि के कारण रंग-बिरंग वस्त्रों, पुष्पहारों से सजी हुयी ढलती हुयी रात में नींद से सचेत हो रही थी। यह मान्यता प्रचलित थी कि युद्ध में वीरगति पाने वाले सैनिकों का स्वर्ग में अप्सराएं प्रेमपूर्वक स्वागत करती है। मृत वाली को सम्बोधित करते हुये तारा ने कहा कि अब तो आप रूप यौवन से इठलाती काम-कला में प्रवीण अप्सराओं के चित्त को लुभाया करेंगे-

रूपयौतनदृप्तानां दक्षिणानां च मानद।

नूनमप्सरसामार्य चिन्तानि प्रभाथिष्यसि।।

दांपत्य प्रणय के नियमानुसार पुरूष ही पहले पत्नी के प्रति आर्कषण, स्नेह के लिये आगे होता है। वृद्ध महाराज दशरथ ने अपनी छोटी रानी कैकेयी के प्रति प्रगाढ़ प्रीति प्रदर्शित की थी इसीलिये कवि ने ये मार्मिक चित्रण किया है। राम के यौवराज्यभिषेक के समय, राज्य सभा को विसर्जित कर महाराज काम के वशीभूत होकर कैकेयी महल में गये तो उन्हें रानी न मिलने पर चिंता हो गयी कि मैने रानी के बिना प्रासाद में कभी प्रवेश नहीं किया था। राजा को प्रतिहारी द्वारा पता चला कि रानी कोप भवन में है तब राजा उसे मनाने के लिये गये और व्याकुल हो उठे। उन्होने उसे कटी हुयी लता, स्वर्ग से धकेली हुयी किन्नरी, देवलोक से च्युत अप्सरा, फंदे में फंसी हरिणी की तरह भूमि पर पड़ी थी जैसे कोई महागज विषैले बाण से बिंधी अपनी प्यारी हथनी को दुलारता है, वैसे ही राजा दशरथ परेशान होकर कैकेयी का स्पर्श करते हुये बोले। उनके शब्द जहाँ पति के स्नेहातिशय्य के सूचक है, वहाँ नितांत सुष्टु संबोधनों से भी ओत-प्रोत है।

राम के प्रति सीता का भी प्रबल आर्कषण था। राम लक्ष्मण से कहते है कि "वह समय कब आयेगा जब शत्रुओं को परास्त करके मैं कमलदल के समान विशाल नेत्रों वाली तथा सुंदर नितंबो से युक्त सुंदरी सीता को समृद्ध राज्यलक्ष्मी के समान देख सकूंगा। जैसे रोगी रसायन पीता है, वेसे मैं कब उसके सुंदर दांतो और ओठोवाले मुख कमल को कुछ ऊपर उठाकर पान करूंगा"। उत्तकांड में नारी के यौन आर्कषण का वर्णन रंभा के दर्शन से मोहित रावण के मुख से कराया है।

पति-पत्नी का एक दूसरे के प्रति आकर्षण और यौन सम्बंध स्वाभाविक और

अपेक्षित कृत्य है। उस पर किसी प्रकार का रोक लगाना गलत अवांछनीय माना जाता था। ऋषि विभांडक ने अपने आश्रम में स्त्रियों के प्रवेश को मना कर रखा था। उनका पुत्र पिता की कठोर निगरानी ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ रहता था। उसने सुवक होने तक किसी का दर्शन भी नहीं किया था। लेकिन निकटवर्ती अंग राज्य के लोग इसे एक अप्राकृतिक कार्य मानते थे और यही उनके अनावृष्टि, दुर्भिक्ष का कारण रहा होगा। इस स्थिति को दूर करने के लिये स्त्री–वर्णित विभांडक आश्रम के कृत्रिम वातावरण में दरार डालने की योजना बनाई गई। यह कार्य अंग राज्य की वीरांगनाओं को हाथ में दिया गया था। उनके हाव–भावों से ब्रह्मचारी ऋष्यश्रृंग डिग गये और उनका विवाह अंग देश की राजकुमारी शांता से किया गया।

रामायण का मुख्य आदर्श युगल राम और सीता का दांपत्य प्रेम है। जिस प्रकार वेद–विद्या आत्मज्ञानी स्नातक ब्राह्मण की संपत्ति होती है, उस प्रकार सीता पृथ्वी पति राम की सुयोग्य पत्नी थी।३०३। दोनों के एक दूसरे के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती थी। जैसे सूर्य से उसकी प्रभा अलग नहीं की जा सकती, वैसे ही राम से सीता।३०४। जिस प्रकार रोहिणी, चन्द्रमा, लक्ष्मी और विष्णु का–सा कीर्ति उनका सा योग था।३०५। रामायण में और भी सुखी विवाह के उदाहरण मिलते है। तारा, मंदोदरी के वितापों में जहाँ पति भक्ति प्रगाढ़ता दिखाई देती है, वहाँ उनके पतियों का हार्दिक अनुशरण भी दिखाई पड़ता है। विशेषकर राजा को रात्रि का समय ही काम–सेवा के लिये नियत होना चाहिये, प्रातःकाल या दिन का नहीं। मध्यम मार्ग का ही अनुकरण करना चाहिये। अपनी पत्नी के प्रति अंधानुराग का रामायण समर्थन नहीं करती। विरह पीड़ित राम को सुग्रीव ने सांत्वना देते हुये कहा था–"मै भी भार्या हरण के महान कष्ट से दुःखी हूँ, पर मैं न शोक करता हूँ, न धैर्य का त्याग। एक तुच्छ वानर होते हुये भी मैं उसके लिये कोई पश्चाताप नहीं करता। आप तो महात्मा, शास्त्रज्ञ, धैर्यवान है। इतना विलाप करना आपके शोभा नहीं देता।" दशरथ तो अपनी पत्नी के प्रति उनकी बुद्धि ही भ्रष्ट हो जाता है। विवाह की सफलता प्राप्ति में ही मानी जाती थी (रतिपुत्रफला दारा)। गृहस्थ आश्रम को स्वीकार करने वाला प्रत्येक स्नातक यह जानता था कि विवाह तो वंश चलाने की एक पवित्र पीढ़ी है। चित्रकूट पर राम ने भरत से पूछा था कि तुम्हारी पत्नी 'सफल' है? अर्थात् रति और संतति

से युक्त है।

वाल्मीकि ने विवाहित प्रणय को ही श्रेष्ठ स्थान दिया है। तथा अविवाहित, असंगत प्रेम की निंदा और की है। अपने पकृत स्वभाव के कारण पुरूष नारी का उपभोग करना चाहता है, उससे विवाह करना नहीं, जैसा राजा दंड और मुनि कन्या अरजा की कहानी से ज्ञात होता है। वाल्मीकि ने 'स्वदारनिरत'- अपनी पत्नी में अनुरक्त, होने का आग्रह किया है। पर स्त्री विष मिश्रित भोजन के समान अग्रास है।३०६। सीता ने राम का, परस्त्री-संसर्ग से दूर रहने और अपनी स्त्री से प्रेम करने के उपलक्ष्य में, अभिनंदन किया था। मारीच ने परस्त्री-संसर्ग से बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं माना था।३०७। जो पुरूष चंचल चित्त के कारण अपनी स्त्री से संतुष्ट नहीं रहता, उस पापात्मा की पराई स्त्रियाँ बहुत फजीहत करती है।३०८। दशरथ की मृत्यु हो जाने पर उनकी रानियाँ वैसे ही विलाप करने लगीं, जैसे गजराज के वघ पर उनकी वधुयें क्रंदन करती थी।३०६। राम से वियुक्त सीता अपने सहचर से बिछुड़ी हथिनी की भांति थी।३१०। रावण ने सीता की पहरेदारनियों को आज्ञा दी कि तुम सब सीता को मेरे वश में ले आओ। पति-पत्नी दोनों में प्रेम की बहुलता होती है, जैसे राम-सीता के लिये बताया गया है।

प्रशासन

रामायण में किसी भी गणतंत्र का पाया जाना नहीं दिखता है तत्कालीन शासन व्यवस्था राजतंत्र थी। राजा का पद कुल-परंपरागत होता था। क्योंकि इक्ष्वाकु-वंशावली से पता चलता है कि राम से कई सीढ़ियाँ पहले और बाद में भी राजपद आनुवंशिक था। नये राजा बनाने के लिये (लोकसभा) सभा की अनुमति चाहनी पड़ती थी। भावी राजा पहले वर्तमान राजा तथा मंत्रिमंडल द्वारा प्रस्तावित किया जाता तत्पश्चात् सभा द्वारा निर्वाचित किया जाता था। सामंत राजाओं की भी सहमति ली जाती थी।३११। राम को युवराज बनाने से पहले दशरथ ने अपनी सभा की स्वीकृति प्राप्त करली थी।३१२। वाली की अनुपस्थित में मंत्रियों ने मिलकर सुग्रीव का राज्यभिषेक किया था।३१३। उत्तराकांड में राजा नृग ने प्रजाजनों, नैगमों, मंत्रियों तथा पुरोहित को बुलाकर उनके समक्ष अपने पुत्र को उत्तराधिकारी बनाने का प्रस्ताव किया था।३१४। चित्रकूट पर भरत ने राम से निवेदन कर कहा कि आप यहीं प्रजाजनों, ऋत्विजों तथा पुरोहितों के हाथों अपना अभिषेक करा लीजिये।३१५। इन

वाक्यांशों से पता चलता है कि तत्कालीन राज्यतंत्र में भी लोकतंत्र का पुट देखने को मिलता है।

युवराज-पद का अधिकारी बड़ा पुत्र ही होता था, लेकिन वो योग्य, कुशल, गुणी, धर्मात्मा भी हो। जो अयोग्य, दुष्ट पुत्र होता था उसे अपने अधिकार से अलग कर दिया जाता था। प्रजा के आग्रह पर राजा सगर ने अपने पुत्र का राज्याधिकार छीनकर उसे देश से निर्वासित कर दिया था। राजा ययाति ने बड़े पुत्र यदु को राज्य न देकर कनिष्क पुत्र पुरु को राज्य दिया था। पुत्र के अभाव में राजा का भाई युवराज बनाया जाता था। राम के समय में भरत को युवराज बनया गया, क्योंकि उस सयम राम के कोई पुत्र नहीं था। राजा की मृत्यु पर युवराज पद पर अभिषिक्त किया गया राजकुमार ही राज्यारूढ़ होता था। जीवित राजा के सामने अभिषेक इसीलिये किया जाता था कि मरने के बाद लड़ाई-झगड़ा न हो। राजा की मृत्यु होने पर सुवराज के अभिषेक के लिये पुत्र अनुमति नहीं लेनी पड़ती थी। दशरथ की मृत्यु हो जाने पर जबकि राम-लक्ष्मण वन जा चुके थे तथा भरत, शत्रुघन दूर केकय देश में थे, राजकर्ताओं ने मिलकर विचार विमर्श किया और भरत की तुरन्त बुलवाया। यदि किसी कारण वश नये राजा की नियुक्ति संभव न होती, तो राज्य का शासन सूत्र एक प्रबंधक को सौंप दिया जाता था। इसी व्यवस्था के अनुसार भरत ने चौदह वर्ष तक अयोध्या के राज्य को एक न्याय (ट्रस्ट) मानकर उसका शासन-प्रबंध किया था। वनवास समाप्ति कर जब राम अयोध्या गये तब भरत ने उन्हें राज्य की बागडोर सौंप कर कहा कि आप खजाना, कोठार, सेना का निरीक्षण कर लें।

राजा को अपने हित को त्याग कर जनहित का विशेष ध्यान रखता होता था। सगर-पुत्र असमंज का निर्वासन तथा सीता का परित्याग जनमत की बहुलता का परिचायक है। राजा को धर्म के अनुसार न्याय करना होता था। चारों वर्णो को 'स्वकर्मनिरत' रखना उसका लक्ष्य था। बलि-षड्भाग (प्रजा की आय का छठा भाग) कर के रूप में राजा मिलता था पर इससे कहीं ज्यादा खर्च राजा को असमय की स्थिति में करना पड़ता था जैसे, दुर्भिक्ष महामारी होने पर, कहीं संघर्ष, अशांति या अकाल-मृत्यु होने पर। राजा प्रजा का निर्णायक होता था, वैसे ही प्रजा राजा की निर्णायिका थी। राजा के परिवारिक तथा राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक व्यापार पर प्रजा की दृष्टि रहती थी, क्योंकि उसी के सहारे राष्ट्र का हित होता था।

राजा का आदर्श जीवन होने पर तथा राजा प्रजा के बीच मधुर सम्बंध होने पर ही राष्ट्र का अभ्प्रदय हो सकता है। बाली के अनुसार, 'इंदियों का संयम, मन का निग्रह, क्षमा, धर्म, धैर्य, पराक्रम और अपराधियों को दण्ड देना राज्य को गुण है, राजा को स्वेच्छाचारी नहीं होना चाहिये, नीति और विनय, दंड और अनुगृह इनका अविवेक पूर्वक उपयोग करना उनके लिये उचित नहीं।३१६। राज-काज में राजा को सक्रिय योगदान चाहिये।३१७। जब सुग्रीव ने राज्य का कार्य मंत्रियों को सौंप दिया, और स्वंय देखभाल तक नहीं की, तब हनुमान ने उन्हें उलाहना देना प्रारम्भ किया था। लक्ष्मण ने राम से कहा कि- एक अपराध के लिये अनेक का संहार करना अनुचित है।

राजा शासन की व्यवस्था ठीक किये बिना राज्य छोड़कर नहीं जा सकता था। गंगावतरण के आरव्यान में कहा गया है कि तपस्या हेतु वन प्रस्थान करने से पूर्व राजा भगीरथ ने राज्य का प्रबंध मंत्रियों के सुपुर्द कर दिया था। जब वह पितरों की श्राद्ध विधिपूर्वक कर चुके थे तब लौटकर राज्य को संभाला था। उत्तरकांड में राम ने भी लक्ष्मण, भरत को अयोध्या का राज्य भार सौंपकर ही शंबूक की खोज में गये था। भरत के चित्रकूट आने पर राम ने (जो तब तक दशरथ मृत्यु से अनभिज्ञ थे) पूंछा कि तुम पिता के जीवित रहते (उनकी आज्ञा के बिना) यहाँ कैसे आ गये हो।३१८। पुत्र को राज्य सौंपकर अवकाश-ग्रहण की अनुमति सभा से प्राप्त करनी पड़ती थी।

अयोध्या कांड की १०० वें सर्ग में राम ने भरत से जो राजनीति विषयक प्रश्न पूछें थे, उससे पता चलता है कि राजाओं से कैसे आचार-व्यवहार की आशा की जाती थी। राज्याभिषेक का समस्त प्रबंध राजपुरोहित के हाथों में रहता था। सभा के सदस्य प्रमुख व्यापारी, नागरिक, श्रमिक संघों के प्रधान, सामंत राजा, मंत्रिजन, सैनिक अधिकारी, राजकीय कार्मचारी, इन सबसे आशा की जाती थी कि ये संस्कार आरंभ होने से पूर्व राजप्रासाद में आकर अपना-अपना आसन ले लें। आदर्श शासन में सभी देश की जनता समृद्धिशाली होती थी। राजा दशरथ के शासन-काल में सारे अयोध्यावासी प्रसभ, धर्मात्मा धन-धान्य संपन्न तथा निर्लोभ थे।

राज्य का शासन तंत्र-सभा, मंत्रि परिषद, शसनाधिकारी (तीर्थ) थे। इन तीनों की सहायता से राजा शासन संचालन करते थे। राम और दशरथ के युग की राज्य सभा,

लोकसभा या धारासभा 'परिषद', समिति, संसद, या केवल सभा कहलाती थी। आज के युग में 'पार्लियामेंट' या 'असेंबली' का जो महत्व है, कुछ-कुछ वैसा ही उस समय सभा या परिषद का था।जब वशिष्ठ ने दशरथ का उत्तराधिकारी चुनने के लिये अयोध्या की सभा का विशेष अधिवेशन बुलाया, तब उसमें भरत के मामा युधाजित भी आमंत्रित किये गये थे।

शासन सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर सभा का परामर्श लिया जाता था। जब दशरथ ने वृद्धावस्था के कारण राम को राज्य भार सौंपना चाहा, तब उन्होंने अपनी सभा का एक अधिवेशन बुलाया था। उनकी मृत्यु बाद नया राजा चुनने के लिये अयोध्या की सभा एकत्रित हुयी थी। भरत के हाथों दशरथ की अन्त्येष्टि हो चुकने के बाद राजपुरोहित वसिष्ठ ने सभा का पुनः एक अधिवेशन बुलाकर प्रजा की ओर से उन्होने कैकेयी दशरथ की इच्छानुसार, भरत को अयोध्या की राजगद्दी स्वीकार करने को कहा था।

रामायण में लोक-सभा की गतिविधि पर एक ओर हमें दशरथ जैसे वैधानिक शासन की सभा के शांतिकालीन अधिवेशन का वर्णन मिलता है, तो दूसरी ओर रावण जैसे एकच्छत्र और निरंकुश सम्राट की परिषद के युद्धकालीन अधिवेशन का भी रोचक वृतान्त प्राप्त होता है। इन अधिवेशनों की तुलना यदि आधुनिक संसद की कारवाई से की जाये, तो दोनों में बहुत कुछ समानता दिखाई देगी। सभासदों को उपस्थित होने की सूचना दूतों या संदेशवाहक द्वारा पहुँचाई जाती थी। राजा की अनुपस्थित में सभा का अधिवेशन पुरोहित या अमात्यजन भी बुला सकते थे। बाहर के सदस्यों के लिये राजस्थानी में निवास स्थान का प्रबंध होता था।

दशरथ ने सभासदों के समुख खडे होकर उच्च स्वर से संम्बोधित किया और अध्धवेशन बुलाने का कारण बताया कि मैने दीर्ध काल शासन संबन्धी योग्यता के साथ किया किन्तु मैं अब वृद्धावस्था के कारण शासन -भार से मुक्त होना चाहता हूँ । दशरथ ने यह प्रस्ताव रखा कि मैंने पुत्र राम जो मुझसे योग्यता में बढ़े-चढ़े हैं उन्हे युवराज बनाया जाये यदि आप लोगो को ये प्रस्ताव रुचि कर करे तो आप लोग मेरे इस प्रस्ताव को स्वीकार कीजिये या अधिक उपयुक्त प्रस्ताव रखे-

यधप्येषा मम पीतिर्हि तमन्यद्धिचिन्तयताम।
अन्या मध्यस्थाचिन्ता तु विमर्दाभ्यधिकोध्या।।

इस प्रकार राजा को प्रस्ताव रखने का मार्ग अधिकार था। अंतिम चुनाव या निर्वय केवल सभा को करना होता था। सभा में प्रस्ताव रखने से पूर्व राजा को अपने मंत्रिपषिद से विचार विमर्श करना चाहिए । दशरथ ने प्रस्ताव रखकर पता लगा लिया था। कि प्रजा उनके प्रस्ताव से कितनी सहमत होगी

निश्चित्य सचिवैः साधं यौवराज्य ममन्यत

सभा ने सर्वसम्मत ढंग से राम को ही दशरथ के उत्तराधिकारी बनने के योग्य बताया है। राजा दशरथ ने सभा का निर्णय सुनकर प्रसन्नता प्रकट कर सभा के प्रति आभार प्रदर्शित किया। मंत्रियो को आदेश किया की निर्णय को कार्यन्वित करने के लिए शीघ्र कार्यवाही की जाये। आश्चर्य की बात है कि दशरथ ने इस निर्णय को क्रियान्वित नही किया-राम युवराज न होकर वन जाने को हो गये एक रानी की माँग अधिक प्रबल सिद्ध हुई। राजा के वचन के माँगे जनता की माँग की अवहेलना की गयी। इससे प्रमाणित होता है कि सभा की अनुमति बहुत कुछ औपचारिक होती थी। तथा असाधारण परिस्थितियो को राजा का ही निर्णय अंतिम होता था। रावण के अधिवेशन में एक सभा या परिषद थी जिससे वह संकट काल में सलाह लिया करता था। उसकी सभा में सैन्य अधिकारियों मंत्रियो बन्धु-बान्धवों की अधिकता थी । अध्यक्ष स्वयं राबण था। रामायण में रावण द्वारा सभा के दो अधिवेशन बुलाने का वर्णन मिलता है। एक तो हनुमान द्रारा लंका के अग्निकांड के पश्चात दूसरा लंका पर राम का आक्रमण होने के समय प्रथम अधिवेशन में रावण ने सभा सदों को पहले यह सूचना दी कि हनुमान ने लंकापुरी का विध्वंस कर दिया है। वे युद्ध के प्रेमी थे उन्होने रावण को यही सुझाया कि हनुमान द्रारा किये गये अपमान का बदला अवश्य लिया जाये और सीता को न लौटाया जाये । केवल विभीषण ने विपरीत सुझाव दिया कहा कि आप मेरे भाई हैं । मैं आपसे विनय करता हूं और अपने हित के लिए सही बात कहता हूं कि राम को उनकी पत्नी लौटा दीजिए । विभीषण की बात सुनकर रावण ने सभा भंग कर अपने महल में चला गया। राक्षस -के अधिवेंशन और दूसरी बैठक में राजकीय वैंभव का वर्णन मिलता है। रावण ने अपने भाषण में सभासदों की पूर्व सेवाओ के लिए धन्यवाद दिया -

आप सभी की सहायता से मैने देवासुर-संग्राम में विजय प्राप्त की थी सीता हरण

की सूचना रावण ने किसी को नहीं बतायी थी, अब रावण ने याचना भरे स्वर में कहा कि "ये दोनों राजकुमार सीता का पता पाकर सुग्रीव आदि वानरों को साथ लिये समुद्र के उसपार आ गये है। आप लोग कुछ उपाय बताइये जिससे ये लोग मारे जाये और सीता को न लौटाना पड़े। मेरी दृष्टि में सीता के समान तीनों लोकों में कोई स्त्री नहीं है। उसकी सुन्दरता गुणों पर मैं मुग्ध हूँ।"

रावण की बात सुनकर कुंभकर्ण को गुस्सा आया कि सीता को हरने से पहले परामर्श क्यों नहीं किया क्या गलत कार्य कर डाला"। फिर भी हम आपके शत्रुओं का संहार करके सब ठीक करूँगा।"

विभीषण ने रावण अपने बड़े भाई को सहाल दी की आप क्षमा, याचना के साथ राम को सीता लौटा दें। विभीषण के बाद प्रहस्त, इंद्रजित आदि लंका सभासदों ने रोम के विरुद्ध घोषणा करने का समर्थन किया और विभीषण की आलोचना की। विभीषण पर यह आरोप लगाया है कि शत्रु नें तुम्हें रिश्वत दी है। इन सब आरोपों से विभीषण को अपमानित होना पड़ा विभीषण इसी कारण सभा भवन छोड़कर चला गया। इस प्रकार रावण की सभा में कोई विरोधी दल नहीं था, फिर भी कुंभकर्ण और विभीषण ने विरोधी भाषण एक निरंकुश शासन में प्रजातांत्रिक पद्धति का आभास देते हैं। अयोध्या में एक गुप्तचर विभाग था जो आधुनिक समय के सी० आई० डी० विभाग का समकक्ष माना जा सकता है। गुप्तचरों को 'चर', 'चार', 'प्रणिधि', 'चारक' कहा जाता था। भारत के प्राचीन राजनीतिकारों ने चरों को राजतंत्र के लिये अनिवार्य बताया है। दशरथ के मंत्रिजन चरों द्वारा शत्रुओं की गति-विधि से अपने को अवगत रखते थे। राम ने भरत से चित्रकूट पर पूछा था कि तुम चारणों द्वारा अपने मंत्रियों और अधिकारियों की गति-विधि से सुपिरिचित रहते हो न।

गुप्तचर दो प्रकार के होते थे- नागरिक गुप्तचर और सैनिक गुप्तचर। उत्तरकांड में जिन जासूसों से राम को सीता विषयक लोकापवाद की सूचना मिली थी, वे नागरिक गुप्तचर ही थे। सुग्रीव ने भी हनुमान को गुप्चर बनाकर राम-लक्ष्मण का मनोभाव जानने के लिये भेजा था। सैनिक गुप्तचर सदा राजभक्त, वीर और निर्भय बने रहना पड़ता था।३२०। शत्रु सेना का समाचार जानने के लिये राजा उन्हीं पर निर्भर रहते थे। लंका के सुरक्षा साधनों का पता लगाने के लिये राम ने विभीषण के अमात्यों से जासूसी कराई थी।

तथा पौर और श्रेणी मुख्य जैसी स्वायत्त समितियां। राजधानी की व्यवस्था 'पौर' समिति के अधीन थी। नगर व्यवस्था को 'पौरकार्य' कहते थे। राजा नगर प्रबंध समिति का अध्यक्ष होता था। क्षत्रिय सैनिक अधिकारी, वैश्य व्यापारी कारीगर जो विभिन्न उधोग-धंधे में लगे हुये थे।

उत्तरकांड में न्यायाधीशों के लिये 'धर्मपालक' शब्द आया है। भरत ने अपने माता कौशल्या से कहा था कि राम को वन भेजने वाले को वही पाप लगे जो पक्षपात करने वाले न्यायाधीश को लगता है।३२१। राम-राज्य के सर्वोच्च न्यायालय की गति-विधि का परिचय उत्तरकांड से मिलता है।३२२। न्यायालय की बैठक सभा-भवन में प्रतिदिन प्रातःकाल होती थी जब राजा अपने कार्यो से निवृत हो जाते थे। जिस आसन पर बैठकर राजा मुकदमों का फैसला करता था, वह 'धर्मासन' कहलाता था।

राजा का यह कार्य प्रबंध था कि प्रत्येक कार्य थी (शिकायत लेकर आने वाला व्यक्ति) न्यायालय में तुरन्त प्रवेश पा सके। राजा नृग ने अपने द्वार पर दो ब्राह्मण कार्याथियों को बहुत देर तक ठहराये रखा था। इस अपराध के लिये नृग को शाप का भागी बनना पड़ा। राम के पूर्वज राजा निमि ने भी ऐसा ही अपराध किया था। जब वसिष्ठ अपनी शिकायत सुनाने उनके यहाँ आये, तब निमि सो रहे थे, सुनवाई तुरन्त होने के कारण वसिष्ठ ने उनको शाप दे दिया। राम-राज्य के न्यायालय इस बात के लिये प्रसिद्ध थे कि वहाँ निष्पक्ष और तात्कालिक न्याय प्राप्त होता था, राजा या न्यायाधीश के समक्ष तुरन्त उपस्थित होने की अनुमति मिलती थी। और स्टोप, फीस या वकीलों का कोई बखेड़ा नहीं था। इन अपराधों के लिये दंड भी होता था प्राणदंड भी होता था। फांसी के समय सवेरे का था। लंका में रोती हुयी सीता ने रावण के लिये कहा था। कि दो माह की अवधि पूरी होने पर रावण मुझे वैसे ही मौत के घाट उतार देगा, जैसे रात्रि के अंत में चोर का वध किया जाता है।

राजमार्गों की व्यवस्था के लिये पुलिस-कर्मचारियों की नियुक्त का संकेत मिलता है। लंका के रास्ते में हनुमान ने विभिन्न शस्त्रास्त्र धारण किये हुये सैनिकों को देखा था।

स्त्रियों की स्थिति

नारी परिवार की धुरी है, उसकी उत्कृष्टता निष्कृष्टता पर गृहस्थ का उत्थान-पतन

निर्भर रहता है। पुरुष तो सहायक मात्र है वह साधन जुटाता और सहयोग देता है। नारी गृहलक्ष्मी है। उसे घर के देवालय में अवस्थित प्रत्यक्ष देवी माना जाना चाहिये। प्रत्येक सद्गृहस्थ का कर्तव्य है कि माता, भगिनी, पत्नी, कन्या के जिस रूप में नारी रहे उसे स्वस्थ, प्रसन्न, शिक्षित, स्वालम्बी बनाने में कमी न रखें रामायण काल की नारी की स्थिति जानने के लिये वाल्मीकि जी ने प्रचुर सामग्री प्रस्तुत की है शास्त्रों में नारी की महत्ता, गरिमा का वर्णन करते हुये कहा गया है कि नारी ब्रह्मविद्या है, श्रद्धा है, शक्ति है, पवित्रता है, कला है, जो इस संसार में सर्वश्रेष्ठ है वह नारी ही है। नारी मूर्तिमान, कामधेनु है, अन्नपूर्ण है, सिद्धि है, ऋद्धि है, और सब कुछ है जो मानव प्राणी के समस्त आभावों, कष्टों, संकटों का निवारण करने में समर्थ है। यदि उसे श्रद्धासिक्त सद्भावना से सीचा जाये तो यह सोमलता विश्व के कण-कण को स्वर्गीय परिस्थितियों से ओत-प्रोत कर सकती है। नारी को परिवार का हृदय कहा गया है। वह अपनी कोमलता सुशीलता, संवेदना, करूणा, स्नेह, ममता आदि विशेषताओं के कारण परिवार में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। ''पुरुषाणंसहस्रं च सतीनारी समुद्धरेत्।'' अर्थात् सती स्त्री अपने पति का ही नहीं अपने उत्कृष्ट आचरण से सहस्रो पुरुषों का उद्धार या श्रेष्ठता की दशा में मार्गदर्शन करती हैं।

रामायण की अभिरूचि भी नारी पात्रों पर ही केन्द्रित रहती है। ये हिन्दू पाँच कन्याओं तथा महारानियों (अहिल्या, द्रौपदी, सीता, तारा, मंदोदरी) में से चार रामायण से ही प्रसूत है केवल द्रौपदी ही महाभारत से संबद्ध है। रामायण में नारी का चित्रण ऐसे ढंग से चित्रित किया गया है कि वह पुरूष प्रधान काव्य की बजाय एक नारी प्रधान रचना बना देता है। जहाँ महाभारत को 'द्यूत प्रसंग' और भागवत को 'चोर-प्रसंग' की संज्ञा दी जाती है, वहाँ रामायण को 'स्त्री-प्रसंग' के नाम से यर्थाथ ही संबोधित किया जाता है। रामायण में नारी का कई दृष्टियों से अध्ययन किया गया है। कन्या के रूप में, पत्नी के रूप में, माता के रूप में। समाज में उसका विश्लेषण इन तीनों दृष्टियों से ही किया होगा। इन तीनों में सबसे अधिक महत्व माता के रूप में माना जाना चाहिये क्योंकि यदि जननी न होती, तो कहाँ से सृष्टि का सम्पादन होता, कैसे समाज, राष्ट्र की रचना होती। यदि माता न होती तो बड़े-बड़े वैज्ञानिक, प्रकाण्ड पंडित, कलाकार, अप्रतिम सहित्यकार, दार्शनिक, मनीषी, महात्मा पुरुष किस की गोद में खेल-खेल कर धरती पर पर्दापण करते। नारी व्यक्ति, समाज,

राष्ट्र की जननी ही नहीं, वह जग जननी है।

उदाहरण- जैसा साँचा होता है, वैसे ही उपकरण आभूषण ढलते है। कुम्हार अपने चाक पर उगुँलियों के कौशल से गीली मिट्टी को किसी प्रकार भी के बर्तन में बदल सकता है, उसी प्रकार नारी अपने पिता, परिवार के छोटे-बड़े सभी सदस्यों को इच्छानुसार ढाल सकती है। यह भी बात चरितार्थ करती है कि बच्चे आसमान से नहीं उतरते। बल्कि वे माता के शरीर के ही एक अंग है। उनमें विधमान चेतना का सिंचन, परिपोषण, संस्कारों का अभिवर्धन माता के द्वारा ही होता है। बौद्धिक ज्ञान तो पाठशालाओं में भी दिया जा सकता है। किन्तु व्यक्तित्व को उत्कृष्टता के ढाँचे में ढालने का पुनीत कार्य परिवार की प्रयोगशाला में ही संभव है। इसमें भी नर से बड़ी नारी की ही भूमिका है। उत्तरकांड में ऐसे कई स्थिति पर विवाह योग्य कन्या की आयु देखकर उनके माता-पिता चिंता में अभिव्यक्त है। सीता जी कहती हैं कि मेरे विवाह योग्य होने पर मेरे पिता जनक वैसे ही चिंताग्रस्त हो गये थे- जैसे निर्धन व्यक्ति अपनी स्वल्प सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर चिंतित हो जाता है कन्या का पिता चाहे इंद्र का ही समकक्ष क्यों न हो समान और निम्नश्रेणी वाले लोगों से अनादर ही प्राप्त होता है।३२३। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि परिवार में कन्या का जन्म कष्टकारी अप्रसन्नता का सूचक माना जाता था। क्या लोग इस चिंता से मुक्त होने के लिये अपनी नवजात कन्याओं को त्याग तो नहीं देते थे। क्या इस सम्बन्ध में वाल्मीकि की उपमा विचारणीय है। कि रावण की कैद में अपने दुर्भाग्य पर सीता विलाप करती हुयी सीता की उपमा एक ऐसी बालिका से देते है, जो निर्जन वन में छोड़ दी जाने के कारण क्रंदन कर रही हो- कान्ता रमध्ये विजने विसृष्टा बालेव कन्या विललाप सीता।

क्या वाल्मीकि के समय में नवजात कन्याओं के वन में त्याग दिये जाने की घटनाएँ भी हो जाया करती थीं? कहते हैं कि जनक यज्ञ क्षेत्र में हल चला रहे थे, तब उन्हें पृथ्वी पर एक कन्या पड़ी मिली, उसके आस-पास उसका कोई अभिभावक नहीं था। इससे संकेत मिलता है कि सीता किसी की परित्यक्ता कन्या थी, जो संयोगवश जनक को पड़ी मिली पौराणिक कथाओं में सीता को धरती फाड़कर निकली थी- अहं किलोत्थिता भित्वा जगती नृपते! सुता। किन्तु यह बात तर्कयुक्त नहीं समझ में आती।

दूसरी ओर यदि कन्या को परिवार में उसके पति किये जाने वाले व्यवहार को

देखा जाये तो स्पष्ट है कि कन्या का पालन-पोषण बड़े अच्छे प्यारे ढंग से किया जाता था। पुत्री अपने पिता को प्यारी थी। गुणवती कन्या का प्राप्त होना दीर्घ काल की तपस्या से ही संभव हैं जनक की बड़ी रानी ने सीता को बड़े प्यार दुलार से पाला-पोषा था।

कन्या का विवाह बड़े विचार-विमर्श के बाद सबकी सलाह लेकर ही किया जाता था। सीता के विवाहार्थ राजा जनक ने विशाल स्वयंवर का आयोजन किया, और अनेक राजाओं से शत्रुता मोल ली थी। इसलिये कि उनकी पुत्री के लिये विश्व का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर उसका पति बने। इससे स्पष्ट होता है कि कन्या पिता के लिये भार नहीं थी। सीता हरण हो जाने के बाद राम बड़े परेशान थे कि यदि राजा जनक मुझसे समूह में बैठकर सीता की कुशल पूँछेगें तो मै क्या जवाब दूँगा।३२४। किसी भी मांगलिक कार्यों में कन्याओं का दिखना शुभ माना जाता था। राम वन से लौटकर अयोध्या आ रहे थे तब कुआंरी कन्याओं को उनके आगे-आगे रखा गया था (कन्या.... रामस्य पुरतो ययु,)। राम के यौवराज्याभिषेक के समय आठ कन्याऐं उपस्थित थीं (अष्टौ च रुचिरा कन्या,)। उस समय कन्याओं ने उन पर जल छिड़का था। कहते है कि जनक ने जिस समय सीता को पाया था उसी समय से उनके सुख में वृद्धि होने लगी थी।३२५। पिता के लिये कन्यादान एक पुण्य कर्तव्य माना गया था, पुत्री के लिये वर प्राप्त करना पिता का धार्मिक, अनिवार्य कर्तव्य था। जबकि तारा को भी मंत्रों की जानकारी थी (मंत्रवित्)। इसके साथ-साथ कन्याओं को नैतिक शिक्षा भी दी जाती थी।

स्त्रियाँ सैन्य संचालन में भी निपुण थी जैसे- कैकेयी देवासुर, संग्राम में जब राजा युद्ध में शरीर जर्जर हो गया, चेतना लुप्त हो गई, तब कैकेयी ने युद्ध भूमि से दूर ले जाकर उनके प्राण बचाये थे। रथ चलाने में तथा प्राथमिक चिकित्सा में निपुण मालूम पड़ती है। रामायण में बलिष्ठ स्त्रियों का भी संकेत मिलता है। अश्वमेघ यज्ञ में कौशल्या ने अश्व की बलि चढ़ाने का कार्य किया और तलवार के तीन वार करके घोड़े का शिरोच्छेदन किया था।३२६। लंका में स्त्रियाँ पहरेदारी किया करती थी। सीता की शस्त्रधारिणी महिला सैनिक ही थी। कन्या विवाह के समय अपने पिता के घर को छोड़कर पति घर आगमन करती थी (उघटे पितृगृहात् पतिगृहम इतिवधूः)। इस समय उसके लिये एक अजीबोगरीब नया वातावरण मिलता था। सास अपनी बहू को सिखाती थी कि पति के साथ किस तरह का

व्यवहार करना चाहिये। रामायण में सास-ससुर पुत्रवधू के बीच बहुत अधिक स्नेहतापूर्ण संबंध दिखाया गया है। सुख-दुःख सभी अवस्था में पत्नी को पति के साथ रहना चाहिये। ऐसी कौन स्त्री होगी जो अपने पति का सत्कार नहीं करेगी?........ जो स्त्री अपने पति की सेवा नहीं करती, उसे पापियों की तरह गति मिलती है। जो स्त्री स्वामी सेवा में लगी रहती है। जो स्त्री स्वामी सेवा में लगी रहती है, उसे उत्तम स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

रामायण में पतिव्रता, साध्वीस्त्रियों की भी चर्चा की गयी है। देवराज की पत्नी शची अपने पतिव्रता के लिये प्रसिद्ध है। रोहिणी, सावित्री, दमयंती जो एक क्षण भी अपने पति से अलग नहीं रहती थी। बुरे समय में भी उन्होंने पति का साथ दिया था। सीता को देखिये जो रावण के चंगुल में फँस जाने के कारण गन्दे मलिन वस्त्र पहने हुये, दुख-संतप्त, एकाग्रचित से राम के ध्यान में लगी हुयी जो पति-प्रेम के कारण ही ओर अपना ध्यान लगाये हुये थी। सीता ने पति प्रेम के कारण ही सब प्रकार के सुखों को त्यागकर वन में चली आयीं थी। और रावण ने सीता को बहुत प्रलोभन दिया कि मेरे से शादी कर लो लेकिन सीता ने इस प्रस्ताव को भी ठुकरा दिया था। रावण ने सीता हमेशा तिरस्कार करती रहती थी।

रामायण में दुष्ट पत्नी को त्यागने की अनुमति दी गयी है। ऐसी स्त्रियों को दो भागों में विभाजित किया गया है। पहला वर्ग वह है जो अपनी दुश्चरित्रता के कारण पति द्वारा त्यागी, एक निश्चित अवधि तक प्रायश्चित करने के बाद पुनः ग्रहण कर ली जाती है। जैसे- गौतम पत्नी अहल्या का है, जिसने देवराज इंद्र के साथ गुप्त रूप से रमण किया था।

गौतम के वेश में आने पर इन्द्र को अहल्या ने पहचान लिया था, पर "दिव्य रति" के लोभ के कारण वह जान-बूझ कर अपराधिनी थी। उसकी इस बात को लेकर गौतम ने फटकारते हुए उसे आश्रम से निकाल दिया। उसके अनुनय-विनय करने पर उसे इस शर्त पर ग्रहण करना स्वीकार कर लिया कि वह एकान्त में रहकर दीर्घकाल तक प्रायश्चित, तपस्या करे और कौशल राजकुमार उसे निष्कलंक मानकर उघार ले। तत्पश्चात् अहिल्या ने लोगों की दृष्टि से दूर रहकर अनेक वर्षों तक तपस्या की। जब राम विश्वामित्र के साथ आये तब अहल्या ने उनका विधिवत् अतिथि-सत्कार किया। राम ने उसकी अभ्यर्चना को स्वीकार करके समाज में पुनः प्रतिष्ठा का मार्ग खोल दिया। इस प्रकार अहल्या का अपने पति से पुनः समागम हुआ।

इसी प्रकार सीता का भी उदाहरण है, राम ने सीता को लंका विजय के बाद अपनाने से इंकार कर दिया था। यह परित्याग चरित्र में आशंक तथा लोकापवाद के कारण हुआ था। अग्नि शुद्धि की परीक्षा के बाद राम ने उनको मुक्त हृदय से स्वीकार कर लिया था। दूसरे वर्ग में वे स्त्रियाँ हैं, जिनका पति हमेशा के लिये परित्याग कर देते हैं। कैकेयी की माता ने केकयराज के प्रति स्वार्थपरायण पत्नी के लिये सर्वथा अशोभनीय व्यवहार किया था इसी कारण पति ने उसे निःशंक रक्षा से छोड़ दिया था।

रामायणकाल में महिलायें पर्दे में न रहकर नगर, उद्यानों में आभूषणों से सुसज्जित होकर सायंकाल के समय समूहों में क्रीड़ा करने जाया करती थीं।३२७। कुशनाभ कन्याओं के आख्यान से ज्ञात होता है कि उन्हें बाहर घूमने-फिरने की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। वस्त्राभूषणों से सजी युवती, कन्यायें ख़ूब गाती-बजाती, नृत्य करती जब वाटिका में पहुंचती, तब (उच्चपदस्थ) व्यक्ति भी मोहित हो उठते थे।

रामायण में पति के प्रवास के समय स्त्री को कैसे रहना पड़ता था उसका वर्णन किया गया है। पति का पालन करना जरूरी था। प्रातःकाल उठकर, स्नानादि से निवृत हो देवपूजन करना चाहिए। व्रत, उपवास करना चाहिए। सादा वेश में रहना चाहिए बल्कि विशेष प्रकार के श्रंगार, खान-पान में उसे आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।३२८। प्राषितभर्तका में (पति से विलग) पत्नी को पति के लौटने की राह देखनी चाहिए और एक वेणी धारण किये हुए व्रत, नियम तपस्वी जीवन व्यतीत करते रहना चाहिए। पृथ्वी पर सोना, नियमों का पालन, पतिव्रता के आदर्शों का अनुगमन करके ही जीवन-यापन करना होता था। किसी भी पुरुष के सम्पर्क में नहीं आना चाहिए था चाहे इन्द्र ही क्यों न हो। सीता ने हनुमान की पीठ पर बैठने से विनयपूर्वक मना कर दिया था। विवाहित स्त्रियाँ अपने पति के कल्याण के लिये व्रत नियमों का पालन करतीं, ब्राम्हणों को दान देती थीं। राम के यौवराज्याभिषेक के समय दशरथ ने राम को बुलाया था, तब सीता अपने पति को द्वार तक छोड़ने आयी तो उन्होंने देवताओं से उनके हित के लिये मंगल याचना की। वन में सीता ने राम के ठीक प्रकार से वापसी में लौट सके उसके लिये गंगा, कालिंदी नदियों तथा न्यगोध वृक्ष से प्रार्थना की थी।

पति को दो प्रमुख ऋणों से उऋण करने में सहायता करती थी। यज्ञों में सहयोग

देकर देवता ऋण से तथा संतानोत्पादन कर पितृऋण से 'सहधर्मचारिणी' थी। पति-पत्नी से मुक्त रूप से अपना कर्मफल भोगते हैं। भर्तुभाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ। यज्ञ में पत्नी के बिना दीक्षा उचित नहीं थी। दशरथ की रानियों ने भी यज्ञ मे भाग लिया था, तारा ने मृत बाली पर आरोप लगाया कि आपने यज्ञ का संपादन किया मगर राम के बाण रूपी जल में मेरे बिना अकेले ही कैसे यज्ञ का अवभूत स्नान कर लिया।३२८। राज्याभिषेक के समय पत्नी का महत्व होता है। राम के अभिषेक के समय वशिष्ठ ने राम के साथ सीता को भी रत्नजड़ित सिंहासन पर बैठाकर अभिषेक किया था।३३०।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नारियाँ तत्कालीन युग की राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों को अत्यधिक रूप से प्रभावित करती थीं। सीता और कैकेयी जैसी नारियों ने राष्ट्रों का भाग्य ही परिवर्तन कर दिया। पत्नी की रक्षा के लिये पुरुषों को शत्रुओं से भी वैर लेना पड़ता था जैसा कि राम ने रावण से वैर लिया था सीता को पाने के लिये। क्योंकि पत्नी के अपमान से स्वंय का अपमान, अपने कुल का अपमान, होता है। राम कहते थे कि पिता के मरने और राजपाट से मेरा वंचित किया जाना उतना दुखदायी नहीं था जितना कि रावण के स्पर्श से सीता को दूर देखकर।३३१। कहते हैं कि सीता को पाने में असफल होने पर अनेक निराश राजाओं ने जनक पर आक्रमण कर दिया था।३३२। बाली और मायावी के बीच एक स्त्री के कारण ही शत्रुता के बीज बोये गये थे।३३३। नारियों को शासन करने की योग्यता में दक्ष बताया है। रावण ने सीता को लंका के महाराज्य पर अभिषेक करने का प्रस्ताव किया था। राम-सीता के वन चले जाने पर, प्रतिनिधि के रूप में राज्य का संचालन कैकेयीं करेगी ऐसा प्रमाण वसिष्ठ ने दिया हैं माता का अपने पुत्रों के प्रति अधिक स्नेह रहता है। माता को यदि कष्ट मिलता है तो पुत्र अपने को निकृष्ट समझने लगता है, जैसा कि वन में राम अपनी माता के लिये किये गये विलाप को देखकर दुःखित होते है। वन जाते समय उन्होने सीता से कहा था कि तुम यहीं रहकर मेरी सौतेली माताओं की समान भाव से सेवा करती रहना।

रामायण में सती प्रथा का उल्लेख नहीं है। क्योंकि दशरथ और रावण के मरने के बाद उनकी स्त्रियाँ सती नहीं हुयी थी। कौशल्या एक पतिव्रता स्त्री के नाते महाराज के शरीर का आलिंगन करके अग्नि में प्रवेश करने लगी- इंद्र शरीरमालिंग्य प्रवेक्ष्यामि

दुताशनम्। किन्तु शीघ्र ही लोगों ने वहाँ से हटा दिया (व्यप-निन्युः)। दशरथ ने कैकेयी से कहा कि मेरे मरने के बाद राम के वन जाने के बाद तू विधवा होकर पुत्र के साथ राज्य करना (सेदानीं विधवा राज्यंसुपुत्रा कारमिष्यसि) इससे स्पष्ट हो कि कैकेयी सती नहीं हो सकती थी।

उत्तरकांड में एक घटना सती होने की है जो इस प्रकार है। राजर्षि कुशध्वज को रात में सोते समय शंभु नामक दैत्य ने मार डाला था। इस पर उसकी पत्नी ने पति के शव का आलिंगन करके अपने को अग्नि में होम दिया था।३३४। किन्तु बाद की घटना के कारण ऐतिहासिकता स्वीकार नहीं करती।३३५। हो सकता है कि उत्तकांड के समय सती-प्रथा का कुछ-कुछ प्रचार हो गया हो। कई स्त्रियाँ तो पति के शोक में प्राण त्यागने को तैयार हो जाती है। बाली की मृत्यु पर तारा अन्नजल छोड़कर प्राण त्यागने को तैयार थी।३३६। राम की कथित मृत्यु पर सीता भी पति के अनुगमन का निश्चय करती है।३३७। रामायण में विधवा पुर्नविवाह का भी संकेत नहीं मिलता। वाल्मीकि जहाँ किसी वस्तु के असमय में नष्ट या क्षीण होने की बात करना चाहते हैं, वहाँ पर वह उसकी तुलना विधवा नारी से ही करते है।३३८। अरण्यकांड में सीता लक्ष्मण को राम की सहायता के लिये बार-बार आग्रह कर रही थी कि जाओ लक्ष्मण नहीं जा रहे थे तो सीता ने लक्ष्मण से कहा कि तुम चाहते हो कि राम मर जायें, जिससे हम तुम्हें मिल जायें। इच्छाति त्वं विनश्यतं रामं लक्ष्मण मृत्क्रते। किन्तु जर्मन विद्वान श्री जे० जे० मेयर सीता के इस कथन से यह निकाला कि विधवाएं अपने देवर का वरण कर लेती होंगी, अन्यथा सीता के मन में ये बात कैसे, क्यों आती? किन्तु रामायण में इसका कहीं जिक्र नहीं है। यह बात सीता ने आवेश में आकर ही कही थी। लंका युद्ध के समय भी सीता ने दो बार राम को मरा मानकर विलाप किया है, किन्तु देवर को अपनाने की कहीं भी बात नहीं है।

आर्यो की अपेक्षा वानरों में विधवा पुर्नविवाह अथवा किसी संबंधी से यौन संबंध स्थापित करने की प्रथा थी।आर्य विधवाएं अपने पति के चले जाने के बाद भी संसार में परिवार में स्नेह और सम्मानित होती थी। इसी प्रकार दशरथ की रानियाँ भी राजा के न रहने पर सम्मान से जी रहीं थी।

विधवाओं को मंगल अवसरों पर उपस्थित होना शुभ माना गया है। रामायण में

इस संदर्भ में कहीं मनाहीं नहीं है। क्योंकि राम के वन लौटने पर उनकी विधवा माताओं ने ही आगे बढ़कर स्वागत किया था। सीता का श्रृंगार विधवा सासों ने किया था।३३६। जब शत्रुघन मधुपुरी के राजा के रूप में प्रतिष्ठित किये गये थे, तब सारे मांगलिक कार्य कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी ने ही किया था।

इस प्रकार राक्षस समाज में पुरूष अपनी स्त्रियों से पर्दे की आशा रखता था। विभीषण ने अपनी प्रथा के अनुसार ही लंका विजय के बाद सीता को राम तक पहुँचाने के लिये बड़ा शिष्टाचार ढंग से पालन किया था। विभीषण सीता को एक सुन्दर पालकी में लेकर आये थे। पालकी ढोने में राक्षस और बहुत से निशाचर सीता को चारों ओर से घेरकर चल रहे थें जब सीता की पालकी राम के पास पहुँची तब बहुत से सिपाही उस भीड़ को उत्तेजना से हटा रहे थे तब ऋक्षों, वानरों, राक्षसों के समुदाय दूर जाकर खड़े हो गये। यह स्वंय कार्य पर्दा प्रथा के कारण हो रहा था कि सीता पर किसी साधारण व्यक्ति तक की दृष्टि न पड़े किन्तु राम समाज सुधारक थे। उन्होने विभीषण से कहा कि तुम इन लोगों को क्यों परेशान कर रहे हो। इस उद्वेगजनक कार्य को रोका। यहाँ पर जितनें भी लोग है सब अपने स्वजन ही है। स्त्रियों के लिये न घर, न वस्त्र, न दीवारें, राजसत्कार ही वैसी आदर करने वाला है। जैसा कि अपना सदा-चरण। विपत्ति में, कष्ट में, स्वयंवर में, यज्ञ, विवाह में, स्त्रियों को देखने से कोई पाप नहीं लगता। सीता विपत्ति में हैं। वह पालकी से उतरकर पैदल ही मेरे पास आयें, ये सभी वानर उनके दर्शन करें।

कहते हैं कि नारी अपनी रक्षा करने में समर्थ होती है। वह पति, पुत्र, बंधु-बान्धवों के आधीन रहती थी।३४०। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वह सदा घर की चहारदीवारी में ही कैद रहती थी बल्कि वह समय-समय पर सामूहिक अवसरों पर अपने को भी अंलकरणों में पूरी तरह से सजधज कर जाती थी। राम जब वनवास से लौट रहे थे तब उनके स्वागतार्थ सारी अयोध्या नगरी नंदिग्राम की ओर चल पड़ी थी। उसमें स्त्रियों का ही दर्शन अधिक था। सैनिक और उनकी पत्नियाँ, सूत्र मागध, वारवनिताएं, राजकुल की नारियाँ, सभी उनके स्वागत के लिये चल पड़ी थी। पुरुष हमेशा स्त्रियों को अपने साथ रखते थे। यात्रा, विहार, मित्रों संबंधियों के यहाँ जाते समय भी ले जाते थे। पर्वत, घाटियों, वनों, उपवनों में पति के विहार करते समय पत्नी उनकी 'क्रीड़ा सहाय' बनती थी।

उत्तरकांड में बताया गया है कि स्त्रियाँ भी पुरूषों की तरह न्यायालय में जाकर धर्मासन पर आसीन होकर राजा के समक्ष शिकायत पेश करने का अधिकार प्राप्त था।

रामायण में भी यह देखने को मिलता है कि राम के साथ सीता जगह-जगह घूमती रही इसमें इन लोगों या आश्रमवासियों को किसी प्रकार की परेशानी समझ में नहीं आयी। सीता जहाँ-जहाँ राम के साथ गयीं उनका आदर-पूर्वक स्वागत किया गया। प्रकार सीता भरद्वाज आश्रम, ऋषि शरभंग के आश्रम में अगस्त्य मुनि के आश्रम में गयी सभी जगह उनका स्वागत भली-भाँति किया गया। चित्रकूट में रहते समय सीता भी राम के साथ प्रकृति, पर्यवेक्षण, वन-पर्यटन, नदी, विहार के लिये जाया करती थी। चित्रकूट में राम ने राक्षसों को मार भगाया था ऐसे स्थान में एक स्त्री का रहना कितनी मुश्किल की बात है। इस प्रकार स्पष्ट होता है सीता बारह वर्ष के वनवास के बाद एक कोमलांगी, असहाय पत्नी न होकर एक वीर साहसी रमणी बन चुकी थी। पंचवटी में वह राम-लक्ष्मण की अनुपस्थिति में अपने श्वसुर के मित्र जटायु के संरक्षण में रहती थीं। रावण के हाथों से उनके घायल हो जाने पर सीता ने उनका आलिंगन करके विलाप किया था। भिक्षु वेश में रावण का उन्होने अकेले ही अतिथि सत्कार किया था। सीता ने मन के साथ शरीर को सबल मजबूत बना दिया था। क्योंकि जब रावण उन्हें ले जा रहा था तब उन्होने शारीरिक बल का सहारा लेते हुये फंदे से भागना चाहा लेकिन वह भाग नहीं सकीं थीं।३४१। रामायण में बहु विवाह प्रथा देखने को मिलती है। एक पुरुष के साथ-बीसियों स्त्रियाँ विवाह बंधन में बंधी थी। अंतपु:र के महल में सबसे भीतरी ड्योढ़ी होता था। उसकी रक्षा में स्त्री द्वारपाल (प्रतिहारी), कुबड़ी, नाटी, स्त्रियाँ तथा हिजड़े रहते थे। इन सभी के ऊपर वयोवृद्ध 'स्त्रयध्यक्षों' का निरीक्षण रहता था, सुमंत ने गेरुआवस्त्र, हाथ में छड़ी लिये अंतपुर के दरवाजे पर बैठे देखा था। अंतपुर को इस प्रकार सुरक्षित रखने की प्रथा ये अभिजात वर्ग में थी जो सामाजिक प्रतिष्ठा, समान, कुलीनत्व के सूचक के साथ-साथ शत्रु-पक्ष के लोगों को रोकने के लिये भी आवश्यक मानी जाती थी।

रामायण में सुन्दर स्त्रियों को उपहार में देने की बात कही गयी है। राम को कर रूप सुंदर दासियाँ भेंट की गयी थी। दशरथ के श्राद्ध में भी भरत ने दिवंगत आत्मा को शांत करने के लिये ब्राह्मणों को दासियाँ दान में दी थी। वन जाते समय राम ने तैत्तिरीय शाखा

के एक आचार्य को कई दासियाँ भेंट की थी। पत्नी का दान पुण्यकर्म समझा जाता था। जब हनुमान ने भरत को राम के वन से लौटने का समाचार सुनाया तो भरत ने प्रसन्न होकर हनुमान को सोलह कन्याएं पत्नी रूप में प्रदान कीं, जो कुंडल पहने थी, शुभ आचरणशील, रंग स्वर्ण समान सुंदर नाक, जांघे थी, मुख चन्द्रमा समान था जिनका जन्म अच्छे कुल में हुआ था।३४२। रामायण का युग विलास का युग था क्योंकि पुरूषों को स्नान कराने का कार्य तरुण सुंदर दासियाँ ही करती थीं। लंका विजय के बाद विभीषण ने राम से निवेदन किया कि श्रंगार क्रिया में निपुण स्त्रियाँ हैं जो आपको विधिपूर्वक स्नान करा देगीं।३४३। राम की बांहो का वर्णन वाल्मीकि ने किया है कि उत्तम सैरंद्रियां उबटन लगाते या उतारकर पहनाते समय उनका स्पर्श किया करती थी।३४४। भरद्वाज के आश्रम में भरत के प्रत्येक सैनिक की सेवा मे आठ-आठ स्त्रियाँ नियुक्त थीं, जो तैल मर्दन करके उसे नदी के सुन्दर घाटों पर नहलाती, फिर पोछकर, पैर दबाकर मदिरा पिलाती थी। राम जब बहुमूल्य चंदन लगाकर विश्राम करते थे तब अलंकृत स्त्रियाँ उन पर पंखा डुलाया करती थीं-

यः सुखेनोपधानेषु शेते चन्दनरुषितः।
वीज्यमानों महार्हाभिः स्त्रीभिर्मम सुतोत्तम।।

राम भी कभी-कभी असाधारण परिस्थितियों में स्त्री की स्वतन्त्र इच्छा को स्थान नहीं देते बल्कि उसके प्रति एक प्राणी जैसा व्यवहार किया जाता है। उन्होनें कैकेयी से कहा कि मैं पिता जी की आज्ञा से मैं भर को राज्य ही नहीं अपितु अपनी पत्नी सीता भी दे सकता हूँ।३४५। पत्नी को एक स्थान पर इंद्रिय विलास की वस्तु कहा है, लक्ष्मण के युद्धभूमि में मूर्छित हो जाने पर राम ने विलाप करते हुये कहा था-'प्रत्येक देश में स्त्रियाँ मिल सकती हैं, हर देश में जाति भाई प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु कोई देश ऐसा नहीं दिखाई देता, जहाँ सहोदर भाई मिल सकता हो।''

देशे देशे कलत्राणी देशे देशे च बान्धवाः।
त तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः।।

राम भाई की तुलना में पत्नी को तुच्छ समझते थे। आत्मसम्मान के लिये भी पत्नी की बलि दी जा सकती थी। इस लोकपवाद के भय से लंका विजय के बाद राम सीता का त्याग करने को तैयार हो गये।

स्त्री को एक वस्तु की तरह निजी संपत्ति माना जाता था, जो स्वामी की इच्छानुसार ली जा सकती थी। रावण ने राज्य, नगर, अन्न-वस्त्र जैसी उपभोग संपत्ति के साथ-साथ अपनी स्त्रियों का भी उल्लेख किया था जो बाली के साथ मैत्री स्थापित करते हुये कि ये सब वस्तुएं हम दोनों की समान (अविभक्त) रहेंगी।३४६। स्त्री को पहली शरण उसका पति, दूसरा पुत्र, तीसरा उसके संबंधी, चौथी शरण में स्त्री का कोई नहीं है। विवाह का उद्देश्य वंश को बनाये रखना था तो पति का कर्तव्य था कि पत्नी की सावधानी से देखभाल करें, यदि उसे स्वतंत्र छोड़ा गया तो परिवार पर टीका लगा सकती है। रामायण में महिलाओं के पति शालीन व्यवहार, उच्चशिष्टाचार बताया गया है। रथों, नावों, वाहनों पर चढ़ते समय प्रथम स्थान स्त्री को दिया जाता था। राम जब वन जा रहे थे तब सीता रथ पर पहले बैठी थी उसके बाद दोनों भाई। गंगा-पार के सयम भी सीता नाव पर पहले बैठी थी बाद में दोनों बैठे थे।३४८।

राक्षसराज रावण ने राजाओं, ऋषियों, देवताओं, दानवों की अनेक विवाहित अविवाहित कन्याओं का अपहरण करके अपने अंतःपुर में रखा था। इसी प्रकार सीता की भी कहानी ही रावण ने सीता को हरकर पंचवटी में एक वर्ष तक बंदी बनाकर रखा था। राम ने सीता को पाने के लिये बड़ा प्रयास करके रांवण का वध किया पर वही सीता को अंगीकार करने के लिये तैयार नहीं थे। क्योंकि उन्हें सच्चारित्रता पर संदेह हो गया था। उन्होनें सीता से कहा कि "अपने तिरस्कार का बदला चुकाने के लिये मनुष्य का जो कर्तव्य है, वह मैंने किया, तुम्हें मालूम होना चाहिये कि तुम्हें पाने के लिये मैने इन मित्रों के पराक्रम से विजय पाई है, यह सब तुम्हे पाने के लिये नहीं, अपितु सदाचार की रक्षा करने, विख्यात वंश का कलंक मिटाने के लिये ऐसा किया है। जैसे आँख के रोगी तो दीपक की ज्योति नहीं सुहाती, वैसे ही आज तुम मुझे अच्छी नहीं लग रही हो। इसलिये सीता तुम्हारी जहाँ इच्छा हो चली जाओ, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ। दसों दिशाएं खुली हैं, तुम्हारे लिये कौन ऐसा कुलीन पुरुष होगा, जो तेजस्वी होकर भी दूसरे के घर में रही अपनी स्त्री को गृहण करेगा? रावण की गोद में बैठकर तुम अपवित्र हो चुकी हो उसने तुम्हें बड़े गन्दे ढंग से देखा है। इतनी सुंदर तुमको पाकर क्या तुम्हे उसने छोड़ा होगा। इसलिये मैं अपने कुल का गौरव बढ़ाने वाला मैं तुम्हें कैसे अपना सकता हूँ? अब तुम जहाँ जाना चाहो जा सकती हो। मेरा तुमसे

कोई अनुराग नहीं।"

इस प्रकार सीता ने शपथ खाकर "कहा कि आप मुझे जैसा समझ रहें हैं, मैं वैसी नहीं हूँ। रावण के शरीर से जो मेरा स्पर्श हुआ हो वह मेरी विवशता का ही कारण है। पर मेरा हृदय सदा आप में ही लगा रहता है।" राम को इसमें संतोष नहीं हुआ उन्होने सीता को तभी स्वीकार किया, जब एक दिव्य साक्षी ने उसकी सच्चारित्रता का प्रमाण दिया।

राम के उपर्युक्त कथन के विपरीत रामायण में ऐसे बहुत से कथन हैं, जिनसे आभास मिलता है कि राम सीता को रावण के चंगुल से इसलिये नहीं छुड़ाया चाहते थे कि उनके यश पर लगा हुआ कलंक धुल जाये वरन् राम इसलिये छुटाना चाहते थे कि सीता के शारीरिक कष्टों की परवाह न करके स्वेच्छा ने राम का साथ वनवास में दिया था तो राम भी सीता को पुनः सुखी, प्रसन्न करने के लिये ऐसा करेंगे। किन्तु इसका वास्ताविक कारण हमें सीता की अग्नि शुध्दि के बाद मालूम पड़ता है कि "सीता की पवित्रता की परीक्षा लोक दृष्टि से आवश्यक थी, क्योंकि सीता को बहुत दिनों तक रावण के घर में रहना पड़ा था। यह बात मैं जानता हूँ कि सीता का मन मुझमें ही लगा रहता है। अतः लंका में यह अपने तेज से सुरक्षित थी रावण तो इसका बाल-बांका भी नहीं कर सकता था। यदि मैं यह परीक्षा न करता तो संसार मुझे यही कहता कि दशरथ पुत्र राम बड़ा मूर्ख और कामी है"। लोकापवाद का यही भय उत्तरकांड में वर्णित सीता के अंतिम परित्याग का कारण हुआ। अयोध्या की रूढ़िवादी और कट्टर समाज अपहत स्त्री को परिवार, समाज में उसको पूर्व स्थान देने को तैयार नहीं था। इसी कारण राम के अयोध्या लौटने पर कुछ दिनों बाद ही सभी नगरों, देहातों में लोग उनके इस कृत्य की चर्चा करने लगे थे-"रावण को मारकर राम सीता को ले आये सीता पर किसी प्रकार का दोष न समझकर उन्हें घर में रख लिया। राम के हृदय में सीता के संभोग का सुख कैसे घर कर गया है। जिसे रावण बलपूर्वक अपनी गोद में उठाकर ले गया हम लोगों को भी अपनी स्त्रियों की ऐसी बातें सुननी पड़ेगी, क्योंकि राजा जैसा करता है, प्रजा भी उसी का अनुसरण करती है" राम को इस लोक निंदा के कारण झुकना पड़ा। पर उनकी अंतरात्मा सीता को निष्पाप मानती थी, पर वह अपनी प्रजा को अप्रसन्न नहीं कर सकते थे। अतः उन्होने सीता का सदैव के लिये परित्याग कर दिया। बहुत वर्षो बाद सीता को अयोध्या की सभा में आकर शुद्धता प्रमाण देने के लिये आंमत्रित

किया गया। अयोध्या के प्रजा के समक्ष वह हृदय से शपथ खाकर अपनी पवित्रता के बारे में बताने लगी, किंतु वह उस मानसिक आघात को अधिक देर तक सह न सकी और प्राण खत्म हो गये।

भारतीय परम्परा की इस लोक चर्चा के विषय में राम की सराहना की गयी। वास्तविक दोष यदि राम का उतना नहीं जितना कहर जन-मत का विरोध था। जिसका विरोध करना राम की सामर्थ्य के बाहर था। यह संतोष का विषय है कि हमारे प्राचीन स्मृतिकारों ने सामान्य स्त्रियों के लिये पवित्रता के राम उच्च किंतु अव्यवहारिक आदर्श का समर्थन नहीं किया है।

रामायण में कई स्थानों पर स्त्रियों की तीव्र भर्त्सना की गयी है। और स्त्री जाति में एक जिद्द करने की भी चर्चा की गयी है। स्त्री में यह दोष बहुत ही खराब था कि जब उसे किसी चीज को जानने या पाने इच्छा होती है तो फिर उसे मर्यादा तक का ध्यान नहीं रहता, केवल उसकी इच्छा पूर्ति ही होनी चाहिये। चाहे इसके लिये बहुत बड़ी कीमत क्यों न चुकानी पड़े। नारी के प्रति कूटक्तियों का हमें निष्पक्षता से मूल्यांकन करना होगा। अधिकांश लोग जो किसी कारण से स्त्रियों से असंतुष्ट, रूष्ट थे। रामायण में अधिकतर स्त्री की निंदा कैकेयी से संबंधित है जिसने अपने स्वार्थ परायणता में उस समय के सभी विचारशील लोगों को कुछ कर दिया था। इन उक्तियों से आशय समस्त नारी जाति को कलंकित करना नहीं है। कैकेयी की स्वार्थ बुद्धि के कारण दशरथ स्त्री मात्र की निंदा कर बैठे थे, पर तुरन्त ही उन्होनें अपने अमर्यादित कथन पर संशोधन कर लिया- न ब्रवीनि स्त्रियः सर्वा भरतस्यैव मातरम्, मेरी मतलब यह नहीं है कि सभी स्त्रियाँ भरत की माता के समान शठ और स्वार्थी होती है। सीता जैसे नारियाँ इन दोषों से रहित है देवों में अरुन्धती के समान प्रशंसनीय और पूज्यनीय होती है। इसके अतिरिक्त दशरथ, कौशल्या, अगस्त्य, अनुसूया, लक्ष्मण आदि का उद्देश्य निरी स्त्री निंदा करना नहीं था, बल्कि निंदित आचरण के विपरीत पक्ष का, सदाचार का, पतिव्रत्य का पालन करना उसकी प्रशंसा करना था। स्त्रियों की स्थिति सामान्यतः सुखद थी। कम से कम तत्कालीन परिस्थितियों में नारी को एक कन्या, पत्नी, माता और विधवा के रूप में समस्त संभव सुविधायें और अधिकार प्राप्त थे, उनके सहारे वह परिवार, समाज, राष्ट्र के सांस्क्रतिक उत्थान में अमूल्य योगदान

कर रही थीं।

खान-पान

सभ्यता के विकास के पूर्व मनुष्य हिंस्र पशुओं से अपनी पूर्ति करता था, किन्तु सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य भोजन पकाना और उसे सुरक्षित रखना सीख गया। इस प्रकार रामायण कालीन समाज का विविध स्तरों का अंकन करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उस समय अमिष और निरामिष दोनो प्रकार के खाद्य पदार्थ बनाने में प्रवीण लोग थे। अतिथियों का उच्च कोटि के भोजन से आदरपूर्वक सत्कार किया जाता था। वसिष्ठ मुनि ने राजा विश्वामित्र और उनकी सेना का बहुमूल्य खाध पदार्थो से स्वागत किया था। मुनिकुमार ऋष्यऋंग को अंग देश में लाने के लिये वेश्याओं ने उन्हें नाना प्रकार के मिष्ठानों का प्रलोभन दिया था। अन्नदान भी एक पुण्य कृत्य था। दशरथ और राम के अश्वमेध-यज्ञों में धन और वस्त्र के साथ अन्न का भी मुक्त हस्त से दान किया था। सीता नें भी वनयात्रा के समय ब्रांह्मणों को अन्नदान करने की प्रतिज्ञा की थी। आर्यों का खान-पान वानरों और राक्षसों से बिल्कुल भिन्न था। आर्य लोग शाकाहारी और अंशतः माँसाहारी थे, किन्तु वानर विशुद्ध शाकाहारी और राक्षस माँसाहारी थे। तण्डुल (चावल), यव (जौ) और गोधूम (गेहूँ) मुख्य खाद्य थे। उत्तरकाण्ड में मुद्ग (मूँग), चषक (चना), कुलित्थ (कुलथी) और माष (उड़द) जैसी दालों का उल्लेख आया है।

(क.) रामायण में निम्नलिखित प्रकार के चावल ओर चावलों से बने पकवानों का उल्लेख हुआ है।

अक्षत - पूजा में प्रयोग होने वाले कच्चे दाने।

अन्न - ओदन-भात

कलम - एक प्रकार का धान

कृसर - विल्सन के अनुसार - आधुनिक खिचड़ी अथवा चावल, तिल और दूध से बना एक मिष्ठान है।

तण्डुल - साफ किया हुआ धान या चावल।

नीवार - जंगली धान, जिसे वनवासी लोग खाते हैं।

पायस - आजकल जिये खीर कहते हैं। पुत्रेष्टि यज्ञ की समाप्ति पर यज्ञ वेदी से प्रकट

होने वाले पुरुष ने दशरथ को पायस का एक थाल प्रदान किया था।

मृष्टान्त – चावल के मालपुये।

मोदक – चावल, दाल और चीनी के लड्डू।

लाज – भुना हुआ चावल, जो पूजा के कार्य में लगता था।

ब्रीही – वर्षा ऋतु का चावल।

शालि – यह सर्दियों में पैदा होता था।

हविष्यान्न – घी में पका हुआ चावल।

(ख.) गौवों की बहुलता के कारण लोगों के भोजन में दूध दही की मात्रा ज्यादा थी।

कपित्थ – मट्ठा

क्षीर – गाढ़ा दूध, खोवा या छेना

गोरस – दूध

दधि – दही, वाल्मीकि कहते हैं कि विश्वामित्र के स्वागत में वसिष्ठ ने दही की नदियाँ बहा दी थीं। चीनी और मसाले में मिले हुए दही को 'रसात्' या 'रायता' कहते थे।

रामायण में घृत (घी) का उल्लेख भी मिलता है। तेल जिसे 'स्नेह' अथवा तैल कहते थे, नमक को लवण कहते थे।

(ग.) रामायण में निम्नलिखित अन्य खाद्य पदार्थों का उल्लेख हुआ है। उच्चावच भक्ष्य-सूखी और गीली मिठाइयाँ या नमकीन, मसालेदार स्निग्ध और गरिष्ठ।

गौड़ – गुड़

खाण्डव – मिसरी

रागखाण्डव– शहद, चीनी, फलों से बनाये जाने वाला स्वादिष्ट पेय।

शर्करा – शक्कर

सूप – पकी दाल या रसेदार साग-सब्जी। भरत के सैनिकों को भरद्वाज के आश्रम में फलों से बना हुआ स्वादिष्ट सूप परोसा गया था।

आहार में फलों का मुख्य स्थान था। रावण की पान-भूमि में हनुमान ने विविध प्रकार के फल पड़े देखे थे। वनवासी ऋषि-मुनि अरण्य के फल-फूलों पर निर्वाह करते थे। सीता के विरह में राम केवल भात और जंगली फूलों का सेवन करते थे।

भरद्वाज आश्रम में भरत के सैनिकों मासानि, विविधानि विभिन्न प्रकार के माँस-पदार्थ परोसे गये थे। सीता ने भगवती गंगा को माँस भूतौदन (माँस, चावल, शाक और मसालों को एक साथ उबालकर बनाये गये पुलाव) से परितुष्ट करने का संकल्प किया था। श्राद्धों में ब्राह्मणों को माँस खिलाने की परिपाटी थी। इव्वल असुर श्राद्ध के बहाने पड़ोस के ब्राह्मणों को आमंत्रित करके उन्हें मेढ़े का माँस पकाकर खिलाया करता था। ये मेढ़े बधिया किये हुए (अफल) होते थे। क्षुधा पीड़ित राम-लक्ष्मण ने सायंकाल के भोजन के लिये वराह, ऋष्य, पृषत और महारुरू नामक मृगों का शिकार किया था। यमुना के पास वन में उन्होंने कई पवित्र मृगों को मारा था। सुअर का माँस भी बहुत खाया जाता था। रावण और कुम्भकर्ण जैसे पेटुओं की तृप्ति के लिये राक्षसों ने मृगों, महिषों और वराहों के माँस की ढेरियाँ लगा रखी थीं।

चर्बी वाले पक्षी आहार की दृष्टि से मूल्यवान गिने जाते थे। जैसे राम ने कबंध की ओर ध्यान आकर्षित किया है। इसके अतिरिक्त हंस, प्लव, क्रौंच और कुकर मुख्य थे। कुकर, वाध्रीणस, मयूर और कुक्कुट का भी माँस खाया जाता था। मछली का भी भोजन में प्रयोग होता था। पम्पा सरोवर की रोहित, चक्रतण्डु और नलमीन नाम की मोती-मोती और कांटेदार मछलियाँ प्रसिद्ध थीं। सुदूर यात्रा पर निकलते समय लोग अपने साथ भोजन बाँध ले जाते थे। वसिष्ठ ने भरत को बुला लाने के लिये जिन दूतों को भेजा था, उन्होंने 'पथ्याशन' अर्थात् यात्रा का भोजन साथ रख दिया था।

भोजन दिन में तीन बार किया जाता था। रावण ने सीता को धमकी दी थी कि यदि तुमने मेरी पर्यक-शयिनी बनने से इंकार किया तो मेरे रसोइये मेरे प्रातःकालीन कलेवे के लिये तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे। उत्तरकाण्ड के अनुसार राम ने अशोकवाटिका में सीता के साथ अपरान्ह भोजन किया था। रावण के रात्रिकालीन भोजन का सुन्दरकाण्ड के ग्यारहवें सर्ग में विस्तार से वर्णन हुआ है। जिनकी भोज्य सूची इस प्रकार है-

१. मृगाणां महिषाणां वराहाणां च भागशः व्यस्तानि माँसानि - मृगों, भैसों और शूकरों के (कच्चे) माँस के कटे हुए टुकड़े।

२. रौक्मेषु विशालेषु भोजनेषु मयूरान कुक्कुटान - सोने के बड़े पात्रों में मोरों और मृगों का भुना हुआ माँस।

३. वराहवाघ्रीणकान् दधिसौवर्चलायुतान् शत्यान् मृगमयूरान् और नमक मिश्रित शूकर, वाघ्रीणस (एक प्रकार का पक्षी या बकरा), साही, हिरण और मोर का माँस।

४. कृकलान विविधांश्छागांछशकान् महिषानकशल्यांश्च कृतनिष्ठितान् - कृकत पक्षी, अनेक प्रकार के बकरे, खरगोश, भैंसे और एक शल्य मछली का पकाया हुआ माँस।

५. लेह्यन - चटनियाँ

६. उच्चावचन पेयान भोज्यान - विविध पेय और नमकीन, मीठे पदार्थ।

७. अम्ललवणोत्तंसै रागरवांडवैः - खट्टे, नमकीन और तीखे रागखांडव,

८. विवधैः फलैः - भांति-भांति के फल

९. शर्करासवमाध्वीकाः पुष्पासवक लासवाः वासचूर्णैश्च विवधैर्मृष्टा स्तैसंयतः पृथक पृथक -अनेक प्रकार के सुगंधित मसालों से सुवासित शर्करा?, मधु पुष्प, फल आदि के आसव।

जिस प्रकार खाद्य पदार्थ के चार प्रकार बताये गये हैं। उसी प्रकार भोजन में मीठा, खट्टा, नमकीन, कड़ुवा, तीता, कषैला- इन छः रसों का समावेश किया जाता था।

घर गृहस्थी के बर्तन भांडों का रामायण में उल्लेख है।

अरणि- अग्नि उत्पन्न करने की लकड़ी। उलूखल- ऊखल

करंभी- दही मथने का बर्तन।

कलश- कलसा

कांस्य दोहन- कांस का दूध दुहने का पात्र।

कुंभि- सुराही, छोटा घड़ा।

दारुपात्र?- काठ की हांडी।

द्रोणि- कठौती।

पात्र- भोजन पात्र, तश्तरी।

पात्री- अन्न संग्रह करने के बड़े-बड़े भांडे।

पान-भाषन- पीने का प्याला, कटोरी।

पिटक- फल-मूल रखने की बांस की पिटारी।

पिठर- कढ़ाई।

भोजन- पेय पदार्थ संग्रह करने के बर्तन।

मंजूषा आयसी- लोहे की संदूक।

मुसल- मूसल

योक्त- मथने की रस्सी।

स्थाली- थाली, व्यंजंन पात्र।

लौही- तांबे या लोहे का बना रसोई का बर्तन।

भोजन ग्रहण करने से पूर्व आर्दो का भूतों को प्रसाद चढ़ाना, बलिवैश्यदेव करना भी इस बात का प्रमाण है कि खाने से प्रश्न को समर्पण भाव से देखते थे। चित्रकूट पर अपनी नवनिर्मित कुटी में प्रवेश करने से पूर्व राम ने भूतों को फल-मूल और पके हिरण-मांस से तर्पित किया। तत्पश्चात् राम और सीता के साथ भोजन किया था।३६५। पायस, कृसर और बकरे का मांस देवताओं को चढ़ाये बिना खाना अनुचित था।३६६। फलों का रस मधुर बनाकर एक पेय के रूप में सेवन किया जाता था। रावण की पान भूमि में सुगंणित पुष्पासव, फलासव, और शर्करासव का भंडार था। वसिष्ठ ने विश्वामित्र कार ईख, मधु, मैरेय आदि के वरासवों से आतिथ्य किया था।३६७।

मधु और शहद भी एक पेय के रूप में प्रचलन था। वसिष्ठ और भरद्वाज दोनों के आश्रम में अभ्यागतों के लिये मधु प्रस्तुत किया जाता था। दक्षिण दिशा में गये हुये वानरों ने, सीता का पता लगाकर, मधुवन में छककर मधु-पान किया था। मधु से 'मधुमैरेय' नामक सुरा बनाई जाती थी, जिसका रामायण में कई बार उल्लेख आया है।

रामायण में शराब के लिये सुरा, मदिरा, 'मद्य' शब्द आये हैं। सभी वर्गों के लोग इसका मद्य-पान करते थे। कैकेयी के प्रति अनुरक्त दशरथ अपने को उस मनुष्य के समान मानते थे, जो सुन्दर किन्तु विष-मिश्रित शराब पी जाता है। अयोध्या में चारों ओर वारुणी की गन्ध आया करती थी। राम के वियोग में वीरान बनी उस नगरी में वह लुप्त होगई थी।३६८। कहते हैं कि जब सुग्रीव ने लंका में आग लगाई तब वहाँ के सैनिक सीधु शराब पिये हुये थे।

मदिरा ग्रह को पान भूमि कहते थे। बाल्मीकि ने अस्त-व्यस्त आमोद प्रमोद के अड्डे के रूप में अंकित किया है। पान भूमि में निम्न वर्ग के लोग एकत्र होते थे। उन्हें 'शराब' या मिट्टी के सखों में मदिरा पिलाई जाती थी। रावण की पान-भूमि में हनुमान को

शराबियों की निपट निर्लज्जता दृष्टिगोचर हुई थी। नशे में चूर राक्षस मतवाले होकर उधम मचा रहे थे।

त्योहार, व्रत, उत्सव

तीज त्योहार का अनुपालन किसी देवता, किसी घटना, मास के विशेष तिथिक्रम को सामूहिक रूप से मनाने वाले आयोजन को कहा जा सकता है।

१. जन्मदिन से सम्बन्धित– जो महापुरुष भारतवर्ष में किसी भी क्षेत्र में हुये उन्होंने भारतीय धर्म में परमात्मा एवं महापुरुष के रूप में मान्यता प्राप्त की है।

२. मृत्यु स्मृति दिवस

३. घटना विशेष

४. विजय दिवस– जब कोई महापुरुष या देवता आसुरी शक्ति को परास्त करता था, उसे विजय दिवस के रूप में मनाया जाता है।

५. मास दिवस– भारतीय संस्कृति में तिथियों और मासों का बड़ा महत्व है।

चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में बहुत से त्योहार मनाये जाते हैं, जैसे- नवरात्रे (दुर्गा पूजन)- यह चैत्र शुक्ल प्रतिपद से लेकर रामनवमी तक चलता है। इसमें दुर्गा तथा कन्या पूजन का बड़ा महत्व है। पहले दिन से घट-स्थापना तथा जौ बोने की क्रिया भक्तों द्वारा सम्पादित की जाती है। "दुर्गा सप्तशती" का पाठ भी करने का विधान है। नौ दिन का पाठ के अनन्तर हवन तथा ब्राह्मण भोजन कराया जाता है।

गन गौर व्रत– यह चैत्र शुक्ल तृतीया को मनाया जाता है, इस दिन सधवा स्त्रियाँ व्रत रखती है। कहा जाता है कि भगवान शंकर ने इस दिन अपनी पार्वती को तथा पार्वती ने तमाम स्त्रियों को सौभाग्य वर दिया था।

गणेश दमनक चतुर्थी– चैत्रसुदी मध्यन्य चतुर्थी को मोदक से गणेश का पूजन कर दमन का आरोपण करें तो विघ्नों का नाश तथा सब कामनाओं की पूर्ति होगी।

अशोकाष्टमी– यह त्योहार वचैत्र शुक्ल अष्टमी को मनाया जाता है। अशोक के वृक्ष का पूजन किया जाता है।

रामनवमी– राम का जन्म चैत्र शुक्ल नवमी को महारानी कौशल्या की कोख से हुआ था। इसीलिये यह 'रामनवमी' नाम से पुकारा जाता है। पूरे भारत वर्ष में हिन्दू परिवार में राम

का जन्म महोत्सव मनाया जाता है। प्रत्येक राम मन्दिर में भक्तों द्वारा राम का गुणगान किया जाता है। श्री राम को पंचामृत में स्नान कराके धूप, दीप, नैवेध के द्वारा अभ्यर्चना की जाती है। बाल्मीकि ने रामायण में रचना इसी दिन अयोध्या में आरम्भ की थी। अयोध्या के राम प्रसंग को तात्विक दृष्टि से श्रवण, मनन करना चाहिये।

कुछ दक्षिणी लोगों का मत है कि इस पूर्णिमा को हनुमान जी का जन्म हुआ था, अतः वे लोग इसेक हनुमान जन्म दिवस के रूप में मनाते हैं। कार्तिक की नरक-चौदस के दिन हनुमान जयन्ती अधिक प्रचलित है।

वैशाख मास के व्रत एवं त्योहार-

शीतलाष्टमी- यह वैशाख मास की कृष्णपक्ष की अष्टमी के दिन शीतला देवी की पूजा चेचक के प्रकोप से बचने के लिये की जाती है। जो लोग इस व्रत को शुद्ध मन से करते हैं उसे शीतला जी अवश्य भीख देती है। कुछ लोग एक दिन पहले भोजन बना लेते हैं। उसे 'बासौड़ा' कहते हैं उस दिन घर में चूल्हा नहीं जलाते है।

बरुथनी एकादशी- यह वैशाख कृष्ण पक्ष में एकादशी के दिन मनायी जाती है। यह व्रत सुख सौभाग्य का प्रतीक है।

अक्षय तृतीय (आखातीज)- यह तिथि परशुराम का जन्म होने के कारण 'परशुराम' तीज भी कही जती है। इस दिन गंगा स्नान का भारी महत्व है। इस दिन स्वर्गीय आत्माओं की प्रसन्नता के लिये कलश, पंखा, खड़ाऊ, छाता, सत्तू, ककड़ी, खरबूजा, फल, शक्कर आदि पदार्थ ब्राह्मण को दान करना चाहिये।

मोहिनी एकादशी- इस दिन भगवान राम की पूजा का विधान है। इस व्रत के प्रभाव से निंदित कर्मो से छुटकारा मिल जाता है।

श्री नृसिंह जयन्ती- वैशाख शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को नृसिंह भगवान को खम्भे को फोड़कर भक्त प्रहलाद को रक्षार्थ अवतार लिया था। इसीलिये इस दिन यह जयन्ती समारोह मनाया जाता है।

आसमाई की पूजा- वैशाख, आषाढ़, माघ इन तीनों महीनों के अन्तर्गत किसी रविवार की आसमाई की पूजा का विधान है। बाल-बच्चे वाली औरतें यह व्रत करती है। इस दिन भोजन में नमक का प्रयोग वर्जित है।

वैशाखी पूर्णिमा– यह पर्व स्नान की दृष्टि से अन्तिम पर्व है।

ज्येष्ठ मास के व्रत एवं त्योहार

अचला एकादशी– इस व्रत को करने से भूत योनि कर्मों से छुटकारा मिल जाता है।

वट सावित्री पूजन– ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्या को यह व्रत मनाया जाता है। इस दिन सत्यवान सावित्री तथा यमराज सहित पूजा की जाती है। इस व्रत से स्त्रियों का सुहाग अचल होता है। सावित्री ने इा व्रत के प्रभाव से अपने मृतक पति सत्यवान को धर्मराज से भी जीत लिया था।

गंगा दशहरा– ज्येष्ठ सुदी दशमी को गंगा दशहरा मनाया जाता है। इस दिन नदियों में श्रेष्ठ गंगा जी भागीरथ द्वारा स्वर्गलोक से पृथ्वी पर अवतरित हुई थीं।

निर्जला एकादशी– इसे भीमसेन एकादशी भी कहते हैं। इस व्रत से दीर्घायु तथा मोक्ष मिलता है। इस दिन जल नहीं पीना चाहिए। इस दिन व्रत करने से वर्ष की पूरी एकादशियों का फल मिलता है।

आषाढ़ मास के व्रत–

योगिनी एकादशी– इस दिन नारायण भगवान की पूजा की जाती है।

श्री जगदीश रथयात्रा– आषाढ़ शुक्ल पक्ष द्वितीया को रथयात्रा का यह उत्सव मनाया जाता है। इस दिन भगवान का रथ सुभद्रा सहित बड़े धूमधाम से निकाला जाता है। जगन्नाथपुरी में भगवान जगदीश का जो रथ निकाला जाता है, वह पूरे भारत में विख्यात है।

देवशयनी एकादशी– इस दिन से भगवान विष्णु चार मास तक पाताल-लोक में निवास करते हैं और कार्तिक शुक्ल एकादशी को प्रत्यागमन करते हैं। इसी कारण इसे हरिशयनी एकादशी तथा कार्तिक वाली एकादशी को 'प्रबोधिनी' के नाम से जाना जाता है। इस समय भगवान विष्णु इन चार महीनों में क्षीर सागर की अनंत शैया पर शयन करते हैं। इन दिनों इसलिये कोई शुभ कार्य नहीं होते। यह काल भगवान विष्णु का निद्राकाल माना जाता है। इन दिनों तपस्वी एक स्थान पर रहकर व्रत करते हैं। इस समय केवल बृज की यात्रा की जाती है क्योंकि इन चारो मासों में भूमण्डल के समस्त तीर्थ बृज में आकर निवास करते हैं।

गुरु पूर्णिमा– प्रचीनकाल में विधार्थी जब गुरुकुलों में निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करते थे। इसीलिये इस दिन गुरुपूजन होता है।

कोकिला व्रत– यह आषाढ़ मास की पूर्णिमा को किया जाता है। इसे सौभाग्यशाली स्त्रियाँ व्रत करती हैं। यह आठ दिन करना चाहिए। सूर्योदय से पहले उठकर स्नान, दातून के पश्चात् उबटन लगाकर नहाकर प्रातःकाल भास्कर भगवान की पूजा करनी चाहिए।

श्रावण मास के व्रत एवं त्यौहार– प्रत्येक सोमवार को गणेश, शिव, पार्वती, नन्दी की पूजा की जाती है।

मंगला गौरीपूजन– सावन में जितने भी मंगल आते हैं उस दिन गौरी की पूजा करनी चाहिए।

कामिका एकादशी– इसमें भगवान विष्णु की प्रतिमा को पंचामृत में स्नान कराकर भोग लगाना चाहिए।

नाग पंचमी– श्रावण शुक्ल पंचमी को मनाया जाता है। इस दिन नागों की पूजा की जाती है।

पुत्रदा एकादशी– इस दिन भगवान विष्णु के नाम पर व्रत रखकर पूजन करना चाहिए। सारा दिन भगवान के वंदन, भजन, कीर्तन करे और रात्रि में भी भगवान के पास सोये। इससे निःसंतान व्यक्ति को पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है।

रक्षा बंधन– यह त्यौहार सावन की पूर्णिमा को मनाया जाता है। भाई-बहन को स्नेह की डोर में बाँधने वाला त्यौहार है। इस दिन भाई के हाथ में बहन रक्षा बाँधती है तथा मस्तक पर टीका लगाती है। एक बार भगवान कृष्ण के हाथ में चोट लग गई तथा खून गिरने लगा। द्रौपदी ने जब देखा तो उसने तुरन्त धोती का कोर फाड़कर भाई के हाथ में बाँध दिया। इसी बन्धन की श्रेणी में श्रीकृष्ण ने दुःशासन द्वारा चीर खींचते समय द्रौपदी की लाज रखी थी।

भाद्र मास के व्रत एवं त्यौहार–

कजरी तीज– यह तीज भादों बदी तृतीया को एक उत्सव के रूप में कजरी गीत गाकर मनायी जाती है।

बूढ़ी तीज– इस दिन व्रत रखकर गायों का पूजन करते हैं। सात गायों के लिये सात आटे की लोई बनाकर उन्हें खिलाये फिर स्वयं भोजन करे।

करना चाहिए।

परिवर्तन एकादशी– भाद्रपद शुक्ल पक्ष की एकादशी को पद्मा एकादशी भी कहते हैं। यह लक्ष्मी जी का परम् अहलादकारी व्रत है। इस दिन भगवान विष्णु क्षीरसागर में शय्या पर शयन करते हुये करवट बदलते हैं। इस दिन लक्ष्मी पूजन करना श्रेष्ठ है, क्योंकि देवताओं ने पुनः राज्य को पाने के लिये महालक्ष्मी का ही पूजन किया था।

अनन्त चतुर्दशी– यह शय्या पर क्षीरसागर में होने वाले विष्णु भगवान की पूजा की जाती है, विष्णु और कृष्ण की सम्मिलित रूप से पूजा की जाती हैं

उमा महेश्वर व्रत– यह व्रत भाद्र-पूर्णिमा को किया जाता है। इस दिन उमा शंकर की पूजा करनी चाहिए।

आश्विन मास के व्रत एवं त्यौहार– यह व्रत स्त्रियों को श्राद्धों में ही आश्विन कृष्ण पक्ष अष्टमी से प्रारम्भ कर आठ दिन तक करना चाहिए।

मातृ नवमी– इस व्रत में पुत्रवधुयें अपनी दिवंगता सास, माता आदि के निमित्त पितृपक्ष में तर्पण करते हैं और नवमी तक तर्पण कार्य करती हैं। नवमी के दिन आत्म शान्ति के लिये ब्राह्मणों को दानादि देती हैं।

इन्दिरा एकादशी– इस दिन शालिग्राम की पूजा करनी चाहिए।

पितृ विसर्जन अमावस्या– पितृ विसर्जन अमावस्या के नाम से पुकारी जाती है। इस दिन ब्राह्मण भोजन तथा दानादि से पितर तृप्त होते हैं। ऐसी मान्यता है कि विसर्जन के समय वह अपने पुत्रों को आशीर्वाद देकर जाते हैं।

नवरात्राम्भ– शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से नवमी तक यह व्रत मनाया जाता है। कुछ लोग मिट्टी की वेदी बनाकर जौ बोते हैं, उसी पर घट स्थापित करें। घट के ऊपर देवी की प्रतिमा स्थापित कर उसका पूजन करें तथा दुर्गा 'सप्तशती' का पाठ करायें। महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती या चामुण्डा, योगमाया, रक्तदन्तिका, शाकुम्भरी, श्री दुर्गा, भ्रामरी, चण्डिका, इन सभी देवियों का पाठ होता है।

दशहरा– यह पर्व आश्विन शुक्ल पक्ष दशमी को मनाया जाता है। भगवान राम ने लंका पर चढ़ाई करके इसी दिन विजय प्राप्त की थी।

वाराह चतुर्दशी– इसमें वाराह भगवान की पूजा का विधान है।

बहुला चौथ- पुत्र की रक्षा हेतु यह व्रत मातायें भाद्रपद कृष्ण चौथ को मनाती हैं।

गूगा पंचमी- यह भाद्रपक्ष की पंचमी को मनाया जाता है। इस दिन नाग देवता की पूजा का विधान है।

हल षष्ठी- यह व्रत भाद्रपद कृष्ण पक्ष षष्ठी को किया जाता है। इस दिन हल-मूसलाधारी श्री बलराम जी का जन्म हुआ था। कुछ लोग जनक नंन्दिनी माता सीता जी का जन्म दिवस इसी तिथि को मनाते हैं। बलराम जी के मुख्य शस्त्रों में हल तथा मूसल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्हीं के आधार पर इनका नाम हलषष्ठी पड़ा होगा। पुत्रवती स्त्रियाँ भी इस दिन व्रत करती हैं। इस व्रत में हल से जोता-बोया गया अन्न नहीं खाना चाहिए। इस व्रत को करने वाली स्त्रियाँ फसही (नीवार) का चावल खाती हैं। गाय का दूध वर्जित है। बैर, पलाश, गूलर, कुश प्रभृन्ति की टहनियाँ गाड़कर ललही की पूजा करती हैं। पूजा में सतनजा (गेहूँ), चना, धान, मक्का, अरहर, ज्वार, बाजरे का भुना लावा चढ़ाया जाता है। हल्दी से रंगा वस्त्र तथा कुछ सुहाग सामग्री भी चढ़ायी जाती है।

बछवारस- भाद्रपद द्वादशी को मनाया जाता है। इस दिन स्त्रियों को बछड़ों की पूजा करनी चाहिए।

कुशोत्पादनी अमावस्या- भाद्रपद कृष्ण पक्ष की अमावस्या को यह व्रत मनाया जाता है।

हरतालिका तीज का व्रत- सुहागिन स्त्रियाँ इस दिन शंकर-पार्वती सहित बालू की मूर्ती बनाकर पूजन करना चाहिए। नाना प्रकार के मंगल गीतों से रात्रि जागरण करना चाहिए। इस व्रत को करने वाली स्त्रियाँ पार्वती के समान सुखपूर्वक पतिरमण करके शिवलोक को जाती हैं।

गणेश चतुर्थी- चौथ के दिन यह व्रत गणेश की मूर्ति बनाकर पूजन किया जाता है।

ऋषि पंचमी- 'भाद्र शुक्ल' पंचमी को ऋषि पंचमी कहते हैं। इसको स्त्री-पुरुष सभी पापों की निवृत्ति के लिये करते हैं।

राधाष्टमी व्रत- यह भादोपदी अष्टमी को मनाया जाता है। इस दिन राधा जी का जन्म हुआ था।

महालक्ष्मी व्रत- यह व्रत राधाष्टमी के दिन ही किया जाता है, यह व्रत सोलह दिन तक

शरद पूर्णिमा– आश्विन शुक्ल पूर्णिमा को 'शरद पूर्णिमा' कहा जाता है।

कार्तिक मास के व्रत एवं त्यौहार–

तारा भोजन– कार्तिक लगते ही पूर्णमासी से लेकर एक माह तक नित्य प्रति व्रत करें। रोजाना रात्रि को तारों को अर्घ्य देकर फिर स्वयं भोजन करे।

छोटी साँकली– बड़ी साँकली।

करवा चौथ– यह कार्तिक कृष्ण पक्ष की 'चन्द्रोदयव्यापिनी' चौथ में किया जाता है। सौभाग्यवती स्त्रियाँ स्वपति के रक्षार्थ यह व्रत करती हैं। इस दिन निर्जल व्रत करें। चन्द्रदर्शन के बाद चन्द्रमा को अर्घ्य देकर भोजन करना चाहिए।

अहोई अष्टमी का व्रत– यह त्यौहार कृष्ण पक्ष की अष्टमी को मनाया जाता है। इस दिन बच्चे की माँ पूरे दिन व्रत रखती है। सायंकाल तारे निकलने के बाद दीवार पर अहोई बनाकर उसकी पूजा करें।

रम्भा एकादशी– इसमें भगवान शिव का सम्पूर्ण वस्तुओं से पूजन किया जाता है।

गोवत्स एकादशी– कृष्णपक्ष द्वादशी को गाय-बछड़ों की सेवा की जाती है। इस दिन गाय का दूध, गेहूँ की वस्तुयें, कटे फल नहीं खाना चाहिए।

धनतेरस– यह त्रयोदशी के दिन मनाया जाता है। इस दिन धनवन्तरि वैद्य समुद्र से अमृत कलश लेकर प्रकट हुए थे।

नरक चतुर्दशी– इस दिन नरक से मुक्ति पाने के लिये प्रातःकाल तेल लगाकर अपा-मार्ग(चिचड़ी) पौधे के सहित जल से स्नान करना चाहिए। इस दिन भगवान कृष्ण ने नरकासुर नामक दैत्य का संहार किया था।

रूप चतुर्दशी– कृष्ण पक्ष में यह पूजा की जाती है। इस व्रत के करने से श्रीकृष्ण भगवान सुन्दरता देते हैं।

छोटी दिवाली– कार्तिक बदी चौदस के दिन मनाई जाती है। इसमें एक चौमुख दीपक और सोलह दीपक रखे जाते हैं।

बड़ी दिवाली– कार्तिक की अमावस्या के दिन दीपावली मनाई जाती है। इस दिन महालक्ष्मी का उत्सव बड़े धूम-धाम के साथ मनाया जाता है।

गोवर्धन पूजा (अन्नकूट)– दिवाली के अगले दिन अन्नकूट उत्सव मनाया जाता है।

इस दिन गोबर का अन्नकूट बनाकर उसके सम्मुख श्रीकृष्ण गाय तथा ग्वालबालों की पूजा की जाती है। यह ब्रजवासियों का मुख्य त्यौहार है।

भैया दूज– शुक्ल पक्ष द्वितीया को भाई-बहन के प्रेम का प्रतीक है। इस दिन भाई-बहन को साथ-साथ यमुना में स्नान करना अति फलदायी होता है। इसी दिन सूर्य तनया जमुना जी ने अपने भाई यमराज को भोजन कराया था। इसीलिये इसे 'यम द्वितीया' भी कहते हैं।

गोपाष्टमी– यह शुक्ल पक्ष की अष्टमी को मनाया जाता है। इस दिन गायों-बछड़ों की पूजा की जाती है।

आँवला नवमी– इस दिन आँवले के वृक्ष की पूजा की जाती है। उसके वृक्ष पर कच्चा सूत लपेटा जाता है, सात परिक्रमा की जाती है। इस दिन उसी वृक्ष के नीचे भोजन भी किया जाता है।

देवोत्थान एकादशी– इसी दिन भगवान विष्णु ने शंखासुर नामक राक्षस को मारकर भारी थकावट से शयन कर कार्तिक शुक्ल एकादशी को नयानोन्मीलित किये थे। इस तिथि के बाद ही शादी, विवाह आदि शुभ कार्य होने शुरू हो जाते हैं।

तुलसी विवाह– शुक्ल पक्ष की एकादशी को कार्तिक स्नान करने वाली स्त्रियाँ तुलसी जी तथा शालिग्राम का विवाह करती हैं।

भीष्म पंचक– यह व्रत शुक्ल एकादशी से प्रारम्भ होकर पूर्णिमा को समाप्त हो जाता है। इसमें पाँच दिन तक निर्जला व्रत करते हैं। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष के लिये यह व्रत किया जाता है।

बैकुण्ठ चतुर्दशी– इस तिथि में बैकुण्ठवासी भगवान (विष्णु) की विधिवत् पूजा की जाती है।

कार्तिक पूर्णिमा– इस तिथि को भगवान का मत्स्यावतार हुआ था। इसे 'त्रिपुरी पूर्णिमा' भी कहते हैं।

अगहन मास के पर्व और त्यौहार–

भैरव जयन्ती– कृष्ण पक्ष अगहन में अष्टमी को भैरव जयन्ती मनाई जाती है। इसी तिथि को भैरव जी का जन्म हुआ था। इनकी सवारी कुत्ते का भी पूजन होता है। भगवान शिव के दो रूप हैं- भैरव तथा विश्वनाथ। इनकी पूजा करने से भूत-प्रेत सभी बाधायें पार हो

जाती हैं।

मोक्षदा एकादशी- अगहन शुक्ल पक्ष एकादशी को यह व्रत किया जाता है। इसी दिन भगवान श्रीकृष्ण ने महाभारत युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व मोहित हुए अर्जुन को श्रीमद्भागवत गीता का उपदेश दिया था।

पौष मास के व्रत एवं त्यौहार-

सफला एकादशी- इस दिन भगवान अच्युत की पूजा का विशेष विधान है।

ब्रह्मा गौरी पूजन व्रत- यह व्रत पौष मास शुक्ल पक्ष तृतीया को किया जाता है। इस तिथि को जगतजननी षौड शोपचार पूजन करना चाहिए। यह स्त्रियों का व्रत पर्व है। इस पूजन के प्रभाव से पति-पुत्र चिरंजीवी होते हैं।

माघ मास के व्रत एवं त्यौहार-

संकट चौथ (गणेश चतुर्थी)- यह व्रत माघ कृष्ण पक्ष की चौथ को किया जाता है। इस दिन गणेश चन्द्रमा की पूजा करनी चाहिए।

शीतल षष्ठी- इसको करने से आयु तथा सन्तान कामना फलवती होती है।

मौनी अमावस्या- इस दिन मौन रहना चाहिए।

बसंत पंचमी- यह पर्व बसन्त की आगवानी की सूचना देता है।

भीष्माष्टमी- यह व्रत माघ शुक्ल अष्टमी को मनाया जाता है। इस दिन बाल ब्रह्मचारी, कौरव-पाण्डव के पूर्वज भीष्म पितामह की इच्छा मृत्यु हुई थी। इस दिन भीष्म के नाम पर पूजन तर्पण करने से सत्यवादी सन्तान की उत्पत्ति होती है।

माघ पूर्णिमा- माघ पूर्णिमा का धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्व है। स्नान पर्वों का यह अन्तिम प्रतीक है। इस दिन स्नानादि से निवृत्त होकर विष्णुपूजन पितृ श्राद्ध कर्म तथा भिखारियों को दान देने का विशेष फल है।

फाल्गुन मास के व्रत एवं त्यौहार-

जानकी नवमी- यह व्रत फाल्गुन कृष्ण पक्ष नवमी को किया जाता है। समस्त सुहाग सामग्रियों से भगवती सीता का पूजन किया जाता है। वैष्णव धर्म ग्रन्थों के अनुसार इसी दिन जानकी जी का जन्म हुआ था।

विजया एकादशी- इस दिन भगवान विष्णु की पूजा की जाती है।

एकांत शांति की ओर आकृष्ट करता था। तपस्या के अंतर्गत आत्म संयम, आत्म त्याग, कष्ट सहन के विविध प्रकार के व्रत आते थे, जिनका लक्ष्य हृदय की वासनाओं को दूर करना था। जब राम तपस्या के स्थान पर गये थे तब वहाँ नाना प्रकार की तपस्या करने वाले तपस्विगण उनके दर्शनार्थ गये थे। जैसे सप्रक्षाल, मरीचिप, अश्मकुट्ट, पत्राहार, दंतोलूखली उन्मज्जक, गात्रश्य्य, अशय्य, अनवकाशिक, सलिलाहार, वायुभक्षी, आकाशनिलय, स्थंदिलशायी, ऊर्ध्ववासी, दान्त, आर्द्रपट वासा, सजप, तपोनिष्ठ, पंचाग्निसेवी, ये सभी ब्राह्मण तेज संपन्न होते थे और अभ्यास से इनका चित्त एकाग्र हो चुका होता था। रामायण में योग श्रमण नामक तपस्वियों के एक वर्ग का अनेक बार उल्लेख हुआ है। स्त्रियों द्वारा तपस्या किये जाने के अनेक उदाहरण रामायण में आये है। अत्रि पत्नी अनुसुइया ने कई वर्षो तक तपस्या का अनुष्ठान किया था, शबरी स्वयंप्रभा सदा के लिये तपस्वनी बन गयी थी।

प्रातःकाल का समय आह्रिक (नैत्यनैमित्तिक) कृत्यों के अनुष्ठान के लिये नियत रहता था। उन्हें दिन के पूर्वार्ध में सम्पन्न किये जाने वाले कृत्य की संज्ञा दी जाती थी। इन कृत्यों में स्नान, अर्ध्य, तर्पण और मार्जन (सूर्य और पितरों को जलांजलि) दी जाती थी। विश्वामित्र के संगी-साथी मुनि पहले स्नान देवपितरों को जलांजलि तथा अग्निहोत्र से निवृत हुये और फिर हविष्यान्त का भक्षण कर महामुनि के चारों ओर गंगावतरण की कथा सुनने बैठे थे।

रामायण में कुछ ऐसे उदाहरण मिलते है, जिसमें तपस्वियों ने यज्ञाग्नि में स्वय अपने को आहुति, रूप में होम दिया। शबरी ने राम को बताया था कि किस प्रकार उसके गुरूओं ने गायत्री मंत्र के जप से विशुद्ध हुये पुत्रवधु से दुःखी दिति ने कश्यप से इन्द्रहान्ता पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से तप के लिये आज्ञा लेकर कुशपलव में तप एक सहस्र वर्ष तक पवित्रतापूर्वक कर लोगी तो तुम इन्द्र का वध करने के समर्थ पुत्र को प्राप्त कर लेगी। इस प्रकार कुशप्लव नामक तपोवन में आकर वह कठोर तपस्या करने लगी।

विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के लिये तप किया था। विश्वामित्र ने पुष्कर तीर्थ में तपस्या की थी। इन्होंने रम्भा को शाप देकर पुनः घोर तपस्या के लिये दीक्षा लेना।।

विराध राक्षस ने तपस्या करके किसी भी शस्त्र से अवध्य बन जाने का वर प्राप्त किया था। तितिक्षा ने भी तप व्रत किया था। मारीच ने अपने प्रारंभिक दुष्कर्मों के बाद

मृगचर्म और जटाओं का तपस्वी बाना पहन लिया था। नियताहार रहकर वह तप करने में प्रवृत्त हो गया था।

अपने देह रूपी पिंजर को मंत्रोच्चार पूर्वक अग्नि में होम दिया था।३७०। स्वयं शबरी ने भी राम की आज्ञा लेकर अपने को आग में होम कर दिया था।३७१। इससे पता चलता है कि इस प्रकार से आत्म बलिदान के कृत्य समाज द्वारा अनुमोदित थे।

कुछ स्थान विषयों को अधिक मान्यता मिली हुई थी। आज की तरह तब भी गया में पितरों को पिंडदान करने की प्रथा थी। विष्णु की सफल तपस्या से संबद्ध होने के कारण सिद्धाश्रम एक पावन स्थान बन गया था। मैमिषरण्य यज्ञों का अनुष्ठान करने के लिये एक आदर्श स्थल था। सिद्धों और चारणों द्वारा सेवित हिमालय पर्वत तपस्या करने के लिये अनुकूल प्रदेश था। महर्षियों की तपो भूमि चित्रकूट के श्रृंगों का दर्शन मात्र करने से मनुष्य का कल्याण हो जाता था।

आर्यों में शव का दाह संस्कार किया जाता था। दशरथ और अंधमुनि के परिवार की दाह क्रिया की गई थी। इसी प्रकार राक्षसों में रावण और वानरों में वाली का अग्नि संस्कार किया गया था। प्रत्येक पिता की यह हार्दिक अभिलाषा होती थी कि मेरी अंत्येष्टि क्रिया मेरे ही किसी औरस पुत्र द्वारा सम्पन्न हो। इंद्रजित् की मृत्यु पर रावन ने विलाप किया कि उचित तो यह था कि मेरा प्रेतकार्य (अंत्येष्टि) तुम्हारे हाथों होता, परन्तु आज मुझे यह काम सौंपकर प्रतिकूल आचरण कैसे कर रहे हो?।३७२। पिता का दाह संस्कार करने वाला पुत्र सौभाग्यशाली माना जाता था। राम ने चित्रकूट पर अपने भाग्य को कोसते हुये कहा था कि एक तो मैं अपने पिता की मृत्यु का कारण बना और दूसरे उनके अवशेषों का समुचित संस्कार भी न कर सका।३७३। उनकी दृष्टि में भरत और शत्रुघ्न ही सफल जन्म थे, क्योंकि वे अपने पिता की और्ध्वदेहिक क्रिया सम्पन्न कर सके थे।३७४। पुत्र की अनुपस्थित में दाह क्रिया रोक दी जाती थी। महाराज दशरथ का शव भरत के आने तक तैल द्रोणि में सुरक्षित रख दिया गया था, क्योंकि पुत्र के अभाव में पिता का संस्कार कर देना उन्हें रुचा नहीं।

यह उल्लेखनीय है कि रामायण में तीन प्रमुख राजाओं के वैभवशाली अंतिम संस्कार का वर्णन मिलता है, पर उसमें से वाली को ही पुत्र? की उपस्थित में चिर निद्रा में

लीन होने का सौभाग्य मिल सका।

रामायण कालीन आर्यों में अंतिम संस्कार की विधि वर्तमान समय के हिसाब से मिलती-जुलती थी। अंतर सिर्फ इतना है कि अस्थि संचय की क्रिया आज की भाँति दूसरे दिन न जाकर तेरहवें दिन की जाती थी।

दाह संस्कार के पश्चात् पितरों के लिये उदक (जल-दान) तथा निर्वाप (पिंड-दान) क्रियायें की जाती थीं। किसी भी व्यक्ति के पूर्वज दो तरह के होते थे- एक तो वे जो हाल में ही स्वर्गलोक पहुंचे हों, जिनका स्मरण श्रद्धा पूर्वक सम्मान के साथ किया जाता हो, इन्हें प्रेत नाम से जाना जाता है। दूसरे वे जो दीर्घकाल पहले दिवंगत हुये थे और अब अर्ध विस्मृत हो जाने के कारण जिनके प्रति ममत्व नहीं रह जाता। ऐसे पूर्वज 'पितर' कहलाते हैं। सघः मृत प्रेतों के लिये-प्रेतकार्य तथा निर्वाण क्रिया की जाती थी, जैसा कि भरत ने अपने पिता की मृत्यु के बारहवें दिन किया था। ये क्रियायें यदा-कदा होती थीं, और प्रेतों को उनके भावी पितर की ओर अग्रसर करती थी। पितरों के लिये दैनिक पितृयज्ञ और वार्षिक श्राद्ध किये जाते थे। उन्हें पितृ देवता की प्रतिष्ठा देकर अन्य देवताओं के साथ यज्ञांश का अधिकारी बना दिया गया। इन श्राद्धों का प्रमुख लक्षण आज की तरह ब्राह्मणों को भोजन कराना और दक्षिणा भेंट करना था। ये ब्राह्मण दिवंगत आत्माओं के प्रतिनिधि रूप में माने जाते थे। पितरों की स्मृति में ये श्राद्ध नियत समय पर वर्ष में एक बार संवत्सरी के दिन किये जाते थे। प्रत्येक पुत्र से यह आशा की जाती थी कि वह एक बार गया जाकर अपने पितरों के लिये श्राद्ध कर्म अवश्य करे। उस युग के प्रत्येक पिता की इस हार्दिक आकांक्षा का राम ने भी यह कहकर अनुमोदन किया था कि लोग अपने पुत्रों की कामना इसलिये करते हैं कि उनमें से कोई एक गया जाकर श्राद्ध करेगा ही।३७५।

अन्यत्र रामायण में धर्म के उन व्यावहारिक रूपों पर प्रकाश डाला गया है, जिन्हें हम दैनिक जीवन के विविध सूत्रों में पिरोकर आत्मसात् कर सकते हैं। प्रातः काल ऊषा काल में शय्या त्यांग और स्नान, अंतः और ब्राह्य शौच, अस्तिकता, संध्या, जप, अग्निहोत्र, ध्यान, देवपूजा, संस्कारों का अनुष्ठान, पिता श्राद्ध, - ये ही आस्तिक और सदाचारी जीवन के वे सोते हैं, जो मिलकर धर्म की महानदी में परिणित होते हैं जिनके अभाव में वह नदी सूख जाये।

रावण ने तपस्या एवं परम्पराजन्य संस्कार स्वार्थ परायणता और निरंकुशता से आक्रान्त हो गये, वहाँ पुण्यात्मा विभीषण आसुरी वातावरण से निरन्तर संघर्ष करते हुये अंत तक सदा धर्म का ही अवलंब न लेते रहे।

कहा जाता है कि संसार में धर्म संग्रह जैसा दुष्कर कार्य और कोई नहीं। धर्म का एक प्रधान साधन कर्तव्य-कर्म का आचरण है, चाहे मार्ग में कितनी ही कठिनाइयां क्यों न आयें ओर सुखोपयोग की नैसर्गिक प्रवृत्ति कितना ही विमुख क्यों न करे सुख से सुख कभी नहीं मिलता, धर्म का मार्ग क्लेश साध्य है। इसीलिये हनुमान ने रावण से कहा था कि तुमने तपस्याजन्य धर्म के फलस्वरूप यह जो ऐश्वर्य संग्रह किया है तथा शरीर और प्राणों को चिर काल तक धारण करने की शक्ति प्राप्त की है, उसका विनाश करना उचित नहीं।

तपः सन्तापलब्धस्ते सोऽयं धर्म परिग्रहः।

न स नाशयितुं न्याय्य आत्मप्राण परिग्रहः।।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार विश्रवा ने कैकसी को अपनाने के पूर्व भरद्वाज की पुत्री देववर्णिनी से वैश्रवण को उत्पन्न किया था। वैश्रवण से तपस्या करके ब्रह्म से चतुर्थ लोकपाल (धनेश) का पद तथा पुष्पक भी प्राप्त किया था।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार विश्रवा ने कैकसी को अपनाने से पूर्व भरद्वाज की पुत्री देववर्णिनी से वैश्रवण को उत्पन्न किया था। विश्रवा ने उसे लंका में निवास करने का आदेश दिया था कयोंकि राक्षस विष्णु के डर से लंका छोड़कर रसातल चले गये थे (सर्ग तीन)। वैश्रवण किसी दिन पुष्पक पर चढ़कर अपने पिता विश्रवा से मिलने आये, कैकेयी ने दशग्रीव का ध्यान उसकी ओर आकर्षित करके कहा कि तुम भी अपने भाई के समान बन जाओ। अतः दशग्रीव अपनी माता की प्रेरणा से अपने भाइयों के साथ गोकर्ण में तपस्या करने लगा (सर्ग नौ)। तीनों भाई दस हजार वर्ष तक घोर तप करते रहे।

यज्ञ-याग, दान-दक्षिणा, तप-त्याग, व्रत-नियम, पूजा-स्वाध्याय आदि निस्संदेह धर्मिष्ठ जीवन के प्रमुख लक्षण हैं और उनका अनुष्ठान मानव व्यक्तित्व के लिये सर्वांगीण उत्कर्षकारी है।

लोगों का नैतिक स्तर बहुत ऊँचा था अयोध्या के नागरिकों के विषय में बाल्मीकि कहते हैं कि वे सभी प्रसन्न, धर्मात्मा, निर्लोभ, सत्यवादी और अपने-अपने धन से सन्तुष्ट

रहने वाले थे। वहां कोई कामी, कृपण, क्रूर, मूर्ख अथवा नास्तिक पुरुष देखने को भी नहीं मिलता था। वहाँ के स्त्री-पुरुष सभी संयमी तथा शील और सदाचार की दृष्टि से महर्षियों की भांति विशुद्ध थे।

दान या उपहार में गौएं अनिवार्य रूप से भेंट की जाती थीं। चार पुत्रों के पिता बनने पर दशरथ ने हजारों गौएं दान की थीं। रामादि के विवाह समारोह में उन्होंने अपने पुत्रों के हितार्थ गोदान किया था।

दशरथ ने अपने पुरोहितों को सोना-चाँदी भी दान में दिया था। पुत्रेष्टि यज्ञ की समाप्ति पर दशरथ ने अपनी समस्त पृथ्वी अपने ऋत्विजों को दान कर दी थी, उन्हें पृथ्वी का शासन करने में अपने को असमर्थ बताकर उसके बदले में मणि, गौएं देने की प्रार्थना की थी। वनगमन के समय राम ने सुयज्ञ को एक हजार निष्क भेंट किये थे। दशरथ ने ब्राह्मणों को एक करोड जांबूनद ओर चालीस करोड़ रजत बाँटे।

वेश-भूषा

आदि मानव पहले वस्त्र न पहन कर पेड़ों की छाल के वस्त्र, पहनते थे। उस समय कोई वस्त्र बनाना नहीं जानते थे इस कारण मात्र कपड़े को लपेट लिया जाता था। किन्तु सभ्यता के विकास के साथ वस्त्रों में भी परिवर्तन आया। कपास की खेती होने लगी तो सूत से धागा बनाकर कपड़ा तैयार किया जाता था। विकास होने के बाद अंतर इतना आ गया है कि घास-पत्तों की अनुकृतियों वस्त्रों पर अब छापकर आने लगी हैं। वाल्मीकि के समय में ये तीनों प्रकार के वेश प्रचलित थे।

विवाह के अवसर पर भी वस्त्र दिये जाते थे। महाराज जनक ने बहुसंख्यक वस्त्रों का उपहार दिया था (कोंटयम्बराणि ददौ)। भरत के मामा के पास अपीरमित वस्त्र उपहार में दिये गये थे। वन-गमन के पूर्व राम ओर सीता ने परिजनों को वस्त्र दिये थे। भरत की सेना के स्वागत समारोह में भरद्वाज ने कपड़ों के ढेर के ढेर लगा दिये थे (वाससां चापि संचयान)।

राम सदा बहुमूल्य वस्त्र पहनते थे (महार्हवस्त्र सम्बद्धः)। ऋषि-मुनियों ने उनके शरीर की सुगठन, कांति, सुकुमारता और सुंदर भूषा को बड़े विस्मयपूर्वक देखा था।३७६। उस समय सोने और चाँदी के कामवाले कपड़े पहने जाते थे। सोने के वस्त्र को

'महारजतवासस्' कहलाते थे। सुनहरे धागे वाले पीले वस्त्र।३७७। रत्नों से जड़े 'रत्नांबर' का भी उल्लेख मिलता है। सैनिक भी चित्रित विचित्र वस्त्र पहनते थे। लंका के सभा-भवन में सुनहरे कालीन बिछे थे जिस पर सुन्दर आभूषणों से सजे राक्षस बैठा करते थे।

वाल्मीकि ने स्त्रियों के लिये सुसज्जित बताया है। दशरथ का महल सुन्दर वेश-भूषा से सज्जित प्रमदाओं से भरा रहता था। रावण का अंतःपुर भी नाना प्रकार के रंग-बिरंगे वस्त्रों और मालाओं से सजी सुन्दरियों से भरा रहता था।३७८। रामायण में अप्सराओं को भी विचित्र वस्त्र पहनकर लुभाने वाले वस्त्रों में चित्रित किया गया है। अभिसारिका रूप में रंभा ने मेघों के समान नीला वस्त्र पहन रखा था (नील सतोयमेघाभं वस्त्रं सम-वगुष्ठिता)। रावण के वस्त्र के बारे में रामायण में बताया गया है कि मथे हुये अमृत झाग से श्वेत, घुला हुआ, पुष्पों से युक्त, मणियों से जटित था-

मथिता मृतफेनाभमर जोवस्त्रमुत्तगम। लपुष्पभवकर्षन्तं विमुक्तं सक्तमंगदे।।

एक स्थल पर वाल्मीकि चाँदनी रात की तुलना धवल वस्त्र में लिपटी नारी से करते है-

ज्योत्सनांशुकप्रावरण विभाति नारी व शुम्लांशुकसंवृ तांगी।

वस्त्रों के भी कई रूप होते थे जैसे- अजिन (मृग-चर्म), वत्कल (पेड़ों की छाल), कुश-धीर (घास से बने कपड़े), 'मुनि वस्त्र' कहलाते थे। नरम मृग-चर्म को 'तूताजिन' (रुई जैसी मृगछाला) कहते थे। कौशेय (रेशमी) वस्त्रों का भी उस समय बहुत अधिक महत्व था। सीता को अनेक बार 'कौशेयवासिनाी' कहकर संबोधित किया गया है। क्षौम वस्त्र अधिक कीमती, मुलायम, बारीक होता था। पूजा के समय में प्रयोग होता था। यह वस्त्र क्षुमा या अलसी के पौधे के रेशों से तैयार किया जाता था।३७९। राम के युवराज्याभिषेक के दिन कौशल्या 'क्षौमवासिनी' वस्त्र पहनकर देवालय में पूजा कर रही थी। राम ने भी क्षौम वस्त्र पहन रखा था। सीता के स्वागत के लिये दशरथ की रानियाँ क्षौम वस्त्रों से सजी थी।३८०। कहते हैं कि रावण के शव को क्षौम वस्त्र पहनाकर अंत्येष्टि क्रिया के लिये लाया गया था। रावण सुनहरे सूत के कपड़े पहनता था।३८१। सीता का उत्तरीय सुनहरे धागों का एक पीला कपड़ा था। पति कनकपट्टाभम,।

आविक, केबल ऊनी कपड़े थे। कपास (कार्पसिक) सन (सव) के रेशों से भी

तैयार किये जाते थे, रस्सियाँ भी सन से बनती थी। इन्ही रस्सियों से लंका में हनुमान को बाँधा गया था (बबन्धुः शणवल्कैश्ना)। उदाहरणार्थ, इल्वत राक्षस ब्राह्मणों का रूप धारण करके सुसंस्कृत भाषा बोलकर सहज ही ब्राह्मण बन जाया करते थे।

आज स्त्रियाँ साड़ी में रुपया, पैसा पल्ले में बाँध लेती थी तो यह कार्य उस समय भी होता था क्योंकि हनुमान के आनेपर सीता ने पल्लू से गाँठ खोलकर मणि निकाली और प्रेम चिन्ह रूप में राम के पास भेजी थी। अपने आंसू भी पोछे थे। इससे पता चलता है कि स्त्रियाँ अधोवस्त्र लंहगे के समान सिला नहीं होता था, जो चादर की तरह होता था, कमर में लपेट लिया जाता था। छोर जिसका खुला रहता था। छोर का उपयोग रुमाल या अतिरिक्त वस्त्र के रूप में किया जा सकता था।

रामायण युग में साड़ी पहनने की शैली काच्छ नहीं होती थी (इस शैली में टांगों के बीच से पीछे ले जाकर बांधते है ये साड़ी कसी, मजबूत बंधी रहती थी) बल्कि रामायण में साड़ी हवा में उड़ती दिखाई गयी है। जिससे अंग-प्रत्यंग का सौन्दर्य उद्घाटित हो गया है। उदाहरणार्थ जब हनुमान की माता अंजना पर्वत पर भ्रमण कर रही थी, तभी पवन ने उनकी साड़ी हवा उड़ा दी तो उस अंजना का लावण्य निरावरणं हो गया पवन उसे देखकर मोहित हो उठा। यदि अंजना की साड़ी महाराष्ट्रीयन की भाँति बंधी होती तो ऐसा नहीं होता।

कहते हैं कि उस समय बड़ा मुलायम, बारीक कपड़ा पहना जाता था। क्योंकि रम्भा नीला वस्त्र पहनकर अभिसार के लिये जा रही थी, तब उसके शरी से लिपा चन्दन दिखाई पड़ रहा था। पगड़ी (उष्णीष) पहनने का रिवाज था लेकिन ये भृत्य वर्ग तक ही सीमित था। रावण के चामरधारी, खर के सैनिक, विभीषण के अनुचर पगड़ियाँ में सजे थे। इंद्रजित के यज्ञ में आयी हुयी राक्षसी परिचारिकाएं लाल रंग की पगड़ियाँ पहने हुयी थी (रक्तोष्णीधराः स्त्रियः)।

रामायण युग में आभूषणों को भी अधिक महत्व दिया जाता था। उस समय स्त्री-पुरुष दोनों ही आभूषण पहनते थे। अयोध्या में सर्वयाणक इसका प्रभाव था। वाल्मीकि ने तो राम के सम्मुख प्रकट होने वाले सागर का वर्णन कर तत्कालीन अंलकृत पुरुष का स्पष्ट चित्र उपस्थित कर दिया है। राम तो कुमार काल में एक सोने की माला पहनते थे

(कनकमालया शोभयन्)। राम-लक्ष्मण जब वन में पहली बार हनुमान से मिले तो हनुमार ने आश्चर्य होकर पूछा कि आप लोग तो सभी आभूषणों से भूषित होने योग्य हैं, फिर आप निराभरण कैसे हो!३८२। वानरों और राक्षसों में भी आभूषण का महत्व था। वाली के पास तो इंद्र की दी हुयी, रत्न जड़ी सोने की एक उत्तम माला थी।३८३। युद्धभूमि में भी सैनिक आभूषण पहनकर जाया करते थे। कुम्भकर्ण भी वानरी सेना का मुकाबला करते समय बहुमूल्य आभूषणों से सजा था।

इसके साथ-साथ लोग पशुओं को भी गहने पहनाते थे। घोड़ों को सोने के आभूषण पहनाये जाते थे और उन पर सुनहरी जालियाँ पड़ी रहती थी। अश्वों की छाती 'उदश्छद' से ढकी जाती थी। धूमाक्ष राक्षस के रथ में सुवर्ण-विभूषित गधे जुटे थे। दान में दी जाने वाली गायों के सींग सोने से मढ़े रहते थे (सुवर्णाहर्जयः)। राजकीय वैभव के प्रतीक में हाथियों को ढकने के लिये सुनहरी चादर (कांचनी कक्ष्या) काम में ली जाती थी, जंजीर भी सुनहरी (कांचनी कांची) जो कमर में बँधी जाती थी। हाथियों के दाँत सोने से मढ़े जाते थे (हस्तीव जाम्बूनदबद्धश्रृंग) गले में 'ग्रैवेयक' पहनाया जाता था। पैरों में लकड़ी की पादुकायें अथवा चमड़े के उपानह पहने जाते थे। राजकुमार सोने की पादुकाएं पहनते थे (पादुके हेमभूषिते)। मानव जीवन में पादुकाओं को बहुत अधिक महत्व था इसी कारण भरत राम से उनके न आने पर पादुकायें ही ले आये जिससे उनको स्थान देकर राज्य चलाते रहे।

वाल्मीकि ने नारी को आभूषण पहनने के लिये कहा है कि स्वाभाविक है आभूषण धारण करना। उन्होनें पाक्रतिक दृश्यों की उपमा अलंकृत रमाणियों से देते हैं, जिस प्रकार वृक्ष नदी की शोभा बढ़ाते हैं वैसे वस्त्राभूषण नारी की, पुष्पों से ढकी भूमि श्रंगार की हुयी स्त्री की तरह शोभायमान होती है।३८४। सीता के पास भी आभूषणों की कमी नहीं थीं वन जाते समय दशरथ से इतने आभूषण मिले थे कि चौदह वर्ष के लिये पर्याप्त थे। इसीलिये सीता वन में 'सर्वाभरणभूषिता' होकर विचरण करती थीं। आर्यो स्त्रियों के अतिरिक्त राक्षसी, वानर स्त्रियाँ भी आभूषण धारण करती थी क्योंकि हनुमान ने लंका में स्त्रियों की करधनी, नुपुर की झंकार सुनी थी। उनके विभूषणों की पंक्ति बिजली की तरह चमकती दिखती थी। जब तारा क्रुद्ध लक्ष्मण को शांत करने के लिये बाहर भाई, तब उसकी करधनी की लड़े बिखर कर जांघ में लटक रही थी। रामायण में सिर के गहने 'चूड़ावलय' का उल्लेख मिलता

है। माथे पर तिलक पहना जाता था, जिसे आजकल 'टीका' कहते है। नाक के लिये कोई विवरण वाल्मीकि ने नहीं दिया। कान में कुंडल पहना जाता था, कहते हैं कि रावण के कुंडल की चमक-दमक तरूण सूर्य के समान थी।३८५। गले में 'ग्रैवेयक' (हँसली), निष्क (कंठी), माला हिरण्मयी सामान्य हार पहने जाते थे।३८६। सिक्कों की कंठी पहनने का रिवाज प्राचीन काल से है। तो सीता भी निष्क की माला पहनती थी। रावण भी निष्क माला पहनता था। हार को रत्न मणि से गूँथकर बनाया जाता है। हार को चंद्र रश्मियों की कांतिवाला बताया गया है (चन्द्रांशुकिरणाभा हाराः)। स्त्रियों की करधनी के लिये रामायण में चार नामों का उल्लेख किया गया है 'कांची', 'दाम', 'रशना', 'मेखला', ।३८७। कहते है कि आभूषण के अतिरिक्त अधोवस्त्र के ऊपर बाँधने में मजबूती भी मिलती थी। कांची घुंघरूदार सोने की कमर बन्द को कहते थे। सोने की धागेदार या लड़ीदार क़रधनी हेम-दाम होती थी। रशना जंजीरं की तरह होती थी। रशना और दाम का संयुक्त रूप से रशना-दाम था।

पैरों में नुपुर का उल्लेख रामायण में है। यह सादे मणि जड़ित या झंकार करने वाले घुंघरू लगे थे। सीता के (पैर को) बड़े-बड़े झंकार करने वाले कहा गया है (स्वनवन्ति महान्ति च)। बाँहों में बुजबंद (अंगद या केयूर पहनने का रिवाज स्त्री-पुरुष दोनों में था। अंगद ऊपर की ओर से नुकीले होते थे उसे उत्तरीय पहनते समय इन्हें उसमें फसने से बचाया जाता था। 'भरण' कलाई में पहनते थे।३८८। 'अंगुलीपक' (अंगूठी) ये हाथ के ऊँगली में पहनने वाले का नाम लिखा रहता था। स्त्रियों का अंगुलीयक पहनने का उल्लेख नहीं मिलता। राम और उनके भाईयों के जन्मोत्सव पर अयोध्या की सड़कों में रत्न बिखेरे गये थे। ३८६। लंका को भी समुद्र रत्नों की खान माना जाता था (रत्नों धजलसनादम)। रावण की सभा में उपस्थित राक्षस भी मणियों से विभूषित रहते थे।३६०। वेशधारी रावण के आने पर सीता का वक्षः स्थल उत्तम मणियों से अलंकृत था।३६१। नील (नीलम), इन्द्रनील, महानील, विदुम (मूंगा), मसार (पन्ना), मुक्ता (मोती), वज्र (हीरा), वैड्र्य (रत्न), आदि मणियों के प्रकारों का वाल्मीकि ने स्थल-स्थल पर उल्लेख किया था।३६२। हाँथों के लिये मणि मूँगे के गहने 'मणिविदुम हस्ताभरण' मणियों के उत्कृष्ट आभूषण 'मुक्त प्रवरभूषण' क़हलाते थे।

अप्सराएं मुकुट शैली में पुष्पों से केश सजाती थी। बिना संवारे रूखे बाल को

'एकवेणी' कहते थे। वाल्मीकि ने विसहिणी स्त्रियों का 'एकवेणीधरा दीना' के रूप में बार-बार वर्णन किया है। पाति से विणुक्त नारी के लिये केशों को सजाना वर्जित था। सीता ने अपहरण के दिन से लेकर पति संयोग हो जाने तक केशों को नहीं संभाला था। पुरुष भी अपने बाल नहीं कटवाते थे। राम, लक्ष्मण, भरत ने तपस्वी रूप धारण करके अपने बालों को नहीं कटवाया वरन् बट का दूध लगाकर उन्हें जटा का रूप धारण किया था।३६३। राम ने वन से लौटने पर अपने बालों को नहीं कटवाया वरन् साफ करके पूर्व रूप दिला दिया। कहते है कि भरद्वाज के आश्रम में भरत का एक भी सैनिक ऐसा नहीं था, जो मतिन हो, जिसके वालों में घूट जमी हो।३६४।

रामायण काल में पुरुष-वर्ग दाढ़ी-मूँछ रखता था। नाइयों को 'श्माक्षु-वर्धन' (मूंछे बढ़ाने वाले, कतरने वाले) की संज्ञा दी जाती थी। राम ने अयोध्या लौटने पर जिस नाइयों से हजामत बनवाई थी वो 'निपुण' थे और उनके हाथ हल्के, तेज, चलते थे।३६५। रामायण काल में किशोरावस्था में कपास की तरह केस रखा करते थे। इस शैली में बाल कानों और कनपटियों के ऊपर लटकते रहते थे। विश्वामित्र की यज्ञ रक्षार्थ जाने वाले राम-लक्ष्मण को 'काकपक्षधरा' कहा गया है। सभी द्विज शिखा या चोटी रखते थे। सीता के पास जब रावण आया तो उसके भी चोटी थी मरीच ने राम के सिर पर चोटी देखी थी। लंका में यज्ञ करते समय मेघनाथ के भी शिखा थी। तपस्वी और तपस्विनियाँ सिर पर जटा-भार रखते थे उन्हें 'जटा बन्धन से बांधते थे।

वाल्मीकि युग में नर और नारी पुष्पों द्वारा भी सुसज्जित होते थे। अंकुरों, पुष्पों, मालाओं को पतों या पल्लवों के बिना सजावट अधूरी रहती थी। सीता को तो अर्जुन, तिलक, कर्णिकार वृक्ष के पुष्प बहुत पसन्द थे। वाल्मीकि ने इन्हें 'प्रिय पंकजा' नाम से सम्बोधित किया है। पुष्प-चयन करना उसका प्रिय मनोरंजन था। राम ने उन्हें पहली बार पुष्प चुनते समय ही देखा था। रावण जब उन्हें हरकर ले जा रहा था तब उनके सिर पर गुथे पुष्प सुगन्धित लाल कमल पत्र गिरकर बिखर गये थे।३६६। अभिसार के समय रंभा ने मंदार पुष्पों से अपने बालों को तथा दिव्य पुष्पों से अपने शरीर को सजाया था। रावण की रानियाँ भी बालों में पुष्प मालाएं गूँथकर रखती थी (समाल्याकु लमूर्धजा)। पुरुष भी पुष्पों की मालाओं को पहनते थे। अयोध्या में तो यह एक सामान्य बात थी। अशोक वाटिका में

रावण जब सीता के पास आया तब वह लाल-लाल माला पहने हुआ था। कहते है कि राम में माला पहनकर सोने का रिवाज था।३६७। सागर ने अपने मस्तक पर पुष्प की माला धारण कर रखी थी।३६८। उस समय दक्षिण भारत के लोग सुगन्धित पुष्प मालाओं का सिरपेच धारण के लिये प्रसिद्ध थे-

कुर्वन्ति कुसुमापीडान शिरःसु सुरभीनमी। मंहाप्रकाशैः फलकैर्दाक्षिणात्या नरा यथा।।

स्त्रियाँ भी श्रृंगार करने में पुरुषों से पीछे नहीं थी। लंका युद्ध की समाप्ति पर सीता ने सचैल स्नान एवं श्रंगार करके बहुमूल्य वस्त्रभूषण धारण करके राम के समक्ष उपस्थित हुयी थी।३६६। अलंकार धारण विधि को नेपथ्य कहते थे। अयोध्या जाने के लिये पुष्पक विमान में बैठने से पहले वानर स्त्रियों ने अपनी नेपथ्य-विधि सम्पन्न करली थी। मुख को आकर्षक बनाने के लिये नेत्रों में अंजन लगाया जाता था चित्र-विचित्र बिंदिया लगाई जाती, जो 'विशेषक' कहलाती थी। अपहरण के समय सीता के केश बिखर गये थे विशेषक पुछ गया था। रंभा ने भी लालचन्दन के विशेषकों से तथा पुष्पालंकारों से अपना श्रंगार किया था। पैरों में 'अलक्तक रस' (महावर) लगाया जाता था।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

१. २.५,८६०, वराहणाध्रीणसकान------हनुमानन्ववैक्षत्

२. २.५, ८६०-२३ शर्करासवमाध्वीकाः---- पृथक पृथक

३. पुण्यैः स्तवैश्चापि सुपूज्यमानस्तदा ययौ राक्षसराज मुख्यः १६.५६.८

४. २.५, ८८०, ६, राक्षसीमिश्रंच पत्नी भी-----राजकन्याभि रावृतम।

५. २.५, ६१२, १०, अग्डनाःशतमात्रं----- देवगन्धर्वयोषितः

६. २.५, ६१५, ५, स्वधर्मोरक्षसा-------सम्प्रमध्यता।

७. २.५, ६२५, ८, नमानुर्षीराक्षस्य-----वो वचः।

८. अविनाशचन्द्र दास-'ऋगवैदिक इंदिया, पृ० १४८।

६. उवाच वत्स मां विद्धिवयस्यं पितुरात्मनः ३.१४.३

१०. अरण्य ०, ६०४, २०, ततस्तां परूषेर्वाम्यै रभितर्ज्य------- रयमारोपयत् तदा।

११. आर०, ६०६, ८१ न तत् समाचरिद्------विमर्शनात्।

१२. ततः, कृतोदिक स्नातं तं गृह्म हरियूथमाः ४, ६०।

१३. विश्वनाथ-एस० वी० 'रेशियल सिंथेसिस आफ हिंदू कल्चर' पृ० ८६,

१४. त्वामिहासुर संघानां देवराज्ञा महात्मना, पातालनिलयानां हि, परिधः संनिवेशितः ५.१.
६३, अधर्मो रक्षसा पक्षों ह्मसुराणां च राक्षंस। ४.३५.१३

१५. विसंज्ञं रावणं दृष्टवा समरे भीमविक्रमम। ऋषियों वानराश्चैव नेदु देवश्चि सासुराः
६.५६.११५-६,

१६. उदाहारणार्थ-मित्र की तृप्ति के लिये जाती हुयी उर्वशी से वरुण प्रणय याचना करते
है ७-५६, १५-६, सुराणां न चैकस्त्री परिग्रहः ७.२०.४०

१७. रूपयौवन दृष्टानां दक्षिणानांचमानद। नूनमर सरसायांर्य चिन्तानि प्रमथिष्यसि ४.
२०.१३, न होष उच्चावचताम्र चूडा विचित्रवेषा- सरसोडभाजिष्यत् ४.२४.३४

१८. वैध, सी० वी०, पूर्वो०, पृ० ६६-१००

१६. आमेव यदि पूर्व त्वमेतदर्थयचोदयः।---राक्षस च दुरात्मानं तव भार्या पहरिणम्।
कण्ठं बद्ध्वा प्रदहत्रं तेनिहतं रावणं रणे ४.१७.४६-५०,

२०. पम्पानदीनि वाससामनुमन्दाकिनीमपि। चित्रकूटालयानां च क्रियते कदनंमहत् ३.६.१७

२१. अनन्तं नोक्तपूर्णमेन च वक्ष्यामि मैथिलि। चरित्रसुखशीलत्वात् प्रविष्टासि मनों नम।२. ६.२६

२२. आत्मानं स्वादतानार्या न सीतां भक्षमिष्यथ जनकस्य सुताभिष्टा स्नुषां दशरथस्य च २.५.५

२३. इसी प्रकार कैकेयी महल में भी विरुपा, कुबड़ी, और नाटी स्त्रियाँ रखी गयी थीं- कुब्जावनिकायुतम २.१०.१३

२४. न चैव मानुप रूप कार्य हरिभिराहवे। वयं तु मानुपेवैव सप्त यौत्स्यामहे परान।। अहमेव सहभ्रात्रा लक्ष्मणेन महौजसा। आत्मना पंचमश्चार्य सखाामम विभीपणः ६. ३७.३५

२५. आत्मानं खदलानार्या-----दशरथस्य च, २.५.६३३

२६. बलात्कुक्कुटवृत्तेन प्रवर्तस्व महावल ६.१३.४

२७. राजार्षिविप्रदैत्यानां गन्धर्वाणां च योषितः। राक्षसां चाभवन कन्यास्तस्य कामवंश गताः १५.६.६८

२८. ततो निकुम्भिला लंकोपवनमुत्ततम। तद्राक्षसेन्द्रों बलवान प्रविवेश सहानुगः ७.२५.२

२९. शुश्राव जपतां तत्र मन्त्रान रक्षोगृहेषु वे। स्वाध्याय निरिताँश्चैव यातु-घानान्दर्श ह ५. ४.१३

३०. षडग्ववेदाविदुषां क्रतुप्रवर याजिनाम। शुश्राव ब्रह्मघोषाँश्च विरात्रे ब्रह्म रक्षसाय। ५. १८.२

३१. ६.१०.८

३२. पूजितान्दथिपात्रैश्च सर्विभिः सुमनोडक्षतैः। मन्त्रवेदाविदो विप्रान ददर्श स महाबलः ६.१०.६

३३. सर्वयातिप्रकृष्टोऽसौ रावणो राक्षसेश्वरः। यस्य तां स्पृशतो गात्रं तपसा न विनाशितम ५.५६.४

३४. वेदविधाव्रतस्नातः स्वकर्यानिरतस्तथा, स्त्रियः कस्माद्वथं वीर मन्यसे राक्षसेश्वर ६. ६२.६०

३५. धारयन ब्राह्मणं रूपमिल्वलः संस्कृतं वदन आमन्त्रयति विप्रान स--- ३.११.५६

३६. पुण्यैः स्टवैश्चापि सुपूज्यमानरन्तदा ययौ राक्षसराजमुख्यः १६.११.३०

३७. अवते चापिनां राम निक्षिप्य कुशली व्रज। रक्षसां गत सन्तमवानामेष धर्मः सनातनः ३.४.२२

३८. करय पत्ररथाः कायान मांसमुत्कुत्य संगताः। प्रहष्टा भक्षयिष्यन्ति निहतस्य नया रणे ३.१६.१०,

३९. प्रहषं नतुल गत्वा------जगाम सहलक्ष्मणः २, ६, ४०६

४०. एकस्तत्रमया-----शुल्कगन्धानुलेपनः २.५.६३५

४१. द्वारेषु तासां चत्वारः----- बहुभिर्महम्दिर्गृहपड़ क्तिमिः।

४२. त्रायन्ते संकमास्तत्र---- समन्ततः २.६.१०५५,

४३. तत्रेशपलयन्त्राणि बलवन्ति----प्रीतानिवार्यते २.६.१०५४,

४४. अशोक वानिका चेयं दृढं रम्या दुरात्मनः। चन्दनैश्चम्यकैश्चापि बहुलैश्च विभूषिता। इचं च नालिनी रम्या द्विजसघ्डं निवेषिता। इमां सा राजमहिषी नून मेत्यति जानकी। २.५, ६०२, ४३-४४।

४५. अशोकवनिकायां तु तस्यां वानरपुग्डुवः। स ददर्शाविदूरस्यं चैत्यप्रासाद मूर्जितम्। मध्ये स्तम्भसहस्रेण स्थितं कैलाशपाण्डुरम। प्रवालकृत सोपानं तप्तकाऊचनवेदिकम। मुष्णन्तमिव चक्षूषिं घोतमानमिव श्रिया। निमलं प्राशुभावत्वादुल्लिस्वन्त मिवाम्बरम वही पूवो० १५, १६, १७,

४६. वर्जयित्वा---हरिपुंगवः २.५, १००६, १६,

४७. गृहाणि नानावासुराजिहानि--- सबलार्जितानि, २.५.८७६.३

४८. तानि प्रयतभिसमाहितानि----- लंकाधिपते गृहाणि,

४९. विनियुक्तास्ततां----- वही, पूवो०, ४, द्विगुणमायतम्। दर्शनीय--शोभितम। वैदूर्यकृत सोपानं--- व्रजस्फटिक वेदिकम् २, ७.१४८७, ३.४.५

५०. वैध, सी० वी० 'द रिडिल आफ द रामायण, पूर्वो० पृ० १६२।

५१. विषु चैतेषु-----तस्य बहुश्रुतम २.६, १२२९-९.१०,

५२. दूता न वध्याः समयेषु राजा सर्वेषु सर्वत्र वर्दान्त सन्तः ५.५२.१३

५३. प्रसादये त्वां बन्धुत्वात् कुरुष्वं वचनं मम। हितं लक्ष्यं त्वहं भूमि दीयतामस्या मैथिली।

२.६.१०७२.२०

५४. मारीचकुम्भकर्णाभ्य----फलमीदृशय २.६.१४०२.७८

५५. शीघ्र भेरी निनादेन----समानयदवं सैन्यानि वक्तत्यं न च कारणम।। ६.३२.४३

५६. अवकाशों न साम्नरतु---- नैव युद्धस्य दृश्यते भूतैर्वृतो भाति विवृत्तेन त्रैर्योऽसौ सुराणामपि दर्पहन्ता।

५७. यश्चैष नानाविधधोररूपै र्व्याघ्रोष्ट्रनाग्रेन्द्र मृगा त्वक्त्रैः। भूतैवृत्तो भाति विवृतेन त्रैर्योऽसौ सुराणामपि दर्यहन्ता। ६.५६.२३

५८. वैध सी० वी०- द रिडिल आफद रामायण पृ० १४०

५९. यहि पश्य शरीराणि मुनीनां भवितात्मनाय। हताना राक्षसैर्धोरैर्बहूनां बहुधा बने।। ३.६.१६

६०. विस्वराः शान्तकलुषा ब्राह्मणाः विचरन्तिवति ६.६०.८८

६१. स्वधर्मो रक्षसां भीरू सर्वदैव न संशयः। गमनं वा परस्त्रीणं हरणं संप्रमध्य वा।५.२०.५

६२. दर्शनीयांहि--- रूरोधसः ५.५.२

६३. कथं च नाम ते--- शौण्डीर्यमनिना। २.६।४०२, ६७

६४. अरून्धत्या विशिष्टां---- भर्तृवत्सलाम पूर्वो०। ३६६, २०-२१,

६५. अतीतानगतार्थनो---प्रत्युजस्थितः युद्ध, १४०२, ७०-७१

६६. अहोरूपमहो धैर्यमहो--- सामरदानवाः ५.४६, १७-६

६७. आगम्य भीमसंकाशा रूधिरौधानवासृजन्। तां तेन रूधिरौघेण वेदीं वीक्ष्य समुक्षितान। १.३०.१२-१३

६८. रावणः प्राविशद्धज्ञं सारमेय इवाशुचिः ७.१८.६

६९. छुताशनं तर्पयतां ब्राह्मणाँश्च नमस्तयाम ६.५७.२

७०. त्वद्वाक्यैर्न तुमां शम्यं भेन्तुं रामस्य सयुगे मूर्खस्य पापशलीस्य मानुषस्य विशेष्तः ३.४०.४

७१. न कुलेन रूपेण न दक्षिण्येन मैथिली। मयाधिकावातुल्यां वा वत्तु मोहात्र बुध्यसे ६. १११.२८

७२. दास नवीनचन्द्र-'ए नोट आँव द एंटीक्विटी आफ द रामायण' पृ० ६,

७३. पॉलिनोशियन जर्नल, भाग पाँच, उपर्युक्त में उद्धत्।

७४. नरवदेष्ट्रामुधा सर्वे वीरा विक्त्तृतदर्शनाः। सर्वेशार्दूल दृष्टाश्च---४.३१.२४, रोमहर्षणा १.४.३१.२३

७५. यस्त्वया कृतसंवादः सीतं ताम्रमुखः कविः ५.५३.२३

७६. बहवीश्च विविधाकारा रूपयौवनगर्विताः। स्त्रियः सुग्रीवभवने ददर्श समहाबलः। ४. ३३.२२

७७. आस्फोट यामास चुचुम्ब पुच्छंननन्द चिक्रीड जगौजगाम्। स्तम्भान रोहिन्निपपात भूमौ निदर्शयनंस्वा पकृति कपीनाम ५.१०.५४

७८. उत्पत्योत्पत्य संहष्तास्तां पुरीं ददशुस्तदा ६.१२३.५३

७६. स्नाताः प्रमुदितः सर्वे दृष्टपुष्टाश्च वानराः। दृढकिल किलाशब्दैः सर्व राममनुव्रतम। ७.१०६.१६

८०. कच्चिन्नानेक चित्तानां तेषांत्वं वंशमागतः ६.२४.२६.

८१. कच्चिन खलु कापेयी सेत्यते चलाचित्तता ६.१२७.२३

८२. नते सम्भावितुं शम्याः सम्प्रश्नोऽत्र न विघते। पकृत्या कोपनास्तीक्ष्णं। वानारा राक्षसधिप ६.२४.२६

८३. उच्चयतां वानराः सर्वेयन्त्र मेतत्समुच्छितम्। इति विज्ञाय हरमो भविष्यन्तीह निर्भयाः ६.६१.३२

८४. जे० म्युअर-ओरिजिनल संस्कृत टेक्सट्स भाग २ पृ० ४१६

८५. अंगदस्तु कुमारोऽत्रं वन्यन्तमुपनिर्गतः। प्रवृत्तिस्तेन कथिता चौररासी निवेदिता १४. १५.१६

८६. रूमां मां चांगदं धनधान्यपशूनि च। रामप्रियार्थ सुग्रीव रत्यजे दिति मतिमर्म। ४. ३४.१३

८७. एवमुक्त्वा तु मांतत्र वस्त्रेणेकेन वानरः। तदा निर्वासधामास वाली विगत साध्वसः।

४.१०.२६

८८. स त्वं केसरिणः पुत्रः क्षेत्रजो भीमविक्रमः। मारूतस्यौरसः पुत्रस्तेजसा चापि तत्समः
४.६६.२६.३०

८६. यस्याहं हरिणः क्षेत्रे जाटो वातेन मैथिति। हनूमानिति विख्यातो लोको स्वेनैव कर्मणा
५.३५.८

६०. स्वां च पत्नीमाभिप्रेता तारां चापि समीक्षितान्। विहरन्त महोरात्रं कृतार्थ विगलज्वरम
४.२६.४

६१. चतुर्ष्वपि संमुद्रेषु संध्यामन्वासय वानरः। ७.३४.३३

६२. 'सरस्वती भवन स्टडीज' भाग ५, पृ० ७३

६३. 'इंडियन कल्चर' भाग ५, पृ० १६५

६४. चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मेण नित्यमेवाभिपालयन् ४.४.६

६५. निमन्त्रयस्व---ब्राह्मणान क्षत्रियान वैश्यान, शूद्राँश्चैव सहस्रशः १.१३.२०

६६. ततः सुमन्तमाइयवसिष्ठो वाम्यमब्रवीत्। नियन्त्रयस्व नृपतीम पृथिव्यां यं च।
ब्राह्मणान क्षत्रियान, वैश्याअशं, श्रैव सहस्रशः। बा० का०, पेज ५५, श्लोक १६,

६७. मुखतो ब्राह्मण जाता उरसः क्षत्रियास्त था। अरूभ्यां जज्ञिरे वैश्याः पद्भ्यांशूद्रा इति
श्रुतिः ३.१४.३०

६८. द्वाभ्यां जन्मसंस्काराभ्यां जायते इति द्विजः।

६६. वर्णेष्वग्रयचतुर्थेषु देवतातिथिपूजकाः। कृतज्ञाश्च वदान्याश्च शूरा विक्रम संयुताः १.६.
१७

१००. प्रसन्नां वल्कल कश्चिद् ददौ ताभ्यां महायशाः। अन्य कृष्णार्जुन मदाद यज्ञसूत्र तथा
परः। जता बन्धन---- तथापरः बा.का., पेज ३७, श्लोक १२.२४

१०१. इष्वस्त्रवरसम्पन्नमर्थशास्त्र विशारदम्। सुधन्वानमुपाप्यायं कच्चित्वं तात मन्यसे। १२.
१००.१४

१०२. तत्रासीत् पिंगलो गार्ग्यस्त्रिजटो नाम वैद्विजः। उञछवृत्तिर्वने नित्यं
फालकुद्दाललांगली २१.३२.२६

१०३. देखिये महाभारत का सभा-पर्व, १२.१६

१०४. तामग्निमश्दिर्गुण वद्भिरावृतां द्विजोन्तमैर्वेदषडंग पारेगेः सहस्रदैः सत्यरतैः र्महात्माभिर्महर्षि कल्पेत्रिषि भिश्च केवलैः। १.५.२३

१०५. ब्रह्मणान वेदपारगान्। सुमन्त्रावहय क्षिप्रमृत्विजो ब्रह्म वादिनः। १.१२.४–५,

१०६. द्विजाः---- रामस्य पुरतोययुः ६.१२८.३८

१०७. तमावातमभिप्रेक्ष्य हित्वा राजासन महत्। २.५.२३

सभासद-----आसनेभ्यः समुस्तभुः पूज्यन्तः पुरोहितम। २५.२४

१०८. इक्ष्वाकूणां हि सर्वेषां पुरोधाः परमागतिः न चातिक्रमितु शम्यं वचनं सत्यवादिनः। १.५८.३

१०९. यते द्विजाः महामात्यैः पृथरवाचमुदीरयन। वसिष्ठ मेवाभिमुखाः श्रेष्ठं राजपुरोहितम। २.६७.४

११०. ब्राहाणश्चातिपिश्चैष अनुक्तो हि शपेत माम्। इतिध्वात्वा मुहूर्त तू सीता वचनम ब्रवीत्।। ३.४७.२

१११. न चते विषये कश्चिद् ब्राह्मणो वस्तुमर्हति। तादृशं त्वमर्यादमद्य कर्म करिष्यसि।। २. ३५।।

११२. ब्राह्मणद्रव्यं मादत्ते च राघवः। सघः पतति धौरवै नरके वीचि संज्ञके। मनसापि हि देवस्वं ब्रह्मस्वं च हरेन्तुयः। निरयन्निरयं चैव पवतयेव नराधमः।

११३. सोडहं विश्रामामिच्छामि पुत्रं कृत्वा प्रजाहिते। सनिकृष्टानिमान सर्वाननुमान्य द्विजर्षभान। अयो०, पेज १४५, १०

११४. ब्रह्महत्याकृतं पाप हद्रयादपनीयताम। न द्विजातिरहं राजन मा भूत्ते मनासि व्यथा।। २.६३.५०

११५. रक्षणीयास्त्वंया शश्वद् गर्भभूतास्तयोधनाः ३, १, २१

११६. यत्करोति परं धर्म मुनिर्मूलक लाशनः। तत्र ३.१.२१

राज्ञश्चततुर्मागः। प्रजा धर्मेण रक्षतः।। ३.६.१४

११७. बाका, पेज ४४, पृ० १३।।

११८. पूज्यास्ते मत्कृते देवि ब्राह्मणाश्चैव सत्कृता। २.२४.२६

११९. प्रणाम्य दैवतेभ्यश्च ब्राह्मभ्यश्च मैथिली।

वद्धांजलिपुता चेदमुवाचा- ग्निसमीपतः।।६.११६.२४

१२०. तथा ह्यलर्कस्तेजस्वी ब्राह्मणे वेदपारगे। याचमा ने स्वके नेत्रे उद्घृत्या विमना ददौ। २.१४.५

१२१. कस्य वा पररात्रेऽहं श्रोष्यामि हृद्रयमंगम। अधीयानस्य मधुरं शास्त्रं वान्याद्विशेषतः। २.६४.३२

१२२. अहंमास---रतः। १.१.१६.२८

१२३. क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीत् वैश्याः क्षत्रमनुवृताः शूद्रास्वकर्मानिरता स्त्रीन्वर्णानुपचारिणः। १.६.१६, ६.१२८, १०३ भी देखिये।

१२४. न हि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्य नरोत्तम।

चार्तुवर्ण्यहितार्थ हि कर्तव्यं राज्ञसूनुनां।१.२५.१७

१२५. प०नूद्विजो---महत्तवमीयात्। १.१३०.१००

१२६. राजा दशरथो नाम धुतिमान धर्म वत्सतः।

१२७. चातुर्वर्ण्य स्वधर्मेण नित्यमेवाभिपालनम्।। नद्वेष्टा विघते तस्य स तु द्वेष्टि न कंचन। सतु सर्वेषु भूतेषु पितामत इवापरः।। ४.४, ६-७

१२८. सर्वेषु स हि धर्मात्मा वर्णानां कुरूतेदयाम। चतुर्णा हिवयः स्थानां तेन ते तमनुव्रता।। २.१७.१६

१२६. स्त्रियो समृद्धयताम, २.१८८.५२

१३०. देखिये- पी० एम० मोदी- डेवलपमेंट आफ द सिस्टम आफ आश्रमाज' (सप्तम ओरियंटल कान्फ्रैंस का विवरण, १६३३)

१३१. व्यास स्मृति, ४,२-४, १३-१४,

१३२. महाभारत, शान्ति पर्व, १२.१८, पितृदेवातिथिकृते समारम्भोऽत्र शस्यते। अत्रैव हि महाराज त्रिवर्गः केवलम फलम्।।

१३३. मनु०, ६, ३५, ऋणानि त्री० मनोमोक्षेनिवेशयेत् अवपाकृत्य मोक्ष तु सेवामानो व्रजत्यघः।।

१३४. मनु०, ३.६८-७०, पंचसूना गृहस्थस्य चुल्लीपेषण्य पस्करः

कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यतेयास्तु वाध्यन।

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थ महार्षिभिः।

पंच पत्तृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमोधिनाय।

१३५. मनु० ३.७०, अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम होमो दैवी बलिर्भौतौ नृयज्ञीऽतिथि पूजनम्।।

१३६. अर्थववेद, ११.५,१८, ब्रह्मचर्येण कन्या युवान विन्दते पतिम।

१३७. १६३, रामायण, ७.१७

१३८. श० ब्रा, ३.२.४.६.

१३६. आश्व, गृ० सू० ४.४.४

१४०. महाभारत, शल्य पर्व, ५२.१६, असंस्कृतायाः कन्याः

१४१. कुतां लोकास्तवानहो। असंस्कृतायाः कन्याः कृतो लोकास्त वानघे। महा०, शल्यपर्व, ५२.१६,

१४२. महा०, शल्यपर्व, ५२.३

१४३. रामायण, २२०.१५, सा क्षौमवसना दृष्टा नित्यं व्रतं परामणः अग्निं जुहोतिस्म तदा मंत्रविस्कृतमंगला।।

१४४. वही, ४.१६.१२ ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मंत्राविद्विज यौषिणी।

१४५. चुल्लवग्ग, १०.१.६, अंगुत्तर निकाय, ४ पृ० २७८,

१४६. उपाध्याय बलदेव- 'आदिकवि वाल्मीकि' कल्याण-संक्षिप्त वाल्मीकि रामायणांक, पृ० १४

१४७. पूर्व राजर्षि वृत्या हि वनावसोऽभिधीयते।

प्रज्ञा निक्षित्य पुत्रेषु पुत्रवत्परि-पालने।। २.२३.२६।।

१४८. हस्तादानों मुखादानो नियतो वृक्षमूलिकः।

वानप्रस्थो भविष्यामि---- ५.१३.३८

१४६. अग्निसंयोगवद्धेतु शस्त्रसंयोग उच्यते ३.६.२३

१५०. ऋग्वेद, १०.१०.६.५, ब्रह्मचारी चरति वे विषद विषःसः देवानः भवत्येकमंगम।

१५१. वही, २.१.२-------ब्रह्मचासि गृहपतिश्च नोदये

१५२. वही, ८.३६, येना यतिभ्यो भृगवे धने हितं मेन

१५३. देखिये, हिस्ट्री अपधर्मशास्त्र, २.१, पृ० ४२२।

१५४. जा० उप०, ४,

१५५. वही, १,६२,८।

१५६. १६-वही; १०, २६, ६, ८, ५, ३८, ११, ६१, ४, ७३२०, २०,।

१५७. यजुर्वेद, (सम्पादक), री पाद शर्मा, ओधनगर, वाराणसी, १६३८, ३१, १०, १,।

१५८. वही, ३, ५,।

१५६. तैत्तिरीय ब्राह्मण, (सम्पादक) शामशास्त्री, आर०, मैसूर, १६२१, १,१,४।

१६०. तैत्तिरीय ब्राह्मण, १,२,६।

१६१. अथर्ववेद, ५,१६,८,१५।

१६२. तैत्तिरीय आरण्यक, पूना, १६२६, ७,८।

१६३. जैमिनी, ६,६,१८।

१६४. बौद्धायन धर्मसूत्र, १.५, ६८, २, १

१६५. वही, ६.६.१

१६६. छान्दोग्य उपनिषद, गीता प्रेस गोरखपुर, १६०६, ४.४.१२।

१६७. छान्दोग्य उपनिषद, ५.३.६।

१६८. वही, ५.११.३।

१६६. वृहदारण्यक उपनिषद, ३.१।

१७०. धुर्ये, जी० एस०, पूर्वो०, पृ०-४८,।

१७१. वही, ८.१२.५,।

१७२. ऐतरेय ब्राह्मण, १.६,।

१७३. अथर्ववेद, ३.५.६,।

१७४. ब्रहमूसूत्र, द्वाराउद्धत-शंकरभाष्य, १.३.३४-३८,।

१७५. छान्दोग्य उपनिषद, ३.१६.७, १३, ४, २, १७,।

१७६. तैतिरीय ब्राह्मण, १.१.४,।

१७७. अथर्ववेद, ३.५.६,।

१७८. तैतिरीय ब्राह्मण, ३.४.१४.१,।

१७६. वाजसनेही संहिता, १३.५०,।

१८०. शतपथ ब्राह्मण, १२.५.१.१३,।

१८१. वही, ६.८.१, ५, ३, ५, २०,।

१८२. पाण्डेय, राजबलि प्राचीन- भारत, वाराणसी १६६३, पृ० ७५।

१८३. पाणिक्कर, के० एम०, ए सर्वे ऑफ इंडियन हिस्ट्री, बम्बई, १६५६, पृ०-१३,।

१८४. मुकर्जी, आर० के० हिन्दू सिविलाइनेशन, लन्दन, १६२३, पृ०-६४-।

१८५. वही, पृ०-६५,।

१८६. वही, १.६.६.१ ६.२१.२२।

१८७. वही, ३.३२.३४

१८८. बौद्धायन धर्मसूत्र, १.११.२०,।

१८६. ६.१४, ६.२१,-२२, १०.१-३, ७.५०,।

१६०. गौतम धर्मसूत्र, २.२.६, २१, ६-१०,।

१६१. गौतम धर्मसूत्र, ११, २,।

१६२. वही, २.२३,।

१६३. गौतम धर्मसूत्र, १०.१.३,।

१६४. आपस्लम्बर्धम सूत्र, १.२१.५,।

१६५. बौद्धायन धर्मसूत्र, २१, ६-१०,।

१६६. वही, ७.२६,।

१६७. वही, १५७,।

१६८. वही, १०, ५७,।

१६६. बौद्धायन धर्मसूत्र, ११०, १६, १,।

२००. वशिष्ट धर्म का, ब्यूलर, जी०, द्वारा अनुवाद लन्दन, १६२१, ४, ३,।

२०१. गौतम धर्मसूत्र, १०, ६४,।

२०२. वही, १२.४,।

२०३. वही, १२.५,।

२०४. वशिष्ठ धर्मसूत्र, ४, ३,।

२०५, गौतम धर्मसूत्र, २१.६.१०, १८.२४, ४.१४,।

२०६. बौद्धायन धर्मसूत्र, १.६.१५,।

२०७. गौतम धर्मसूत्र, ४, १५,।

२०८. वही, (अनुशासन पर्व), ६१, १६,।

२०९. वही, १२, ३६ ४१,।

२१०. वही, ६४, ४२.४२,।

२११. वही, १३, १०४, १६–२०,।

२१२. वही, १३, ३३, १२–१४,।

२१३. ७५, वही, ५, १३६–१६–२२, ६.४२.४३, ५६, २४–२५, ७३.८–१३, ३.१८५, २५–२७।

२१४. रामायण, ७.१३,।

२१५. रामायण, १२.७०.१३.२०,।

२१६. ७६, १२,१८८, १–१८, ५, १३२.३०, ६.४२.४, २.४७.४८, २.२६.५, ४.५०. ६, १३२, ३०,।

२१७. वही,

२१८. वही,

११६. रामायण, ३.१४, २६–३०,।

२२०. वही, १५६, १३–१४,।

२२१. महाभारत, १३.१०.१६,।

२२२. ८६–१२.६०, ३७, १२.६०.६, १२, २६, २–४, २.३३.४१

२२३. मझिम निकाय, (हिन्दी अनुवाद) राहुल साकृत्यायन्, वाराणसी, १६३६,पृ०–१५०,।

२२४. सुत्तनिपात्, (सम्पादक), ऐंडरसन और स्मिथ, लन्दन, १६४८, १.७.२१,।

२२५. जातक, (सम्पादक), बी० फॉसबाल, कैम्ब्रिज लन्दन, १८६७, पृ० २०८,।

२२६. दीर्घ निकाय, (अनुवाद), राहुल सांकृत्यायन्, सारनाथ, वाराणसी,१६३६,पृ०६८,।

२२७. अंगुत्तर निकाय, (सम्पादक) आर० मोरिस, और हार्डी, ई० लन्दन। १६००, पृ०–१६४,।

२२८. फिक, आर०, द सोशल आर्गेनाइजेशन इन नार्थ ईस्टर्न इण्डियाइन, बुद्धाज टाइम्स, कलकत्ता, १६२०. पृ०- ३५३,।

२२६. महावग्ग, जातक, ६.२८.४,।

२३०. जातक, २, पृ०- २६७,।

२३१. वही, २, पृ० १६६,।

२३२. महावग्ग जातक, ६.२८.४,।

२३३. जातक, ४. पृ० १६१,।

२३४. जातक, ३, पृ० २८१।

२३५. कौटिल्य अर्थशास्त्र, (सम्पादक) शामशास्त्री, आर० मैसूर, १, ६, ४८, ६.२.३. ६.३.१८.३.७, ३८,।

२३६. मनुस्मृति (मेघातिथि की टीका सहित), कलकत्ता, १६३२, १,३।

२३७. एपिग्राफिया इण्डिका, ४, पृ०-२०८-१३, बाँसखेरा, तामृलेख,।

२३८. वाटर्स, टी० आन युवन च्वाँग ट्रेवेल्स इन इण्डिया, लन्दन, १६०४, पृ०-१६८।

२३६. मिश्र, जयशंकर, ग्यारहवीं सदी का भारत, वाराणसी, १६६८, पृ०-६८,।

२४०. मनुस्मृति, १, ६३।

२४१. शास्त्री, के० ए० एन, दक्षिण भारत का इतिहास, द्वारा उद्धत, मिश्र, जयशंकर, प्राचीन भारत का समाजिक इतिहास, दिल्ली, १६७२, पृ० १०४,।

२४२. वार्टस, टी०, पूर्वो०, पृ०-१५१-६०,।

२४३. मिश्र जयशंकर, पूर्वो० पृ०-११५।

२४४. ११२ मनुस्मृति, १०, ७७, वही, १०, ११७,।

२४५. शास्त्री, के० ए० एन० पूर्वो०, पृ० १३८।

२४६. हेमचन्द्र, अभियान चिन्तामणि, (सम्पादक), मुनिजिन विजय, भावनगर, १६१४, ३.८६४,।

२४७. क्षेमेन्द्र, कथा मंजूरी, सम्पादक, दुर्गाप्रसाद, बम्बई, १६२३, पृ०-४२,।

२४८. अभिदान चिन्तामणि, ३.८६७,।

२४६. ब्रहमाण्ड पुराण, कलकत्ता, १६५२, २.३४.२६,।

२५०. शब्दानुशासन, ३.१.१४३,।

२५१. मिश्र, जयशंकर, पूर्वो०, पृ०-११६,।

२५२. मनुस्मृति, १०.४४, १०, १२२,।

२५३. शब्दानुशासन, ६.१.२,।

२५४. वन वा चरिवसनं सौम्य कृष्णाजिनाम्बरम। राज्ये वापि महाराज्ञो मां वासयितुमीश्वरः २.११०.२०

२५५. ममाप्याचरितं पूर्वे पन्थानमनुगच्छता। प्रज्ञा नित्यमनिद्रेण यथा शवत्य निरीक्षिताः २.२.६

२५६. इक्ष्वाकूणां कुलेदेवि संप्राप्तः सुमहानयम। अनयोनयम्पन्ने यत्रते विकृता मृातिः २.१२.१६

२५७. यथावयो हि राज्यानि प्राप्नुवति नृपक्षये। इक्ष्वाकुकुलानयेडस्मिस्तं लोपयितुमिच्छासि २.३५.६

२५८. पुन्नाम्नो नरकाधस्मात् पितरंत्रायते सुतः। तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः पितृन्या पति सर्वतः २.१०७.१२

२५९. अनृणः स महाबाहुः पिता दशरथस्तव। यस्य त्वमोदृशो पुत्रो धर्मात्मा धर्मवत्सतः २.११३.१७

२६०. महता तपसा लब्धो विविधैश्च परिश्रमैः। एको दशरथस्यैष पुत्रः सदृश लक्ष्मणः।। २.८६.१२, २.५७.१७ भी देखिये।

२६१. प्रायेण हि नरश्रेष्ठ ज्येष्ठः पितृषु वल्लभाः १.६१.१६

२६२. ज्येष्ठायामासि मे पत्नयां सदृश्यां सदृशः सुतः। उत्पन्नस्तवं गुणज्येष्ठे मन रामत्मजः प्रियः २.३.३६-४०,।

२६३. ज्येष्ठे धर्मप्रधाने च न रामं नेतुर्महसि २०.१२,

२६४. अवलिप्ते न जानासि त्क्तः प्रियतरो मम। मनुजो मनुजत्यघ्रादा मादन्यो न विघते २.११.५

२६५. सततं राजपुत्रेषु ज्येष्ठो राजाभिषिप्यते २.७३.२२

२६६. प्रियेण किल दतं हि पितृलोकेषु राघव। अक्षयं भवतीत्याहर्भवाँश्चैव पितुः प्रियः २.

१०२.८

२६७. २६७. नास्तिकः परिवेता च सर्वे निरयरामिनः ४.१७.३६

२६८. अहंहि वचनाद्राज्ञः पतेयमापि पावके। यक्षयेय विषतीक्ष्ण पतेयमापि चार्णवे।।
नियक्तो गुरूणा पित्रा नृपेण च हितेन च। २.१८.२८.६,

२६६. यावत्पितरि धर्मज्ञ गौरवं लोकसत्कृते। तावद्धर्मकृतां श्रेष्ठ जनन्यामपि गौरवम। २.
१०१.२।

२७०. पितुर्हि वचनं कुर्वन्न कश्चिन्नाम हीपते। २.२१.३७

२७१. मनुस्मृति, ६.२५

२७२. वृतशीले कुले जातामाचारवार्त धार्मिके। पुनः संस्कारमापन्नासातामिव च दुष्कृते।
५.१६.१०

२७३. शूद्रायामास्मि वैश्येन जातो नरवराधिव। २.६३.५०

२७४. वर्धयानां ममात्मजाम। वरयामासुरागत्य राजानः।। १.६६.१५-६,

२७५. इदं च धनुरूधक्य सज्जनं यः कुरुतेनरः। तस्य में दुहिता भार्या भविष्यन्ति न
संशपः। २.११७.४२

२७६. मा भूत्स कालो दुर्मेघः पितरं सत्यवादिनम्। अवमन्यं स्वधर्मेण स्वंयवर मुपास्यमहं।
३२.२१

२७७. पाणिप्रदानकाले च यत्पुरा त्वग्नि सन्निधो। अनुशिष्टं जनन्या मे वाक्य तदापि
मेघृतम्।। २.११८.८

२७८. अल्टेकर अनंत सदाशिव-७ पोजीशन आफ बीमेन्स इन हिन्दू सिविलाईजेशन,
पृ० ६३

२७६. देत्यनूढा त्वमभवो युवराजो भवाम्यहम २.६३.१४

२८०. सदृशो धर्मसम्बन्धः सदृशो रूपसम्पदाः। रामलक्ष्मणये राजन्सीता चोर्मिलया सह।
१.७२.३

२८१. राजर्षिविप्रदैत्यानां गन्धर्वाणां च योषितः। रक्षसां चा भवन् कन्यास्तस्य
कामवंशगताः---समदामदनेनैव मोहिताः कश्चिदागताः ५.६.६८-६

२८२. उत्तरे दिवसे ब्रह्मन फल्गुनीभ्यां मनीषिणः। वैवाहिक प्रशंसन्ति भगो भग

प्रजापतिः।१.७२.१३

२८३. एब स्वभावो नारीणामनुभूय पुरा सुखम। अल्पामप्यापदं प्राप्य दुष्यन्ति प्रजहन्त्यपि २.३६.२

२८४. नाराजाके---भार्या वा वर्तते वशे---नास्ति भार्याऽप्यराजके। २१.६७.१०

२८५. दत्ता चास्मीष्टव द्वैव्यै ज्येष्ठायै पुण्यकर्मणे। २.११८.३३

२८६. सरकार, एस० सी०- 'सम रेरपेक्टस आफ द आर्लियस्ट सोशल हिस्टी आफ इंडिया। पृ० ८७।

२८७. पुरं च राष्ट्रं निहत्य बान्धवान ममाहितानां च भवामिभाषिणी २.१२.१०६

२८८. वत्स सम चिरं जीव हतास्ते परिपन्थिनः। जातीन्मे त्वं श्रिया युक्तः सुमित्रायाश्च नन्दय।। २.४.३६

२८९. एवं ते ज्ञातिपक्षस्यश्रेयश्चैव भवित्याति। यदि चंद भरतो धर्मात् पित्रां राज्यमवाप्स्यति। २.८.३४

२९०. या गतिः एकपत्नीव्रतस्य च। तां गतिंगच्छ पुत्रक। २.६४.४३-४,

२९१. दृष्टाः खलुः भविष्यन्ति रामस्य परमाः स्त्रियः २.८.१२

२९२. पितुर्निदेशं नियमेन कृत्वा वनान्निवृतश्च रितव्रतश्च स्त्रीभिस्तु मन्ये त्रिपुले क्षणाभिः संस्यसे वीलभयः कृतार्थ। ५.२८.१४

२९३. न सीतायाः परा भार्या वप्रे स रघुनन्दनः। यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थ जानकी कांचनी भवत् ७.९९.७

२९४. सुदृष्टस्त्वं बने राममे कमे कोऽनुगच्छति। मम हेतोः प्रतिच्छन्नः- ३.४५.२४

२९५. लक्ष्मणे वाथ भरते कुरू बुद्धिं यथासुखम् ६.११५.२२

२९६. अधर्मचारिणो पापौ कौ युवा मुनिइष्कौः कथं तापसंयोर्वा च वासः प्रभदया सहं ३.२.११-२,

२९७. धिम्त्वामघ विनश्यन्ती यन्मामेव विशंकसे। स्त्रीत्वाद् दुष्टस्वभावेन गुरूवाक्ये न्यवस्थिता ३.४५.३२-२,

२९८. कथमिन्दीपरश्यामं रामं पदमविभेक्षणाम। उपसंश्रित्य भर्तार काममेयं पृथगजनम्। ३.४५.२५-६

२९९. यदि वा त्वेक पत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः ५, ५३,२६।

३००. पतिव्रतात्वं विफलं ममेदम्। ५,२८,१२।

३०१. सुलोहिततलौ श्लक्ष्णौ चरणौ सुप्रतिष्ठितौ। दृष्टवा ताम्रनखं तस्या दीप्यते मे शरीरणः ६,१२,१५।

३०२. पामः कामो मनुष्याणां यस्मिन किलः निबध्यते। जने तस्मिनस्त्वनुक्रोशः स्नेहश्च किल जायते। ५.२२.४-६,

३०३. अहमौपयिकी भार्या तस्यैव च धरापतेः। वृतस्नातस्य विधेव विप्रस्य विदितात्मनः। ५.२१.१७

३०४. अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रथा यथा ५.२१.१५,

३०५. रोहिणीव शशांकेन रामसंयोगमाप या २.१६.४२ अतीव रामः शुशुभे मुदन्वितो विभुः श्रिया विष्णुरिवामरेश्वरः १.७७.२६

३०६. तब भार्या महाबाहो भक्ष्यं विषकृतं यथा ४.६.८

३०७. परदारभिमर्शान्तु नान्यत्पापतर महत् ३.३८.३०

३०८. अतुष्टं स्वेषुदृरिषु चपलं चपलेनिद्रम। नयन्ति विकृतिप्रज्ञ परदाराः परभवम ५.२१.८

३०९. ततः प्रचुकुशुर्दीना सस्वरं ता वरागनाः। करेषइवारण्ये स्थानप्रच्युतंयूथपाः २.६५.२०,

३१०. यूथपेन बिना कृतां--गजराजवधूमिव ५.२६.२१

३११. दशरथ की सभा में राजानः का उल्लेख आया है, ये संभवतः सामन्त राजा ही थे। विचार विमर्श हेतु दशरथ ने बुलवाया था २.१.४६। ब्राह्मणों के साथ राजागण भी राम के अभिषेक की प्रतीक्ष्य करते हुये बताये गये है २.१४.४०.१,

३१२. यदिदं मेऽनुरूपार्थ मया साधु सुमन्त्रिय। भवन्तो मेंऽनुमन्यता कथं वा करवाण्वहम २.२.१५ (अपनी सभा के समक्ष महाराज दशरथ के उद्गार)।

३१३. ततोऽहं तैः (मन्त्रिभिः) समागम्य समेतैरभिवंचितैः। ४.९.२१

३१४. आहूय मन्त्रिणः सर्वान्नैगमान्सपुरोधसः। तानुवाच नृगो राजा सर्वाश्च पकृती स्तया।--- कुरोऽयं वसुर्नाम सचेहाधाभि विच्यताम् ७.५९-५.६.८

३१५. इदैव त्वामिविञ्चन्तु सर्वाः प्रकृत्यः सह। ऋत्विजः सवसिष्ठाश्च मन्त्रविन्मन्त्र कोविदाः। २.१०६.२६

३१६. राम दानं क्षमा धर्मः सत्यं घृतिपराक्रमौ। पार्थिवानां गुणा राजन्दण्डश्चा व्यवकारिषुः।। नयश्च विनयश्चैभौ निग्रहानु गृहावपि। राजवृत्तिरसंकीण्प्र न नृपाः कामवृतयः ४.१७. २६.३२

३१७. पौरकार्याणियो राजा न करोति दिने संवृते नरके घोरे पतितो नात्र संशयः ७.५३.६।

३१८. वव नुतेऽभूत्यिता तात सदरण्यं त्वभागतः। न हित्वं जीवितस्तस्य वनमागतुं-मर्हारि २. १००.४

३१६. ऊचुश्च मनसा ज्ञात्वा वृद्धं दशरथं नृपम २.२.२० अथ रामेण संस्पृष्टाः सर्व एव सभासदः ७.५६.२.३।

३२०. चरन्प्रत्याथिकान शूरान वीरान विगतसाध्यवसान ६.२६.१८

३२१. भक्तया विवदमानेषु मार्गमाश्रित्य पश्यतः। तेन पापेन युज्यते यस्यार्योऽनुमते प्रातः टीका भी देखिये २.७५.५८

३२२. देखिये सर्ग ५६ के बाद के प्रक्षिप्त सर्ग

३२३. पतिसंयोगसुलभं वयो दृष्टवा तु मेपिता। पिंतागभ्यय्य गमद्वीनो वित्तनाशा दिवाधना। सदृशाच्चापकृष्टाच्च लोके कन्यापितां जनात्। प्रघर्षणमवाप्नोति प्नोति शक्रेपाणि समो भुवि। २.४८.३४-५।

३२४. किं नु वक्ष्यामि धर्मज्ञं राजानसत्यवादिना। जनक पृष्टसीतं तं कुशल जनसंसादि। ४. १.१.१०.६

३२५. अवाप्तो विपुलाभृद्धिं मामवाप्य नराधिपः २.११८.३२

३२६. कौशल्या तं दयं परिचय समन्ततः। कृपाणैविज्ञाज्ञर्सन त्रिभिः परमया मुद्रा १.१४.३३

३२७. उघानानि समागताः। सामाने क्रीडितुं यान्ति कुमार्यो हेमभषिताः। २.६७.१७, २.६०. १६-१०, ७.२.१०-१, भी देखिये।

३२८. तुलना कीजिये- न रामेण विमुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी। न भोक्तुं नाप्यलंकर्तु न पानमुपसेवितम। ५.११.२

३२६. इष्टत्व संग्रामयज्ञेन रामपप्रहरणाम्भसा। तस्मिन्नवभृते स्नातः कथं पत्नया मया भिन्ना ४.२३.२७

३३०. रामं रत्नमये पीठे ससीतं सन्यवेशयत्। ६.१२८.५१-६, ६.४८। ६ भी देखिये।

३३१. परस्पशान्तं वैदेहा न दुखतनास्ति में। पितुर्विनाशातृ सौमित्रे स्वराज्य हरवस्तथः। ३.
२.२।

३३२. अरून्धन (बलेन कन्यां गृहीष्यामः इत्यर्थः) मिथिलां सर्वे (राजानः) वीर्यसन्देहमागताः।।
१.६६.२१

३३३. मायावी नाम तेजस्वी पूर्वजो दुन्दुभेः सुतः। तेनतस्य महद्वैरंवलिनः स्त्रीकृतं पुरा। ४.
६.४

३३४. ततो मे जननी दीना तच्छाशिरं। परिष्वज्य महाभागा पविष्टा हव्यधाहनम ७.१७.१४

३३५. अनंत सदाक्षिव-पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ० १४२

३३६. व्यवस्यत प्रायमानिन्धवर्णा उपोपवेष्तुं भुवियत्र वाली ४.२०.२६

३३७. रावणार्नुगमिष्यामि गति भर्तुर्महात्मनः ६.३२.३२

३३८. शोषमेत्यति दुर्हर्षा प्रमदा विधवाः यथा ५.२६. २५ भविष्यति पुरी लंका नष्टमर्ती
यथागंना ५.२६.२५

३३९. प्रतिकर्म च सीतायाः सर्वा दशरथास्त्रियः चकुः।

३४०. गतिर्नार्यागीतरात्मज। तृहीया ज्ञातयो राजश्चतुर्थी नैव विघते। २.६१.२४

३४१. आलिंग्य गृध्रं निहतं रावणेन बलीयसा। विलालाप सुदःखार्ता सीता राशिनिभानना। ३.
५२।

३४२. सकुण्डलाः शुभाचारा भार्याः कन्यास्तु षोडश। हेमवर्णा सुनासोरः शशिसौम्या नानः
स्त्रियः। सर्वाभरणसम्पन्नः सम्पन्नः कुलजातिभिः- ६.१२५, ४४-५

३४३. अंलकारविदश्चैतः नार्यः पद्मानिभेक्षणाः। उपस्थितास्तवां विधिवत् स्नःपयिष्यन्ति राघव
६.१२१.३

३४४. भुजैः परमनारीणाम भिमृष्टमनेकघा (बाहु)। ६.२१.३

३४५. अहंहि सीतां राज्य च--दृष्टो भ्रात्रे स्वय दद्यां भरताय प्रचोदितः। २.१६.७

३४६. दाराः पुत्राः पुरं राष्ट्रं भोगाच्छादन भोजनम। सर्वामेवाविभक्तं नौ भविष्यन्ति हरीश्वर।
७.३४.६।

३४७. कामकारो महाप्राज्ञ गुरूणां सर्वदानद्य। उपपन्नेषु दारेषुपुत्रेषु च विधीयते। २.१०१.१८

३४८. अरोप्य मैथिलीपूर्व मारूरोहात्मवास्तत: २.५२.७६।

३४९. भोजनेने महार्हेण, १.५२.२१

३५०. मोदकान्प्रददुस्तस्मै, १.१०.२०

३५१. सा च कामैः प्रलोभ्यन्ती भक्ष्यैर्भोज्यैश्च मैथिली, ४, ६२, ७।

३५२. वस्त्राण्यन्नं च पेशलम। ब्राह्मणेभ्यः प्रदास्यामितव प्रियचिकीर्षया।। २.५२.८८

३५३. १.५.७, ३.१६.६

३५४. (७.६१, १९–२०)।

३५५. २.६१.२१

३५६. (२.५२.८६)।

३५७. भ्रातरं संस्कृतं कृत्वा ततस्तं नेशरूपिणम। तान्द्वजान्यो जयामास श्राद्ध–दृष्टेन कर्मणा ३.११.५६

३५८. तदानुभूति काकुत्स्थ पितृदेवाः सभागताः। अफलान भुञजते। मेषा– फलैस्तेषा मजोजरान। १.४९.६

३५९. तौ तत्र हत्वा चतुरो महामृगान बराहमृश्य प्रषतं महारूरूम। आदाय मेध्यं त्वीरतं बुभुक्षितौ वासाय काले ययतुर्वनुस्पतिय। २.५२.१०२

३६०. बहून्मेध्यान्मृगान्हत्वा चेरतुर्यमुनावने २.५२.३३

३६१. निहत्य पृषतं चान्य मांसमादाय राघवः। त्वरमाणे जनस्थानां समाराथिमुखं तदा। ३.४४.२७

३६२. ५.११.१६–७

३६३. कालेनानेन नाभ्येषि यदि मां चारूहासिनी। ततस्त्वां प्रातराशगर्थ सूदाश्छे–त्स्यन्ति लेशशः। ३.५६.२५

३६४. ७.४१.२, ७.४२। १८–२०,

३६५. फलैर्मूलैः पक्वैमांसैर्यथाविधि। तौ तर्पामित्वा भूतानि राघवौ सह सीतया।। तदा विविशतुः शालां सुशुभां शुभलक्षणौ।। २.५६.३३

३६६. पायसं कृसरं छागं वृथा (परमात्मसर्मणमन्तरा) सोडश्नातु निर्घृणः। यस्यार्योऽनुमते गतः। २.७५.३०

३६७. इक्षून्मधूंस्तथा लाजान्मैरेयांश्च वरासवान। पानानि च महार्हाणि---।। १.५.३.२

३६८. वारूणी मदगन्धश्च न प्रवाति समन्ततः। २.११४.२०

३६९. ततःस्नात्वा यथान्याय सन्तर्प्य पितृदेवताः। हुत्वा चैवाग्निहोत्राणि प्राकूय चामृत वद्धविः। १.३५.८-९

३७०. जुहुवांचकिरे नीऽ मन्त्रव न्मन्त्रपूजितम ३.७४.२२

३७१. अनुज्ञाता तु रामेण हुत्वात्मानं हुताशने, ३.७४.३२

३७२. मम नामत्वया वीर गतस्य यमसादनमा प्रेतकार्याणि विपरीते हि वर्तसे।। ६.६२.१४

३७३. कि नुतस्य मयाकार्य दुर्जातेन महात्मनः। यो मृतो मम शोकेन स मया न च संस्कृतः। २.१०.३।

३७४. अहोभरतः सिद्धार्थोयेन राजात्वयानहा शत्रुघ्नेनचसर्वेषु प्रेणकृत्येषु सत्कृतः१२.१०३.१०

३७५. एष्टव्याबहवः पुत्रा गुणवन्तो बहुश्रुताः। तेषां वै समवेतानामपि कश्चिद् गयां व्रजत २.१०.७.१३.

३७६. रूपसंहननं लक्ष्मी सौकुमार्य सुवेषताम। ददृशुर्विस्मिता कारा रामस्य वन वासिनः ३.१.१३

३७७. पीतं कनकपट्टामं स्रस्तं तद्वसनं शुभम ५.१४.४५

३७८. नानावणम्बिरस्रजम। सहस्रं वरनारिषां नानविशविभूषितम। ५.६.३३

३७९. अग्रवाल वासुदेवशरण- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७६.

३८०. ततः सीतां जग्रहुर्न्तपयोषितः क्षौमवाससः। १.७.४.११.२,

३८१. महाराजतवाससम्-स्वर्णतन्तुनिर्मित वासोधरिणम ५.१०.७

३८२. सर्वभूषणभूबार्हा किमर्थन विभूषितः ४.३.१५

३८३. शक्रदत्ता वरा माता काञचनी रत्नभूषिता ४.१७.५

३८४. देखिये- २.५०.२३, ४.२७.१६, ३.७५-२४-५। ३.४०, ३०.४६, ७.३१.२२-४, ५.१४.१३ इत्यादि।

३८५. तरूणादित्य वर्णाश्यां कुण्डलाश्यां विभूषित ५.२२.२८।

३८६. देखिये क्रमशः- ३.६०.३१, ५.५.२५, २.६.४७, ५.६.४८।

३८७. ३.५२.२३, २.७८.७, २.३२.७।

३८८. ५.१०.२६, २.३२.५, ५.१५४२

३८६. (रथ्याः) विरेजुर्विपुलास्तत्र सर्वरत्न समन्विताः। १.१८.१६

३६०. सुवर्णनानाभणिभूषणानां सुवाससां संसदि राक्षसानाम ६.११.२६

३६१. मणिप्रणकेभिरणौ रूचिरौ ते पयोधरौ। ३.४६.२०

३६२. क्रमशः देखिये, २.६१.२६, ५.६.१६, ५.६.१६, २.१५.३२, ३.४३.२६, ५.६.१७, ४.४.६, २.६१.२६,

३६३. जता कृत्वा गमिष्यामिन्यग्रोधक्षीरमानया। २.५२.६८, जटितं भरतं। २.१००.१।

३६४. न मलिनोऽपि वा। राजसा ध्वस्तकेशो वानर कश्चिददृश्यत। २.६१.६६।

३६५. ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणाः रमश्रुवर्धनाः। सुखहस्ताः सुशीघ्राश्च राघवं पर्यवारयन ६.१२८.१३।

३६६. तस्याः परमकल्याण्यास्ता भ्राणि सुरभीणि च पदन पत्राणि वैदेह्मं अभ्यं कीर्यन्त रावणम ३.५२.१६ उत्तमाडग्च्युता तस्याः पुष्पव्रष्टिः समन्ततः। सीतायाः ह्रियमाणायाः पपात धरणीतले। ३.५२.२६।

३६७. शयनादुत्थिः काल्यं त्यक्तभुक्तामिव सृजम १.४.१५.७, ५-२५.७ भी देखिये।

३६८. सर्वपुष्पमयी दिव्यां शिरसा धरयन स्रजनं ६.२२.१६

३६६. अजुनौ नर्मदा रन्तुं मतः स्त्रीभिः सहेश्वरः ७.३१.६

४००. ततः सीता शिरःस्नातां संयुक्ताः प्रतिकर्मणा। महार्हारणोपेतां महार्हा-म्बरधारिणीम ६.११४.१४,

तृतीय अध्याय

रामायण कालीन भूमि व्यवस्था

वाल्मीकि के समय में भारत आर्थिक दृष्टि से सुखी, समृद्ध, वैभवशाली देश था। दशरथ के राज्यकाल में अयोध्या और उसके जनपदों की आर्थिक स्थिति अत्यन्त उन्नत हो चुकी थी। वे धन, धान्य, पशु जीवन तथा सुख सुविधाओं से सम्पन्न थे। प्रजा का स्तर ऊँचा था। किसी भी देश की आर्थिक व्यवस्था एक सुशाषित राज्य पर निर्भर करती है। "जहाँ कोई राजा नहीं होता उस देश के खेतों में बीज नहीं बोये जाते। राजहीन देश में अपना ध् ान नहीं हो सकता, मनुष्य की कोई पंचायत नहीं रहती, राष्ट्र को उन्नतशील बनाने वाले उत्सव और संघ भी बढ़ने नहीं पाते। कृषि गोरक्षा में आश्रित होंने वाले भी मजबूत नहीं हो सकते, जब देश में अराजकता व्याप्त हो जाती है तो प्राप्त वस्तु और अप्राप्त वस्तु दोनों की रक्षा नहीं हो सकती----ऐसे देश में कोई भी मनुष्य किसी वस्तु को अपनी नहीं कह सकता।

रामायण काल में भूमि व्यवस्था के अन्तर्गत कृषि के साथ-साथ पशु-पालन का महत्वपूर्ण स्थान था इसके अन्तर्गत गोरक्षा को भी अपना महत्व था। चित्रकूट पर राम ने भरत से निम्नलिखित प्रश्न पूछे थे-

कच्चियते दायिताः सर्वे कृषि गोरक्षा जीविनः
वार्तायां साम्प्रतं तात लोकोऽयं सुखमेघते।।

"कृषि और गोरक्षा से जीतिका चलाने वाले सभी वैश्य तुम्हारे प्रीति पात्र क्या है? वार्ता का अनुशीलन करने वाले लोग सुखी तो हैं?" क्या इस राज्य को वार्ता के नियमों और सिद्धान्तों को लागू करना राजा का प्रधान कर्तव्य था।

राजा की आमदनी का प्रमुख स्रोत 'बलिषडभाग,' (प्रजा की आय का छठा हिस्सा) था। उसे अपने सामन्तों से भी उपहार मिलते रहते थे। अर्थ या धन का तात्पर्य सिक्के ही नहीं था, धान्य, गवादि, पशु, घर-वार, खेत, खलिहान, हाथी, घोड़े, ऊनी वस्त्र, मृगचर्म ये सभी वस्तुयें धन के अंतर्गत आती थीं। जिनका समाज में महत्व था। उस युग में अर्थ का आशय वही है जो आज आधुनिक अर्थशास्त्रीय प्रत्येक विनिमय वस्तु से लगाते हैं।

राजा की आमदनी के स्रोत में बलिषडभाग के अतिरिक्त कुछ खानों से भी

लाभांश भी मिलता था। राम ने अयोध्या की खनों के बारे में पूंछताछ की थी, उससे कुछ ऐसा आभास मिलता है।१। विश्वामित्र ने राजा को 'रत्नहारी' कहा है कि उनके राज्य में पाये जाने वाले रत्नों पर अथवा प्रत्येक लाभांश पर अधिकार रहता था। इसी प्रकार दशरथ के मंत्री ब्राह्मण क्षत्रियों को कष्ट पहुँचाये बिना राजकोष भरा करते थे।२। इससे समझ में आता है कि वैश्यों पर करों का बोझ पड़ता था। रामायण युग में कृषि ही मुख्य सर्वमान्य आजीतिका का साधन माना जाता था। दशरथ की मृत्यु के बाद अयोध्या में एकत्र होने वाले वैश्यों को कृषि, गो रक्षा जीविन कहा गया है। अर्थात ये लोग अपनी जीविका खेती और गो पालन से चलाते थे।

वाल्मीकि ने कोसल राज्य की संपत्ति खेतों, लतागुल्मों और गाँवों के रूप में तथा अयोध्या के नागरिकों की समृद्धि उद्यानों, खेतों, भवनों और धन-धान्य के रूप में गिनाई है।

कृषि को राज्य की ओर से पूरा संरक्षण प्राप्त होता था। जिन आठ शासन-संबंधी विषयों से राजा को परिचित रहना पड़ता था, उन्हें 'अष्टवर्ग' कहते थे।

बालकांड में जनक के विषय में कहा गया है कि एक बार जब वह हल से यज्ञ भूमि जोत रहे थे, तब उन्हें सीता मिली थी। इससे पता चलता है कि क्षत्रियों के लिये खेती की मनाही नहीं थी। दशरथ और राम के शासन काल में भारत कृषि की दृष्टि से मजबूत, सुखी, संपन्न था। वाल्मीकि ने कोसल राज्य का वर्णन कर कहा है- वह धन धान्य और गौओं से परिपूर्ण तथा तालाबों उद्यानों और आम्रवनों से युक्त था। मागधी नदी हरी-भरी फसल वाले खेतों के बीच बहती थी। लंका की जलवायु समुद्री हवाओं के कारण समशीतोष्ण थी, वहाँ की भूमि पर्याप्त वर्षा के कारण उपजाऊ थी। भारत का दक्षिणी समुद्र तट एक रमणीय वन प्रदेश था, जहाँ 'तक्कोल' और 'जाति' नामक सुगंधित फलों, तमाल के पुष्पों तथा 'मरीच' की झाड़ियों की बहुलता थी।३।

बिहार के मलद, करुष प्रदेश दीर्घकाल तक बड़े समृद्धिशाली और धन-धान्य से सुखी थे किंतु राक्षसी ताटका के आतंक क कारण उनकी सारी समृद्धि नष्ट हो गयी और वे एक वीरान प्रदेश में बदल गये थे।४। कृषक गण अपने-अपने जनपदों में स्थायी रूप से बसे हुये थे, और वे स्थान परिवर्तन नहीं करना चाहते थे। आधुनिक अर्थशास्त्र की भाषा

में इसे इमोविलटी ऑफ एग्रीकल्चरल लेबर (कृषि श्रमिकों की अगतिशीलता) कह सकते हैं।

वाल्मीकि कहते हैं कि उस समय वर्षा समय पर उचित मात्रा में हो जाती थी, खेत अनाज से भरे थे, पृथ्वी धान से युक्त और सभी प्रकार की औषधियों से संपन्न थी।५। कृषि प्रधान देहात ग्राम कहलाते थे, वन जाते समय राम रथ में बैठकर जिस प्रदेश से होकर गये थे, तो पता चलता है कि उस समय देहातों की जनता सुखी, सम्पन्न, समृद्ध थी। और खेतगाँव के समीप ही थे। प्राचीन काल से ही भारतीय अर्थ-व्यवस्था भूमि पर आधारित थी। यद्यपि ऋग्वेद में अरण्य, ग्राम, तथा पुर तीनों का उल्लेख है तथा हाल में डा० घुर्ये।६। जैसे विद्वानों ने इस काल में नगरों के होने का भी समर्थन किया है फिर भी इस काल के ग्राम्य तथा नागरिक जीवन में अधिक भेद नहीं किया जा सकता क्योंकि दोनों के जावन की आधारभूत संरचना एक ही प्रकार की थी जो ग्राम्य कही जा सकती है। नगरों का ग्रामों से भेद उनके राजनैतिक गढ़ होने पर आधारित होता था न कि उनके वाणिज्य के केन्द्र होने में।

कुछ इतिहास कारों ने कल्पना की है कि जनजति युग में समस्त भूमि पर जन का स्वामित्व रहा होगा।७। उनके अनुसार भारतीय सभ्यता के उन्मेष के काल में लोहे की अनुपलब्धि के कारण अकृष्ट पूर्व भूमि को अकेला जोतना कठिन होगा अतः भूमि पर सामूहिक स्वत्व होता होगा। परन्तु अन्य विद्वानों के विचार में ऋगवैदिक काल में अनेक प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि कृषि भूमि पर स्वामित्व कर्षक कुटुम्बों का था। उस समय पशु, भूमि तथा स्वर्ण वैयक्तिक संपत्ति के विभिन्न प्रकार के माने जाते थे।८। ऋगवेद में ही लगभग छत्तीस उद्धरण क्षेत्र के हैं जिनमें अधिकाँश उद्धरण क्षेत्र को जोतने से संबंधित हैं।९। इस प्राप्ति से व्यक्ति का क्षेत्रपति हो जाना स्वाभाविक है।१०। उर्वरा क्षेत्र को अपने पशु अथवा संतान की भांति अपनी संपत्ति माना गया है।११।

यज्ञ की प्रक्रिया की तुलना कृषि से की गई है वहाँ जोताई, बोवाई, कटाई के सुस्पष्ट वर्णन है। कृषि के अतिरिक्त अर्थव्यवस्था का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष पशु पालन था। इसमें गाय, बैल को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था। तत्कालीन युद्धों का एक मुख्य उद्देश्य गाय की प्राप्ति होता था। दैनिक जीवन में गाय के बने चमड़े से विभिन्न वस्तुओं का प्रयोग होता था। इससे बने पात्रों में जल, शहद, घी, सोमरस रखे जाते थे। बैल का प्रयोग कृषि

कार्य के लिये गाड़ी खींचने तथा इन्द्र आदि को अर्पण करने के लिये होता था। भैंस, बकरी, भेड़ों का प्रयोग भोज्य पदार्थ के लिये होता था।

ऋग्वेद में अपाला द्वारा अपने पिता के क्षेत्र तथा उनके सिर के बालों को व्यक्तिगत संपत्ति के अर्थ में लिया गया है इसके साथ ही उर्वरा क्षेत्र तथा योग्य पुत्र पौत्र के लिये प्रार्थना भी यही दिखाती है।१२।

क्षेत्र को दण्ड से मापने पर व्यक्तिगत स्वामित्व दर्शाता है।१३। व्यक्तिगत स्वामित्व के तथ्य को संयुक्त परिवार के महत्व के संदर्भ में रखना चाहिये। प्रारंभ में परिवार के मुखिया की भू-संपत्ति विभाज्य हो सकती थी कि नहीं यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। विश्वजित यज्ञों के संदर्भ में मीमांसा सूत्रों का मत है कि राजा को समस्त भूमि दान करने का अधिकार नहीं है, न ही ग्राम समुदाय का ग्राम भूमि पर सामूहिक स्वत्व इंगित होता है।१४। शेडर मैक्डोनैल और कीथ के भी विचार वैदिक युग में व्यक्तिगत स्वत्व होता था।१५।

भूमि के कई प्रकार थे। उर्वरा या उपजाऊ भूमि, खिल्य अथवा बंजर ाूमि, गव्युति या गोचर भूमि तथ अरण्य अथवा वन भूमि।१६।

ऋगवैदिक काल में प्राकृतिक उर्वरता तथा वर्षा के अतिरिक्त कृत्रिम रूप से सिंचाई तथा खाद का भी प्रयोग होता था। श्वनित्रमा आपः शब्द कृत्रिम सिंचाई दर्शाता है। इसके अतिरिक्त कुओं का वर्णन है।१७। वैदिक इंडेक्स में लिखा है कि पत्थर के चक्र से एक पट्टा लगा रहता था जिसमें कि कोश लगा रहता था जिसमें से पानी लकड़ी की बाल्टी से डाला गया था।१८। इसके अतिरिक्त नहरों का भी उल्लेख मिलता है।१६।

सिंचाई के मुख्य साधन बड़े जलाशय, छोटे तालाब, नदियों और कुएं थे। कहते हैं कि कोसल राज्य में तालाबों की अधिकता थी। यदि खेत में पानी की कमी हो जाती थी तो पास के खेतों से मेढ़ बनाकर पानी ले लिया जाता था।२०। वर्षा काल में नदी में बाढ़ का पानी तटवर्ती प्रदेश को उपजाऊ बना देता था।२१। सरयू नदी बारह महीने बहा करती थी, कोसल राज्य सरयू के समीप था इस कारण सिंचाई की सुविधा ज्यादा अच्छी रही होगी, वहाँ के किसान एक मात्र वर्षा के जल पर ही निर्भर नहीं रहे होंगे। नहरों, जलाशयों, कुओं, पुलों, बांधों आदि के निर्माता यंत्रक कहलाते थे उनका निर्माण राज्य की ओर से किया जाता

था। वाल्मीकि ने वर्षा के जल के वेग से सेतुओं के टूट जाने का वर्णन किया है। दशवर्षीय दुर्भिक्ष के समय अनुसुइया ने गंगा को बहाकर प्रजा की रक्षा की ओर फल-फूलों की उत्पत्ति कराई थी। इस प्रकार आर्य कृत्रिम साधनों द्वारा जल से पूर्ण रहते थे जिससे कृषि समृद्ध हो सके।२२।

वैदिक कालीन समाज की सामाजिक संरचना ग्रामीण तथा कृषि प्रधान थी जिसमें एक ओर आश्रम तथा जनजातियाँ थीं दूसरी ओर कुछ नगर जिनकी सुरक्षातात्मक व्यवस्था थी तथा प्रशासकीय महत्व था। भूगमिगतीय अर्थव्यवस्था के कारण सामाजिक परिस्थिति तथा पद भी कृषि तथा भूमि संबंधी स्त्रोंतों के नियंत्रण पर निर्भर थी।२३। पर अन्य विद्वानों का विचार है कि सामाजिक श्रेणीबद्धता मूल्यों की श्रेणीबद्धता पर आधारित थी। यद्यपि यह सत्य है कि राजा द्वारा किसी ग्राम के कर के भोग के अधिकार (ग्रामकाम) की ब्राह्मणों को भी इच्छा सदैव रहती थी।

उत्तरवैदिक काल में भू-स्वामित्व वैयक्तिक था तथा भूमि के ऊपर राज्य के पूर्ण स्वत्व की कल्पना अस्पष्ट थी। शतपथ ब्राह्मण।२४। तथा ऐतरेय ब्राह्मण।२५। में एक कथा में कहा गया है कि जब राजा विश्वकर्मन ने अपने यज्ञ कराने वाले पुरोहित को भूमि दान करानी चाही तो भूमि ने दान दिये जाने से मना कर दिया। राजा को ब्राह्मण अथवा वैश्य को अपने राज्य से निष्कासित करने का जो अधिकार था वह उसके स्वामित्व से नहीं, अपितु उसकी राजप्रभुता के कारण होता था।२६। इस समय मुख्य उपज गेहूँ, जौ, चावल, तिल, तथा विभिन्न दालों की खेती होती थी।२७। सन तथा ईख का भी इनको ज्ञान था। लोहे का भी प्रयोग इसी काल में प्रारम्भ हुआ था। तलवार, तीर, कुल्हाड़ी, फाल से स्पष्ट होता है। खेती के कार्यों को करने के लिये किसानों को कुछ औजारों का प्रयोग करना पड़ता था। कठिनकाज, क्षुर, कलश, टंक, परशु, शूल, फाल, हल, दात्र, खनित्र, कुद्दाल, कुठार, पिटक, लांगत।

ऋगवेद के समय की कृषि व्यवस्था पर्याप्त उन्नत अवस्था में पहुँच चुकी थी। रामायण युग में बाग-बगीचे उद्यानों की संख्या बहुत अधिक थी। इस कारण कृषि के सहकारी धंधे के रूप में बाग-बगीचे लगाने का उद्योग प्रचलित था। अशोक वाटिका के वर्णन से तत्कालीन उद्यान विद्या का पर्याप्त आभास मिलता है। कहते हैं कि सुग्रीव का मधुवन एक

समृद्ध फलोद्यान था, ये उद्यान में सभी ऋतुओं के फल-फूल होते थे।२८। रामायण में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों, पुष्प-वृक्षों, छाया वृक्षों, फलवृक्षों, दारु वृक्षों के नाम आये हैं। इस प्रकार प्राचीन भारत वनस्पति विद्या में अग्रणी था।२६।

रामायण काल में कृषि के साथ-साथ पशुओं की अधिकता देखने को मिलती है। उस समय पशु प्रधान गाँव को 'घोष' कहा जाता था। रामायण में ग्राम और घोषों की निकटता सूचित होती है।

पशु-पालन में गाय को अधिक महत्व दिया जाता था। कहा जाता है कि जिस दिन राम ने वन को प्रस्थान किया था, उस दिन अयोध्या में गौओं ने अपने बछड़ों को दूध नहीं पिलाया था।

रामायण में अनेक ब्राह्मण याचकों को असंख्य गौओं को दान में दिया जाता था। राम ने भरत से चित्रकूट पर पूछा था "तुम्हारे पास विपुल गोधन है"? भरद्वाज के आश्रम में भरत के सैनिकों को चारों ओर पशुओं के लिये विस्तृत चरागाह दिखाई पड़े थे, जिन पर नीली वैदूर्यमणि के समान नरम-नरम घास जमी थी।

अयोध्या नगरी में गौओं के अतिरिक्त हाथी, घोड़े, ऊँट, गधों से भरी थी। केकय देश में खूंखार कुत्तों की नस्ल होती थी जो राजप्रसादों की भीतरी कक्ष्याओं में रहते थे। रामायण युग में हाथियों को भी नागरिक तथा सामरिक दोनों प्रकार से महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था।

वाल्मीकि ने अनेक खनिज पदार्थों की ओर भी संकेत किया है। राम ने कोसल राज्य की खानों से सुशोभित बताया है। चित्रकूट, कैलास, प्रस्रवण, सह्य, मलय और उदय पर्वतों को भी धातु मंडित कहा गया है। जिस पर्वत से हनुमान ने लंका की ओर उड़ान भरी थी, वह नीले-लाल मजीठ और कमल के वर्ण के तथा सफेद-काले रंग के स्वभाव सिद्ध, विशुद्ध धातुओं से भूषित था।३८। हिमालय और विंध्य पर्वत मालाओं में अनेक प्रकार की धातुएं पाये जाने का उल्लेख है। चित्रकूट में भी तरह-तरह की धातुओं में कोई चाँदी के समान, कोई लाल, कोई पीला, कोई काला, कोई नीला, कोई मजीठ के रंग का दिखाई पड़ता था।

जंगली पेड़ों से 'अरण्यक मधु' (जंगली शहद) प्राप्त किया जाता था।

वैदिकोत्तर काल में ग्राम के अर्थ शालासमुदाय था। प्राचीन बौद्ध विभंग के अनुसार ग्राम के अन्तर्गत एक कुटी या दो, तीन, चार कुटियाँ होती थीं। तथा पशुओं को रखने के लिये एक बड़ा चक्र अथवा कारवां सराय होती थी। विनय के अनुसार- बिम्बिसार के समय मगध में ८०,००० ग्राम थे।

इस काल में भूस्वामित्व की वैयक्तिक अवधारणा में उन्नति हुयी। क्षेत्रपतियों को खेत्तपति, खेत्तसामिक व्यथुपति कहते थे। इन क्षेत्रपतियों की सीमा निर्धारित होती थी।३१। भूमिदान के उदाहरण हमें अनायपिंडिक, आम्रपाली तथा जीवन द्वारा किये गये दानों में है।

गाँव की भूमि कई प्रकार की होती थीं जैसे हल्य या सीत्य- जो हल की जोत्य में हो।३२।, ऊपर।३३। गोचर या चारागाह।३४। ब्रज।३५। और गोष्ठ।३६। पाली विनय के एक स्थान पर जाता पथवी और आजाता पथवी में भूमि का वर्गीकरण आता है। जिसका तात्पर्य उपजाऊ या अनुपजाऊ भूमि से है।३७। भूमि का वर्गीकरण उपज के अनुसार होता है। जैसे विनय में यवखेत, सालिक्खेत, और पाणिनि में ब्रेहेय (धान का खेत) शालेय (शालि का खेत) यव्य (जौ का खेत) आदि।३८। यह प्रमुख उपज होती थी।

खेती के उपकरणों में प्रमुख रूप से हल था जिसके विभिन्न भाग ईषा, पोत्र तथा कुशी होते थे। चुल्लवाग में एक स्थान पर कृषि की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। जिसमें खेत की जुताई, बीज डालना, बुवाई (उदकवण्य थूलवप्प) तथा सिंचाई के लिये कुओं से पानी निकालने के साधनों तुल "करकटक" था "चक्कव्टक" का उल्लेख मिलता है।३९।

भूमि कर- उपज में से एक निर्धारित अंश अधिकारी को दिया जाता था। पाली बौद्ध साहित्य में "बली" तथा "भाग" शब्दों का प्रयोग मिलता है।४०।

विष्णु धर्मसूत्र के अनुसार- राज्य को उपज का १/६ भाग देना होता था।४१। किन्तु गौतम ने एक भाग छः, एक भाग आठ तथा एक भाग दस तीन प्रकार की दरें बताई हैं।४२। अतः ऐसा कहा जाता है कि भूमिकर के लिये कोई निश्चित दर नहीं होती होगी तथा इसे भूमि का मूल्यांकन करने के बाद निर्धारित किया जाता होगा।४३।

तत्कालीन उद्योगों की सूची पूरुष मेध यज्ञ में विविध श्रेणी के मनुष्यों के रूप में दी जाने वाली बलि की चर्चा के प्रसंग में मिलती है।४४। इस संदर्भ में प्रमुख ग्रामोद्योग में

रथकर, कुलाल (कुम्हार), कर्मार (लौहार), मणिकार, रज्जसर्ज (रस्सी बनाने वाला), मृगयु (शिकार से आजीविका चलाने वाला), श्वनिन (कुत्तों को पालने वाला), पुजिष्ठ (पक्षियों को पकड़ने वाला) हस्तिप (हाथी चलाने वाला), अयूतप (घोड़े पालने वाला), गोपाल (गाय पालने वाला) अजयपाल (बकरी पालने वाला), कीताश (कृषिकर्म में प्रवृत) आदि थे। धातुओं में सोना चांदी, लोहा, सीसा थे।

मौर्य– शुंगकाल में कौटिल्य के अर्थशास्त्र में बताया गया है कि कौटिल्य ने अनेक प्रकार के ग्रामों का वर्गीकरण किया है, जैसे विदेशियों को प्रेरित करके बसाये हुये नये ग्राम तथा स्वदेश वासिंयों के अतिरिक्त जनसंख्या को जिन नये ग्रामों में बंसाया जाता था। राजस्व के आधार पर भी कौटिल्य ग्रामों का वर्गीकरण करता है, करमुक्त ग्राम, राजकीय सेना में सैनिक भेजने वाले ग्राम, राज्य की धान्य, पशु, स्वर्ण कच्चा माल देने वाले ग्राम, राजकीय प्रासादों के निर्माण में कार्यरत श्रमिकों को कर के रूप में देने वाले ग्राम अदि है। इस काल में भूमि तीन प्रकार की होती थी। राजा की वैयक्तिक भूमि, काश्तकारों के अधीन भूमि जिस पर वे कर देते थे, तथा अनुपजाऊ भूमि। कौटिल्य द्वारा वर्णित भूमि में कृष्ट, अकृष्ट, केदार, आराम, दाषण्ड, मूलवाप, वांट, वन, विपीत, पार्थ। शून्य निवेश अथवा ग्रामीण स्थानों का राज्य द्वारा उपनिवेश राज्य की नीति का एक महत्वपूर्ण पक्ष था। जिमें अनधिवसित क्षेत्रों में परदेश तथा अपने देश के अधिक आबादी वाले प्रान्तों के लोगों को बसाने की नीति होती थी। लल्लन जी गोपाल के मतानुसार दो प्रकार को भूमि एक तो राज्य की तथा दूसरी व्यक्तिगत एक उद्धरण में कहा गया है कि राजा द्वारा भूमि छीने जाने पर जन साधारण पर तीव्र प्रतिक्रिया होती थी।३२।

भूमि देवमात्रिक तथा अदेवमात्रिक होती थी। पर्याप्त वर्षा वाले प्रदेश देवमात्रिक तथा जहाँ पर कृषि का आधार कृत्रिम रूप से सिंचाई थी वे अदेवमात्रिक थे।

दान दी हुयी भूमि ब्राह्मणों को दान के रूप में होती थी जो कर मुक्त होती थी। ग्राम्य भूमि जो ग्रामों से प्राप्त करों पर रहती थी। कुछ विद्वानों का कथन है कि मनु के समय अधिकारियों को ग्राम के कर देने की परम्परा थी तथा इससे पूर्व कौटिल्य के समय भूमि देने की परम्परा।४५।

राज्य की भूमि का अधीक्षक सीमाध्यक्ष कहलाता था।४६। जिसे कृषि तंत्र का ज्ञान

होता था। समार्हत द्वारा सभी भूमि के प्रकारों का लेखा-जोखा रिकार्ड होता था। भूमि दान के प्रसंग भी अर्थशास्त्र में मिलते हैं ब्राह्मणों को दान में दी गयी भूमि पर कर वसूल नहीं होता था।४७। कुछ अधिकारियों, अध्यक्षों आदि को भी भूमि दान दिया जाता था पर उसके विक्रय का अधिकार नहीं। इनको कर मुक्ति नहीं थी। ये दानों प्रकार के भूमि दान जागीरदारी अथवा सामन्तवाद के उदाहरण नहीं कहे जा सकते हैं।४८। कुछ विद्वानों का कथन है कि मनु के समय में अधिकारियों को ग्राम के कर देने की परम्परा थी। इसके पूर्व कौटिल्य के समय वास्तविक भूमि देने की परम्परा।४६।

भूमि के तीसरे वर्ग के स्वामी छोटे कृषक होते थे। मनु के काल में छोटे-छोटे क्षेत्रों का अधिक वर्णन आताहै। क्योंकि पैतृक संपत्ति के बटवारे की परम्परा चल गयी थी।५०।

भूमि के एक अन्य प्रकार के स्वामी होते थे जिनकी अपनी स्वयं की भूमि होती थी। कुछ लोग ऐसे होते थे जिनके पास भूमि नहीं होती थी पर जो भूस्वामियों क पास होती थी उनसे वह लोग भूमि पट्टे में ले लेते थे और मेहनत करके उस परा काश्तकार कार्य करके नहर का कार्य करके उपज बढ़ाता था। और उससे जो लाभ मिलता था वह भूस्वामी को जाता था। ऐसे लोगों का कोई महत्व नहीं रहता था। उनका राजा से साक्षात सम्बन्ध भी नहीं रहता था। अतः भूस्वामी जो मध्यस्थ का कार्य करता था उसके द्वारा शोषण होने की संभावना अधिक होती थी। पॉचवें प्रकार के कृषकों में कुछ लोग बटाई काश्तकार होते थे। जो भूमि पर लाभ होता था उसका कुछ हिस्सा मेहनत करने वाले को मिलता था।५१। मनु ने इनका वर्णन करते हुये शूद्रों की संख्या अधिक बतायी है।

छठवें प्रकार के कृषक भूमिहीन थे जो ग्राम की सीमा पर रहते थे दूसरे व्यक्तियों के खेतों पर कार्य करते थे। उपज से जो लाभ होता था उसके अधिकारी भूस्वामी होते थे।४०। तथा इन भूमिहीन कृषकों को कार्य करने के लिये वेतन आदि मिलता था।

ग्राम के चारों ओर की भूमि तीन भागों में बँटी थी सीत्या, ।५२। गोचर।५३। और ऊषर।५४। सीता भूमि के दारखण्डों में विभक्त थी जिसमें अन्न बोया जाता था। गोचर भूमि पशुओं के चरने के लिये होती थी। बन्ध्या भूमि को ऊषर कहते थे।

कृषि के साधनों में बैल और हल प्रमुख थे। जिस उपकरण से खेत के कोने खोदे जाते थे उसें आखन, आखर या आखनिकवंक कहते थे।४४।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि रामायण कालीन भूमि व्यवस्था इस प्रकार से थी अब प्रश्न उठता है कि रामायण पर अनेक स्थलों में भूमि पर राजकीय नियन्त्रण के साथ-साथ हमें सामूहिक नियन्त्रण की बातें दिखाई पड़ती है अतः स्पष्ट है कि भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था में भूस्वामित्व का प्रश्न अत्यंन्त जटिल है अतः हम कह सकते हैं कि भूमि पर व्यक्तिगत अथवा सामूहिक स्वामित्व का आभास दिखाई पड़ता है इस कारण भारत में सामन्तवाद की जड़ें दिखाई पड़ती थी।

भूस्वामित्व- वैदिक काल से ही भूमि पर व्यक्तिगत स्वत्व था। स्वत्व का अर्थ बेचने, दान देने अथवा गिरवी रखने की क्षमता थी। नारद स्मृति में कहा गया है कि जो व्यक्ति बिना प्रमाण के चाहे सौ वर्षों तक भूमि का उपयोग करता रहा हो चोरों की भाँति दण्डित किया जाना चाहिये।५५। सागम स्वत्व के अन्तर्गत भूमि पर वर्तमान भोक्त के पिता और उसके तीन पूर्वजों का लगातार अधिकार चाहे आगम विरुद्ध ही सही रहा हो तो उसे उस भूमि का स्वामी मान लेना चाहिये। इसी प्रकार यदि भूमि का स्वामी अपनी भमि का कर्षण करने नही आता है, उसकी मृत्यु हो जाती है अथवा लापता हो जाता है। तथा कोई भी अपरिचित व्यक्ति सभी की सहमति से उसको कर्षति करता है। तो उस उपज पर उसी का अधिकार माननां चहिये। यदि इस काल में भूस्वामी लौट आये तो अपरिचित को खर्च हुयी राशि लौटा दे अथवा यदि न लौटा पाये तो आठ वर्षों तक उपज का सात या आठ भग अपरिचित उपयोग करे।५६।

याज्ञवल्क्य के अनुसार- बीस वर्ष किसी भूमि पर अधिकार रखने पर उस स्वामित्व स्थापित हो जाता था।४३। इसके बाद स्मृतियों जैसे वृहस्पति, विष्णु, कात्यायन, नारद इस अवधि को साठ वर्ष मानते हैं। भूस्वामित्व के विवादों के लिये कात्यायन ने छः कारण बताये हैं। अधिक भूमि का दावा करना, यह दावा करना, किसी भाग का निराकरण करना, किसी भाग को अपने अधिकार में छीन के रख लेना तथा सीमावर्ती विवाद।५७। भूमि के स्वामित्व तथा विक्रय के नियम कई विधानों से नियमित ले जो बाद में ढीले पड़ गये।

विष्णु स्मृति में दान की महिमा बतलायी है।५८। कहा जाता है कि भूमि को यदि दान के रूप में कोई विशिष्ट क्षेत्र दिया जाता था तो उसके ऊपर उसका वैयक्तिक स्वामित्व हो जाता था।

गौतमी पुत्र शातकर्णी के नासिक गुहा अभिलेख में राजा ग्राम की एक भूमि को मेरी अपनी भूमि कहता है। जब किसी ग्राम में राजा की कोई भूमि नहीं होती थी तो दान देने के पूर्व किसी कर्षक से भूमि खरीदनी होती थी।५९। उषवदात के नासिक गुहा अभिलेख में एक ऐसी भूमि के दान का वर्णन है जो उसने एक ब्राह्मण अश्विमति से चार हजार कार्षापण में खरीदा अतः वैयक्तिक भूमि से भूमि छीनकर दान करने का प्रश्न नहीं उठता है।६०। भूमि पर व्यक्तिगत स्वत्व नारद स्मृति द्वारा माना गया है कौटुम्बिक का गृह तथा उसके क्षेत्र उसके अस्तित्व के दो आधार हैं। अतः राज को इनको अव्यवस्थित नहीं करना चाहिये। उपर्युक्त कुछ वाक्यांशों के विपरीत भी वाक्यांश हैं। जिसमें राजा का पूर्णरुपेण अधिकार मानते हैं।

मनुस्मृति तथा अर्थशास्त्र में कहा गया है कि राजा भूस्वामी होता था इसी लिये वह उपज का एक भाग छः का अधिकारी होता था। इसी प्रकार फाहियान तथा ह्वेनसांग ने एक स्थान पर कुछ शब्दों से प्रतीत होता है कि सभी अपनी पुश्तैनी भूमि को जोतते थे।६१। पी०वी० काणे ने कृषि भूमि पर कृषकों का और बंजर भूमि पर राजा का अधिकर था। पार्जिटर के अनुसार बंगाल से तीन दानपत्रों के आधार पर व्यक्तिगत स्वत्व, संयुक्त परिवार का स्वत्व तथा ग्राम का सामूहिक स्वत्व तीनों स्वत्व प्रचलित थे। बसाक के अनुसार ग्रामों की भूमि पर सामूहिक रूप से ग्राम वासियों का स्वामित्व होता था। यदि ऐसा न होता तो राजा को अपनी खास (राजकीय) भूमि के लिये ग्राम महत्तरों ओर व्यवहारियों की अनुमति क्यों लेनी पड़ती थी? धर्मादित्य के दानपात्र ए (तीसरे वर्ष का फरीदपुर दानपात्र) में स्पष्ट कहा गया है कि विक्रय का एक भाग छः भाग राज्य का होगा और शेष भाग ग्राम पंचायत का होगा तथा वही भूमि का असली स्वामी होगा।

हिन्दू विधिशास्त्री नीलकंठ ने भूमि के स्वामित्व सम्बन्धी सिद्धान्त का और अधिक व्यापक विश्लेषण किया है। और कहा है यदि कोई राजा किसी राज्य पर विजय के द्वरा अधिकार स्थापित कर ले किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं होता कि भूमि का स्वामित्व उसमें निहित हो जाता है। उसे कर लेने का अधिकार ही प्राप्त हो जाता है, स्वामी बनने का नहीं। महामात्य, माधव का भूमि के स्वामित्व के विषय में नाम बड़े ही सम्मान से लिया जाता है। उसने भूमि के स्वामित्व सम्बन्धी सिद्धान्तों का बड़ा ही व्यापक विश्लेषण किया है।

उसने इस मत को स्वीकारा है कि भूमि का स्वामी नहीं होता। भूमि तो किसान की ही होती है। राजा का तो उस भूमि पर संरक्षण का दयित्व होता है।

देया न वा महाभूमिः स्वत्वाद्राजा ददातुताम।
पालनस्यैव राज्यत्वान्न स्वम्भूर्दीयते न सा।।
यदा सार्वभैमों राजा विश्विजिदादौ सर्वस्वं दताति
तदा गोपथ राजमार्ग जला-शयाद्यन्विता महाभूमिस्तेन दातव्या।

कुतः भूमिस्तदीयधनत्वात् राजा सर्वस्येष्ठे ब्राह्मणवर्ज मिति स्मृतेः। इति प्राप्ते-ब्रूमः। दुष्ट शिक्षाशिष्ट पीर पालनाम्यां राज्ञ ईशितृव्य स्मृव्यमिप्रेतमिति न राज्ञां भूमिर्धनम। किन्तु तस्याँ भूमौ स्वकर्मफलं भुन्जननां सर्वेषां प्राणिनां साधारणं धनम्। अतो साधारणस्य भूखंऽस्य सत्यापि दाने महाभूमेर्दानं नास्ति।

इस सन्दर्भ में प्रायः कहा जाता है कि अनेक राजाओं ने अनेक लोगों से भूमि छीन ली और अन्य लोगों को दे दी। इस बात का लिखित प्रमाण ग्रन्थों में मिलता है। इस सम्बन्ध में यही उत्तर दिया जाता है कि राजाओं का यह कार्य कुछ सिद्धांतों के पतिपादन के लिये और कुछ के विरोध के लिये होता था। राजा जिन शुभ बातों की स्थापना करना चाहता था उसके लिये पुरस्कार देता था और वह पुरस्कार कभी-कभी भूमि के रूप में दिया जाता था और जब दंड देना चाहता था तो उसकी भूमि छीन लेता था। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि भूमि का स्वामी राजा अथवा शासक होता था। राजा को जब स्वामी कहकर सम्बोधित किया जाता था तो उसका मतलब केवल इतना ही है कि वह भूमि की उपज का एक भाग छः भाग का अधिकारी है। सम्पूर्ण भूमि का नहीं। इस सम्बन्ध में मित्र-मिश्र के निम्नलिखित शब्द उल्लेखनीय है, "इसका अर्थ केवल इतना ही है कि राजा को पृथ्वी का स्वामी कहते हैं। उसका स्वामित्व उस धन पर नहीं है जो भूमि से प्राप्त होता है। मानव से तात्पर्य जीवधरियों से है और जनसंख्या का अर्थ उन व्यक्तियों से है जो उस भूमि पर निवास करते हैं और भूस्वामी राजा को ही माना जाता है, अतः वह भूमि की उपज का एक भाग छः का अधिकारी है।

प्राचीन भारत में अर्थव्यवस्था के बड़े ही निश्चित सिद्धान्त थे। वास्तव में जो धन करों के माध्यम से उपलब्ध होता था वही राज की आय होती थी। उसी से राजा को

पारिश्रमिक मिलता था और उसी से शासन के अन्य कार्यों का संचालन होता था। कर निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर लगाये जाते थे और कुछ लोगों को करों से मुक्त किया जाता था।

कृषि का महत्व– प्राचीन भारत में कृषि का बहुत ही अधिक महत्व था प्रत्येक शासन को कृषि को बढ़ावा देना उसका प्रथम और अनिवार्य कर्तव्य के रूप में बताया जाता था। यदि वह ऐसा नहीं करता था तो यह समझा जाता था कि वह अपने दायित्वों का निर्वाह ठीक ढंग से नहीं कर रहा है।

प्राचीन भारत में धर्म के नाम पर मठों इत्यादि की स्थापना को बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया जाता था। और धार्मिक महात्माओं ओर धार्मिक लोगों को कर से मुक्त रखा जाता था किन्तु इस बात की व्यवस्था अवश्य थी कि लोग धर्म के नाम पर पाखण्ड न करने पायें इसी कारण प्राचीन धर्म ग्रन्थों में इस बात को उल्लेख है कि यदि कोई व्यक्ति अपने परिवार के भरण पोषण की व्यवस्था के बिना सन्यासी हो जाता है तो उसके विरुद्ध विधिवत् राज्य द्वारा कार्यवाही की जाती थी। ऐसे लोग जिन्हें गृहस्थ जीवन व्यतीत करना चहिये उन पर सन्यासी बनने से रोक लगी हुयी थी। कहने का तात्पर्य यह है कि प्राचीन भारत में इस बात की व्यवस्था थी कि लोग अपने आर्थिक दायित्व का निर्वाह करे और देश और समाज को समृद्ध बनाने का प्रयास करे महाभारत और प्राचीन राज्यशास्त्र के ग्रन्थों में इस बात का अल्लेख है कि शासकों को सबसे पहले इस बात की शिक्षादी जानी चाहिये कि वह देश की स्वतत्रता की रक्षा करे और उसे आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बनाये। राजा को निम्नलिखित बातों की शिक्ष दी जाती थी।

(अ) खेती, पशुपालन, व्यवसाय और व्यापार। इनमें सफ़लता से कोष की वृद्धि होती है, फलतः सेना का नियन्त्रण ओर शत्रुओं पर काबू होता है।

(ब) अर्थशास्त्र में राजनीति ओर उसके विलोम का वास रहता है।

(स) अर्थशास्त्र से समस्त राजशास्त्र के सम्बन्धों का ज्ञान होता है।

(द) वार्ता से समाज को आश्रय मिलता है।

राजा का यह भी कर्तव्य था कि व्यापारिक वर्ग को प्रोत्साहन देना चहिये। जिससे देश के व्यापार में वृद्धि हो और देश की समृद्धि बढ़े। महाभारत में जहाँ इस बात का

उल्लेख है कि राजा को कृषि के विकास में सहायक होना चाहिये। और राजा को धनिक लोगों को और व्यवसायियों को सम्मान देना चाहिये। उन्हें दरबार में आमन्त्रित करना चाहिये क्योंकि व राज्य की समृद्धि के अंग हैं।

रामायण कालीन समाज में भूमि पर व्यक्तिगत अथवा सामूहिक स्वामित्व के आधार पर सामन्तवाद की जड़ें विद्यमान हैं जैसा कि इस प्रकार से स्पष्ट होता है कि सामन्त एक व्यापक अर्थ रखने वाला शब्द है। इस श्रेणी के अधीन राजा , राज्य के अधिकारी, स्वयं को समर्पित करने वाले राजा, दान प्राप्त ब्राह्मण, राजा के कुछ संबंधी आते थे। लल्लन जी गोपाल के शब्दों में- सामन्त शब्द के अर्थ में प्रारम्भ में ग्राम के पड़ोसी, कृषक तथा बड़े राज्यों में पड़ोसी राजा था। बाद में अधीन राजा के अर्थ में प्रयोग होने लगा था।६२। प्रारम्भ में भूमिदान केवल धार्मिक संस्थाओं तथा मंदिरों का दिया जाता था परन्तु बाद में अधिकारियों को भूमि देने की परम्परा प्रारम्भ हो गयी थी। ह्वेनत्सांग भी अधिकारियों को भूमि के रूप में वेतन देने का वर्णन करता है।६३। अतः राज के संबंधी, भूमि दान वाले ब्राह्मण, राज्य के अधिकारी, अधीन राजा सभी भूमि एवं ग्रामों के स्वामी हो गये। इस प्रकार ग्रामों में राज्य तथा किसान के बीच एक ऐसे मध्यस्थ भूस्वामी वर्ग का विकास हो गया जिससे उत्पन्न आर्थिक सामाजिक तथा प्रशासनिक संस्था को ही विद्वानों ने फ्यूडलिज्म अथवा सामंतवाद कहा है। इसकी परिभाषा के विषय में अनेक बार विवाद हुये हैं।६४। ग्रामीण संदर्भ में सामन्तवाद का अर्थ इस प्रकार है-

(क) भू-स्वामित्व तथा राजस्व की समस्या।

भूस्वामित्व के अर्थ ग्राम की भूमि पर पूर्णतया अधिकार था अथवा केवल राजस्व का अधिकार?

(ख) क्या यह दान सामन्त के जीवन तक सीमित था अथवा पुश्तैनी?

(ग) वे कौन से वैधानिक अथवा नैतिक अनुबंध थे जो कृषक के अपने सामन्त के प्रति तथा सामन्त के राज्य के प्रति थे। जिनसे भारत की यह समाजार्थिक व्यवस्था को सामन्तवाद का नाम दिया जा सके। अथवा सामन्तवाद का क्या मानक स्वरूप था जिससे भारतीय समाजार्थिक व्यवस्था को उससे तादात्म्य किया जा सके?

(घ) दानग्रहीता के राजस्वीय, न्यायिक अथवा सैनिक अधिकारों की क्या सीमा थी? क्या

उससे ग्रामीण जनता का शोषण होता था।

(ड़) भूमि दानों से क्या कृषि दास प्रथा प्रचलित हो गयी?

अथवा ग्रामीण व्यवसायों के लोग क्या भूमि से इस प्रकार बंध गये कि उनको कही जाने का अधिकार नहीं था?

क्या यूरोप की व्यवस्था से यहाँ साम्य देखा जा सकता है?

उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न प्रकार से दिये गये हैं। कार्ल मार्क्स ने भारतीय ऐतिहासिक प्रक्रिया के विषय में कहा था कि इसमें ऐतिहासिक विकास प्रगतिहीन समाजों की एक ऐसी ऐतिहासिक प्रक्रिया है जिनमें सामन्ती अवस्थायें नहीं आयी।६५। मार्क्स की इस अवधारणा का खंडन करते हुये कुछ विद्वानों ने भारत में सामन्तवाद के अस्तित्व और स्वरूप को उसके ऐतिहासिक उद्भव और विकास के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है जिनमें रामशरण शर्मा।६६। तथा डी०डी० कोसाम्बी प्रमुख हैं। कोसाम्बी के अनुसार भारतीय समाजार्थिक संस्थायें योरोपीय संस्थाओं की कोरी नकल न होकर अपनी पृथक रूप से एक स्वतन्त्र पहचान रखती है।६७। इन विद्वानों के अनुसार सामन्तवाद के कारण है- अधिकारियों को भूमि दान देने की प्रथा तथा उन्हें अपने क्षेत्र में अपनी सेना कायम करने देना। उस समय हूण (पॉचवीं, छठवीं शताब्दी) तथा अरब (आठवीं, नवमी) आक्रमण से उपजी असुरक्षा जिसके कारण सामान्य सुरक्षा के लिये राजा की तुलना में कृषक अपने निकट अधिकारी पर निर्भर था। इन अधिकारियों के क्षेत्र में राजा की सेना का प्रवेश वर्जित था। ऐसे क्षेत्रों को आचार भट प्रवेश कहते थे। इन अधिकारियों को भूमिदान देने का दूसरा कारण सिक्के तथा मुद्राओं की इस युग में कमी थी जो व्यापार के ह्रास से ही हो गयी थी।६८। डी०डी० कौसाम्बी के अनुसार सामन्तवाद की दो उवस्थाओं में एक ऊपर से सामन्तवाद था जिसमें शक्तिशाली राजा अपने अधीनस्थ शासकों से कर लेते थे, दूसरा नीचे से सामन्तवाद जिसके अनुसार गाँव में राज्य और कृषक के बीच एक ऐसे भू-स्वामित्व वर्ग का उदय हुआ जो स्थानीय जनसंख्या पर अपनी सैनिक शक्ति का प्रयोग करके उसे अपने वंश में रखता था, उनसे कर वसूल करता तथा कई विधियों से उसका शोषण करता था। सैद्धान्तिक रूप से इस कर का कुछ भाग वह स्वयं लेता तथा कुछ भाग अपने स्वामी को भेजता। कौसाम्बी के अनुसार इस भू-स्वामी वर्ग के उदय के पीछे के

प्रमुख कारणों में ग्रामीण समुदायों की असाधारण वृद्धि थी। जिसमें एक ऐसा वर्ग महत्वपूर्ण हो गयाजो शहर की तथा ग्रामीण व्यापारिक व्यवस्था पर अपना नियन्त्रण कर सके तथा दूसरा कारण सैनिकों तथा सेनापतियों को दी गयी विजित भूमि था। आर०एस० शर्मा के अनुसार सामंतवादी प्रणाली में वास्तविक कृषि कार्य "कृषिदास" करते थे जो भूमि का स्वामित्व नहीं रखते थे। ये दो प्रकार के कृषिदासों का अस्तित्व मानते हैं- प्रथम अस्थाई मजदूर जो सामंतों की भूमि में कार्य करते थे दूसरे अर्ध कृषिदास जो अपनी उपज का कुछ भाग सामन्तों को देते थे।

इनका कहना है कि बहुत से अभिलेखों में सद्शापराध का उल्लेख दानग्रहीताओं को ग्राम वासियों के बीच न्याय करना तथा उनको दंड संबंधी अधिकर देना दिखलाता है। इसके विपरीत डी०सी० सरकार तथा हरबंस मुखिया कहते हैं कि भारत में सामन्तवाद का अस्तित्व ही नहीं था। डी०सी० सरकार के मत में सामंतवाद की पहचान राजा तथा उसके अधीनस्थ सामंती राजाओं तथा सामन्ती शासकों की विभिन्न कोटियों के बीच एक दूसरे के प्रति निर्धारित दायित्वों के अनुबन्धों पर आधारित सैनिक सेवा है।

राजा तथा बड़े सामन्त अपने अधीनस्थों को उनके द्वारा उपलब्ध करायी जाने वाली सैनिक सेवा के बदले उन्हें भूमि देते थे। हरबंस मुखिया ने योरोपीय सामंतवाद के लक्षणों की तुलना भारतीय सामंतवाद से करते हुये यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि जिस सामाजार्थिक प्रथा को भारत में सामन्तवाद कहा है उसमें वास्तव में सामन्तवाद के मानक स्वरूप योरोपीय सामन्तवाद के कोई गुण नहीं थे।६९। प्रो० रेने डीसी सरकार के तर्कों का उत्तर देते हुये कहते हैं कि कृषक के अपने सामंत के प्रति तथा सामंत के अपने कृषक के प्रति वैधानिक अथवा नैतिक बंधन सामरिक, राजनैतिक अथवा आर्थिक कुछ भी हो सकते हैं। एस०के० सरस्वती।७०। का भी यही मत है कि यद्यपि ये आभार या बंधन पट्टों में यही लिखे हैं फिर भी ये स्वाभाविक थे।

बी०एन०एस० यादव इस विषय में एक बीच का मत लेते हैं। वे स्वामी सेवक संबंध को सामन्तवादी अधारणा का प्रमुख तत्व मानते हैं। परन्तु दान प्रसाद पोट्टला कहते हैं कि योरोपीय फ्यूडेलिज्म से भारतीय सामंत अलग हैं। की भांति कृषि दास प्रथा का यहाँ अभाव है। कुछ चंदेल दान पत्रों में ग्राम के साथ ग्रामिकों, कृषक, व्यापारी, कारीगर, आदि

के ऊपर अधिकार दिये गये हैं परन्तु वह किसी वास्तविक स्वत्व के कारण नहीं अपितु राजा द्वारा दान प्राप्त कर्ता को एक प्राइविलेज के रूप में उनके ऊपर अधिकार देने के तौर पर। कृषि कार्य करने वाले मजदूर वेतन के आधार पर रखे जाते थे जिनको सीरवाहक, कृषिबल, आदि कहते थे। यह प्रथा योरोप से भिन्न थी क्योंकि यहाँ मजदूरों को संपत्ति की स्वतन्त्रता तथा जातीय स्वतन्त्रता का पूर्ण अधिकार था।७१।

शूद्र कृषक भी योरोप के कृषिदास की भाँति नहीं था जो। दूसरे मनुष्य का मनुष्य हो "जिसमें व्यक्तिगत नाता दूसरे मनुष्य पर आश्रित होने का हो। योरोप की भाँति सामंतों की ओर से सुरक्षा की आशा की अपेक्षा भारत में यह आशा अपने जाति बान्धवों से की जाती थी।

डा० लल्लन जी गोपाल के अनुसार तत्कालीन अभिलेखों से यह सिद्ध होता है कि ग्राम दान में समस्त उर्वरा भूमि पर पूर्णरुपेण स्वामित्व या अधिकार नहीं हो जाता था। परन्तु भूमिदान के रूप में कोई विशिष्ट क्षेत्र दिया जाता था तो उसके ऊपर उसका वैयक्तिक स्वामित्व हो जाता था।७२। अतः ग्राम दान में कृषकों से भूस्वामित्व नहीं ले लिया जाता था। कई विद्वानों के अनुसार ऐसे भी प्रमाण नहीं मिलते हैं जिनमें बड़ी जागीरों का वर्णन हो। प्रारम्भ से ही बौद्ध साहित्य में कृषक को गृहपति तथा अभिलेखों में कौटुम्बिक कहा है जिनस बड़े जागीरदारों नहीं अपितु छोटे कृषकों का भास होता है।७३। इसी प्रकार बी०एन०एस० यादव के अनुसार कृषक न्यायिक मामलों में सामंतों के ऊपर आश्रित नहीं था केवल राजस्वीय मामलों में था। कुछ रूसी इतिहासकार एटनोवा तथा बोनगार्ड लेविन का भी यही मत है।

भारत में योरोप की भाँति कृषिदास प्रथा थी इस तथ्य की आलोचना करते हुये डा० ओमप्रकाश का कथन है कि राम शरण शर्मा के अनुसार यहाँ हमें कृषकों की भूमि बद्धता (वे ग्राम छोड़कर सामन्त के आदेश के बिना नहीं जा सकते थे, भूमि से ही बंधे थे) तथा बेदखली (सामन्त जब चाहे हटा सकता था) दोनों देखने को मिलती है। यह संभव नहीं क्योंकि ये दोनों एक साथ मिलना स्वाभाविक नहीं क्योंकि भूमिबद्धता कृषकों की संख्या कम होने पर होती है। बेदखली या तो कृषकों की बहुतायत होने पर होती है या भू-स्वामी अपने लिये अधिक लाभकारी व्यवसाय चुन लेने से।

सामन्तवाद के विषय में डी०एन० झा के।७४। अनुसार भूमिदानों की प्रवृत्तियों के पीछे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का उतना हाथ नही था जितना कि विकसित एवं ब्राह्मण सभ्यता १००० ई० के आस-पास सामन्तवाद का विघटन भी दिखायी देता है जो कि भू-स्वामियों के अत्यधिक शोषण एवं बेदखली के विरुद्ध उत्पन्न होने वाला शोषित किसान वर्ग का संघर्ष में सामन्तवाद के विषय में नया प्रकाश डाला है। उनके अनुसार जिसकी झलक हमें साहित्यिक स्रोतों एवं अभिलेखों में दिखाई देती है।

हाल में ही डा० ओमप्रकाश ने कृषि तथा ग्रामीण व्यवस्था ब्राह्मणों को भूमिदान देने के विषयमें उनके अधिकारों को अतिरंजित करके विद्वानों ने बताया है। वास्तव में भूमि दान प्राप्त ब्राह्मणों में सैनिक अथवा राजनैतिक गतिशीलता के प्रमाण मिलते नहीं है। राजपरिवारों के संबंधियों के भूमिदान के आगे ब्राह्मण दान ग्रहीता सदैव निम्नतम स्थित में रहा। इनमें समकक्षता नहीं थी।

डा० ओमप्रकाश इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यद्यपि सामन्तवाद के समर्थकों ने पूर्व मध्यकाल की कृषि के विषय में महत्वपूर्ण तथ्य खोजे हैं लेकिन सामन्तवादी सिद्धान्त पूर्णरूप से स्वीकार नहीं किये जा सकते हैं। राज्य तथा किसान के बीच अनेक अधिकारियों की श्रंखलाबद्धता तथा मध्यस्थों के आने से सामन्तवादी संरचना जागृत अवश्य होती है लेकिन सैनिक, प्रशासनिक तथा अर्थिक दायित्व वाले स्वामी सेवक के अनुबन्धात्मक संबंधों के विकास में कमी के कारण पूर्णरुपेण इनके सिद्धान्तों को नहीं माना जा सका। यद्यपि इस काल में कुछ सामंतवादी प्रकृयायें पायी जाती हैं परन्तु वे अपने विराधी तत्वों के साथ वर्तमान थीं।

सामंतवादी तत्वों के परिणामस्वरूप सभी तर्कों को ध्यान में रखते हुये हम देखते हैं कि इस समाजार्थिक व्यवस्था में शोषण योरोप की भांति कृषिदास प्रथा अथवा "मैनर व्यवस्था" के कारण नहीं, परन्तु अनेक अधिकारियों की श्रंखला-बद्धता के कारण था। यद्यपि भूमिदान सैद्धान्तिक तौर पर दान प्राप्तकर्ता के जीवन काल तक ही सीमित होता था फिर भी व्यवहारिक रूप से पुश्तैनी हो जाता था।

पहले तो केन्द्र को जो भूमि कर दिया जाता था वही सड़कों, सिंचाई आदि कार्यो में लगाया जाता परन्तु इस प्रथा में ग्रामिकों के अनुरक्षण के लिये सामन्त अलग से कर

लगाते। अतः मध्यस्थ को छोड़ के दोनों छोरों-राजा तथा कृषक दोनों को हानि थी। कई बार राजा को कर से वंचित होना पड़ता था। विशेषतः मन्दिरों अदि के दान में। डा० ओमप्रकाश के अनुसार कुछ दान प्राप्त भू-स्वामी तो अवश्य कर मुक्त होंगे किन्तु अधिकांश में विशिष्ट प्रकार के कर तृणोदक, निकर, आरुवण, अग्रहार प्रदेयांश, पिंडदान आदि लगाये जाते थे।७५।

कई बार सामूहिक सहायता के कारण आपद्काल में राजा से अनेक महत्वपूर्ण सामंत हो जाते थे जैसे- चहमाण तथा कश्मीर के डामर। अतः सम्पूर्ण रा एक सूत्र में नहीं बंध पाता था।

स्थानीय अधिकारी तथा सामंत कृषकों का भी शोषण क थे जैसे जैसे- राजतरंगिणी, विक्रमांकदेवचरित, उदय सुंदरी कथा में उदाहरण हैं। गहल तथा चाहमान अभिलेखों में उचित तथा अनुचित दोनों करों का वर्णन है।

कृषक के लिये इस प्रथा के अतिरिक्त उत्पादन से कोई न था क्योंकि ऐसी परिस्थित में और अधिक भाग देना पड़ता था। अतः उनके लिये लायक उत्पादन के अभाव से व्यापार तथा लेन-देन में शनैः-शनैः कमी आ गयी त विद्वानों के मत से सिक्कों का प्रचलन कम हो गया। अतिरिक्त आय सामन्ती अधिकी ही आवश्यकताओं का पूरी करने में चली जाती थी व्यापार आदि में नहीं।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

१. परिव्यक्तो भयैः सर्वैः खनिभिश्चोपशोभितः। २.१००.४५

२. ब्रह्मक्षत्र मति सन्तस्ते कोशं समपूरयन। १.७.१३

३. तक्कोलानां च जात्यानां फलानां च सुगन्धिनाम। पुष्पाणि च तमालस्य गुल्मानि मारिचस्य च। ३.३५.२२-३

४. एतौ जनपदौ स्कीतौ दीर्घकाल मन्दिरम। मलदाश्च देशमुतसाद्‌यत्येनम। १.२५.१४

५. ७.४.२०, ७.६६.१२, ६.१२८.१-२, ७.७.१०, ३.१६.५

६. घुर्ये, वैदिक इंडिया

७. जयमलराय "रूरल अर्बन इंकानामी एण्ड सोशल चेन्ज इन एश्येंट इंडिया" पृ० १४ उनके अनुसार परिवारिक स्वत्व बाद में आया होगा यद्यपि यह तीसरी शताब्दी ई०पू० से बहुत पूर्व प्रचलित हो गया होगा जैसा कि जातक कथाओं के उद्धरण से स्पष्ट है।

८. जी०एस०पी० मिश्र, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था पृ० ७६

६. ऋगवेद १.११२.२०, १.३३.१५, १०.३२, ७, ४.३८.१, ७.१६.३, ६.८५.४

१०. ऋगवेद ४.५७.१-३, ७.३५.१०, १०.६६.१३ से उद्धरण क्षेत्रपति देवता के हैं जिसका मानव प्रतिनिधि वास्तुपति है ऋगवेद ८.२१.३ अश्वपते, गोपते उर्वरापते।

११. ऋगवेद ४.४.१, ६, ६.२५.४.

१२. ऋगवेद ४.४१.६, १.११०, ५, लल्लन जी गोपाल "एस्पेक्ट्स ऑफ हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर इन एंश्येंट इंडिया," पृ० ४३

१३. जी०सी० पाण्डे "डाईमेन्शन्ज ऑफ एश्येंट इंडियन सोशल हिस्ट्री पृ० ७४

१४. जी०सी० पाण्डे हिस्ट्री ऑफ द पंजाब जिल्द

१५. शरेऽर प्रीहिस्टारिक इटिक्विटीज पृ० २८६।

मेक्डानेल एण्ड कीथ वैदिक इंडेक्स। देखिये बंधोपाध्याय इकानॉमिक लाईफ एण्ड प्रोग्रेस इन एश्येंट इंडिया, लल्लन जी गोपाल "हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर इन एश्येंट इंडिया पृ० ४३।

१६. ऋगवेद १०, ४२.३, ६.४७.२०, ७.६१.१४

१७. ऋगवेद १०.१०१.५-७ कुयें को अवत कहा है " इव्वृताधवे अवतम सुवरत्रम"

१८. वैदिक इंडेक्स जिल्द १, पृ० ४०

१६. ऋगवेद, ७.४६.२. वही ४.८५.५, वही ७.६६.१२.

२०. केदारस्येव केदार : सोदकस्य निरुदक :। उपस्नेहेन जीवामि -----६.५.११

२१. तुलना कीजिये - पावृषीव महानधा : स्पृष्टकूलं नवाम्भस्य २.२०.४६

२२. हजार बाहुवाले कार्तवीर्य अर्जुन का नर्मदा में क्रीड़ा करना कहीं अनेक स्तंभों वाले बांध के निर्माण का रूपकात्मक वर्णन तो नहीं है? सहस्त्रबाहु को देखकर राक्षसों ने रावण से कहा था -

बहुशाल प्रतिकाशः कोऽप्यसौ राक्षसेश्वर नर्मदा रोगवद्रूवृध्वा क्रीडापयाति योषितः।। ७.३२.१८ 'हे राक्षसेश्वर अनेक साल वृक्षों के समान यह भीमकाय (पुरुष) कौन है, जो नर्मदा को बांध की तरह रोककर स्त्रियों के साथ क्रीडा कर रहा है? यह भी कहा गया है कि जल के इस प्रकार अचानक रुक जाने से नदी का प्रवाह उल्टा चलने लगा था और उसमें समुद्र के समान बाढ़ आ गयी थी- कार्तवीर्य भुजासम्त तज्जतं प्राव्य निर्मलम।

कूलोपहारं कुर्वाणं प्रतिस्त्रोतः प्रधावति ७.३२.५ तेन बहुसहस्रेण संलिरुद्धजता नदी।

२३. जयमलराय "द रूरल अर्बन इकानमी एण्ड सोशल चेन्जिज इन एश्येंट इंडिया, पृ० ३१६

२४. शतपथ ब्राह्मण १३.८.१-५

२५. ऐतरेय ब्राह्मण ८.२१.८

२६. ज़ी०एस०पी० मिश्र प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, पृ० ६५

२७. वाजसनेयी संहिता १८.२२

२८. सर्वकामफलाः वृक्षाः सर्वे फलसमन्विताः। ६.२७.३६, सर्वकामफलदुमाः ६.२७.३४,नित्यमूला नित्यफलास्तर वस्तत्र पुष्पिताः। ६.१२८.१०२

२६. चौधरी शिवदास- 'काकार्डन्स ऑफ द फौना इन द रामायण' (इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली; २८.२ से ३८.२ तक)

३०. स्वभावसिद्धै र्विमलैर्धतुभिः समलंकृतम १.६.५

३१. जातक १०.२८। दीर्घनिकाय ११.१८

३२. पाणिनि ४.४. ६७

३३. वही, ५.२.१०७

३४. वही ५.३.११६

३५. वही, ३.३.१८६

३६. वही, ५.२.१८

३७. पाचित्तिय पृ० ५३ जी०एस०पी०मिश्र दि एज ऑफ विनय पृ० २४३-२४४ और प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था पृ० १८६

३८. पाणिनी अष्टाध्यायी ५.२२

३९. चुल्लवग्ग पृ० २६२

४०. बलि और भाग के अन्तर्गत पाली टेक्स्ट सोसाइटी द्वारा प्रकाशित शब्दकोष।

४१. ३.२२.२

४२. १०.२४

४३. यू०एन० घेषाल हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, पृ० ३.४

४४. वाजसनेयी संहिता अ. ३०, तैत्तरीय ब्राह्मण ३.४

४५. जयमलराय "द रूरल अर्बन इकानामी एण्ड सोशल चेल्जिज इन एश्येंट इंडिया," पृ० ६२

४६. २.२४

४७. ३.१०.६

४८. कांग्ले द कौटिल्य अर्थशास्त्र भाग ३, पृ० १७२

४९. जयमलराय "द रूरल अर्बन इकानामी एण्ड सोशल चेन्जिज इन एश्येंट इंडिया," पृ० ६२

५०. ११५

५१. मनु २५३, आधिक : कुलमित्रं च गोपालो दास नापितौ एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत

५२. ४.४.६१

५३. ३.३.११६

५४. ४.२.१०७

५५. नारद स्मृति १.८७

५६. नारद स्मृति २३.२५

५७. कात्यायन ७३२

अधिम्यं न्यूनता चाशे अस्तिनास्तित्वमेव च अभोग भुक्ति : सीमा च षट भूतादस्य हेतवः।

५८. विष्णु ३-४ गौचर्ममात्रमपि भुर्व प्रदाय सर्व पाजेम्य : पूतो भवति। ३ गोप्रदानेन स्वर्गलोकम वाप्नोति ४।

५९. लल्लन जी गोपाल वही पृ० ७०

६०. के०टी० शाह एश्येंट फाउन्डेशन्स ऑफ इकानामिक्स इन इंडिया पृ० १६.८२ ए०एन बोस साशल एण्ड रूरल इकानमी पृ० ३२

६१. लल्लन जी गोपाल हिस्ट्री ऑफ एग्रिकल्चर इन एश्येंट इंडिया पृ० ८२

६२. जे०आर०ए०एस० भाग १ व २

६३. वाटर्स भाग १ पृ० १७६-७७

६४. कलकत्ता विश्वविद्यालय में १९६४ में हुयी गोष्ठी का प्रकाशन ''लैण्ड सिस्टम एण्ड फ्यूडेलिज्म इन एश्येंट इंडिया''

६५. डेनियल थार्नर ''मार्क्स एण्ड एशियाटिक मोड्स ऑफ प्रोडक्शन'' कांट्रिब्यूशन्ज टु इंडियन सोस्योलॉजी अंक १९६६ पृ० ३३-४६

६६. रामशरण शर्मा- भारतीय सामन्तवाद

६७. डी०डी० कोसाम्बी- द बेसिस ऑफ इंडियन हिस्ट्री 'जनरल ऑफ अमेरिरिकन ओरियन्टल सोसायटी'' अंक ८५ (१९५५) पृ० ३५-४५, २२६.३७

६८. आर०एस० शर्मा- इंडियन फ्यूडेलिज्म उनके अनुसार सिक्को की कमी से भूमिदान प्रथा बंद की गयी थी।

६९. हरबंस मुखिया '' वाज देयर फ्यूडेलिज्म इन इंडियन हिस्ट्री'' इडियन हिस्ट्री कांग्रेस

वाल्टेयर २६७६ पृ० २५६

७०. डी०सी० सरकार लेंड सिस्टम एण्ड फ्यूडेलिज़्म सेक्युलर लेंड ग्रान्ट्स ऑफ द पोस्ट गुप्ता पीरियड एण्ड सम एस्पेक्ट्स ऑफ द ग्रोथ ऑफ फ्यूडल काम्पलेक्स इन नार्थ इंडिया पृ० ७७ पाद टिप्पणी ६.७

७१. बी०एन०एस० यादव लैण्ड सिस्टम------इडिया पृ० ६४ पाद टिप्पणी

७२. लल्लन जी गोपाल वही पृ० ६८

७३. डा० जी०सी० पाण्डे "फाउन्डेशन्स ऑफ इंडियन कल्चर भाग-२" डाइमेन्शन्ज ऑफ एश्येंट इंडियन सोशल हिस्ट्री पृ० ६१

७४. डी०एन० झा "प्रेसिडेन्शियल ऐड्रेस " प्रोसीडिंग्ज ऑफ इंडियन हिस्ट्री कांग्रस वाल्टेयेर १६७६ पृ० २२-२३

७५. ओम प्रकाश "अर्ली इंडियन लौण्ड ग्रान्ट्स",

चतुर्थ अध्याय

रामायण कालीन व्यापार एवं उद्योग एवं व्यापार

रामायण कालीन उद्योग एवं व्यापार उन्नत अवस्था में था, वाल्मीकि के समय में भारत आर्थिक दृष्टि से सुखी, समृद्ध, वैभवशाली देश था। दशरथ के राज्यकाल में अयोध्या और उसके जनपदों की अर्थिक स्थित अत्यन्त उन्नत हो चुकी थी वे धन, धान्य, पशुजीवन, तथा सुख-सुविधाओं से सम्पन्न थे। प्रजा का स्तर ऊँचा था, अच्छे वस्त्र, खान-पान का सेवन करती थी। किसी भी देश की आर्थिक व्यवस्था एक सुशासित राज्य पर निर्भर होती है। "जहाँ कोई राजा नहीं होता उस देश के खेतों में बीज नहीं बोये जाते। राजहीन देश में अपना धन नहीं हो सकता, मनुष्य की कोई पंचायत नहीं रहती, राष्ट्र को उन्नतशील बनाने वाले उत्सव और संघ भी बढ़ने नहीं पाते। कृषि गोरक्षा में आश्रित होने वाले भी मजबूत नहीं हो सकते, माल दूर देश में ले जाकर बेचने वाले मार्ग में नहीं जा सकते। जब देश में अराजकता व्याप्त हो जाती है तो प्राप्त वस्तु और अप्राप्त वस्तु दोनों की रक्षा नहीं हो सकती----ऐसे देश में कोई भी मनुष्य किसी वस्तु को अपनी नहीं कह सकता।"

रामायण में वैश्य वर्ग पर ही व्यापार केन्द्रित रहता था। वैश्य वर्ण पर व्यापार का अधिकार था इसलिये वित्तशास्त्र में 'वार्ता' की संज्ञा दी गयी है- इसका तात्पर्य वैश्यों के तीन धंधे-कृषि, गोचारण, और व्यापार हैं। रामायण में इसका महत्व बढ़ गया है तिस्त्रः विद्या के अंतर्गत त्रयी (तीनों वेद) और दंड नीति के समकक्ष गिना जाने लगा। इस वक्तव्य से यह निष्कर्ष निकलता है कि वार्ता का अध्ययन प्रारंभ होने से पहले कृषि एवं उद्योगों का ढंग अनियमित विकास रहा होगा। वार्ता विद्या के बाद कृषि-गोपालन और व्यापार पर विशेष ध्यान दिया गया और उसकी एक निश्चित दशा निर्धारित हो गई।१। चित्रकूट पर राम ने भरत से निम्नलिखित प्रश्न पूछे थे।

कच्चियते दायिताः सर्वे कृषि गोरक्षजीविनः
वार्तायां साम्प्रतं तात लोकोऽयं सुखमेधते।।

"कृषि और गोरक्षा से जीविका चलाने वाले सभी वैश्य तुम्हारे प्रीति-पात्र क्या हैं? वार्ता का अनुशीलन करने वाले लोग सुखी तो हैं?" क्या इस राज्य से वार्ता के नियमों और सिद्धान्तों को लागू करना राजा का प्रधान कर्तव्य था।

राजा की आमदनी का प्रमुख स्त्रोत 'बलिषड़भाग', (प्रजा की आय का छड़ा हिस्सा) था। उसे अपने सामंतों से भी उपहार मिलते रहते थे।

अर्थ या धन का तात्पर्य सिक्के ही नहीं था, धान्य, गवादि, पशु, घर-बार, खेत-खलिहान, हाथीं, घोड़े, ऊनी वस्त्र, मृगचर्म ये सभी वस्तुयें धन के अंतर्गत आती थी। जिसका समाज में महत्व था। उस युग में अर्थ का आशय वही है जो आज आधुनिक अर्थ-शास्त्रीय प्रत्येक विनिमय-वस्तु से लगाते हैं।

राजकीय आय प्रायः यज्ञ आदि धार्मिक कार्यों लगती थी, ब्राह्मणों और अतिथि सेवा में, परिवार और मित्रों के संरक्षण में तथा सेना को मजबूत बनाने में व्यय होती थी।२। निरर्थक व्यय से राजा को बचे रहना चाहिये (अपात्रेषु न ते कच्चित्कोशो गच्छति राघव)

राजा की आमदनी के स्त्रोत में बलिषड् भाग के अतिरिक्त कुछ खानों से भी लाभाँश मिलता था। राम ने अयोध्या की खानों के बारे में पूँछताछ की थी, उससे कुछ ऐसा ही आभास मिलता है।३। विश्वामित्र ने राजा को 'रत्नहारी' कहा है कि उनके राज्य में पाये जाने वाले रत्नों पर अथवा प्रत्येक उत्कृष्ट वस्तु पर, अथवा लाभांश पर अधिकार रहता था। राजाओं से यह अपेक्षा की जाती थी कि आय-कर्मण्युपायज्ञः सदृष्ट व्यय कर्मचित् हो, अर्थात आमदनी के स्रोत बढ़ाने में कुशल और खर्च करने में उचित जानकार हो। इसी प्रकार दशरथ के मंत्री ब्राह्मणों, क्षत्रियों को कष्ट पहुँचाये बिना राज्य-कोश भरा करते थे।४। इससे समझ में आता है कि वैश्यों पर करों का बोझ पड़ता था। रामायण युग में कृषि ही मुख्य सर्वमान्य आजीविका का साधन माना जाता था दशरथ की मृत्यु बाद अयोध्या में एकत्र होने वाले वैश्यों को कृषि गोरक्ष जीविनः कहा गया है अर्थात् ये लोग अपनी जीविका खेती और गो-पालन से चलाते थे। उत्तर कांड में रामायण से पूर्व युग में कृषि आजीविका के साधन हेय दृष्टि से देखे जाते थे और 'अनृत' के नाम से पुकारे जाते थे, किन्तु त्रेता-युग में जो रामायण का काल था तब खेती प्रमुख जीविका का साधन बन गया। वाल्मीकि ने कोसल राज्य की संपत्ति खेतों, लता गुल्मों और गाँवों के रूप में तथा अयोध्या के नागरिकों की समृद्धि उद्यानों, खेतों, भवनों, और धन-धान्य के रूप में गिनाई है।

कृषि को राज्य की ओर पूरा संरक्षण प्राप्त था जिन आठ शासन संबंधी विषयों से राजा को परिचित रहना पड़ता था, उन्हें 'अष्टवर्ग' कहते थे राजा का यह कर्तव्य था कि

वह कृषकों और गो-पालकों के कष्टों का निवारण करे और उनकी सुख-समृद्धि के साधन जुटाये तेषां गुप्ति पुरी हारै :कच्चिते भरणं कृतम।

बालकांड में जनक के विषय में कहा गया है कि एक बार जब वह हल से यज्ञ भूमि जोत रहे थे, तब उन्हें सीता मिली थी। इससे पता चलता है कि क्षत्रियों के लिये खेती की मनाही नहीं थी और राज समारोहों में राजा का हल चलाना अत्यधिक शोभा एवं पुण्य का कार्य माना जाता था। क्योंकि प्रत्येक यज्ञ आरंभ में यज्ञ-भूमि का हल से शोधन करना आवश्यक था, इसलिये कृषि का संबंध यज्ञ से जुड़ गया, और इस प्रकार आर्थिक महत्व में धार्मिकता का भी पुट जुड़ गया।

दशरथ और राम के शासन काल में भारत कृषि की दृष्टि से मजबूत, सुखी, संपन्न था। वाल्मीकि ने कोसल राज्य का वर्णन कर कहा है- यह धन-धान्य और गौओं से परिपूर्ण तथा तालाबों; उद्यानों और आम्र वनों से युक्त था।

मागधी नदी हरी-भरी फसल वाले खेतों के बीच से बहती थी (सुक्षेत्रा सस्यमालिनी) लंका की जलवायु समुद्री हवाओं के कारण सम शीतोष्ण थी, वहाँ की भूमि पर्याप्त वर्षा के कारण उपजाऊ थी। भारत का दक्षिणी समुद्र तट एक रमणीय वन प्रदेश था, जहाँ 'तक्कोल' और 'जाति' नामक सुगंधित फलों, तमाल के पुष्पों तथा 'मरीच' की झाड़ियों की बहुलता थी।५।

बिहार के मलद, कुरुष प्रदेश दीर्घ काल तक बड़े समृद्धिशाली और धन-धान्य से सुखी थे किंतु राक्षसी ताटका के आतंक के कारण उनकी सारी समृद्धि नष्ट हो गयी और वे एक वीरान प्रदेश में बदल गये थे।६।

कोसल राज्य में कृषकों का सुखी होना, प्रजा-पालक इक्ष्वाकु नरेशों के उदार, न्यायपूर्ण, धर्म परायण के कारण था। राम के पूर्वज राजा अरण्य के समय में अयोध्या में कभी दुर्भिक्ष नहीं पड़ा न चोरों से कोई भय हुआ।७। राम राज्य में न कोई सताता था न किसी को कोई रोग, न होती कभी काल की मार, प्रजा थी सुखी और संपन्न, विभव से भरे हुये भंडार न था, तूफानों से भी भय न होता, चोरों का उत्पात न था, दावानल का संताप, न होता बाढ़ों का आघात।।८।

कृषक गण अपने-अपने जनपदों में स्थायी रूप से बसे हुये थे, और वे स्थान

परिर्वतन नहीं करना चाहते थे। आधुनिक अर्थशास्त्र की भाषा में इसे 'इमोबिलटी ऑफ एग्रिकल्चरल लेबर' (कृषि श्रमिकों की अगतिशीलता) कह सकते हैं।

राज्य की ओर से अन्न के सरकारी गोदाम बने रहते थे। जिन्हें 'धान्यकोश' कहा जाता था।

वाल्मीकि कहते हैं कि उस समय वर्षा समय पर आवश्यक मात्रा में हो जाती थी, खेत अनाज से भरे थे, नगर धन-धान्य से पूर्ण था पृथ्वी धान से युक्त और सभी प्रकार की औषधियों से संपन्न थी।९। शरद ऋतु के अंत में पृथ्वी सस्यमालिनी (पके धान की मालाएं पहने) जान पड़ती थी। शिशिर ऋतु में कही ज्वार और गेहूं के कुहरे से छाये हुये खेत कहीं सूर्योदय के समय क्रौंच और सारस पक्षियों के चहचहाने से मनोहर खेत प्रतीत होते थे, कहीं चावल के पौधे, कहीं धान की बालें, खजूर के फूलों की तरह जान पड़ती थी, कुछ-कुछ झुके हुये बड़े रमणीय लगते थे।

कृषि-प्रधान देहात ग्राम कहलाते थे, बड़े शहर जहाँ ग्रामों की कृषि संपत्ति जाकर बिकती थी, नगर कहलाते थे। वन जाते समय राम रथ में बैठकर जिस प्रदेश से होकर गये थे, तो पता चलता है कि उस समय देहातों की जनता सुखी, संपन्न, समृद्ध थी। वन जाते समय ऐसे ग्रामों के पास से गुजरे थे, जिनकी सीमा पर जुते हुये खेत थे। कहते हैं कि सुमंत्र राम को वन में छोड़ने के बाद ग्रामों और नगरों को देखते हुये लौटे थे। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि अयोध्या के नागरिकों के खेत नगर के बाहर पास में ही थे। तभी राम के वन गमन के समय उन्होंने कहा था कि हमें अपने खेतों, घरों, और बगीचों को छोड़कर ही राम का अनुगमन करेंगे।१०। इस प्रकार नगरों के समीप होने के कारण ग्रामों में खेती को प्रोत्साहन मिलता होगा। कृषकों के लिये यह स्थित आर्थिक दृष्टि से लाभदायक होती है, क्यों बिक्री के लिये उन्हें दूर न जाकर पास में ही साधन मिल जाते थे।

कहते हैं कि राम-राज्य अकाल के भयँ से मुक्त था, किंतु खेती के छः शत्रुओं की ओर जो संकेत हुआ है तथा राजा से असके निवारण की जो अपेक्षा की गई है उससे प्रतीत होता है कि दुर्भिक्ष कोई असंभव घटना नहीं थी। वाल्मीकि ने अराजक स्थित को देश में दुर्भिक्ष का कारण माना है। राम के पूर्ववर्ती युग अकालों का वर्णन भी रामायण में मिलता है। इन दुर्भिक्षों का मुख्य कारण अनावृष्टि होता है। जिसमें खेतों की फसल नष्ट हो जाती

थी। दशरथ के समय में उनके पड़ोसी राजा रोमपाद के अंग राज्य में अनावृष्टि के कारण एक भयंकर दुर्भिक्ष पडा था, जिससे सारी प्रजा त्रस्त एवं व्यथित हो गयी थी।११। कहते हैं कि मुनिकुमार ऋत्यश्रृंग के आगमन से इंद्र ने अकस्मात् वर्षा करके सर्वत्र प्रसन्नता का संचार कर दिया। ऐसे दुर्भिक्ष का वृतान्त ऋषि अत्रि ने राम को वन में सुनाया था। यह दुर्भिक्ष लगातार दस वर्ष तक पडा, जिससे पृथ्वी जल गयी थी।१२। उत्तर कांड के अनुसार इंद्र के अंतर्धान होने पर एक भीषण अकाल पड़ा, जिसके कारण पृथ्वी सत्वहीन हो गई, उसकी उत्पादन शक्ति नष्ट हो गई, वन उजड़ गये, जलाशय सूख गये तथा समस्त प्राणी मृतप्राय हो गये। अश्वमेध के अनुष्ठान से ही पृथ्वी की श्री संपत्ति आ लौटी थी।

रामायण युग में खेती के लिये सिंचाई बहुत जरूरी होती थी उस समय खेती वर्षा के जल पर निर्भर रहती थी, जैसा कि वर्षा की प्रतीक्षा करते हुये किसानों से संबंधित अनेक उपमाओं एवं उत्प्रेक्षाओं के प्रयोग से प्रकट है।१३। सिंचाई के कृत्रिम साधनों का भी उपयोग होता था। आज की तरह दो फसलें होती थीं, एक खरीफ की फसल, जो वर्षा के जल पर निर्भर करती थी, दूसरी रबी की फसल, जो अन्य प्रकार की सिंचाई से बढ़ाई जाती थी। सिंचाई की दृष्टि से खेत के भी दो प्रकार थे। जो खेत कृत्रिम साधनों से सीचे जाते थे, वे 'अदेवमात्रक' या नदी मातृके कहलाते थे। कोसल राज्य के खेतों को 'अदेवमात्रक' कहा गया है,

सिंचाई के मुख्य साधन बड़े जलाशय, छोटे तालाब, नदियां और कुएं थे। कहते हैं कि कोसल राज्य में तालाबों की अधिकता थी (तटाकैश्चोप शोभितः)। यदि कोई खेत में पानी की कमी होती थी तो पास के खेतों से मेढ़ बनाकर ले लिया जाता था।१४। वर्षा काल में नदी में बाढ़ का पानी तटवर्ती प्रदेश को उपजाऊ बना देती थी।१५। गोमती नदी के किनारे अनेक जलीय स्थल थे, जो गौओं के चरागाहों में काम आते थे।१६। सरयू नदी जो बारह महीनों बहा करती थी, इसी कारण कोसल राज्य सरयू के समीप था इसी कारण कोसल राज्य सरयू के समीप था इसी कारण सिंचाई की सुविधा ज्यादा अच्छी रही होगी, वहाँ के किसान एक मात्र वर्षा के जल पर ही निर्भर नहीं रहे होंगे। नहरों, जलाशयों, कुओं, पुलों, बांधों आदि के निर्माता 'यंत्रक' कहलाते थे। उनका निर्माण राज्य की ओर से किया जाता था। नहर की 'प्रणाली' और बांध को 'रोधस' कहते थे। अयोध्या से श्रृंगवेरपुर तक

के मार्ग निर्माण के समय यंत्रक कारीगरों ने भरत के आदेशानुसार थोड़े ही समय में अल्प जल वाले झरनों का जल रोकने के लिये बांध बना दिये, जो विभिन्न आकार-वाले अधिक जल वाले तालाबों में परिणित हो गये थे।१७। जहाँ पर जल की कमी थी, वहाँ नये कुएं, तालाब बनाये गये लोगों के विश्राम के लिये चबूतरे बनाये गये।१८। नदियों का जल इकट्ठा करने के लिये उन्हें बांधों से रोका जाता था, जैसा कि टूटे हुये बांधवाली नदी के समान' (नदी विस्त्रापि तामिव)।१९। जैसी उपमाओं से सूचित होता है। वाल्मीकि ने वर्षा काल के जल के वेग से सेतुओं के टूट जाने का वर्णन किया है। दशवर्षीय दुर्भिक्ष के समय अनुसूइया ने गंगा को बहाकर प्रजा रक्षा की और फल-फूलों की उत्पत्ति कराई गयी थी। इस प्रकार आर्य कृत्रिम साधनों द्वारा जल से पूर्ण रहते थे जिससे कृषि समृद्ध हो सके।

कृषि और सिंचाई के साथ भूमि का भी सामंजस्य होता है तो भूमि भी चार भागों में बँटी थी।

(१) निवास-भूमि (नगरों और ग्रामों जैसे बस्ती वाले प्रदेश, जिन्हें पुर या राष्ट्र कहते थे),

(२) कृषि-भूमि (क्षेत्र),

(३) गोचर-भूमि या चरागाह (शाद्वल) तथा

(४) वन-प्रदेश (कानून), जिसे बंजर (ऊषर) भूमि कहते थे।

सारी भूम का स्वामी राजा होता था।२०। खेत को 'क्षेत्र' या 'केदार' कहते थे। खेत के झाड़-झंखाड़ों की सफाई (शोधन) के बाद जुताई (कर्षण) की जाती थी। सूर्य की अत्यधिक गर्मी के कारण दुर्बल फैल झुलस जाते थे इसका वर्णन रामायण में है।२१। खेतों में बीज बोने के लिये मुठ्ठी में बीज भरकर खेत में फेंक दिये जाते थे। हल से जुती हुयी खेत की पंक्ति (कुंड) 'सीता' कहा जाता था। हेमंत ॠतु में धूप के कारण श्याम वर्ण हुई सीता कुहरे के कारण धुंधली चांदनी की शोभाः धारण कर लेती थी-

ज्योत्सना तुषरमल्निा पौर्णमास्यां न राजते।

सीतेव चातम श्यामा लक्ष्यते न च शोभते

वर्षा ॠतु का समय बुवाई के लिये सही माना जाता थ। उपजाऊ खेत वर्षा-काल में ही फलीभूत होते थे।२२।

हवा और धूप जो बीज नष्ट हो जाते थे वह पुनः वर्षा होने पर हरे-भरे हो जाते

थे।२३। कहते हैं कि सामयिक और अच्छी वर्षा खेती के लिये लाभदायक होती थी। धान को पकने में समय लगता था। जैसे कर्म फल की भाँति।२४। आधे उगे धान्यवाली भूमि में वर्षा बड़ी हितकर होती है।२५।

रामायण में चावल के खेतों के बारे में बताया गया है कि चावल के खेत को 'कलम क्षत्र' कहते थे। किष्किंधा कांड में वर्णन है, जिसमें वर्षा के कारण कोपलें फूट रही हैं। इसकी दो फसलें होती थीं जो शरद ऋतु की व्रीहि की फसल, जो कार्तिक मास में काटी जाती थी, और दूसरी हेमंत ऋतु की फसल, जो फाल्गुन मास में काटी जाती थी। शरद् और शिशिर ऋतुओं के वर्णन में राम ने पके हुये धान और बालों और फसलों की पंक्ति से युक्त पृथ्वी की ओर संकेत किया है।२६।

कहते हैं कि खेती में कीड़े लग जाते थे तो खेती नष्ट कर देते थे इसी बात कोराम ने कहा है कि खेती के शत्रुओं का उल्लेख हिंसा के रूप में किया है। टीकाकारों ने हिंसाओं का अर्थ छः 'ईतियाँ' बतायी हैं जिसमें अनावृष्टि, बाढ़, चूहे, पक्षी, टिड्डियाँ तथा शत्रुओं के आक्रमण गिने जाते हैं।

ऋगवेद के समय की कृषि व्यवस्था को देखते हुये रामायण काल में कृषि की स्थित पर्याप्त उन्नत हो चुकी थी। वाल्मीकि ने तत्कालीन खेती की प्रणाली और उत्पादन के विषय में जानकारी नहीं दी है, बल्कि रामायण में विविध प्रकार के खाद्य पदार्थों के उल्लेखों से तथा उनकी बहुलता के वर्णनों से प्रतीत होता है कि आर्य लोग उनेक प्रकार के अन्नों का प्रचुर मात्रा में उत्पादन करते थे। जब पार्वती ने पृथ्वी को अनेक रूपों वाली हो जाने का शाप दिया। तब उन्होंने पृथ्वी की विविध पदार्थों को उत्पन्न करने की क्षमता भी स्वीकार की। वृत्र के शासन काल की कृषि समृध्दि का वर्णन करते हुये पृथ्वी को 'सभी इच्छाओं तृप्त करने वाली' बताया है। इस प्रकार कहा है कि राष्ट्र की सम्पूर्ण प्रगति कृषि उद्योग पर ही निर्भर है।

रामायण युग में बाग-बगीचे, उद्यानों की संख्या बहुत अधिक थी। इस कारण कृषि के सकार धंधे के रूप में बाग-बगीचे लगाने का उद्योग प्रचलित था। अशोक वाटिका के वर्णन से तत्कालीन उद्यान विद्या का पर्याप्त आभास मिलता है। कहते हैं कि सुग्रीव का मधुवन एक समृध्द फलोद्यान था, जिसकी देखरेख बड़े अच्छे ढंग से की जाती थी। ये उद्यानों

में सभी ऋतुओं के फल-फूल होते थे।२७। रामायण में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों पुष्प, वृषों, छाया वृक्षों, फल वृक्षों, दारु वृक्षों के नाम आये हैं कि उनकी एक लंबी सूची बन सकती है। इस प्रकार प्राचीन भारत इतिहास और वनस्पति विद्या में अग्रणी थी।२८।

रामायण काल में कृषि के साथ-साथ पशुओं की भी अधिकता देखने में आती है। इस कारण उस समय पशु-प्रधान गांव को 'घोष' कहा जाता थपा। रामायण में ग्राम और घोषों की निकंटता तो सूचित होती ही है, कृषि और पशुपालन की पारस्परिक निभरता का भी संकेत मिलता है।

पशु-पालन में ग्राम को अधिक महत्व दिया जाता था। गों-पालन देहाती क्षेत्रों तक ही न होकर शहरी क्षेत्रों तक फैला हुआ था। कहा जाता है कि जिस दिन राम ने वन को प्रस्थान किया था, उस दिन अयोध्या में गौओं ने अपने बछड़ों तक को दूध नही पिलाया (गांवों वत्सान्न पायन)।

रामायण में वर्णन है कि अनेक ब्राह्मण याचकों को असंख्य गौएं दान में दी जाती थी। इसे देश में गायों का होना पता चलता है। राजा स्वयं गो-पालन करता था। राम ने भरत से चित्रकूट पर पूछा था, "तुम्हारे पास विपुल गोधन है?" वन जाते समय राम ने मार्ग में तमसा, गोमती नदियों के किनारे गौओं के झुंड के झुंड चरते देखे थे।

गो-शालाओं की 'प्रत्यागार' तथा गो-समूह को 'गोकुल' 'गोयुत' अथवा गोव्रज कहा जाता था। ग्वाले को 'गोपाल' और चरागाह को 'शाद्वल' कहते थे।२९। भरद्वाज के आश्रम में भरत के सैनिकों को चारों ओर पशुओं के लिये विस्तृत चरागाह दिखाई पड़े थे, जिन पर नीली वैद्धूर्यमणि के समान नरम-नरम घास जमी थी- नीलवैद्धूर्यवर्णश्च मृदून्यवससंचयात। निर्वापार्थ पशूनां ते ददृशुस्तम सर्वश।।

आर्थिक दृष्टि से भी गो-पालन का महत्व था। बैलों को हल चलाने के काम में लाया जाता था। उन्हें देहाती गाड़ियों (गो-रथों) में जोता जाता था। गौएं पारिवारिक और धार्मिक क्रियाओं के लिये दूध-दही देती थी। उनके गोबर से उपले बनाकर ईंधन का काम आज की ही तरह लिया जाता था। भरत ने चित्रकूट स्थित राम की कुटिया में उपले के ढेर लगे देखे थे, जो सर्दी से बचने के लिये जलाये जाते थे।३०।

गो-समूहों के बीच विचरते हुये मस्त गो-वृषों (सांडों) का कई जगह उल्लेख आया

है।३१। इससे पता चलता है कि कोसल राज्य में गौओं की नस्ल सुधार का भी कार्य होता था।

वैदिक काल की भाँति रामायण युग में भी गौओं को छीनकर भगा ले जाने की प्रथा थी। वसिष्ठाश्रम की कपिला गौ को राजा विश्वामित्र बलपूर्वक हर ले जाना चाहते थे, किंतु आश्रम में रहने वाले शक, यवन, पहलव और अन्य वर्वर लोगों ने प्रत्याक्रमण करके उन्हें मार भगाया। ये लोग आश्रम के गो-धन के लिये नियुक्त किराये के भृत्य थे।

अयोध्या नगरी में गौओं के अतिरिक्त हाथियों, घोड़ों, ऊटों, गधों से भरी थी। ऊँट के बारे में बताया गया है कि रावण की सेना में ऊष्ट सवारों का एक विभाग था। रथों में भी ऊँट जोते जाते थे (अष्ट्र-रथ)। ये कहां के प्राणी थे,इसका कोई उल्लेख नहीं है।

अश्वतरी (खच्चर), ये शांति और युद्ध दोनों समय में बोझा ढोने के काम में आते थे। गधों से रथ हंकवाये जाते थे। रावण के रथ में जुते गधों के मध्य भाग सोने के 'उरश्छदों' से सुरक्षित थे और उन्हें पिशाचों की तरह कनटोप पहनाये गये थे। शीघ्रगामी गधों की नस्ल ये केकय देश की विशेषता थी।

केकय देश में खूंखार कुत्तों की नस्ल होती थी। वे राज प्रासादों की भीतरी कक्षाओं में रहते थे। ऊँचे शरीर वाले, बाघों की तरह बलशाली, तथा बड़े-बड़े दांत वाले होते थे। केकयराज ने भरत को ऐसे कुत्ते उपहार में दिये थे।३२।

रामायण युग में हाथियों को भी महत्पूर्ण स्थान दिया जाता था। नागरिक और सामरिक दोनों प्रकार की आवश्यकताओं का पूरा करने के लिये राजकी वैभव और समृद्धि के प्रदर्शन में हाथियों का होना अनिवार्य और उपयोगी होता था। अच्छी नस्ल के हाथी सावधानी से पाले जाते थे, इसके लिये राजाओं के पास विशाल वन होते थे, जो 'नागवन' कहे जाते थे। उनकी सुरक्षा और देखभाल के लिये चित्रकूट पर राम ने भरत का ध्यान आकर्षित किया था।

जंगली हाथियों को पकड़ने और पालतू बनाने के लिये उन्हें पहले पाले गये हाथियों के बीच छोड़ा जाता था। हथनियों से भी उन्हें फंसाया जाता था, रात के समय मशाल लेकर हाथी का पीछा करके उन्हें तिनके से ढंक हुये कुओं में गिराया जाता था। तोमरों और अकुशों से भी हाथी को घायल करके जमीन पर गिरा दिया जाता था। बंदी

बनाने के बाद हाथी को रस्सियों से बाँध दिया जाता था।३३। रावण के फंदे में बंधी सीता की तुलना उस गज-राज वधू से की गई है, जो अपने यूथपति से बिछड़ गयी है, जो पकड़कर खंभे से बाँध दी गई है तथा लंबी-लंबी सांसें भर रही है-

ग्रहीता लाड़ितां स्तम्भे यूथपेन बिनाकृताम।

निःश्वसनती सुदुःखार्ता गजराज व धूमिप।।

हिमालय तथा विश्व पर्वतों की तराइयों में अच्छी नस्ल के हाथियों की बहुतायत थी। वहाँ के हाथी पर्वत के समान विशाल, मदोन्मत अत्यन्त बलवान होते थे, उनके मस्तक पर हमेशा मद चूता रहता था।३४। अयोध्या में ऐरावत कुल, महापक्ष, कुल, आंयोजन, कुल और वामन कुल, इन नस्लों के श्रेष्ठ हाथी विद्यमान थे।

हाथियों की देखबाल के लिये नौकर 'कुंजगृह' या 'हस्तिबंधक' और गल के स्वामी 'हस्तयध्यक्ष' कहलाते थे। युद्ध में हाथियों की रक्षा के लिये चमड़े की ढालें हुआ करतीं थी। हाथियों को विपक्षी हाथियों से टक्कर लेने की शिक्षा दी जाती थी। साठ वर्ष की आयु वाले हाथी बहुमूल्य और अत्याधिक बल के प्रतीक माने जाते थे। रावण के यहाँ हनुमान ने दो, तीन, चार दातों वाले हाथी देखे थे।

रामायण में घोड़ों के बारे में वर्णन है, कहते हैं कि अच्छी किस्म की नस्लें तैयार की जाती थी। अश्व सेना के घोड़ों को प्रशिक्षण दिया जाता था। राम को अश्वारोहण की शिक्षा मिली हुयी थी। सामरिक रथों में जोते जाने वाले घोड़े 'साग्रमिक रथ' कहलाते थे, उन्हें रण-भूमि के शोरगुल सहन करने की शिक्षा दी जाती थी। इंद्रजित के रथ में 'विघेय अश्व' जुते थे, सारथी के मर जाने पर उन्होंने रण-क्षेत्र में चतुराई से सबको विस्मय में डाल दिया था। रावण के महारथ की सिखाये हुये अश्वों को हाकते थे। सामरिक अश्वों को सोने के आभूषणों से सजाया जाता, तथा कवच से सुरक्षित रखा जाता था। आमोद-प्रमोद के काम में आनेवाले पुष्परथों, राजकीय रथों, सामान्य रथों सभी में लगने वाले घोड़ों को प्रशक्षिण दिया जाता था। ऊबड़, खाबड़ जमीन के लिये वेगवान पहाड़ी घोड़ो की जरूरत होती थी जो मजबूती से अपने पैरों को जमाकर रखते थे। पर्वतीय प्रदेश में रथ हांकने में उपयुक्त होने के कारण भरत ने, कैकयी से अयोध्या लौटते समय, उन्हीं घोड़ों का उपयोग किया था। तेज चाल वाले घोड़ों को अलग तैयार किया जाता था। भरत को कैकयी देश से बुला लाने

के लिये जो दूत भेजे गये थे, उनके घोड़े बहुत तेज (समत) थे।३५। घोड़ों की उत्तम नस्लें तैयार करने का कार्य विशिष्ट प्रदेशों में होता था (देशकाल कुलज)। कंबोज (करतार), वाल्मीक(बैक्ट्रिया), नदीज (सिंध) और वनायु (अरब) के नाम उल्लेखनीय है। संभवतः ये नस्ले पड़ोसी देशों से आयात की जाती थी।

पशुओं से प्राप्त होने वाले पदार्थो से अनेक प्रकार के कुटीर उद्योग-धन्धे चलाये जाते थे। दूध की अधिकता के कारण देहातो में दुग्ध पदार्थ बनाने का कुटीर उद्योग प्रचलित था। ग्वालों के घोष बड़े समृद्ध होते थे। दूध को शकाहार पदार्थ में माना जाता था। लक्ष्मण ने हेमंत ऋतु का वर्णन करते हुये देहातों को दुग्ध और दुग्धपदार्थो से भरपूर बताया था।

व्याघ्र, चर्म, सिंह तनु और मृग चर्म या अजिन ओढ़ने-बिछाने के काम में आते थे, जिससे चमड़ा बनाने की कला के ज्ञान का परिचय मिलता है। शय्या, रथ और सिंहासन पर वे प्रायः बिछाये जाते थे। मृग-चर्म में कभी-कभी सोने की कशीदाकारी की जाती थी। कैकयी देश का मृग चर्म उत्कृष्ट माना जाता था। कदली, प्रियकी, प्रवेणी, अयविका से अच्छी किस्में होती थी। मुलायम रंग-बिरंगे और सोकियानापने अच्छे मृग के लक्षण थे। धार्मिक कार्यो में मृगचर्म का अधिकतर प्रयोग किया जाता था। बकरे की खाल 'असाविक' कहलाती थी। मृगों से कस्तूरी प्राप्त की जाती थी। 'आर्षभ चर्म' अर्थात् बैलों की खाल का कई प्रकार से प्रयोग किया जाता था। इस खाल की ढाले राक्षस और विधाधर जाति के लोग काम मे लाते थे। लंका के राक्षस तपस्वी 'गोजिन' (बैल का चर्म) धारण करते थे। चमर मृग के बालों से चंवर बनाये जाते थे, जिन्हें 'चामर व्यंजन' या 'व्याल व्यंजन' कहते थे। हाथी के चमड़े से बना रंग-बिरंगा ऊनी कालीन 'कुथा' कहलाता था।

हाथी-दांत का उस समय काफी उन्नति अवस्था में था। इसमें लगे कारीगर को 'दंतकार' कहते थे। रथों, सिंहासनों, शयनासनों, राजमहलों में हाथी-दांत की पच्चीकारी की जाती थी। धनी वर्ग में इसकी मांग ज्यादा होती थी। कैकेयी का महल हाथी-दांत की चौकियों तथा आसनों से संपन्न था।३७। लंका के महल में हाथी दांत के खंभे, झरोखे थे, जिन पर सोने की जालियां पड़ी हुयी थी।३८। रावण के कमरे में स्फटिक का फर्श था, जिसके जोड़ों में हाथी-दाँत जड़ा था। रावण के रथ में भी हाथी-दांत की प्रतिमाएं थीं।३६। कुंभकर्ण के महल का तोरण हाथी दांत से सज्जित था।

वाल्मीकि ने अनेक खनिज पदार्थों की ओर भी संकेत किया है। राम ने कोसल राज्य को खानों से सुशोभित बताया है। चित्रकूट, कैलास, प्रस्रवण, यक्ष, मलय और उदय पर्वतों को भी धातु 'मंडित' कह गया है। जिस पर्वत से हनुमान ने लंका की ओर उड़ान भरी थी, वह नीलें, लाल मजीठ और कमल के वर्ण के तथा सफेद काले रंग के स्वभाव-सिद्ध, विशुद्ध धातुओं से भूषित था।४०। हिमालय और विंध्य-पर्वतमालाओं में अनेक प्रकार की धातुएं पाये जाने का अल्लेख है। चित्रकूट में भी तरह-तरह की धातुओं में कोई चांदी के समान, कोई लाट, कोई पीला, कोई काला, नीला, कोई मजीठ के रंग का दिखाई पड़ता था।

विशेष प्रकार की धातु-प्रधान चट्टानों का भी उल्लेख मिलता है। बड़े या बलुए प्रस्तर खंडों को शिला की संज्ञा दी जाती थी। पारदर्शक शिलाएं 'स्फटिक' कहलाती थीं। खानों से मनाशिला (मैनसिल), गैरिक (गेरु) गेरू और कातागुरु (काता अगरु) जैसे धातु प्राप्त किये जाते थे। नदी के तट से भी धातु निकाले जाते थे। इस प्रकार प्राप्त होने वाला सोना 'जांबूनद' कहलाता था। धातुओं के परिशोधन तथा मिश्रित धातुओं के उत्पादन की कला ज्ञात थी। खर ने सोने जैसे दिखने वाले तांबे की ओर भी संकेत किया था, जो अग्नि में तपाने जाने पर सही रूप पता चलता है।४१। सोने को भी तपा कर इसकी अशुद्धियाँ अलग कर दी जाती थी।४२। पीतल, कांसे के बर्तनों के उल्लेख से टीन और जस्ते के प्रयोग का पता चलता है।

इस्पात बनाने के लिये लोहा भी ढाला जाता था, 'सूची' या सुई के उल्लेख से इस्पात और इससे बने औजारों के निर्माण की सूचना मिलती है। तेज धारवाले क्षुरों का उल्लेख पानी चढ़े इस्पात का प्रयोग न्यायोचित करता है।

घटिया धातु को रासायनिक प्रक्रिया द्वारा उत्कृष्ट धातु में बदलने की विधा रस-विधा कहलाती थी। यह विधा के लिये निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि प्रचलित थी या नहीं। बालकांड के ६७ वें सर्ग में इस प्रक्रिया की ओर संकेत किया गया है, किंतु कुछ विद्वान इसे प्रक्षिप्त मानते हैं।

वाल्मीकि ने निम्न लिखित धातुओं का प्रसंगवश उल्लेख किया है। आयस् या कालायस्, फौलाद, पीतल, काँसा, रजत या हिरण्य, चाँदी, लोहा, सुवर्ण, कांचन, जातरूप,

जांबूनद, महारजत या हैम-सोना, सीसा, ताँबा, धातुओं के व्यापक प्रयोग से खनिज उद्योगों का भी प्रचलन सूचित होता है। सोने-चांदी का विविध प्रकार के पात्र और आभूषण बनाने में उपयोग होता था। इस्पात का प्रयोग बाण की नोंक, तलवार, पट्टिश, अर्गल बनाने में प्रयोग होता था। कवच, गदा तथा अन्य शास्त्रों में कार्ष्णायस या लोहे की जगह कालायस या फौलाद काम में लाया जाता था। तलवार और बाणों की पैनापन देखने योग्य था। उसके निर्माण में कारीगर कौशल होते थे। धनुष-बाण और खड्ग को स्वर्ण-भूषित करके अपनी कलाप्रियता प्रकट करते थे। घोड़े, हाथी के लिये भी कवच बनाये जाते थे।

इस्पात से भी यंत्रायुध इषूपलयंत्र, पुलों को उतारने बैठाने के यंत्र, बड़ी-बड़ी चट्टानें, उठाने ले जाने में यंत्रादिक इसके प्रमाण हैं। दुर्गों में किले बंदी और संरक्षण के लिये धातु निर्मित मशीनों ओर यांत्रिक औजारों का व्यापक व्यवहार यंत्र निर्माण कला की उन्नतावस्था सूचित करता है।

वनों (अरण्यों या काननों) से भी उपज का पूरा आर्थिक लाभ मिलता था। वाल्मीकि के समय में दक्षिण भारत का अधिकांश भाग घने जंगलों से व्याप्त था। वनों पर राजकीय अधिकार होता था, समाज के लिये भी उनका आर्थिक महत्व था। गृहो, रथों, शयनासनों, यज्ञ- संबंधी सामग्रियों के निर्माण में वनों का अधिक से अधिक प्रयोग किया जाता था। साल, औडुंबर, वेणु, ताल, देवदारु, वृक्ष की लकड़ी अच्छी और उपयोगी मानी जाती थी। वन जो हमें ईंधन के स्त्रोत थे। कुल्हाड़ी से पेड़ों की लकड़ी काटने के अनेक उल्लेख मिलते हैं। वनों से आजीविका चलाने वाले वनजीवनैः या वनजैः कहलाते थे। ताम्रपर्णी नदी के द्वीपों पर चंदन के वन थे। गोचर-भूमि या श्मशान-भूमि के रूप में वनों का उपयोग होता था।

जंगली पेड़ों से 'आरण्यक मधु' (जंगली शहद) प्राप्त किया जाता था। उनसे 'निर्यास' नामक पदार्थ भी इकट्ठा किया जाता था। वह पेड़-पौधों का रस होता था, जो बहकर तनों के पास इकट्ठा होता था और गोंद की तरह जम जाता था। ऐसे गोंदों का भी उल्लेख मिलता है, जिनका सुगंध युक्त वस्तुओं के निर्माण में उपयोग होता था।४३। ऋषि-मुनि अपनी जटाओं में बड़ का दूध (न्यग्रोध क्षीर) लगाते थे। वनों के फल, मूलों का वन जीवियों तथा अरण्यवासी तपस्वियों के लिये आहार की दृष्टि से बड़ा महत्व था।

समुद्रवर्ती प्रदेश के वृक्षों से मरीच, काली मिर्च और पिप्पली (पीपर) जैसी मिर्च, तक्कोल और नारिकेल जैसे फल, तमाल जैसे पले तथा खजूर मेवे प्राप्त होते थे। चंदन और केसर जैसे पदार्थों का नागरिकों के सौंदर्य-प्रसाधनों का उपयोग होता था, जो हमें वन से ही प्राप्त होते थे। वनवासी मुनि लोग पेड़ों की छालों का वल्कल-वस्त्र के रूप में उपयोग करते थे। राजकीय आसनों का वर्णन करते समय उन्हें बटे के जानों से ढका बताया गया था, जिससे अनुमान लगता है कि बेंत का उद्योग भी काफी अच्छी उन्नत अवस्था में था।

रामायण कालीन समाज में स्त्री-पुरुष दोनों आभूषण प्रिय थे, इससे समझ में आता है कि मणिकार और स्वर्णकार के पेशे भी थे। सोने के विभिन्न प्रकार के आभूषणें और मणि-रत्न इस बात के प्रमाण हैं कि सोने और जवाहरात की करीगरी बहुत बढ़ी अवस्था में थी। समुद्र तल से बहुमूल्य मूंगे मोती प्राप्त किये जाते थे। लंका से मारीच आश्रम की ओर जाते समय रावण ने मार्ग में समुद्र तट पर हजारों मुगे सूखते हुये देखे थे- मुक्तनां च समूहानि शुव्यमाणानि तीरतः

तत्कालीन समाज में काँच उद्योग भी पता चलता है। इस समय महलों के निर्माण में पारदर्शी स्फटिक (शीशा) प्रयोग किया जाता था।

वस्त्र उद्योग में उन्नति थी। कुशल बुनकर 'सूत्र-कर्म विशारद' कहलाते थे। कई तंतुओं से वस्त्र बनाये जाते थे। ऊनी कपड़े भी बनते थे। मेढ़े के रोओं से 'और्ण' नामक वस्त्र निर्मित किया जाता था। भरत के साथ अनेक कंबल बनाने वाले भी राम को लिवा लाने के लिये चित्रकूट गये थे। कपड़ों की रंगाई धुलाई में लगे करीगरों को रंजक की संज्ञा दी जाती थी। कपड़े का रंग 'वर्ण' कहलाता था। नीलं, पीत, रक्त, शुक्ल, नील, शुकप्रभ तथा काषाय रंगों का अधिक प्रचलन था। रंगाई के लिये कृमि-राग या लक्षा-राग का व्यवहार किया जाता था।

तत्कालीन समाज में 'टंक' या टांकी से काम करने वालों की बड़ी मांग थी। आग लगाकर चट्टानों को तोड़ने की कला से वे परिचित थे। अनेक मंजिल वाले भवनों, प्रासादों, देवालयों, दुर्गों आदि का निर्माण कुशल स्थपतियों की कला का नमूना था।

संगीत का भी व्यापक प्रचलन था जिससे वाद्य यंत्रों के निर्माण में अनेक शिल्पी लगे थे।

कहते हैं कि वाणिज्य व्यापार वैश्यों के हाथ में था, जो वणिक् कहलाते थे। मुख्य कर दाता होने के कारण राजकीय संरक्षण के अधिकरी थे। उस युग के प्रमुख नगर व्यापार के समृद्ध केन्द्र थे, जहाँ देश-देशांतर के व्यवसायी और शिल्पीं वास करते थे। अयोध्या वाणिज्य उद्योग की दृष्टि से सर्वाधिक प्रमुख नगरी थी। दशरथ ने यह प्रस्ताव किया कि राम के साथ वन जाने वाली चतुरंगिणी सेना के साथ राजधानी के धनी व्यापारी भी जायेंगे। सेना के अनुगामी दलों में व्यापारी भी होते थे। भरत के साथ अयोध्या के सभी प्रकार के वाणिज्य उद्योगों के प्रतिनिधि चित्रकूट गये थे। राजकीय प्रासाद से शहर को जोड़ने वाले राजमार्ग पर विविध क्रय वस्तुओं से भरी पूरी दुकानें सजी थीं।

देश में प्रचुर आंतरिक व्यापार होता था। अयोध्या के समृद्धिशाली वणिक बहुत सा माल लेकर दूर-दूर की यात्रा करते थे।४५। ऐसी यात्रा में 'सार्थ' या दल बनाकर की जाती थी। साथ में यदि कोई बिछुड़ जाता था तो उसे वन्य पशुओं के आक्रमण का भय रहता था।४६। देश के आंतरिक व्यापार मार्गों को निरापद रखने का दायित्व राज्य पर था, जैसा कि दशरथ की मृत्यु के बाद इकट्ठे हुये राजकतीरः के कथन से प्रकट है कि अराजक प्रदेश में वणिक दूर-दूर तक धन-धान्य लेकर यात्रा नहीं कर सकते। राजा ही देश की आंतरिक सुरक्षा का प्रबन्ध करता था जिसमें सम्पन्न लोग निःशंक होकर रह सके।

दुकानें 'आपण' के नाम से संबोधित की जाती थीं। बिक्री की चीजे 'विक्रेय' या 'पव्य' उनका दाम 'मूल्य' तथा व्यापार से होने वाला मुनाफा 'पण्य-फल' कहलाता था। पण्य में चन्दन, अगुरु, गंध, क्षौम, कौशेय, भुक्ता, स्फटिक, माला आदि विविध वस्तुयें होती थीं।४८।

तत्कालीन समय में विदेशों से भी व्यापार होने के संकेत मिलते हैं। लेकिन इस संदर्भ में प्रमाणों का अभाव सा था। हो सकता है कि भारतीय नगरों की सुविधाओं से लाभ उठाने के लिये देशांतर से व्यापार आते रहते होंगे। अयोध्या के वर्णन में वाल्मीकि कहते हैं कि वह नाना देशनिवासी व्यापारियों से शोभित थी। उत्तरकांड में मधुपुरी, लवणासुर के अत्याचारों से मुक्त होने पर, नानादेशों के व्यापारियों से समृद्ध हो गई थी। किष्किंधाकंड में ४० वें सर्ग में, सीतान्वेषण में सुग्रीव ने अनेक समुद्र पार स्थानों का उल्लेख किया है, पर यह स्थल प्रक्षिप्त माना जाने के कारण विश्वसनीय नहीं है।

वाल्मीकि महासागरों से सुपरिचित प्रतीत होते हैं अन्यथा समुद्र से अपरिचित कोई कवि महाकाव्य की रचना न कर पाता। हनुमान ने भारत के तट से लंका तक जो छलांग मारी थी, उससे समुद्र पर नौ-यात्रा करने की उत्प्रेक्षाएं व्यवहृत हुयी है।४६।

समुद्र को लेकर कवि ने अनेक रुपकात्मक वर्णन किये हैं।५०। जिनसे समुद्री जीवन का प्रगाढ़ परिचय मिलता है। रामायण में ऐसे व्यापारियों का उल्लेख हुआ है जो समुद्र पार देशो से व्यापार करते ओर अयोध्या के सम्राट को रत्नों के उपहार लाकर प्रदान करते थे।५१। वाल्मीकि को ऐसे बड़े व्यापारी जहाजों का पता था जो माल से लदे बीच महासागर में आवागमन करते थे। ऐसे जहाज 'महानौ' और उनके मार्ग 'नौपथ' कहलाते थे। लंका का वर्णन करते समय कहा गया है कि उसके चारों ओर कहीं नौ-पथ नहीं है।५२। रावण के अधीन, शोक-सागर में डूबती हुई सीता की उपमा एक ऐसी नौका से दी गई है जो भार से अत्यधिक दबी होने कारण समुद्र में डूबी जा रही है। एक अन्य स्थल पर सीता की तुलना समुद्र में हवा के थपेड़ों से डगमगाते हुये, माल से भरे जहाज से की गई है। इन प्रमाणों से आभास मिलता है कि महासागरों में बड़े-बड़े जहाजों का पर्याप्त आना-जाना था। सामुद्रिक दुर्घटनाओं का वर्णन सामुद्रिक यात्राओं का ही सूचक हो सकता है।

वस्तुओं का विनिमय-व्यापार 'निष्क्रय' कहलाता था। गौ का विनिमय माध्यम कामूल्य मानदंड माना जाता था। किसी वस्तु विशेष का मूल्य गौओं की संख्या में तय किया जाता था। शुनः शेष के माता-पिता एक लाख गौएं लेकर अपने पुत्र को बेचने के लिये तैया हो गये थे।५३। किसी अच्छी तथा श्रेष्ठ गाय का मूल्य कई गायों के बराबर होता था। उदाहरणार्थ, विश्वामित्र ने वशिष्ठ से यह प्रस्ताव किया कि एक लाख गौएं लेकर यह मूल्यवान कपिला गौ मुझे दे दीजिये।

रामायण के अनेक स्थलों से यह सिद्ध होता है कि उस युग में सोने ओर चांदी का प्रयोग होने लगा था और उपहार के रूप में भी लेन-देन होता था, इस प्रकार हम कह सकते हैं कि चाहे जिस वस्तु का जितना भी आदान-प्रदान हो लेकिन उसमें गायों का समावेश आवश्यक माना जाता था। क्यों कि दशरथ ने अपने पुरोहितों को सोना-चांदी के अलावा दान को सर्वागपूर्ण बनाने के लिये दस लाख गौएं भी प्रदान कीं। पुत्रेष्टि-यज्ञ की समाप्ति पर दशरथ ने समस्त पृथ्वी अपने ऋत्विजों को दान कर दी थी, उन्होंने पृथ्वी का

शासन करने में अपने को उसमर्थ बताकर उसके बदले में माणि, गौएं देने की प्रार्थना की थी-

निष्क्रयं किंचिदेवेह प्रयच्छतु भवानिति।

मणिरत्नं सुवर्णं वा गवो यद्धा समुद्यतम।।

उस समय सिक्कों का भी प्रयोग होता था। उसे 'निष्क' की संज्ञा दी जाती थी। वन गमन के समय राम ने सुयज्ञ को एक हजार निष्क भेंट किये थे।५४। केकयराज ने भी भरत को दो हजार निष्क दिये थे।५५। रामायण में गले के हार को भी निष्क कहा गया है, किंतु इसका कारण यह है कि निष्क हार में गूंथे जाते थे। यह रिवाज तो प्राचीन काल की तरह आज भी देखने को मिलता है।

रामायण काल में कोई सिक्का खुदाई में नहीं मिला है। ये सिक्के बिना मुहर लगे सोने, चांदी के होते थे। सोने के सिक्के 'जांबूनद' या 'सौवर्ण' कहलाते थे। चाँदी के सिक्के 'रजत' कहलाते थे। उत्तरकांड में लव-कुश के अनुपम रामायण गान को सुनकर राम ने प्रसन्न होकर उन्हें अठारह हजार सोने के सिक्के देने चाहे थे।५६। इसी प्रकार महाराज दशरथ ने ब्राह्मणों को एक करोड़ जांबूनद और चालीस करोड़ रजत बांटे थे। यह अनुमान होता है कि सोने का एक सिक्का चांदी के चार सिक्के के बराबर होता था। किन्तु आधुनिक अर्थ में निष्क मुहर लगा सिक्का होता है।

माप-तोल के भी निश्चित परिणाम उस समय प्रचलित थे। धन का नियत भागों में विभाजन 'प्रविभाग' कहलाता था। दंड मापने का डंडा होता था। लंबाई धनुष या हाथ से नापी जाती थी।५७। द्रव्य-पदार्थों के लिये 'द्रोण' (बत्तीस सेर) नामक माप था। जो राम के वन में द्रोण प्रमाण के शहद के छत्ते लटकते दिखाई दिये थे।५८। 'व्याम' लंबाई नापने का एक माप होता था। चौबीस अंगुल के माप को 'अरत्नि' कहते थे। दशरथ ने अश्वमेध-यज्ञ में खंभे इक्कीस-इक्कीस अरत्नि ऊँचे थे। योजन भी दूरी का माप होता था। सामान्यतः योजन चार कोस के बराबर होता है। वाल्मीकि ने योजन का अर्थ दो अर्थों में प्रयोग किया है। एक कोश 'धनु-सहस्त्र' अर्थात हजार धनुषों के बराबर तथा एक धनुष चार हाथ दो गज के बराबर होता है। इस प्रकार एक योजन आठ हजार गज यानी साढ़े चार मील के बराबर हुआ किंतु एक स्थल पर वाल्मीकि ने योजन की सौ धनुषों (धनुः शतम्)

या दो सौ गज के बराबर माना है। उदाहरणार्थ, सुग्रीव ने राम से कहा था कि वाली ने दुदुभि का अस्थि पंजर एक योजन दूरी पर फेंक दिया था, यदि आप उसे उठाकर दो सौ धनुष या चार सौ गज़ फेंक सकें तो मैं आपको वाली से अधिक बलवान मान लूंगा। इससे यह प्रतीत होता है कि वाली ने जिस योजन की दूरी तक दुदुभि का अस्थि पंजर फेंका था वह धनुःशत या दो सौ गज रहा होगा, साढ़े चार मील नहीं।

रामायण कालीन समय में श्रमिक भी दो प्रकार के होते थे, 'विष्ट' और 'कर्मातिक' विष्टि- मजदूरों को पारिश्रमिक धान्य था जिन्स के रूप में दिया जाता था, कर्मातिकों को द्रव्य के रूप में नकद मजदूरी मिलती थी। कुछ करीगरों का काम कुछ कौशल और विशेषता युक्त होता था, उन्हें शिल्पी कहा जाता था। वाल्मीकि कहते हैं कि अयोध्या नगरी में सब तरह के शिल्पी निवास करते थे। राज्य में उन्हें सभी सुख-सुविधायें प्रदान थी। जो शिल्पियों का कौशल यज्ञों आदि में अधिक रहता था उस समाज मेंसम्मान पूर्ण स्थान प्राप्त था। दशरथ ने अश्वमेध-यज्ञ में अनेक शिल्पियों को अमंत्रित करके उन्हें यथोचित आद-सत्कार, धन भोजन द्वारा प्रसन्न किया था। रामायण में विविध प्रकार के शिल्पियों और श्रमिकों का उल्लेख हुआ है-

दुर्ग विचारक - दुर्गम प्रदेशों में (वनों में) विचरण करने वाला।

चर्मकृत् - चमार

धूपक - धूप अथवा सुगन्धि युक्त पदार्थों का निर्माता

भूमि प्रदेशज्ञ - भूमि की नमी या उसकी खुश्की का जानकार

दंतकार - हाथी-दाँत का काम करने वाला

दास - नौकर

दासी - नौकरानी

दैवज्ञ - देवचिंतक या ज्योतिषी

द्रष्टारः - मार्ग दिखाने वाले

गायक -

गणिका - नर्तकी

गणक - ज्योतिषी, गोविन्दराज के अनुसार लेखक।

गंधोपजीवी - सुगंधि बनाने वाला या बेंचने वाला

कार्तातिक - ज्योतिषी

खनक - खोदने वाला

कर्मातिक - दिन में काम करने वाला मजदूर, जिसे मजदूरी के बदले पैसा मिलता है।

कर्षक - किसान।

कर्णधार - या कर्णग्राह-मल्लाह

कुंभकार - कुम्हार।

कंबलकारक - कंबल बनाने वाला।

क्राकच्कि - लकड़ी चीरेन वाला।

कैवर्तक या दास - महुआ।

लुब्ध - शिकारी।

लाक्षणिक - जयोतिषी।

मणिकार - मोती का काम करनेवाला।

मायूरक - मोरपंख का काम करनेवाला।

मार्गी - मार्ग-रक्षक।

मागध - स्तुतिकर्ता।

मार्गशोधक - सड़क बनाने वाला।

मार्गदशक - सड़क का रखवाला।

नट - अभिनेता।

नर्तक - नाचने वाला।

नाविक - नौका खेने वाला।

नदीरक्ष - नदीतट का रखवाला

परिचारिका - घरेलू नौकर।

पाणि वादक - ताली बजाने वाला।

परमनारी - सैरंघ्री, उबटन लगाने वाली सेविका।

रोचक	–	कांच का सामान बनाने वाला।
रजक	–	धोबी।
स्नापक या स्नान भिक्षिज्ञ	–	स्नान कराने वाला, या स्नान कराने की विधि में निपुण।
रूपाजीवा या वारमुख्या	–	वेश्या।
शास्त्रोपजीवी	–	शास्त्रों से आजीविका चलाने वाला।
शौनिक	–	कसाई।
शैलूष	–	अभिनेता।
सूत्र कर्म विशारद	–	सूत्रकर्म विशेषज्ञ, जुलाहा या तंबू बनाने वाला।
स्थपति	–	भवन निर्माता।
शिल्पी	–	दस्तकार।
शिल्पकार	–	कलाकार।
सूत	–	रथ चलाने वाला।
स्वस्तिक	–	स्तुतिकर्ता।
सूद या सूपकार	–	रसोइया।
सुधाकर	–	सफेदी करने वाला।
सुवर्णकार	–	सुनार।
शौंडिक	–	शराब बेचने वाला।
श्मश्रुवर्धक	–	नाई।
तालांपचर	–	ताल लगाने वाला।
तुन्नवास	–	दर्जी।
ऊष्णोदक वैद्य	–	गर्म जल से स्नान करने वाला वैद्य।
वैतालिक या बंदी	–	भाट।
वादिक या वादी	–	वाघ यंत्र बजाने वाला।
वृक्षतक्षक	–	पेड़ काटने वाला।

व्याघ निषाद - बहेलिया।

वेधक - मोती पिरोने वाला।

विष्टि - मजदूर, जिसे धान्य के रूप में मजदूरी मिलती है।

वणिक् - बनिया, व्यापारी।

वंशकृत् - बांस का काम करने वाला।

यंत्रक - नहर बनाने वाला।

माजक - यज्ञ कराने वाला।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि एक ही प्रकार के उद्योग-धंधों में लगे हुये शिल्पियों या मजदूरों के अपने-अपने संघ होते थे। इन संघों के सामूहिक संगठन 'नैगम' कहलाते थे। इसके सदस्य भी 'नैगम' कहलाते थे। नागरिक और राजकीय क्रिया कलापों में नैगमों का महत्वपूर्ण स्थान था। राम के यौवराज्याभिषेक में सम्मिलित होने के लिये नैगमों के प्रतिनिधि ा आये थे।५६। राज्यारोहण के समय नैगमों ने उनका अभिषेक किया था।६०। राम को अयोध्या लौटा लाने के लिये नैगम भी भरत के साथ चित्रकूट गये थे।६१। कहते हैं कि इनमें हाथी का काम करने वाले, मणिकार, काष्ठ की खुदाई करने वाले सभी श्रमिक-वर्गों के लोग थे।

टीकाकार गोविंदराज ने 'श्रेणी' का अर्थ भी नैगम ही किया है। अतः श्रेणी मुख्याः का अर्थ मजदूर-संघों के सभापति हुआ। ननिहाल से अयोध्या लौटने पर भरत को सूचना दी गई कि सभी श्रेणियां अभिषेचन सामग्री लेकर आपकी प्रतीक्षा कर रही है।६२। डा० राध ाकुमुद मुखर्जी के अनुसार श्रेणी का अर्थ एक ही पेशा करने वाली विभिन्न जातियों के लोगों का संगठन है। रामायण में 'गण' शब्द का अर्थ आधुनिक 'ट्रेड यूनियन' (व्यापार संगठन) के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इन गणों के सभापति 'गणवल्लभाः' कहलाते थे, भरत के साथ गणवल्लभ भी चित्रकूट गये थे। 'संयोध श्रेणी' के नाम से सैनिकों का आर्थिक संगठन था।

उस समय यातायात के साधन अच्छे थे। उस समय आवागमन के मार्गों में स्थल मार्ग अधिक प्रयुक्त होते थे। नगरों में चौड़े और व्यवस्थित मार्ग बने थे। जिनकी सावधानी से देखभाल की जाती थी। प्रतिदिन सफाई, और धूल-मिट्टी को दबाने के लिये उन पर छिड़काव किया जाता था। इससे पता चलता है कि सड़के पक्की नहीं थी। इस पकार किसी

भी देश की राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि यातायात के शीघ्रगामी साधनों पर ही निर्भर करती है। एक नगर को दूसरे नगरों और ग्रामों से जोड़ने वाले मार्ग बने हुये थे। ये सड़के रथ आदि सवारियों के चलने योग्य होती थीं। ऐसा एक मार्ग केकय राज्य के गिरिव्रज नगर से अयोध्या तक बना हुआ था। इस मार्ग को रथ, द्वारा तय करने में भरत को आठ दिन लगे थे। वन जाते समय राम को, तमसा पर करने पर एक ऐसा रास्ता दिखई पड़ा था, जो सशंकित लोगों को भी आश्वस्त कर देता था।६३। अयोध्या से गंगा-तट तक एक मार्ग बना हुआ था, जिस पर होकर राम ने रथ में वन प्रयाग किया था। ६४। उन दिनों उत्तरी भारत के आबाद हिस्से सड़कों के जाल से परस्पर जुड़े हुये थे, जिन पर खूब यातायात और व्यापार होता था। वर्षा-ऋतु में ये मार्ग आवागमन के लिये अयोग्य हो जाते थे। अयाध्या और लंका के राजमार्ग दीप वृक्षों से प्रकाशित रहते थे। उत्सवों पर इन राजमार्गों पर ताजा और पुष्प बिखेरे जाते थे, मालाओं और पताकाओं से इनकी सजावट की जाती थी तथा सुगंधित पदार्थ डालकर उन्हें सुगन्धयुक्त बनाया जाता था।६५।

अरण्यों में स्थित आश्रम भी परस्पर मार्गों से जुड़े हुये थे। मारीच का आश्रम लंका-द्वीप के उत्तर की ओर समुद्र-तट पर स्थिर था वहाँ खच्चर-जुते रथ से पहुँचा जा सकता था। ऋषि भरद्वाज का आश्रम चित्रकूट के तापसालय से एक रमणीय एवं सुरक्षित मार्ग से जुड़ा हुआ था। पंचवटी भी अच्छे स्थान में बसी थी। अगस्त्य के आश्रम से वहाँ को एक रास्ता जाता था। सीता को खोने के बाद राम पंचवटी से दक्षिण की ओर जिस मार्ग से गये थे, वह पंपासर और मतंगाश्रम होता हुआ किष्किधा तक चला गया था।

वाल्मीकि ने सड़क और पुलों का निर्माण, उनकी मरम्मत में लगे मजदूरों तथा उनकी कार्य-प्रणाली का वाल्मीकि ने तीन स्थलों पर विस्तृत वर्णन किया है। जब भरत ने राम को लौटा लाने के लिये अपनी सेना-सहित चित्रकूट को प्रस्थान किया, तब उन्होंने शिल्पियों ओर वनचरों को आदेश दिया कि आगे जाकर विषम वन-प्रदेश में सेना के लिये समतल मार्ग का निर्माण करे।६६। अयोध्या-कांड के ८० वें सर्ग से निर्माण कार्य का जो वर्णन मिलता है, उससे तत्कालीन शिल्पि-वर्ग के कौशल का पता चलता है। इन शिल्पिकारों ने जमीन की तरी, खुश्की को जानने वाले (भूमि-प्रदेशज्ञ), खुदाई करने वाले (खनक), निर्माता (स्थपति) तथा नहरों और जल-प्रवाहों के निर्माण में प्रवीण कारीगर थे। कारीगरों

ने वृक्षहीन प्रदेशों में वृक्ष लगाये और इसके अलावा अनावश्यक पेड़ों और 'वीरण' नामक घास को साफ किया। ऊँची नीची भूमि समतल बनायी, गड्ढे मिट्टी से भरे गये, चट्टानों को काटकर समतल बनाया गया, जल स्थानों पर पुल बनाये गये, जहाँ पर खनन क्रिया की जरूरत पड़ी वो भी कार्य किया। शिल्पियों ने मार्ग में तो बाधायें उत्पन्न होती थीं उन सभी समस्याओं का समाधान किया था। जैसे- मार्ग में डालियों, झाड़ झंखाड़, घास पात, पेड़–पौधे, कंकड़–पत्थर आदि को कुल्हाड़ी से साफ करते हुये मार्ग बनाना शुरू किया। और इस मार्ग को इस योग्य बनाया गया था जिसमें असंख्य सवारियों और पशुओं से युक्त भरत की चतुरंगिणी सेना का आवागमन होना था।

भारत और लंका के बीच जिस नल–सेतु पुल का निर्माण किया गया उसका वर्णन और भी विलक्षण देखने को मिलता है इस पुल को देखकर वानर शिल्पियों की कुशलता और चतुराई देखने को मिलती है। वे लोग चट्टानों को उखाड़ कर यंत्रों की सहायता से जल के समीप ले जाते थे। दंडों अर्थात मापने की लकड़ियों का भी व्यवहार किया गया था। छोटे–छोटे पत्थर, घास, पत्ते, फूल, पौधे तथा लकड़ियों का उस पुल के निर्माण में उपयोग किया गया । वानर मजदूर पहले विशाल वृक्षों को जल में फेंकते, फिर उन पर चट्टानों को संतुलित करते और छोटे–छोटे गड्ढों को घास पत्ती लकड़ियों से पाट देते थे।

ये विभिन्न कार्य वानर मजदूरों के पृथक–पृथक दलों को सौंपे गये थे, इन लोगों में इतना अधिक सहयोग था कि पाँच ही दिनों में यह विशाल पुल बनकर तैयार हो गया था।

राम जब राज्याभिषेक के समय नंदिग्राम से अयोध्या तक जुलूस निकलने वाला था तब शत्रुघ्न ने कई हजार विष्टियों (कुली, कबाड़ियो, और कारीगरों) को आज्ञा दी कि नदिग्राम से अयोध्या तक का मार्ग ठीक कर दे, जहां कहीं ऊबड़–खाबड़ हो उसे मिट्ट से भरकर समतल कर दे फिर उस पर शीतल जल का छिड़काव करें।

प्राचीन भारत में यातायात के साधनों को 'यान' कहा जाता था। वे मनुष्यों पशुओं ओर धन–धान्य के काम आते थे। थल स्थल पर पुरुषों के काम अने वाला यान रथ होता था जो नागरिक और सामरिक आवश्यकताओं का ध्यान रखता था। रामायण में तीन प्रकार के रथों का वर्णन किया गया है–

(१) 'औपवास रथ', जो प्रतिदिन सवारी के काम आने वाला सामान्य रथ था। जिसमें दो घोड़े जोते जाते थे। भरत ने ऐसे ही रथ में राजगृह से अयोध्या की यात्रा की थी। मार्गक में घोड़ों को समय-समय पर बदल भी लिया जाता था। मार्ग में घोड़ों को समय-समय पर विश्राम और भोजन की भी व्यवस्था की जाती थी।

(२) 'सांग्रामिक रथ', जो युद्ध क्षेत्र में प्रयोग होता था।

(३) 'पुष्प रथ', जो उत्सवों पर प्रयोग में आने वाला रथ होता था। इसे सोने के आभूषण से सजे घोड़े जुते होते थे।

सांग्रामिक रथ में दो पहिये होते थे। धुरी पर रथ का पूरा भार अवस्थित रहता था। रथ के सामने वाले भाग में सारथी और रथी (रथ का स्वामी) रहते थे, और पीछे के हिस्से में युद्ध की सामग्री भरी रहती थी और कभी-कभी कोई परिचालक उपस्थित रहता था। इसमें चार घोड़े द्वारा रथ जोता जाता था। सारथि रथ का संचालन करता और रथी युद्ध में संलग्न रहता। रथ के ऊपर ध्वजा फहराती थी जिस पर रथी का विशेष चिन्ह अंकित रहता था। रथ के पिछले भाग को 'रथोपस्थ' कहते थे, जहाँ सारथि या रथी घायल हो जाने पर गिर जाया करते थे। रावण के रथ में दो चवर छुलाने वाले भृव्य भी थे (चामरग्रहिणौ) अतिकाय राक्षस के रथ में चार सारथि थे। रावण के पुत्र अक्षकुमार के महारथ में आठ घोड़े जुते थे, उसमें पताकाएं और ध्वज फहरा रही थी, जिसमें रत्न जड़े हुये थे। राजाओं के रथ में छत्र भी हुआ करता था। इसके साथ-साथ रामायण में रथों को गधों और ऊँटों के द्वारा जोते जाने का भी उल्लेख मिलता है। भरत के साथ अयोध्या के कई नागरिक उष्ट्र रथों पर सवार होकर राम को लेने के लिये चित्रकूट गये थे। रथ का निर्माण उन दिनों काफी उन्नत दशा में था। 'शिविका' या पालकी पर्वतीय स्थानों की मुख्य सवारी थी। वानरों में उसका प्रचलन अधिक देखने को मिलता था वानरराज सुग्रीव अनेक अनुचरों द्वारा ढोई जाने वाली पालकी में सवार होकर राम के दर्शनार्थ गये थे। भद्र महिलाएं भी पालकी में सवारी करती थी। इसीलिये विभीषण सीता को पालकी में सवार कर राम के समीप लाये थे (आरोग्य शिविकां सीता राक्षसैर्वहनोचितैः।

रामायण काल में सारथि का पेशा वंशा परम्परागत माना जाता था। सुमंत्र इक्ष्वाकु-राजाओं के वंशागत सारथि थे। वह केवल सारथि न होकर सखा भी थे, हितचिंतक

तथा परामर्शदाता भी थे। प्रत्येक सारथि से यह आशा की जाती थी कि स्थान, समय, शकुन, अपशकुन, युद्धभूमि की समानता ओर असमानता का ध्यान रखते हुये रथ का संचालन करे। एक विवेक सारथि का यह कर्तव्य था कि वह शत्रु के पास जाने, दूर रहने, युद्ध में स्थिर रहने तथा युद्धभूमि से हट जाने का कब समय उर्पयुक्त होना चाहिये। क्योंकि रथी तो युद्ध में दत्तचित्त रहता था और इन बातों की ओर तो ध्यान नहीं दे सकता था। राम ने रावण के रथ को सामने आते देखकर सारथि मातलि से कहा कि तुम सावधान हो जाओ मन तथा दृष्टि को स्थिर करलो और घोड़ों की रासों को खीचने और ढीली करने में सावधानी रखते हुये शीघ्रता पूर्वक रथ हाककर शत्रु के रथ के सामने ले चलो मातलि ने रथ ऐसा हाका कि रावण का रथ बाईं ओर पड़ गया और राम के रथ के पहियों से उड़ी हुई धूल रावण ढक गया।

तत्कालीन समय में मात होने वाली गाड़ी को 'शकट' कहा जाता था और बैलों से खीचे जाने के कारण 'गो रथ' कहा जाता था सिद्धश्रम से मिथिला रवाना होने पर विश्वामित्र के पीछे-पीछे कई तपस्वी सौ सकटो मे सवार होकर चले थे।६७। (इससे यह पता चलता है कि सिद्धाश्रम से मिथिला तक गाड़ियों के चलने लायक रास्ता रहा होगा।) बैलों और घोड़ों पर भी सामान लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे। भरत अपनी उपमा ऐसे किशोर अश्व और वृषभ से देते है जो भार ढोने मे असमर्थ है।६८। जनक का प्रसिद्ध धनुष आठ पहियों वाली मंजूषा पर रखा हुआ था। जिसे कई आदमी मिलकर ढोया करते थे।६६।

यातायात के लिये नावों का प्रयोग किया जाता था। ये नावें पालों और पतवारों के सहारे चलाई जाती थी। विश्वामित्र के साथ राम-लक्षमण ने गंगा नदी एक ऐसी नौका पर बैठकर पार की थी। जिसमें एक सुखद दरी बिछी थी और जो ऊपर से ढकी हुयी थी (सुरवास्तीर्णा)। इस नाव के स्वामी वनवासी मुनिलोग हुआ करते थे। अपनी वन यात्रा में राम-सीता और लक्ष्मण जिस नौका में गंगा पार हुये थे, वह सुदृढ़, सुन्दर, सुखपूर्वक पर उतारनेवाली तथा मल्लाहो (कर्णग्राह) और पतवारों से युक्त थी।

अस्य वाहन संयुक्ता कर्णग्रहवर्ती शुभम। सुप्रतारो दृढा तीर्थे शीध्र नावमुपाहार।।

रामायण में श्रृंगवेरपुर के राजा गुह के बारे में बताया गया है कि उनके पास नौ

पोत थे। गुह गंगा तट के निवासी थे। उनके पास पाँच सौ नौकाएं, तट रक्षक और सुसज्जित सेना भी थी। जब भरत दल बल सहित राम के पास चित्रकूट जाते समय, श्रृंगवेरपुर से गुजर रहे थे। तब गुह ने उन्हे किसी दुष्ट भाव से प्रेरित समझा और सैकड़ों कैवर्तों युवकों को आज्ञा दी कि पांच सौ नावें लेकर शत्रु का मार्ग अवरुद्ध कर दे। प्रत्यें नाव सौ सशस्त्र कैवर्तों को ले जा सकती थी।७०। ये नावें 'अग्र-मंदिरा' श्रेणी की रही होंगी, जिनमें 'मंदिर' (जहाज का मार्ग देखने के लिये बनी केबिन) नाव के आगे भाग की ओर बना होता है। ये नौकाएं वर्षा-ऋतु के समाप्त हो जताने पर प्रयोग में लाई जाती थीं। लंबी यात्राओं या जल-युद्ध के लिये ये विशेष उपयुक्त होता था।७१। ये नावें माल ढोने और यात्रियों के उपयोग में भी आती थी। भारत का शुद्ध भाव जानकर निषादराज ने उनकी सारी सेना को गंगा पार क़रने के लिये ऐसी पाँच सौ नावों की व्यवस्था कर दी। इन नावों में पुरुष, स्त्रियाँ, हाथी, घोड़े, रथ, अन्य भारी सामान ले जाया गया था, अतः ये नावें अवश्य ही पोतों के समान रही होंगी राज परिवार के बैठने के लिये गुह ने विशेष नौकाएं मंगाई थीं। नावों के आगे ध्वजा फहराती थी और बड़े-बड़े घंटे लटकते रहते थे पतवारे भ्री लगी रहती थी, ये नावें साधारण नावों से बड़ी होती थी, इसीलिये इन्हें 'स्फटिक' की संज्ञा दी गयी थी।७२। एक श्वेत कंबल इनमें बिछा हुआ था (पाण्डु कम्बल उस समय नाव चलाने का कार्य सवृताम), अनार्य तथा निषाद और दास जैसी जातियों के हाथ में था। उत्तरकांड में वनवास के समय सीता ने लक्ष्मण के साथ जिस नौका में बैठकर गंगा पार किया था, उसे इन्हीं जातियों के नाविकों ने खेया था।

कुछ लोग इस बात पर आश्चर्य प्रकट करते हैं कि राम ने अपनी सेना को लंका पहुंचाने के लिये बड़े जल-पोतों का प्रयोग न कर एक कष्ट साध्य महान सेतु का निर्माण क्यों किया। संभवतः इसका कारण यह था कि एक छिछले और अशांत सागर में जल-पोतों का प्रयोग नहीं किया जा सकता था और फिर सामने के तट से एक प्रबल शत्रु के प्रतिरोध का भी तो भय था।७३।

हवाई यातायात की भी सूचना मिलती है। आकाशगामी यान को 'खग' या 'विमान' कहते थे। सीता ने पति के चरणों की छाया के सामने 'वैहायस' गत अर्थात आकाश-भ्रमण को भी तुच्छ समझा था। सीता की खोज के बाद हनुमान, अंगद, वानर आदि

आकाश-मार्ग से सुग्रीव के पास लौटे थे। लंका युद्ध के समय आकाश युद्ध के अनेक वर्णन आये हैं। इसी प्रकार रावण के सुप्रसिद्ध पुष्पक विमान एक अद्‍भुत आकाशचारी यान था, जो उड़ते समय महाघोष करता था (महानादमुत्य-पाल बिहायसम)। कवि ने उसकी संचालन क्रिया पर प्रकाश नहीं डाला है।

तत्कालीन समय में नावों के अतिरिक्त बेड़ों, (पोतों और प्लवों) और घड़ों द्वारा भी नदियाँ पार की जाती थी। नदियों में पहरा देने वाले 'नदीरक्ष' कहलाते थे। 'तीर्थ' नावों के ठहरने का स्थान था। 'स्फ्य' डांड़ को कहते थे और पतवार को 'कर्ण' या 'वाहन'।७४।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि वाल्मीकि के समय में भारत आर्थिक दृष्टि से सुखी, समृद्ध, वैभवशाली था। दशरथ के राजकाल में अयोध्या तथा उन जनपदों की आर्थिक स्थित अत्यन्त उन्नत हो चुकी थी ये लोग धन, धान्य, पशु आदि से सम्पन्न थे। प्रजा का स्तर भी ठीक था, वह बहुमूल्य वेश-भूषा धारण करती थी। साक्षरता की व्यापकता थी। लोग दीर्घजीवी एवं नीरोग थे। ये लोग अपनी ही अर्जित की गयी संपत्ति से संतुष्ट रहते थे। किसी प्रकार का लोभ नहीं करते थे। कहते हैं कि कोशल राज्य एक धनी आबादी का देहाती क्षेत्र था जिसमें आमं के बगीचे निर्मल जल से भरे जलाशय, गौओं के झुण्ड तथा हृष्ट-पुष्ट अधिवासी थे। कोशल देश में नाना प्रकार के यज्ञ होते थे जिसमें प्रतिष्ठित लोग बड़ी संख्या में निवास करते थे। वहाँ के स्त्री-पुरुष सदा प्रसन्न रहते थे, जो समय-समय पर उत्सवों में शामिल होते थे। कोशल देश की आर्थिक समृद्धि का आभास इन प्रश्नों से भी होता है, जो चित्रकूट पर राम ने भरत से पूछे थे, 'उन्नतिशील और समृद्धशालिनी' अयोध्या की तुम भली भाँति रक्षा तो करते हो? और इससे भी स्पष्ट होता है कि जहाँ खेत जोतने में समर्थ पशुओंकी अधिकता है, वहाँ किसी प्रकार की हिंसा नहीं होती, जहाँखेती के लिये वर्षा के जल पर निर्भर नहीं रहना पड़ता, जो बहुत सुन्दर है नाना प्रकार की खानें जिसकी शोभा बढ़ाती है, ज़हाँ पर पापी मनुष्यों का अभाव है, जिन पूर्वजों ने जिसकी भली भाँति रक्षा की है वह कौशल देश सम्पन्न और सुखी तो है? व्यापार में लगे हुये लोग सुखी तो हैं? राजा को अपने राज्य में रहने वाले सब लोगों का धर्मानुसार पालन कारना चाहिये।''

राम ने भरत से यह प्रश्न भी पूछा कि क्या तुम्हारी आमदनी बढ़ी और खर्च घटे? (आयस्ते विपुलः कश्चित्काश्चिदल्पतरो व्ययः)। अमरीकी विद्वान ई०डब्लू० हॉपकिन्स ने यह

निष्कर्ष निकाला कि राजागण करों में बोझ से प्रजा को लादकर अपना खजाना भरने में लगे रहते थे।७५। किंतु रामायण में अनुचित करों का विरोध ही किया गया है। इस प्रकार राम की विशाल संपत्ति धर्मानुसार उपार्जित की गई थी (महाधनं धर्मबलै रुपाजिंतम) राजा को कर-वसूली में उदार और नरम नीति अपनानी चाहिये, उग्रता का सहारा लेकर प्रजा को विक्षुब्ध करना ठीक नहीं है।७६। जो राजा प्रजा की आय का छठा भाग लेकर उसका पुत्रवत् पालन नहीं करता, वह पाप का भागी बना रहता है।७७। उत्तरकांड में स्पष्ट कहा गया है कि जो प्रजा की रक्षा नहीं करता, वह प्रजा की आय के छठे भाग का उपभोक्ता नहीं बन सकता (षड़भागस्य च भोक्ता सौ रक्षते न प्रजाः कथम्)। इन सभी बातों से स्पष्ट होता है कि राजा को अपनी आय खर्च से बढ़ाकर रखनी चाहिये, किंतु प्रजा को सुशासन के वरदानों से वंचित रखकर नहीं।

आन्तरिक व्यापार या वाणिज्य– वैदिक काल में पूर्ववर्ती समाज में व्यापार तथा वाणिज्य का कोई उल्लेखनीय विकास नहीं हुआ था। अतः वह युग विभिन्न उद्योग-धन्धों और शिल्पों व्यवसायों के प्रारम्भिक विकास का युग था। कालान्तर में जब उत्तरवैदिक काल के अन्तर्गत जब उनके समाज और कृषि, व्यवसाय का उत्कर्ष हुआ तब उन्होंने नगरों की स्थापना की और नगरों में कृषि से उत्पन्न अन्नों और व्यवसायों से निर्मित वस्तुओं का आना प्रारम्भ हुआ, इस प्रकार वस्तुओं के क्रय-विक्रय से व्यापार का उदय तथा व्यापारिक मार्गों का विकास हुआ।

नगरों का सर्वप्रथम स्थापना और विकास पश्चिमोत्तर प्रान्त में ही हुआ, क्योंकि आर्य पहले-पहल वहाँ आये थे, बसे थे उन्होंने वहीं विभिन्न निर्माण कार्य किये थे। पाणिनि के काल तक आकर प्रतीच्य अंचलों में भी अनेक नगर बस गये। तक्षशिला, हस्तिनापुर जैसे नगर ऐसे ही थे। बौद्धयुगीन भारत में अनेकानेक नगरों का विकास तथा व्यापार का भी विस्तार हुआ।

उस समय के समाज में छोटे-बड़े सभी प्रकार के व्यापारी थे। छोटे व्यापारी घूम-घूमकर फेरी लगाते थे और बड़े व्यापारी एक ही स्थान पर विक्रय किया करते थे। व्यापारी समुदाय के सम्मानित सदस्य को गहपति, कुटुम्बिक और सेट्ठि कहते थे।

मौर्य युग में व्यापार और वाणिज्य का अभूतपूर्व विकास हुआ था। कौटिल्य ने

अपने 'अर्थशास्त्र' में आर्थिक व्यवस्था का चित्रण किया है। उसके अनुसार व्यापार के निमित्त बाजार में बेची जाने वाली वस्तु 'पण्य' कही जाती थी और राज्य की ओर से व्यापार की देखभाल के लिये बड़ा अधिकारी नियुक्त किया जाता था, उसे 'पण्याध्यक्ष' कहा जाता था। कौटिल्य के मत के अनुसार- बिक्री के लिये लाई हुई सभी वस्तुओं का परीक्षण किया जाता था, तत्पश्चात् वस्तुओं को मुहर बन्द कर बाजार में बिक्री के लिये भेज दिया जाता था, जहाँ सभी वस्तुओं का मूल्य पहले से निर्धारित रहता था।७८। पण्य-सम्बन्धी चुंगी, तौल माप, विदेशी व्यापार आदि का निरीक्षण क्रमशः शुल्काध्यक्ष, पोताध्यक्ष, और अन्तपाल किया करते थे। उस समय खाद्य पदार्थों में मिलावट करने पर भी प्रतिबन्ध था तथा स्वच्छता का विशेष ध्यान रखा जाता था। सुगन्धित वस्तुएं, औषधीय द्रव्यों तेल, घी, नमक आदि में मिलावट करने पर १२ पण का अर्थ दंड दिया जाता था।७६।

महाकाव्यों से भी वाणिज्य के विकासक्रम की सूचना मिलती है। एक स्थल पर राम नें भरत को कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य हित रक्षा करने के लिये सलाह दी।८०। राज्य के निर्देशन में वाणिज्य का यथेष्ठ उत्कर्ष हुआ था। तत्कालीन जनपद के वाणिक् व्यापार के हेतु दूर-दूर तक जाते थे।८१। उस समय व्यापारी दूर-दूर के बाजारों में जाते थे। कभी-कभी राजसूय, अश्वमेध यज्ञों के समय विभिन्न वस्तुओं के उपहार राजाओं द्वारा अपने सम्राट को दिये जाते थे। कम्बोज, वाहवीक और धनायु देश के अश्व तथा विन्ध्य क्षेत्र के हाथी प्रसिद्ध थे।८२। अनेक प्रकार के रत्न भी समाज में प्रचलित थे।८३। पांडवों को मिलने वाले उपहारों में पूर्वी देशों के हाथी, काम्बोज, गांधार, वाहलीक और चीन के रेशमी वस्त्र, अपरान्त और पूर्वी क्षेत्रों के आयुत्र, पाण्ड्य और मलेच्छ देशों के मोती तथा सिन्धु देश के शालि सम्मिलित थे।८४।

गुप्तयुग में बाजार को 'विपाठी' की संज्ञा दी गई थी, लोहे को तपाकर अनेक वस्तुएं बनाई जाती थीं। रघुवंश में विवृत है कि अयोध्या के बाजारों में लोग विभिन्न प्रकार के वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते थे और तत्पश्चात् नावों से सरयू के उस पार जाते थे अथवा किनारे-किनारे जाते थे।८५।

विदेशी व्यापार- भारत का विदेशी व्यापार प्रागैतिहासिक काल का है, जब वैदिक आर्यो के आने के पूर्व के भारतीय निवासी विदेशियों से अपना व्यापारिक सम्बन्ध रखते थे। उस

समय लोग स्थल और जल दोनों मार्गों का उपयोग करते थे। सुमेर औरा सिंध दोनों सभ्यताओं की प्राप्त वस्तुओं से यह ज्ञात होता है कि उस समय इन दोनों सभ्यताओं के लोगों का व्यापारिक सम्बन्ध था, जो बलूचिस्तान के माध्यम से स्थापित हुआ था। सिंधु सभ्यता की वस्तुएं सुमेर के बाजारों में बिका करती थी, जहाँ से मिश्र, रानतोलिय, क्रीट अदि तत्कालीन सभ्यताओं के देशों में पहुंचा करती थीं। इन वस्तुओं में प्रमुख थीं मुद्रायें, मुहरें, सोने, चांदी, ताँबे की वस्तुएं, मोती, हाथी दांत के कंधे और आभूषण , अनेक प्रकार के मिट्टी के पात्र, लकड़ी के सामान आदि। इसी प्रकार सुमेर सभ्यता की अनेक वस्तुएं सिन्धु घाटी से प्राप्त हुई है, जेसे श्वेत संगमरमर की मुद्रा, रेखित कर्नेलियन मनका इंकित स्टियाटाइट मुद्रा, बासुली, जेसा हथौड़ा, भेड़ का खिलौना और मिट्टी की मुद्रिकाएं शव हत्या और मोहन जोदड़ों में मिश्र के आधार पर बना मनकों का सोने-चांदी का अक्षिपट। इन वस्तुओं से भारत के विदेशी व्यापार का ज्ञान प्राप्त होता है। इस समय समुद्र के मार्ग से भी पश्चिमी देशों से व्यापार होता था। सम्भतः लोथल उस समय समुद्री बन्दरगाह था। वहाँ की खुदाई से प्रापत गौरीबाड़ा (डाक यार्ड) इसका प्रमाण है।

वैदिक युग में भारत का वैदेशिक व्यापार होता था। समुद्र से सौ पतवारों वाले जहाज का चलना विदेशी व्यापार को व्यक्त करता है। पश्चिमी देशों के साहित्य में कुछ ऐसे भारतीय शब्द मिलते है। जिनसे प्रतीत होता है कि भारत से उनका आदान-'प्रदान होता था। ओफिर (आभीर) कोफ (कपि) कर्पस (कपास) आदि शब्द बाइबिल में मिलते हैं जो भारत से ही पश्चिमी देशों में पहुँचे होंगे। सिन्धु प्रदेश से विभिन्न प्रकार के वस्त्र बनाने के लिये विख्यात था। एशिया माइनर के बोगज बुई के अभिलेख (दूसरी सदी ई०पू०) में मित्र, जासत्य, वरुण अदि वैदिक देवताओं का समावेश हुआ है, जिससे स्पष्ट होता है कि भारत का विदेशों से समुचित सम्पर्क था। और आपस में व्यापार हुआ करता था।

बौद्ध साहित्य से भी भारत के व्यापार का उल्लेख मिलता है। भारत के कौए और मोर जैसे पंक्षी भारतीय वाणि के द्वारा विदेशों मे ५०० और १००० कर्षापण में बेचे जाते थे। इन पंक्षियों का विक्रय भारतीय व्यापारी बावेरू (बेबीलोन) में जाकर किया करते थे। पाँचवी सदी ई०पू० में विकसित भारतीय वैदेशिक व्यापार अपनी पराकाष्ठा पर था। भारत के अनेक वस्तुऐं पश्चिमी देशों में लोकप्रिय थी। मिश्र की ममी के साथ-साथ नीम तथा

इमली की लकड़ी और मलमल जैसी भारतीय वस्तुऐं रखी जाती थी। मिश्र सम्राट 'तन् रवामन' की समाधि की जब खुदाई की गई तब उसमें विविध प्रकार की भारतीय वस्तुऐं मिली थी। यूनान के एथेन्स नगर में भी अनेकानेक भारतीय वस्तुऐं बिका करती थीं। बौद्ध जातकों में व्यापार के लिये विदेश जाने वाले व्यापारियों का उल्लेख मिलता है कि पडर जातक में विवृत है ५०० यात्री जब समुद्र यात्रा कर रहे थे तब १७ दिन की यात्रा करने के बाद दुर्घटना हो गई जिसमें सभी यात्री डूब मरे। उल्लेख मिलता है कि भारत के पूर्वी प्रदेश के वणिक् चम्पा नामक बन्दरगाह से होते हुये सुवर्णभूमि की ओर जाते थे। सुवर्णभूमि के अन्तर्गत वर्मा, मलाया, स्याम, कम्बोडिया, अनाम आदि प्रदेश सम्मिलित थे।

पश्चिम में पारसीक साम्राज्य के पार मिश्र, यूनान, सीरिया, अरमीनिया तक व्यापार होता था। हेरोगेट्स ने लिखा है, भारत का प्रदेश पारसीक साम्राज्य में बीसवें प्रान्त के रूप में था, जहाँ उसे ३६० टैलेण्ट स्वर्ण (४ करोड़ के लगभग) कर के रूप में मिलता था। दारा के नौसेनाध्यक्ष स्कारलैम्स ने फारस और भारत के बीच नये सामुद्रिक मार्ग से ढूढ़ निकला था, जो लालसागर से होकर जाता था। इससे स्पष्ट है कि भारत और फारस के बीच जल मार्ग का उपयोग किया जाता था।

यूनान लेखको से विवरण मिलता है कि सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् भारत और यूनान के बीच आवागमन अत्याधिक बढ़ गया था, दोनों देशों से व्यापारिक वस्तुओं का आदान-प्रदान प्रारम्भ हो गया था। यूनान लेखक प्लिनी का कथन है कि भारतवासी नौकायें और पोतों के निर्माण में अत्यन्त सिद्धहस्त थे। कहते कि पूर्ववैदिक युगीन आर्य नाव और पोत बनाने में निपुण थे जिसमें सौन्दर्य पतवारें हुआ करती थीं तथा अनेक चालक संयुक्त होते थे, इसके अतिरिक्त भारत में अधिक स्वर्ण, मोती ओर बहुमूल्य रत्न मिलते थे। मिश्र के शासक फिलाडेल्फस द्वितीय ने व्यापारियों के लिये स्वेज नहर खोल दी थी जिससे पूर्वी और पश्चिमी देशों के बीच व्यापार का यथेष्ट विकास हुआ।

मौर्य राजवंश के काल में भारत का पश्चिमी देशों से सम्पर्क बहुत बढ़ा। स्वदेश-निर्मित वस्तुओं और विदेश-निर्मित वस्तुओं के क्रय-मूल्य में रज्य की ओर से भिन्नता रखी जाती थी तथा प्रजा का हित र्स्वोपरि माना जाता थां। चौथी सदी ई०पू० में ब्रह्म, सुवर्ण द्वीप, चीन आदि देशों से अनेक सुन्दर वस्त्रों का आयात किया जाता था। कालान्तर में पश्चिमोत्तर

प्रान्त के कुषण राजवंश और दक्षिण के सातवाहन राजवंश के समय भारत का विदेशी व्यापार अधिक समुन्नत हुआ। कुषाण राजाओं के समय भारत के व्यापारी मध्य राशियां तक जाते और भारतीय वस्तुओं का आदान-प्रदान करते थे। भारत के वस्त्र, प्रसाधन सामग्री, आभूषण आदि रोम के बाजारों में बिका करते थे और उन वस्तुओं के बदले आपार स्वर्ण भारत आता था। दक्षिण भारत के सातवाहन राजवंश के काल में हिन्दमहासागर, बंगाल की खाड़ी अरब सागर, तीनों समुद्रों का समुचित उपयोग होता था। मिश्र, रोम, यूनान आदि देशों में विभिन्न प्रकार के वस्त्र, रत्न, आभूषण, सुगन्धित, दवा, प्रसाधन सामग्री आदि भारत से भेजी जाती थी। इस प्रकार रोम की अनेकानेक मुद्राएें भारत के कोयम्बटूर, बम्बई, मैसूर, मध्यप्रदेश के अनेक स्थानों पर मिली हैं, जो भारत और रोम के बीच स्थापित व्यापरिक सम्बन्ध दर्शित करती हैं। चीन की ई०पू० दूसरी सदी की मुद्रा मैसूर से मिली है, जो भारत और चीन के निकट सम्बन्ध को व्यक्त करती है। गुप्तयुग में भारत की विभिन्न वस्तुऐं विदेशों मे जाती थी और विदेशों से भी विभिन्न वस्तुओं का भारत में आयात होता था। इलायची, मिर्च-मसाले आदि पूर्वी द्वीपों से भारत आते थे। शकस्थान, पोक्लेइस, कास्पपिरा, परोजनिसस, काबोलितिस जैसे पश्चिमोत्तर देशों और चीन जैसे अनेक पूर्वी देशों से आया हुआ माल भारत के विभिन्न प्रदेशों से इकट्ठा किया गया माल बेरीगाया (भड़ौच) में आता था। वहाँ से विदेशों को जाता था। गजदन्त, गोमेद, लाल मलमल, मोटा वस्त्र, रेशम, सूती, लम्बी पीपल आदि विभिन्न वस्तुऐं भारत के पश्चिमी बन्दरगाहों से विदेशों को भेजी जाती थी। दक्षिण भारत के चोर और पाण्ड्य बन्दरगाहों से विदेशों को भेजी जाने वाली वस्तुओं में मुख्य थीं; गोलामिर्च, मोती, गजदन्त, पारदर्शी पत्थर, हीरा, नीलम, कछुए के आवरण। चोल राज्य से मोती और महीन वस्त्र अधिक भेजे जाते थे। हिमालय की तलहटी में उत्पन्न होने वाली वस्तुऐं कामरूप, ढाका एवं गंगा के कॉठे में बनने वाले महीन वस्त्र पूर्वी भाग के बन्दरगाहों से विदेश जाते थे। हिमालय और सिन्ध में पाई जाने वाली कस्तूरी, शैलेय और काली मिर्च मलाबार के बन्दरगाहों से विदेशों के लिये पोतों पर लादी जाती थी। तेजपात पीपल, काली और सफेद मिर्च, इलायची आदि भारतीय वस्तुओं पर रोमन समुद्र जुस्टिनियन ने कर लगाया था। भारत से सुगन्धित और प्रसाधन साम्रगी भारत से निर्यात की जाती थी। चन्दन, केसर, तत्सिन, फूनान (चम्पा), किआकोंची तथा अन्य द्वीपों में बहुत अधिक

लोकप्रिय थी। लोहे की धातु के बने सामान भी विदेशों में भागे जाते थे।

व्यापारिक मार्ग-स्थलमार्ग- पूर्ववैदिक युग में आर्य अपना व्यापार स्थलमार्ग से ही करते थे। वे बैल, घोड़े, ऊँट, गधे, भैंसों पर सामान लादकर गन्तव्य स्थानों तक जाते थे। कभी-कभी गाड़ियों और रथों का भी उपयोग करते थे। उत्तरवैदिक काल तक भारत में अनेक राज्यों और नगरों का विकास हो चुका था। अलिन (आधुनिक काफिरिस्तान) पक्थ (आधुनिक परक्तून), भलान (बोलन दर्रे के निवासी), शिव (सिन्धु के पास) और विषाणिन नामक पंचजनों के अतिरिक्त कुरु, पांचाल, कोशल (अवध), काशी, विदेह, मगध, (दक्षिणी विहार), अंग (पूर्वी बिहार) आदि का विकास हो चुका था।

बौद्धयुग में भी वणिक् अनेकानेक मार्गो से व्यापार के लिये यात्रा किया करते थे। मगध से मिथिला, वाराणसी, सहजाति, कौशम्बी तक इसका उपयोग होता था। विदेह से काश्मीर और गंधार तक व्यापारी जाया करते थे।

महाकाव्यों में भी अयोध्या में विभिन्न देशों के व्यापारी निवास करते थे।८६। उस समय अनेकानेक वस्तुऐं लेकर दूर-दूर तक व्यापारी जाते थे।८७। उस समय के राज्यों और स्थानों के वर्णन से विदित होता है कि नगरों और राजधानियों को संयुक्त करने वाले अनेक मार्ग थे, जो व्यापारियों के लिये अत्यन्त उपयुक्त थे। महाभारत काल मे भारत के सम्पूर्ण भू-भाग और बिख्यात नगर राजपथों से जुड़े हुये थे। भारत के वर्णन में अयोध्या सहित अनेक स्थानों का उल्लेख है।८८। महाभारत में काम्बोज, गान्धार, बाहलीक, प्राग्ज्योतिषपुर (आसाम), अपरान्त, पाण्ड्य, सिन्धु आदि अनेक देशों का उल्लेख हुआ। जो तत्कालीन व्यवस्था पर प्रकारश डालती है। मौर्ययुग में राजपथ साफ रखे जाते थे यदि उसे कोई गन्दा करता था तो राज्य की ओर से उसे दण्ड दिया जाता था। अशोक द्वारा विभिन्न मार्गों पर खुदवाये गये अभिलेख उस समय के विकसित मार्गो का परिचय कराते हैं। कालान्तर में शुगों और सातवाहनों के युग में भी वणिक् पंथों का विस्तार हुआ दक्षिण उत्तर के नगरों को भी जोड़ दिया गया। गुप्तों के काल में ये मार्ग और भी विकसित हो गये। समुद्रगुप्त ने अपनी विजय अहिच्छत्र और बुन्देलखण्ड से प्रारम्भ करके कोशल, महाकान्तार, कौशल, पिष्टपुर, कोट्टूर, एरण्डयल्ल, कांची, अवयुक्त, वोंगी, पालक्क, देवराष्ट्र तक किया था। पश्चिम में तक्षशिला से लेकर थानेश्वर, मथुरा, कौशम्बी, काशी, पाटलिपुत्र आदि नगरों से होता हुआ

राज पथ पूरब में ताम्रलिप्ति तक जाता था।

जलमार्ग– व्यापार के लिये जलमार्गों का भी उपयोग किया जाता था। भारत में छोटी-बड़ी अनेक नदियां होने के कारण व्यापारियों को अपना माल गन्तव्य स्थान तक ले जाने मे बड़ी सुविधा होती थी। सिन्धु, वितस्ता (झेलम), असिम्नी (चेनाब), परूष्णी पंजाब में गंगा, यमुना, सरयू, गोमती नदियाँ उत्तर भारत में, ब्रह्मपुत्र आसाम में, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा आदि नदियाँ दक्षिण में बहती थी, जिन्हे व्यापार के लिये वणिक् प्रागैतिहासिक काल से उपयोग में लाते रहे। पूर्ववैदिक युग में सामुद्रिक व्यापार प्रचलित था। समुद्र से मोती निकालकर व्यापार किया जाता था। उस समय समुद्री यात्रा में सौ-सौ डाँड़ों वाले पोत प्रयोग में लाये जाते थे। मौर्ययुग में समुद्र और नदी की देख-रेख के लिये नावाध्यक्ष की नियुक्त की गयी थी। वह जलमार्ग का उपयोग करने वालों से कर ग्रहण करता था। भारतीय व्यापारी रोम और यूनान तक जाते और वहाँ के यात्री भारत आते थे। कुषाणों और सातवाहनों के युग में सामुद्रिक व्यापार का अधिक विकास हुआ। सातवाहन-वंशी शासक यज्ञाक्षी शातकर्णि ने जहाज प्रकार की मुद्राओं का प्रचलन किया था कुषाण के शासकों ने रोम के राजाओं के सिक्कों की तरह मुद्राऐं निर्मित की। रोम के शासकों की मुद्रा २ ग्रेन की होती थी। इसी का अनुसरण कनिष्क जैसे राजाओं ने भी किया।

गुप्तयुग में भी जलमार्ग का अधिक प्रचलन था आन्तरिक व्यापार में नदियों का उपयोग किया जाता था जिसमें छोटी-बड़ी नावें चला करती थीं। सरयू के तट पर लोगों को इस पार से उस पार उतारती थी। इसके अतिरिक्त बड़े-बड़े जलपोत सागरों में चलते थे। कल्याणी, शूर्पारक या भृगुकच्छ से प्रारम्भ होकर यह मार्ग फारस की खाड़ी में पहुँचता था, जहाँ से वह मिश्र को सम्बद्ध करता था। बालि, सुमात्रा, जावा, सुवर्णभूमि जैसे देशों में भारतीय व्यापारि समुद्री मार्ग से जा सकने में समर्थ थे। श्वान, च्वांग ने लिखा है कि हर्ष का राज्य चारों ओर से नदियों और समुद्रों से संगठित था। मलकूट में ऐसा बन्दरगाह था जिसके सहारे लंका तथा अन्य देशों से व्यापार किया जाता था।

हिन्द महासागर और प्रशान्त महासागर में अनेक व्यापरिक पोत चला करते थे। मिश्र से जलपोत भारत आते थे और भारत से चीन, पूर्वी द्वीपसमूह तक जाया करते थे। भारत के पोत वसा, सिरफ, ओमन, जावा, चम्पा से होकर खवफु (कैन्टन) तक जाते थे।

इस प्रकार स्तम्भ है कि तत्कालीन युग में भारत का सम्बन्ध पश्चिम और पूरब दोनों देशों से अत्यन्त सुखद था।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

१. लॉ नरेन्द्रनाथ - स्टडीज इन इंडियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ० ८१

२. देवतार्थे च पित्रर्थे ब्राह्मणाभ्यागतेषु। योवेषु मिगवर्गेषु कच्चिद् गच्छन्ति ते व्ययः

२, १००, ५५

३. परित्यक्तो भयैः सर्वेः रवनि भिश्चोपशोभितः। २.१००.४५।

४. ब्रह्मक्षत्रमहिं सन्तस्ते कोशं समपूरयन्। १.७.१३।

५. तक्कोलानां च जात्यानां च सुगन्धिनाम्। पुष्पणि च तमालस्य गुल्मानि मरिचस्य.....च।

३.३५.२२-३।

६. एतौ जनपदौ स्फीतौ दीर्घकाल मन्दिरम। मलदाश्च करूणाश्च मुदिता धन-धान्यतः। २४.

२४-५।

७. नानावृष्टिर्व भूवास्मिन्न दुभिक्षः सतांवरेः अनरण्ये।

८. ६.१२८.६८-१००, १०२ का पद्यानुवादश्री इंदुकांत शुक्ल।

९. ७.४१.२०, ७.६६.१२, ६.१२८.१-२, ७.७.१०, ३, १६.५,

१०. उद्यानानि परित्यज्य क्षेत्राणि च गृहाणि २.३३.१७।

११. तस्य व्यक्तिक्रमाद्राज्ञः भविष्यति सुदारूवां।

अनावृष्टिः सुधोरा वै सर्वलोक भ्यावहां। ६.८-६।

१२. दशवर्षा ण्यनावृष्ट्या दग्धे लोके निरन्तरम् २.११.७-६।

१३. त्वामेव हि प्रतीक्षन्ते पर्जन्यामिव कर्षकाः २.११२.२, २.३२.१३ भी देखिये।

१४. केदारस्येव केदारः सोदकस्य निरूदकः। अपस्नेहेन जीवामि------ ६.५.११।

१५. तुलना कीजिये-प्रावृषीव महानद्याः स्पृष्टकूलं नवाम्भसा २.२०.४६।

१६. गोमती गोमुतानूपाम (गोयुक्तजल प्रदेश विशिष्टान २.४६.१०)

१७. अचिरेंण तु कालेन परीवाहन्षहूदकान्। चक्रुर्विविधाकारान्स गरप्रतिमा बहून, २,८०,११

१८. निर्जलेषु च देशेषु खानयामासुरन्तमान्।

उदपानान्बहुविधान् वेदिकापरि-मण्डितान्, २, ८०, १२

१९. विस्नावितां रोधोभंगादिना अनानिर्गमित जलामित्यर्थः,

पर गोविन्दराज की टीका, १५, १६, १६

२०. तुलना कीजिये – इक्ष्वाकूणमियं भूमिः सशैलवन कामना, ४, १८, ६

२१. तुलना कीजिये – "एतौ दृष्ट्वा कृशौ दीनौ सूर्यरश्मिप्रतपितौ।

वध्यमानौ वतीवदौ कर्षकेण दुरात्मना" २, ७४; २३

२२. तुलना कीजिये – वर्षास्थिव च सुक्षेत्रे सर्व सम्पघते त व ४, ७, २०

२३. वातातयक्लान्तमिव प्रणष्टं वर्षेण बीजं प्रतिसंजहर्ष ५, २६, ६

२४. कालोऽप्यं गभिवत्यत्र संस्थानामिव पक्तये ३, ४६, २७

२५. त्वां दृष्टवा प्रियवक्तारं सं प्रहष्यामि वानर।

अर्धसंजात सस्येव वृष्टिः प्राप्य वसुन्धरा, ५, ४०, २

२६. विपक्ण शालिप्रसवानि भुक्तवा प्रहर्षिता सारसचारु पंक्तिः।। ४, ३०, ४७

२७. सर्वकामफलाः वृक्षाः सर्वे फलसमन्विताः ६, २७, ३६, सर्वकामफलद्रुमाः ६, २७, ३४,

नित्यमूला नित्यफलास्तर वस्तत्र पुष्पिताः। ६, १२८, १०२

२८. चौधरी शिवदास – 'कांकार्डन्स ऑफ द फौना इन द रामायण' (इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, २८. १२ से ३०. २ तक)

२९. देखिये क्रमशः – २, ४०, ४३; ४, ४६, १७; २, ४६, १०

३०. दर्दश भवने तस्मिन् महतः संचयान् कृतान्। मृगाणां महिषाणां च करीषे,

शीतकारणात् २, ६६, ७

३१. मदोत्कताः सम्प्रति युद्धलुब्धा वृषागवां मध्यगता नन्दति। ४, ३०, ३८; ४, २३, २६;

२, ४, ४, ६

३२. अन्तःपुरेऽति संवृद्धान् व्याघ्रवीर बलोपवान्।

देष्ट्रायुक्ताम हाकायान् शुनश्चो – पायनं ददौ २, ७०, २०

३३. देखिये – ३, ५५, ३१; ६, १६, ६–८; ५. ४७, २०

३४. २१.५४, ६.१३.१६, ६.२४.३८, २.७४.३५; ५.१.६४,

३५. हयानारूह्य संमतान्। २.६८.१० (जवनत्वेनाध्वश्रम सहत्वेन च संमतान् – गोविन्दराजः)।

३६. ७.१.१४–५

३७. १२.१०.१४, २.१०.१५

३८. ३.५५.८, ३.५५.१०

३६. दान्तकांचनराजतीः (दन्तादिभर्याः प्रतिमाः सन्धारयदिथः स्थैरिति शेषः) ५, ६, ६

४०. स्वभावसिद्धै र्विमलैर्धातुमिः समलंकृतम् १.६.५

४१. सुवर्णप्रतिरूपेण तप्तनैव कुशाग्निना ३.२८.२०,

४२. अग्नौ विवर्ण परितप्यमानं किदूदं यथा राघव जातरूपम् ४.२८.१८

४३. निर्यासरसमूलानां चन्दनानां सहस्रशः ३.५५.२

४४. वगिजश्च महाधनाः। शोभयन्तु कुमारस्य वाह्निनीः सुपंसारिताः २.३६.३

४५. तुलना कीजिये – नाराजके जनपदं वणिजो दूरगामिनः। गच्छन्ति क्षेमम – ध्वानं बहुपण्यसभा चितः २.६७.२२

४६. तुलना कीजिये – मया विरहिता बाला रक्षसी भक्षणाय वै (सार्थेनेव परित्यक्ता भक्षिता बहुबान्धवा ३.६०.३४, भी देखिये। ४.६७.४८

४७. तुलना कीजिये – नाराजके जनपदे धनवन्तः सुरक्षिताः। शेरते विवृतद्वाराः कृषिगोरक्षाजीविनः २.६७.१८

४८. २.५७.१५, १.६१.१५, २.६७.५५, १.१.१००, १७.३.४, २.७१.४।

४६. सागरे भारूताविष्टाा नौरिवासीदत्ता कपिः। ५.१.६५

५०. २.५६.२८–३१, ३.२१.१२, ६.७.२०।

५१. १२.८२.८।

५२. ६.३.२।

५३. गवां शतसहस्रेण विक्रीणीषे सुतं यदि। १.६१.१३।

५४. तं तें निण्कसहस्रेण ददामि द्विजपुंगव १२.३२.१०।

५५. रूक्मनिष्कसहसे दे--- सत्कृत्य केकयीपुत्रं केकयो धनमाविशन्। २.७०२।

५६. अष्टादशसहस्राणि सुवर्णस्य महात्मनोः।
प्रयच्छ शीघ्रं काकुत्स्थ यदन्यदाभि–कांक्षितम। १७.६४.१७–८।

५७. उघक्य प्रक्षिपेच्चापि तस्या द्वे धनुःशते।
४.११.७२ द्वावेश तत्र विहितौ बाहुत्यस्तपरिग्रहौ १.१४.२३।

५८. पश्य द्रोणप्रमाणानि लम्बमानामि लक्ष्मण।
मधूनि मधुकारीभिः सम्भृततानि नगे नगे।। २.५६.८।

५६. २.१४.४०-१।

६०. ६.१२८.६२।

६१. २.८३.११।

६२. अभिषेचनिक सर्वमिदमादाय राघव। प्रतीक्षन्ते

त्वां स्वजनः श्रेणयश्च नृपात्मज।। २.७६.४।

६३. प्रापघत महामार्गमभर्य भयदर्शिनाय। २.४६.२६।

६४. प्रचोदयामास ततस्तुरंगमान्स सारथिर्येन यथा तपोवनम। २.४६.३३।

६५. ततोऽभ्यक्ति रन्त्वन्ये लाजैः पुष्पैश्च सर्वतः।

समुच्छित पताकासु रथ्याः पुरवोत्तमे।।

६.१२७.८, २.१७.३ भी देखिये।

६६. क्रियन्तां शिल्पिाभिः पन्थाः समानि विषमाणि च। रक्षिणश्चानुसंयान्तु पथि दुर्गविचारिकाः। २.७६.१३।

६७. तं व्रजन्तं मुनिवरमन्वगादनुसारिणाम् शकटीशतमात्रुं तु प्रयाणे ब्रह्मवादिनाम्। १.३१.१७।

६८. धुरमेकाकिना न्यस्तां वृषमेण बलीयसा। किशोखदुगुरूं भार न वोडमह मुत्सहे।। ६. १२८.३

६९. नृणां शतानि पंचाशद्व्यायतानु महात्मनाम्।

मंजूषामष्ट चक्रां तां समूहुस्ते कथंचन। १.६७.४।

७०. नावां शतानां पंचानां कैवर्तानांशत शतम्।

सन्नद्धानां तथा यूनां विष्ठन्त्वि-त्यभ्यचोद्यत् २.८४.८।

७१. मुखर्जी राधाकुमुद- 'हिस्ट्री आफ इंडियन, शिपिंग, पृ० २६।

७२. अन्या स्वास्तिकविजेया महाघण्ताधराधराः।

शोभमानाः पताकिन्यो युक्त वाहाः सुसंहता।। ३.८६.११।

७३. वैद्य चिंतामणि विनायक- 'द रिडिल आफ द रामायण, पृ० १६५।

७४. देखिये- ५.१०.३७, २.५५.१४, २.८६.२०, २.८४.७, २.५२.६, २.५२.८।

७५. जर्नल आफ अमेरिकन ओरिंयटल सोसायटी, (भाग १३) में श्री हॉपकिन्स का लेख।

७६. कच्चिन्नोग्रेण दण्डेन भृशमुद्वोजिताः प्रजाः। २.१००.२७।

७७. बलिषड्भाग युद्धत्य, नृपस्यः रक्षितुः प्रजाः।

अधर्मी योऽस्य सोडस्यास्तु यस्यार्योडनुमते गतः। २.७५.२५, अर्धमः सुमहान्नाथ भवेत्तस्य तु भूपतेः। यो हरेद्बलिषड्, भागं न च रक्षति पुत्रवत्। ३.६.१।

७८. मगस्थनीज, ३४, स्ट्रबो, १५.१.५०-५२।

७६. वही, ४.२, धान्यस्ने हक्षारलवणगन्ध भैषज्य द्रव्याणां समवर्षोपघाते् द्वादशपणो दण्डः।

८०. रामायण, अयोध्याकाण्ड, १०३।

८२. रामायण, अयोध्याकाण्ड, ६७.२२।

नाराजके जनपदे वणिजो दूरगामिनः गच्छन्ति, क्षेममध्यायनं बहुपण्यसमान्वितः।

८३. वही, बालकाण्ड, अध्याय ६, उत्तरकाण्ड, अध्याय १३।

८४. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय १६६, २२१, सभापर्व, २८.३०.३१, ४६.५१।

८५. रघुवंश, १४.३०।

८६. रामायण, बालकाण्ड, ६, नानादेशनिवासैश्च वणिक्भिरूसेषितम।

८७. वही, अयोध्याकाण्ड, ६७.२२, नाराजके जनपदे वणिजो दूरगामिनः।
गच्छन्ति क्षेममध्वानं बहुपण्यसमाचिताः।

८८. रामायण, बालकाण्ड, ६८.७।

पंचम अध्याय

रामायण कालीन समाज एवं अर्थव्यवस्था पर वैदेशिक प्रभाव

प्राचीन भारत मे आर्य एवं अनार्य संस्कृतियों का बोलबाला था। उत्तरी भारत का आर्य साम्राज्य था, तथा लंका का राक्षस-साम्राज्य, दोनों अपने-अपने प्रभाव का विस्तार करने में लगें हुये थे ओर इसी प्रसंग को लेते हुये इन दोनों का आपस में आर्यो और राक्षसों के बीच अनेकों बार भयंकर युद्ध भी हुये। जहाँ आर्यावर्त में राक्षसों ने लवणासुर, ताटका, खरदूषण को खड़ाकर अपने क्षेत्र की बृद्धि की, वहाँ आर्यो ने भी वानर जाति से मित्रता कर ली और दक्षिण में अपना प्रभुत्व स्थापित करके विस्तृतीकरण किया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन राजनीति में संधि विग्रह के अनेक अवसर उपस्थित थे, जिनके अध्ययन से सैन्य संचालन, कूटनीतिक सबंध, युद्ध-प्रणाली, सैनिक शिष्टाचार आदि की अनेक सूचनाएं प्राप्त की जा सकती है।

तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था में राजा स्वंय सैन्य-विभाग का संचालन अमात्यों की सहायता से करता था। दशरथ के अमात्य दृढ़विक्रमाः युक्ता बलस्य व परिग्रहे और वीराः थे।१। रामायण काल में राज्य छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था इनमें प्रायः परस्पर संघर्ष हुआ करते थे। शक्तिशाली राज्य दुर्बल राज्यों को अपने अधीन करने के निमित्त युद्ध किया करते थे। एक दूसरे का उत्कर्ष देखकर भी राज्य दूसरे राज्य को दबाने का प्रयत्न करना था। युद्ध दो तरह के बताये गये हैं।

पहला- धर्म युद्ध

दूसरा- कूट युद्ध

धर्मयुद्ध का तात्पर्य उस युद्ध से है जिसमें हाथी सवार, घुड़सवार, पैदल और रथों से युद्ध होते थे इसमें आचरण सम्बन्धी सभी नियमों का पालन किया जाता था। ठीक इसके विपरीत युद्ध को कूटयुद्ध कहा जाता था। इस प्रकार युद्ध के तीन और प्रकार बताये गये है।

पहला- प्रकाश अथवा धर्म युद्ध

दूसरा- कूट युद्ध

धर्मयुद्ध का तात्पर्य उस युद्ध से है जिसमें हाथी सवार, घुड़सवार, पैदल और रथी से युद्ध होते थे। इसमें आचरण सम्बन्धी सभी नियमों का पालन किया जाता था। ठीक इसके विपरीत युद्ध को कूट युद्ध कहा जाता था। इस प्रकार के युद्ध के तीन और प्रकार बताये गये हैं-

पहला - प्रकाश अथवा धर्मयुद्ध

दूसरा - कूट युद्ध

तीसरा - तूष्णी युद्ध

प्रकाश युद्ध में देश, काल तथा विक्रय का विचार कर लिया जाता है। कूट युद्ध में छल, कपट, लूटमार, अग्निदाह, वर्ग विध्वंस आदि का प्रयोग किया जाता है। तूष्णी युद्ध में विष, औषधि, गुप्त पुरुषों द्वारा शत्रुवध इत्यादि का प्रयोग किया जाता है।

धर्मयुद्ध- इस युद्ध में निर्धारित नियमों का पालन करते हुए युद्ध किया जाता था। युद्ध करने से पूर्व युद्ध की घोषणा करनी चाहिए। समान पक्ष के साथ युद्ध करना चाहिए। शस्त्र रहित, घायल, पराजय स्वीकार किये हुए शत्रु के साथ वध न करना चाहिए। युद्ध में छल, कपट तथा अग्निदाह का प्रयोग न करना चाहिए।

धर्मयुद्ध का उद्देश्य- धर्म की संस्थापना तथा अधर्म का नाश करना ही धर्म का उद्देश्य बताया गया है। सार्वभौम सम्राट बनने तथा राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञ करने की उच्चाभिलाषा से धर्मयुद्ध किये जाते थे। धर्मयुद्ध द्वारा राजा का पराक्रम प्रकट होता था।

कूट युद्ध- छल-बल द्वारा बैरी को पराजित करना ही इस युद्ध का मुख्य उद्देश्य है। महाभारत के अनुसार जो सैनिक न हो या युद्ध करने योग्य न हों उन्हें नहीं मारा जाये। जहाँ युद्ध हो वहाँ के निवासियों की खेती तथा सम्पत्ति को किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचाया जाये।

वीजिगीषु के प्रकार- प्रस्तुत सन्दर्भ में तीन प्रकार के वीजिगीषु का उल्लेख किया गया है-

धर्म विजयी, असुर विजयी, लोभ विजयी। धर्म विजयी का अभिप्राय उससे है, जो शत्रु द्वारा पराजय स्वीकार करने मात्र से संतुष्ट हो जाता है। लोभ विजयी धन तथा धरती

को प्राप्त करने से संतुष्ट हो जाता है। असुर विजयी शत्रु को नष्ट करने से संतुष्ट होता है।

युद्ध का समय– इसके तीन प्रकार के भेद बताये गये हैं। पहला शीत युक्त, उष्ण युक्त, वर्षायुक्त। कहा जाता है कि जो काल अपनी सेना के व्यायाम के लिये सबसे अधिक उपयुक्त है, वही काल युद्ध के लिये सबसे उपयुक्त है। इसके अतिरिक्त युद्धकाल शत्रु सेना के विपरीत न हो। उष्ण तथा अल्प भरण वाले भू-भाग पर ग्रीष्म ऋतु में आक्रमण करना चाहिए।

सेना का गमन मार्ग– युद्ध को गमन करने से पूर्व मार्ग में जहाँ सेना को रुकना हो वहाँ रसद सामग्री आवश्यकता से दुगुनी लेकर चलना चाहिए।

सेना को उत्साहित करना– उत्साह रहित सेना व्यर्थ होती है। प्राचीन आचार्यों ने सैनिकों को प्रोत्साहित किये जाने की व्यवस्था की है। राजा को सैनिकों को प्रोत्साहित करने के लिये यह कहना चाहिए– " मैं राजा नहीं हूँ, मैं भी तुम्हारी भाँति वेतन भोगी हूँ, मुझें तुम लोगों के साथ इस राज्य का भोग करना चाहिए। मैं जिस तरह शत्रु पर आक्रमण करूँगा, तुम्हें भी उस पर तुरन्त प्रहार करना चाहिए। राजा को सांसारिक प्रलोभन देकर कहना चाहिए कि शत्रु राजा का वध करने वाले वीर को लाखों का पुरुस्कार मिलेगा। इन प्रलोभनों के अतिरिक्त राज्य के मंत्री, पुरोहित को सेना के समक्ष स्वर्ग प्राप्ति का लोभ भी देना चाहिए।

व्यूह निर्माण– अनेक प्रकार के व्यूह निर्माण बताये गये हैं। दण्ड व्यूह, भोग व्यूह, मण्डल व्यूह, संहत, असंहत, चाप व्यूह, वापकुक्षि व्यूह, प्रतिष्ठि व्यूह, चम्मुख व्यूह, चक्रव्यूह, बलव्यूह आदि।

युद्ध में विभिन्न प्रकार के बाजों तथा ध्वजों का संकेत द्वारा व्यूह रचना का संकेत दिया जाता था। जैसे तुरी, ध्वजा, पताका आदि।

युद्ध विजय के बाद राजा का व्यवहार– युद्ध के द्वारा तीन प्रकार के लाभ होते हैं। नवीन राज्यलाभ, खोये हुए राज्य की पुनः प्राप्ति, पिता के समय गये धन का लाभ। कहा जाता है कि नवीन लाभ होने पर राजा को प्रजा के साथ कुछ कार्य करने चाहिए। मान-दान, करमुक्ति द्वारा प्रजा को संतुष्ट करना, अपने शत्रुओं को वश में करना, जिन्होंने विशेष

परिश्रम किया है उसे विशेष पुरुस्कार देना, प्रजा पर उचित कर लगाना, समस्त बंदियों को मुक्त करना चाहिए।

लंका में सैन्य विभाग एक मंत्रि विशेष के अधीन रहा होगा। क्योंकि विभीषण ने रावण के मंत्री की विशेषतायें बताते हुए कहा था कि उसे स्वपक्ष और शत्रु पक्ष के बलाबल का पता होना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि उसे अपने राज्य तथा शत्रु के राज्य की स्थिति, वृद्धि और क्षय की जानकारी होना चाहिए, जिससे उस पर विचार करके राजा को सही परामर्श दिया जा सके।

सेना के चार भाग होते थे- पैदल (पदगति), घुड़सवार, सादी, रथी और गजारोह। इसीलिये वह 'चतुरंगबल' कहलाती थी। सैनिकों की श्रेणियाँ भी चार प्रकार की होती थीं।३। मित्रबल (मित्र राजाओं के सैनिक), आटवि बल (जंगली जातियों के सैनिक), भृत्यु बल (वैतनिक सैनिक, जिन्हें आजकल स्टैंडिंग आर्मी कहा जाता है), द्विषद बल (शत्रु को छोड़कर आये हुये सैनिक)।

पैदल सेना को दो भागों में बाँटा गया था। तलवार भाले से लड़ने वाले सैनिक तथा धनुष-बाण से लड़ने वाले सैनिक। सैनिकों के हाथी-घोड़ों की देखभाल करने के लिये 'अश्वबंध' और 'कुंजरग्रह' नियत रहते थे।४। लंका युद्ध में त्रिशिरा राक्षस साँड़ पर बैठकर रण-भूमि की ओर गया था।५। आवागमन का मार्ग, तंबू, पुल आदि बनाने वाले खनकों और परिसारकों का दल सेना के आगे जाया करता था। खाद्य सामग्री तथा अन्य आवश्यक सामान एक और दल के सुपुर्द रहते थे। सेना के पीछे-पीछे व्यापारी, सैनिकों की स्त्रियाँ तथा दास रहते थे।

तत्कालीन नगर दुर्गों के रूप में बनाये जाते थे। उस समय की अर्थव्यवस्था मजबूत दिखाई पड़ती है। ये दुर्ग सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों, आक्रमण-प्रत्याक्रमण के साधनों तथा कूटागारों (तहखानों, तिलस्मों) से युक्त थे। दुर्ग के चार प्रकार होते थे- नादेय (समुद्र या नदी से घिरा हुआ, जैसे लंका), पार्वत (पहाड़ियों से घिरा हुआ, जैसे किष्किंधा), वन्य(घने जंगलों में घिरा हुआ, जैसे लंका) और कृत्रिम (चहारदिवारी और खाई से घिरा हुआ, जैसे अयोध्या, लंका और सांकाश्या)।

सेनाध्यक्ष को सेनानायक कहते थे। उसे राजा से सारी क्रिया-कलाप पूँछनी पड़ती थी और

उसके अधीन कई बलाध्यक्ष और यूथपति होते थे। राजा और सेनापति युद्ध परिषद की राय से कार्य करते थे। भारतीय महासागर के तट पर राम और सुग्रीव ने परामर्श करने के लिये अपनी युद्ध परिषद की बैठक बुलाई थी। सैन्य अधिकारियों का निर्वाचन, उनकी योग्यता, साहस एवं चतुराई के आधार पर किया जाता थ।६। सेना का सबसे विश्वसनीय अंग वह था जिसमें 'कुल पुत्र' (प्रतिष्ठित कुलोत्पन्न व्यक्ति) होते थे।७। दशरथ, सुग्रीव और रावण की सेना में महत्वपूर्ण सैन्य पदों पर ऐसे ही विश्वसनीय व्यक्ति नियुक्त थे, जिन्हें कुल परम्परा से अच्छे संस्कार प्राप्त हुये थे।

अयोध्या के सैनिकों का अपना अलग वर्ग था। वे 'भट' ।८। या 'योध' कहलाते थे। यह संज्ञा उन क्षत्रियों के लिये प्रयुक्त होती थी, जिनका पेशा केवल लड़ना होता था। लंका और किष्किंधा में सैनिकों का कोई अलग वर्ग नहीं था, वहाँ तो प्रत्येक पुरुष सैनिक था। अयोध्या में सैनिकों को वेदों और शास्त्रों का ज्ञान अपेक्षित था। हाथी, रथ, घोड़े पर से युद्ध करने की शिक्षा दी जाती थी। साम, दान, भेद और दंड से उसे अभ्यस्त रहना पड़ता था।६। अयोध्या, किष्किंधा और लंका के सैनिक प्रायः विवाहित थे। इसलिये इनकी सेना में स्थिरता बनी रहती थी, क्योंकि गृहस्थ सैनिक देश और राजा के लिये नहीं, अपितु अपने परिवार के लिये उद्यत रहेंगे। सैनिकों को पुरुस्कार देकर संतुष्ट रखा जाता था।१०। राम ने भरत से पूँछा कि सैनिकों को देने के लिये नियत किया हुआ समुचित वेतन और भत्ता तुम समय पर दे देते हो? देने में विलंब तो नहीं करते? यदि समय बिताकर भत्ता और वेतन दिया जाये तो सैनिक अपने स्वामी से असंतुष्ट रहते हैं और कार्य का अनर्थ हो जाता है।११। युद्ध की समाप्ति पर सैनिकों को उपहार तथा युद्ध की लूट का हिस्सा दिया जाता था। लंका विजय के बाद राम ने विभीषण से कहा था कि इन वानरों ने प्राणों का मोह त्यागकर विजय दिलाई है, इसलिये उन्हें मेरी तरफ से रत्न और विभिन्न प्रकार का धन देकर उनका सम्मान करो, जो राजा दान से सैनिकों को खुश नहीं रखती, सेना उसे छोड़ देती है।१२।

सैनिक शासन बड़ा कठोर था। सुग्रीव के कथन से स्पष्ट होता है कि नियम कठिन थे क्योंकि सुग्रीव ने कहा जो सैनिक मेरी आज्ञा पाने के दस मिनट के अन्दर उपस्थित नहीं होगा, उसका वध कर दिया जायेगा।१३। लंका चढ़ाई के समय भी यह

चेतावनी दी थी कि जो सैनिक पीठ दिखायेगा और आदेशानुसार नहीं लड़ेगा, उसे मार डाला जायेगा।१४। राम भी कठोर अनुशासक थे। लंकाभियान करते समय वानरों को मार्ग में पड़ने वाले नगरों और ग्रामों को बचाकर चलने का आदेश दिया था, क्योंकि उन्हें भय था कि सैनिकगण नागरिकों को त्रस्त करेंगे और उनकी संपत्ति को हानि पहुँचा देंगे। राम को 'भीमकोप' कहा गया है।१५। सैनिकों में 'सौभ्रातृमिलन' की प्रथा थी जिसमें युद्ध की समाप्ति पर दोनों पक्षों के सैनिक पूर्व बैर भुलाकर नई मित्रता स्थापित करते थे। राम-रावण युद्ध के बाद दोनों पक्षों के सैनिकों ने एक साथ मिलकर जयघोष किया और साराबैर भुलाकर परस्पर आलिंगन किया था। बाली के वध के बाद भी राम और बाली के अनुयायियों में प्रेम और मित्रता का ऐसा ही संबन्ध स्थापित हुआ था।

उस समय के सैनिकों के सुन्दर और भड़कीले वस्त्राभूषण पहनने तथा अपने वाहनों को अलंकृत करने का बड़ा शौक था। सुरापान के शैकीन थे। पशु-पक्षी भी साथ ले जाते थे। अयोध्या के सैनिक विलासी जीवन में अभ्यस्त थे। उनके स्नान-प्रसाधन के लिये दासियाँ लगी रहती थीं। अंगराग, चंदन, दंतधावन, अंजन, दर्पण, कंघा आदि सामग्री का वे प्रतिदिन उपयोग करते थे। इसीलिये महर्षि भारद्वाज ने भरत के साथ उनका आतिथ्य करते समय उन्हें ये सब वस्तुयें भेंट कीं।१६। लंका के सैनिकों के घर वैभवशाली गवाक्षों से युक्त, मुक्ताओं से सुशोभित, चंदन, अंगराग से सुवासित, सोने-चाँदी के पात्रों, बहुमूल्य शयनासनों और मणिरत्नों से सुसज्जित तथा कंबल, चंवर, कस्तूरी, व्याघ्र-चर्म, नाना प्रकार के वस्त्रों, अस्त्र शस्त्रों तथा कवचों से सम्पन्न थे।१७।

उस समय सैनिकगण अपने साथियों से मिलने पर अपने वस्त्रों को हिलाकर उनका स्वागत करते थे। जब हनुमान आकाश-मार्ग द्वारा लंका से लौट रहे थे, तब सारे वानर वृक्षों पर चढ़कर उनके स्वागत में उत्साह से अपने वस्त्रों को रह-रह कर हिलाने लगेथे।१८। रामायणकालीन सैनिकों का जहाँ एक ओर कठोर अनुशासन दिखाई पड़ता है वहीं उसके दूसरी ओर नैतिकता का भी उल्लेख मिलता है। युद्ध से परांगमुख होकर भाग जाना अपनी कीर्ति में बट्टा लगाना था।१९। और स्वामी के हितार्थ युद्धभूमि में प्राण त्याग करना पुण्योत्पादक था।२०। सोते हुए, शस्त्रास्त्रों से हीन, थके हुए, नशे में चूर या स्त्रियों से घिरे हुए शत्रु पर वार करना अनुचित था।२१। जब रावण थक गया तो राम ने उसे घर

लौटने के लिये और विश्राम के पश्चात् नये रथ में नया धनुष लेकर आने के लिये कहा था।२२। शत्रु की कमजोरी का लाभ उठाकर भी वार किया जाता था। लक्ष्मण ने यज्ञकर्म में व्यस्त इंद्रजित पर वार किया था और राम ने छिपकर बाली पर बाण चलाया था। उत्तरकाण्ड में शत्रुघन ने लवणासुर पर अकस्मात् आक्रमण किया था, जबकि उसके पास विख्यात शूल नहीं था। हनुमान ने लंका में शत्रु-दृष्टि से बचने के लिये छद्म वेश धारण किया था।

बिना कारण के लड़ाई करना गलत माना जाता था। लड़ाई के पूर्व शत्रु को यह सूचना देनी चाहिए कि निर्धारित माँगे पूरी न होने पर युद्ध घोषित कर दिया जायेगा। बाली ने राम से कहा था कि अकारण ही किसी पर आक्रमण कर देना अशोभनीय है तथा उदासीन (तटस्थ) के प्रति युद्ध छेड़ना अनुचित है।२३। रावण ने मारीच से शिकायत की थी कि राम ने मेरी सेना बिना सूचना दिये ही नाश कर डाली। उत्तेजित न किये जाने पर भी मेरी भगिनी को विरूप कर दिया।२४।

रामायण में युद्धों के बारे में बताया गया है कि युद्ध आठ कारण से होते थे।

पहला- अपहृत नारियों को मुक्त करने तथा अत्याचारी का नाश करने के लिये। उदाहरणार्थ राम-रावण युद्ध।

दूसरा- प्रतिशोध के लिये, परशुराम ने समस्त क्षत्रिय जाति का नाश करने की ठानी थी क्योंकि उनके पिता की एक क्षत्रिय राजा ने हत्या कर दी थी।

तीसरा- मित्रों की सहायता के लिये। राम-रावण युद्ध में सुग्रीव आदि वानरों ने राम के मित्र के रूप में भाग लिया था, दशरथ ने भी इंद्र की सहायता से शंबरासुर से मोर्चा लिया था।

चौथा- नारी के लिये बाली और मायावी के बीच एक स्त्री की प्राप्ति के लिये (स्त्रीकृत) युद्ध हुआ था तथा सीता को प्राप्त करने में असफल राजाओं ने जनक पर हमला बोल दिया था।

पाँचवा- भूमि, सोने और चाँदी के लिये जैसा कि बाली ने मरते समय राम को बताया था।२५। उत्तरकाण्ड में युद्ध के तीन और कारण निर्दिष्ट हैं।

छठवाँ- सार्वभौमिक सत्ता स्थापित करने के लिये रावण ने दिग्विजय की इच्छा से तत्कालीन

राजाओं को चुनौती दी थी।

सातवाँ- राज्य विस्तार के लिये। राम ने गांधार, कारूपथ और चन्द्रकान्त के राजाओं को परास्त कर उनके प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया था।

आठवाँ- कुशासक पड़ोसी राजाओं को दण्ड देने के लिये। राम के आदेशानुसार शत्रुघन ने लवणासुर के राज्य पर आक्रमण कर उसे कोसल साम्राज्य में मिला लिया था।

प्राचीन भारत में युद्ध का अन्तिम उपाय यह होता था कि पहले उसे साम, दान, दण्ड, भेद की चेष्टा की जाती थी। जब इनमें असफल हो जाते थे तब दण्ड का प्रयोग किया जाता था।२६।

राजा ऐसे दूत को चुनता था जो चतुर, व्यवहारकुशल होते थे, उन्हें राजा के आदेशों का पालन करना पड़ता था। जो दूत अपने राजा की आज्ञा की अवहेलना करता, तत्पश्चात् अपना मत प्रकट करता, उसके लिये वध का विधान किया गया है।२७। हनुमान ने गुप्तचर होने पर भी रावण के समक्ष अपने को निर्भीकता से रामदूत बतलाया था।२८। रावण के गुप्तचरों- शुक और सारण, ने भी अपने को रावण का दूत बताकर वानरों के बंधन से मुक्ति पायी थी और लौटती बार वे रावण के लिये राम का संदेश ले गये थे।२६।

युद्ध के दौरान सेना को एकत्रीकरण का वर्णन हमें राक्षसों और वानरों के प्रसंग में मिलता है। राम की चढ़ाई के समय रावण के सैनिक लंकानगरी में ही रहा करते थे। रावण ने शीघ्र ही अपने बलाध्यक्षों को आदेश दिया कि जल्दी से घौंसा (भेरी) बजाकर सैनिकों को इकट्ठा किया जाये, परन्तु उन्हें इसका कारण न बताया जाय।३०। परिस्थितवश इस सैनिक हलचल का कारण प्रकट न करना ही आवश्यक समझा गया।

राक्षस सेना बहुत बिखरी हुयी थी, उसका संग्रह करना संभव नहीं था। सुग्रीव ने अपने सेनापति नील को आदेश दिया कि मेरी सेना पंद्रह दिन के अन्दर किष्किंधा में इकट्ठी हो जाय तथा सभी यूथपति अपनी-अपनी सेना के साथ आ जाये।३१। नील ने तुरन्त ही आज्ञा का पालन कर दूतों को प्रेषित कर दिया। सैनिकों के आ जाने पर उन्हें अलग-अलग दलों में संगठित किया गया, जिसके लिये अपना अलग बलाध्यक्ष था।३२।

वर्षाकाल में युद्ध की तैयारियाँ स्थगित कर दी जाती थीं।३३। ग्रीष्मकाल में सेना को नदी पार कराया जाता था।३४। वर्षांत में शरत्काल के प्रारम्भ में सामरिक अभियान किये

जाते थे। राम ने प्रस्रवण पर्वत पर वर्षा के चार मास शरत्काल की प्रतीक्षा में बिताये थे। वर्षाकाल समाप्त होते ही श्वेत आकाश, निर्मल चन्द्रमण्डल तथा चाँदनी से लिपी शरत्काल की रात्रि को देखकर।३५। उन्होंने सुग्रीव को सीतान्वेषण कराने को प्रेषित किया था। शत्रुघन ने मधुपुरी पर आकस्मिक आक्रमण करने के लिये वर्षाऋतु में भी अभियान किया था।३६। शीतकाल में सेना को एकत्र किये जाने का विवरण हमें भरत की चित्रकूट यात्रा से मिलता है। भरत ने अमात्य सुमंत्र को आज्ञा देकर शीघ्र ही व्यवस्था करवा दी गई और यात्रा का उद्‌देश्य सैन्य अधिकारियों तथा प्रमुख नागरिकों को बता दिया गया था।३७।

ज्ञात प्रदेशों में कूच करते समय सेना के पड़ाव की व्यवस्था पूर्वनियोजित होती थी, जैसा कि भरत सेना की चित्रकूट यात्रा से स्पष्ट है। इन पड़ावों पर अनेक शिविर लगाये जाते थे। आवागमन के मार्गों पर क्रय-विक्रय योजना रहती थी। राजशिविर की प्रतिष्ठा शुभ मुहूर्त में की जाती थी। उसका निर्माण ईंट चूने के पक्के फर्श पर किया जाता था। आगे कूच करते समय इन शिविरों को जलाकर नष्ट कर दिया जाता था।३८।

तत्कालीन सामरिक अभियानों का विशद विवरण हमें राम के लंका अभियान से पता चलता है। आक्रमणकारी सेनापति को शत्रु प्रदेश के दुर्ग, प्रवेशमार्ग, नगरद्वार स्थित, शत्रुओं की संख्या, शत्रु के प्रतिरक्षात्मक साधनों की पूरी जानकारी प्राप्त कर लेना चाहिए। राम ने अपनी आक्रमण योजना बनाते समय यह सभी जानकारी हनुमान से प्राप्त कर ली थी। कूच करने से पूर्व राम ने सेना के निर्बल और अनावश्यक अंगों को किष्किंधा में ही रह जाने का आदेश दे दिया था।३९। जिससे वे अपने देश पर किसी आकस्मिक आक्रमण का सामना कर सके।

सेना का अग्रभाग 'मूर्धन्य' कहलाता था, जबकि दायें-बायें के भाग 'पार्श्व' और मध्य भाग 'कुक्षि' या उरस कहलाते थे। किष्किंधा से लंका का मार्ग बीहड़ जंगलों और पहाड़ियों से होकर जाता था। अतः सुरक्षा की दृष्टि से राम ने प्रथम सेनापति नील को आज्ञा दी कि तुम चुने हुये सैनिकों को लेकर सेना के शीर्ष-भाग में प्रयाण करो और देखते रहो कि मार्ग निरापद है अथवा नहीं। इस टुकड़ी का यह कर्तव्य था कि पीछे आने वाली सेना को ऐसा मार्ग चुने जो अन्न-जल से परिपूर्ण हो। राम जानते थे कि शत्रु लोग मार्ग में छिपकर बैठ जाते हैं तथा अन्न-जल में भी विष मिला देते हैं। इन संकटों से बचनें के लिये

नील को उन्होंने सतर्क कर दिया था तथा जंगलों और घाटियों में छिपे हुए शत्रु सैनिकों का पता लगाते रहने का आदेश दे दिया था।४०।

वानर सेना के दाहिने पार्श्व का नेतृत्व गज, गवय और गवाक्ष जैसे बलवान वानरों के हाथ में था। बायें पार्श्व की रक्षा गंधमादन कर रहे थे। राम, लक्ष्मण और सुग्रीव सेना के मध्य भाग में रहकर सैनिकों का उत्साह बढ़ा रहे थे। सेना का पृष्ठ भाग बुद्धिमान जांबवान के सुपुर्द था। इन सभी अधिकारियों का कर्तव्य था कि सैनिकों को निरन्तर सचेष्ट रखें और कूच करते समय प्रोत्साहन देते रहें।४१।

लंका की ओर अभियान करते समय सेना रात-दिन कूच करती हुयीं राम की सेना दक्षिणी समुद्र तट पर आगे बढ़ी। महेन्द्र पर्वत पर चढ़ाई करके उत्तर की ओर और जल्दी से हिन्द महासागर के तट पर जंगल में पड़ाव डाला। पूरे मार्ग के दौरान कोई दूसरा पड़ाव डालनें की सूचना नहीं मिलती।

समुद्र तट पर सेना को तीन भागों में बाँटा गया। मैंद और द्विविद वानरों को छावनी पर बरावर निगरानी करने के लिये कार्य सौंपा।४२। क्योंकि यह अज्ञात प्रदेश था, इसलिये राम ने सेना को कठोर चेतावनी दी कि सभी लोग अपनी-अपनी टुकड़ी पर रहें और अपना स्थान न छोड़ें, क्योंकि हो सकता हैं कि शत्रु कहीं छिपा हुआ हो।४३।

नलसेतु का निर्माण होते ही राम ने तेजी से सेना को समुद्र पार कराया और लंकातट पर फल-फूलों से युक्त एक सघन स्थल में मोर्चाबन्दी की।४४। प्रधान सेनापति की आज्ञा से वानर सैनिक रात के समय लंका में लुक-छिपकर घूम-फिर सकते थे।४५। आक्रमण आरम्भ करने से पहले राम ने परामर्श के लिये अपनी सेना में प्रधान अधिकारियों की एक युद्धसमिति बुलाई और निश्चय करके सेना को सुवेल पर्वत पर स्थापित किया। इसके बाद तुरन्त ही उन्होंने अपनी सेना के साथ लंका दुर्ग पर कूच किया। राम ने पुल के रास्तों की रक्षा का प्रश्न विशेष रूप से रखा था। जब वानर सेना पुल पार कर रही थी तब विभीषण और उनके चारो साथी लंका तट पर पहरा देते रहे, जिससे समुद्र पार करते समय शत्रु सेना हमला न कर सके।४६।

राम ने लंका में डेरा डालने के बाद अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भेजा कि बिना शर्त आत्मसमर्पण करके सीता को लौटा दो अथवा लड़ाई के मैदान में उतर

आओ। रावण समझौते के लिये तैयार नहीं हुआ। तत्पश्चात वानरों ने दुर्ग की खाई को चट्टानों, पेड़ों, कीचड़ से पाट दिया और चहारदीवारी को तोड़कर नारे लगाते हुये अंदर के दुर्ग को घेर लिया। वानर सेना को चार भागों में बाँट दिया गया था। प्रत्येक भाग एक योग्य बलाध्यक्ष के अधीन था। लंका के उत्तरी प्रवेशद्वार की रक्षा रावण स्वयं कर रहा था, अतः इस स्थान पर राम स्वयं उपस्थित हुये थे।

सेना की विभिन्न प्रकार के व्यूहों में रचना की जाती थी, यथा श्येन, सूची, वज्र, शकट, मकर, दंड, पद्म आदि। राम को गरुड़ व्यूह प्रिय था। वानर योद्धा सभी राक्षस सैनिकों को मार डालते थे। सुग्रीव ने राम से आज्ञा लेकर लंका में आग लगा दी तब दुर्ग में छिपी हुयी शक्तियों को बाध्य होकर बाहर निकलना पड़ा। रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद अन्य सभी सभी प्रमुख राक्षस-वीर, राम और उनके साथियों द्वारा मारे गये।

मल्लयुद्ध या कुश्तीबाजी उस समय की सर्वाधिक प्रचलित प्रणाली थी। उसे बाहु-युद्ध, द्वन्द-युद्ध, मुष्ठि-युद्ध (घूँसेबाजी), गदा-युद्ध आदि के नाम से जाना जाता था। इन सबमें पैंतरेबाजी की कुशलता पर हार या ज़ीत निर्भर रहती थी। रामायण में सबसे रोचक मल्ल-युद्ध रावण और सुग्रीव के बीच हुआ।४७। उस समय वानर सेना सुवेल पर्वत पर डेरा डाले पड़ी थी और रावण नगर के गोकुल की छत पर बैठा था। उसे देखते ही सुग्रीव ने सुवेल के शिखर पर से ही गोकुल की छत पर कूद पड़े और उन्होंने रावण के मुकुट को खींचकर जमीन पर गिरा दिया। तब रावण ने सुग्रीव को अपनी भुजाओं में उठाकर जमीन पर दे मारा। सुग्रीव ने भी गेंद की तरह उछलकर रावण को पटका। दोनों के शरीर खून से लथे-पथे थे। दोनों में घूँसे, थप्पड़, कोहनी, पंजों से युद्ध होने लगा। लड़ते-लड़ते वे किले की खाई पर गिर पड़े, कुछ देर पृथ्वी पर पड़े रहे, फिर सांस लेकर दोनों ने एक-दूसरे को बाहुपाश में जकड़कर आपस में बाँध दिया। दोनों कसरती जवान थे, युद्ध की शिक्षा से परिचित थे। उन्होंने निम्नलिखित दाँव-पेंचों का प्रयोग किया था-

मार्जार अवस्थान- इसमें निश्चित भाव से खड़ी दो बिल्लियों की मुद्रा में मल्लों का वार करने के लिये खड़ा होना।

मंडल- ये चार प्रकार के होते थे। 'चारि', 'करण', 'खण्ड' और 'महामण्डल'। एक पैर आगे करके बढ़ना 'चारि' कहलाता है। दोनों पैर एक साथ बढ़ाकर आगे आने को 'करण'

कहते हैं। 'करण' की शैली में कई बार आगे बढ़ने को 'खण्ड' कहते हैं। जबकि तीन-चार प्रकार से 'खण्डों' का प्रयोग करना 'महामंडल' कहलाता है। उक्त सभी मण्डल दायें या दायें या दायें-बायें प्रयुक्त होने पर क्रमशः 'सव्य' 'अपसव्य' और 'सव्यापसव्य' कहलाते थे।

स्थान- कदम को आगे-पीछे, टेढ़े-मेढ़े करना 'स्थान' कहलाता था। स्थान छः प्रकार के होते थे। 'बैष्णव', 'समपाद', 'वैशाख', 'मंडल', 'प्रत्यालीढ़', 'अथालीढ़'। इनमें बाघ, सिंह, कुत्ते, बिल्ली आदि की झपटने की मुद्रा का अनुकरण किया जाता है।

गोमूत्रक- बहते हुए गोमूत्र के समान टेढ़ी-मेढ़ी गति को कहते थे।

गत-प्रत्यागत- आगे बढ़ना और पीछे हटना।

तिरश्चीनगत- उल्लू, बाज, पक्षियों की तरह तिरछी चाल से झपटना।

वक्रगत- दायें-बायें होकर झपटना।

प्रहार-वर्जन- शीघ्रता से हटकर शत्रु के वार को व्यर्थ कर देना।

वर्जन- शत्रु के वार को अपने वार से रोकना।

परिधावन- हमला करने की नीयत से प्रतिपक्षी के चारो ओर दौड़ना।

अभिद्रवण- प्रतिपक्षी का तेजी के साथ सामना करना।

आप्लाव- मेढ़क की तरह रुक-रुककर प्रतिपक्षी की ओर बढ़ना।

सविग्रह अवस्थान- आक्रमणात्मक मुद्रा में निर्भय खड़े रहना।

परावृत- प्रतिपक्षी के वार से बचने के लिये सामने न आना।

अपावृत- बगल से होकर निकल जाना, खड़े-खड़े बिना मुड़े पीछे की ओर हटना।

अपद्रुत- प्रतिपक्षी की जांघ को पकड़ने की नियत से शरीर को सिकोड़ते हुये आगे बढ़ना।

अवप्लुत- प्रतिपक्षी को लात मारने के लिये नीचा मुंह करके कूदना।

उपन्यस्त- विरोधी की भुजायें पकड़ने के लिये छाती तानकर बाहें फैलाना।

अपन्यस्त- विरोधी की पकड़ से बचने के लिये बाहों को इधर-उधर फेंकना। इस प्रकार हम कहते हैं कि जो दाँव-पेंच प्राचीन समय में विद्यमान थे, वही दाँव-पेंच आज भी किसी न किसी रूप में भारतीय पहलवानों द्वारा अपनाया जाता है।

रात के समय युद्ध नहीं हुआ करते थे। खर सूर्यास्त से पहले ही राम के साथ युद्ध समाप्त कर देना चाहते थे, क्योंकि अंधेरे में सैन्य संचालन करना कठिन होता है।

किन्तु लंका युद्ध में इन्द्रजित और रावण ने रात में भी राम और उनके वानर सैनिकों से मुठभेड़ की थी।

आर्य और राक्षस सैनिक सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करते थे। तलवारें तीन तरह की होती थीं- 'असि', 'खड्ग', 'ऋष्टि', ये क्रमशः लंबी, छोटी, दुधारी तलवार थी। राम की असि में सोने की मूठ लगी थी। धनुष को 'दण्ड' कहते थे। बाण को 'तूणी', कटारी 'कूट' होती थी। वज्र लोहे का दण्ड, मुद्गर लोहे का हथौड़ा, चक्र चक्राकार आयुध था। 'शूल', 'बर्छा' और 'त्रिशूल' तीन फल वाला बर्छा था। वाल्मीकि के अनुसार उसमें आठ घंटियाँ लगी थीं, उनमें एक डरावनी आवाज निकालती थी। मय ने उसे छल और कलापूर्वक निर्मित किया था, वायु में विद्युत गति से चलने वाली थी, उसके पीछे एक रेखा अंकित होती जाती थी।४८। 'अशनि' गदा को कहते थे।

बाण में (शर या नाराच) ही सबसे अधिक प्रयोग में लाये जाते थे। अमोघ बनाने के लिये उन्हें कभी-कभी मन्त्रों से अभिषिक्त करके छोड़ा जाता था। विष से पुते बाणों का भी प्रयोग प्रचलित था।४९। पी०सी० शर्मा ने रामायण से इन दो बाणों का संकलन किया है- 'अद्योगति', 'अग्निदीप्ति'- मुख, अंजलिक, अर्धचन्द्र, अर्धनाराच, आशीविषानन, आशुग, ईहामृगमुख, उल्कामुख, काकमुख, कंकमुख, कंकपत्रिन्, कर्णिन, खरमुख, क्षुर, क्षुरप, कुक्कुटवक्त्र, नतपर्व, नाराच, नागमय, पंचास्य, प्रसन्नाग, भल्ल, मकरानन, मार्गण, रुक्मपुंख, लेलिहान, वराहमुख, वत्सदंत, विद्युज्जिहव, विपाट, व्यादितास्य, व्याघ्रमुख, शल्य, शिलामुख, सिंहमुख, श्रृंगालवदन, सूर्यमुख, श्वानवक्त्र तथा श्येनमुख।

बचाव के आयुध भी कई प्रकार के थे। यथा- वर्म या कवच, अभेद्य कवच, आर्षभ, चर्म, गोधा (धनुष के चिल्ले की चोट से बचने के लिये बाईं कलाई पर बाँधने का चमड़ा), तनुत्राण, मर्मत्राण, अंगुलित्राण और शिरस्त्राण।

युद्ध में मर जाने वाले राम की तरफ के योद्धा रणभूमि में ही पड़े रहते थे, पर राक्षसगण के मृतकों के शव तुरन्त ही समुद्र में फेंक दिये जाते थे।५०। क्योंकि रावण को भय था कि उनकी अधिक संख्या देखकर बचे-खुचे राक्षस कहीं आतंकित न हो जायें।

किन्तु लंका युद्ध में इन्द्रजित और रावण ने रात में भी राम और उनके वानर सैनिकों से मुठभेड़ की थी।

आर्य और राक्षस सैनिक सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करते थे। तलवारें तीन तरह की होती थीं- 'असि', 'खड्ग', 'ऋष्टि', ये क्रमशः लंबी, छोटी, दुधारी तलवार थी। राम की असि में सोने की मूठ लगी थी। धनुष को 'दण्ड' कहते थे। बाण को 'तूणी', कटारी 'कूट' होती थी। वज्र लोहे का दण्ड, मुद्गर लोहे का हथौड़ा, चक्र चक्राकार आयुध था। 'शूल', 'बर्छा' और 'त्रिशूल' तीन फल वाला बर्छा था। वाल्मीकि के अनुसार उसमें आठ घंटियाँ लगी थीं, उनमें एक डरावनी आवाज निकालती थी। मय ने उसे छल और कलापूर्वक निर्मित किया था, वायु में विद्युत गति से चलने वाली थी, उसके पीछे एक रेखा अंकित होती जाती थी।४८। 'अशनि' गदा को कहते थे।

बाण में (शर या नाराच) ही सबसे अधिक प्रयोग में लाये जाते थे। अमोघ बनाने के लिये उन्हें कभी-कभी मन्त्रों से अभिषिक्त करके छोड़ा जाता था। विष से पुते बाणों का भी प्रयोग प्रचलित था।४६। पी०सी० शर्मा ने रामायण से इन दो बाणों का संकलन किया है- 'अद्योगति', 'अग्निदीप्ति'- मुख, अंजलिक, अर्धचन्द्र, अर्धनाराच, आशीविषानन, आशुंग, ईहामृगमुख, उल्कामुख, काकमुख, कंकमुख, कंकपत्रिन्, कर्णिन, खरमुख, क्षुर, क्षुरप, कुक्कुटवक्त्र, नतपर्व, नाराच, नागमय, पंचास्य, प्रसन्नाग, भल्ल, मकरानन, मार्गण, रुक्मपुंख, लेलिहान, वराहमुख, वत्सदंत, विद्युज्जिहव, विपाट, व्यादितास्य, व्याघ्रमुख, शल्य, शिलामुख, सिंहमुख, श्रृंगालवदन, सूर्यमुख, श्वानवक्त्र तथा श्येनमुख।

बचाव के आयुध भी कई प्रकार के थे। यथा- वर्म या कवच, अभेद्य कवच, आर्षभ, चर्म, गोधा (धनुष के चिल्ले की चोट से बचने के लिये बाईं कलाई पर बाँधने का चमड़ा), तनुत्राण, मर्मत्राण, अंगुलित्राण और शिरस्त्राण।

युद्ध में मर जाने वाले राम की तरफ के योद्धा रणभूमि में ही पड़े रहते थे, पर राक्षसगण के मृतकों के शव तुरन्त ही समुद्र में फेंक दिये जाते थे।५०। क्योंकि रावण को भय था कि उनकी अधिक संख्या देखकर बचे-खुचे राक्षस कहीं आतंकित न हो जायें।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

१. १, ७, ७, ११-२

२. परस्वीर्य स्वबलं च बुद्ध्या स्थानं क्षयं चैव तथैव बुद्धिम् तथा स्वपक्षेऽप्यनुमृश्य बुद्ध्या वदेत्क्षमं स्वामिहिते स यन्त्रो। ६, १४, २२

३. ६, १७, २४

४. २, ६१, ५७

५. वृषेन्द्रमास्थाय शशिप्रकाशमायाति यौऽसौ त्रिशिरा यशस्वी। ६, ५६, १६

६. कचिंद्धृष्टश्च शूरवूच धृतिमान्मतिमाग्नछुचिः। कुलीनश्चानुस्क्तश्च दक्षः सेनापतिः कृतः। बलवन्तश्च कच्चिते मुख्यायुद्ध विशारदाः। दृष्टापदाना विक्रान्तास्तवया सत्कृत्य मानितः। २, १००, ३०-१

७. ६, ३, २७

८. १, ५४, ८   २, ८२, २५

६. ६, ७१, २८-६

१०. बलं च सुभृतं वीर दृष्ट तुष्टमनुद्धतम्। संभाषा संप्रदानेन रंजयस्व नरोत्तम ७, ६४, ५

११. कंच्चिद्बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम्। संप्राप्तकाले दातव्यं ददासि न विलम्बसे।। कालातिक्रमणे ह्येव भक्तवेत नयोर्भृताः। भर्तु रप्यतिकुव्यन्ति सोऽनर्थः सुमहान्कृतः।। २, १००, ३२-३

१२. ६, १२२, ४-६

१३. अहोभिर्दशभिर्ये च नागच्छन्ति मनाज्ञया। हन्तव्यास्ते दुरात्मानो राजशासन दूषका। ४,३७, १२

१४. यश्य वोवितथं कुर्यातत्र तत्राप्युपस्थितः।
स हन्तव्योऽभिसंप्लुव्य राजशासन दूषकः।। ६, ७५, ४३

१५. रामस्य शासनं ज्ञात्याभीमकोपस्य भीतवत्। वर्जयन्नगराभ्या शांस्तथा जन पदानापि ११६, ४, ३८६

१६. २, ६१, ५२-८

१७. ६, ७५, ७-२७

१८. ते प्रीताः पादपागेषु गृह्य शाखामवस्थिताः। वासांसि च प्रकाशानि समाविध्यन्तवानराः।।

१६. त्यक्तयुद्ध समुत्साहाः भूरत्वं क्व नु वो गतम् ५, ५७, २६

२०. कृती शूरो रणे जेता स्वाम्यर्थे व्यक्तजीवितः।
इन्द्रस्यातिधिरे वैषः ७, २३ (३) १३.४

२१. युद्धस्यकालो विज्ञातः साधु भो साधुरावण।
यः क्षोवं स्त्रीगतं चैव योद्धु-भुत्सहसेनृपम्।। ७, ३२, २८-६

२२. ६, ५६, १०४-१

२३. पराङ्मुखवधं कृत्वा कोऽत्रप्राप्त सषयागुणः।...........उदात्तीनेषु
योऽस्मासु विक्रमोऽयं प्रकाशितः। ४, १७, १६, ४६

२४. तेन संजातरोषेण रामेण रणमर्धनि।
अनुक्त्वा पुरुषं किंचिच्छरैर्व्यापारितं धनुः।। ३, ३६, ७-८

२५. भूमिर्हिरण्यं रूपं च निग्रहे कारणानि च, ४, १७, ३१

२६. अव्युपायैस्त्रिभिस्तात योऽर्थः प्राप्तु नशक्यते।
तस्य विक्रमकालारता न्युक्तानाहुर्मनीषिणः। ६, ६, ८

२७. यस्तुहित्वामतंभर्तुः स्वमतं संप्रधारयेत्।
अनुक्तवादी इतः सन्स दूतोवध-मर्हति।। ११६, २०, १८

२८. दूतोऽयमिति विज्ञाय राघवस्या मितौजसः। ५, ५०, १६

२६. ६, २०, १६-२०

३०. शीघ्रं भेरीनिनादेन स्फुटं कोणाहतेन मे। समानयध्वं सैन्यानि वक्तव्यं न च कारणम्। ६, ३२, ४३

३१. ४, ६, २२

३२. निवेशयित्वा विधिवद् बलानि बलं वलज्ञः प्रतिपन्तु मीष्टे। ४, ३६, ४४

१५. रामस्य शासनं ज्ञात्याभीमकोपस्य भीतवत्। वर्जयन्नगराम्या शांस्तथा जन पदानापि ११६,

४, ३८६

१६. २, ६१, ५२-८

१७. ६, ७५, ७-२७

१८. ते प्रीताः पादपागेषु गृह्य शाखामवस्थिताः। वासांसि च प्रकाशानि समाविध्यन्तवानराः।।

१९. त्यक्तयुद्ध समुत्साहाः भूरत्वं क्व नु वो गतम् ५, ५७, २६

२०. कृती शूरो रणे जेता स्वाम्यर्थे व्यक्तजीवितः।

इन्द्रस्यातिधिरे वैषः ७, २३ (३) १३.४

२१. युद्धस्यकालो विज्ञातः साधु भो साधुरावण।

यः क्षोवं स्त्रीगतं चैव योद्धु-भुत्सहसेनृपम्।। ७, ३२, २८-६

२२. ६, ५६, १०४-१

२३. पराङ्मुखवधं कृत्वा कोऽत्रप्राप्त सषयागुणः।..........उदात्तीनेषु

योऽस्मासु विक्रमोऽयं प्रकाशितः। ४, १७, १६, ४६

२४. तेन संजातरोषेण रामेण रणमर्धनि।

अनुक्त्वा पुरुषं किंचिच्छरैर्व्यापारितं धनुः।। ३, ३६, ७-८

२५. भूमिर्हिरण्यं रूपं च निग्रहे कारणानि च, ४, १७, ३१

२६. अव्युपायैस्त्रिभिस्तात योऽर्थः प्राप्तु नशक्यते।

तस्य विक्रमकालारता न्युक्तानाहुर्मनीषिणः। ६, ६, ८

२७. यस्तुहित्वामतंभर्तुः स्वमतं संप्रधारयेत्।

अनुक्तवादी इतः सन्स दूतोवध-मर्हति।। ११६, २०, १८

२८. दूतोऽयमिति विज्ञाय राघवस्या मितौजसः। ५, ५०, १६

२९. ६, २०, १६-२०

३०. शीघ्रं भेरीनिनादेन स्फुटं कोणाहतेन मे। समानयध्वं सैन्यानि वक्तव्यं न च कारणम्।

६, ३२, ४३

३१. ४, ६, २२

३२. निवेशयित्वा विधिवद् बलानि बलं वलज्ञः प्रतिपन्तु मीष्टे। ४, ३६, ४४

३३. स्थिता हि यात्रा वसुषाधिपानाम्, ४, २८, १५

३४. यथा ग्रीष्मावशेषेण तरेयुजीह्वी जलम्। ६, ६४, ११

३५. पाण्डुवं गगनं दृष्टवा विमलं चन्द्रमण्डलम्।
शारदी रजनीं चैव दृष्टवा ज्योत्सनानुलेपनाम्।। ११४, ३०

३६. स ग्रीष्म अपयाते तु वर्षारात्र उपागते।
हन्यास्त्वं लवणं सौम्य स हि कालोऽस्य दुर्मते।। ७, ६४, १०

३७. (२, ८२, २२-३२)

३८. आवासमादीपयताम्, २, ८६-१५

३९. यत्तु फल्गु बलं किंचित दत्रैवोपपद्यताम्। १६, ४, १३

४०. ६, ४, ६-१२

४१. ६, ४, १५-२०

४२. विचेरतुश्च तां सेनां रक्षार्थ स तो दिशम्, ६, ५, २, गच्छन्तु वानराः शूराः ज्ञयं छन्नं भयं च नः। ६, ४, १०२

४३. स्वां स्वां सेनां समुत्सृज्य मा च कश्चित्कुतो व्रजेत। ६, ४, १०३

४४. वानराणां हि सा तीर्णा वाहिनी नलसेतुनाः तीरे निविविशे राज्ञा बहुमूल फलोदके।।
६, २२, ८३

४५. अन्ये तु हरिवीराणां यूथान्निष्क्रम्य यूथयाः।
सुग्रीयेणाभ्यंनुज्ञाता लंका जग्मुः पताकिनीम्। ११६, ३९, १३

४६. ततः पारे समुद्रस्य गदापाणिविभीषणः।
परेषामभियार्थ मतिष्ठत्सचिवैः सह। ११६, २२, ७६-७

४७. ६, ४०

४८. ६, १००; २६-३५

४९. धर्मा, पी०सी०
देखिये – 'द रामायण पॉलिटी', पृ० ८४-५

षष्ठ अध्याय

उपसंहार

रामायण की रचना संसार की पहली काव्य रचना है और साहित्य का प्रारम्भ काव्य से माना जाता है। काव्य का पहला छन्द या श्लोक महाकवि बाल्मीकि ने क्रौंचवध होने पर रचा था जिसे साहित्य का सबसे पहला सृजन माना जाता है। तमसा नदी के तट पर उन्होंने एक कौंच के जोड़े को अलग-अलग बिलखते हुए देखा। उसके प्रेम की चीत्कार देखकर उनका मन बहुत अधिक दुःखी हो गया। कवि से यह स्थिति देखी न गयी और उन्होंने निषाद को सम्बोधित करते हुये कहा

मा निषाद प्रतिष्ठः त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत क्रौञ्च मिथुनादेवकबधीः काममोहितम्।।

हे! निषाद तुम्हें जीवन में कभी शान्ति न मिले क्योंकि तूने क्रौंच के जोड़े को जो काम से विमोहित था उसे अकारण मार डाला। यह वाक्य कहने के बाद ऋषि ने विचारपूर्वक सोचा और कहा कि जो वाक्य मेरे मुख से निकले हैं वह चार चरणों में गुंथे हुये हैं।

पापबद्धोऽक्षर समस्तन्त्री लयसमन्वितः।
शोकार्त्तस्य प्रवृत्तो में श्लोकोभवतु नान्यथा।

इसके प्रत्येक चरणों में सम बराबर है, आठ-आठ अक्षर हैं तथा इसे वीणा की लय पर गाया गाया भी जा सकता है। शिष्य प्रसन्नता से कहा कि "हाँ, यह वाक्य श्लोक रूप ही होना चाहिए। ब्रह्मा जी ने कहा कि ऋषि तेरे मुख से जो वाक्य निकले हैं, अब वह श्लोकबद्ध ही होगा।

'रामस्य चरितं कृत्यस्यं कुरु त्वमृषिसत्तम।
धर्मात्मनो भगवतो लोके रामस्य धीमतः।।

नारद जी ने वाल्मीकि को रामकथा पहले से ही बता रखी थी। किन्तु ब्रह्मा जी ने कहा कि श्री राम, लक्ष्मण, सीता और राक्षसों का गुप्त प्रकट जो भी चरित्र है उसे इन

छन्दों में कहिये। क्योंकि बिना राक्षस के रामकथा कैसे होगी।

रामायण के कर्ता वाल्मीकि एक प्रतिष्ठित ऋषि एवं राम के एक के रूप में हमारे सामने आते हैं। ऋषि तमसा नदी के किनारे आश्रम में रहते थे। उनके पूर्व जीवन पर रामायण का कोई प्रकाश नहीं पड़ता। उनके डाकू और तपस्वी बनने का जिक्र ग्रंथों में पाया जाता है। अध्यात्म रामायण के अनुसार वाल्मीकि ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुये थे, पर कुसंगति के कारण लूटमार में प्रवृत्त होकर अपने परिवार का पालन पोषण करते थे। एक बार उनके मार्ग में सप्तऋषिगण आये। उन्हें भी यह ब्राह्मण लूटना चाहते थे। उन्होंने वाल्मीकि से पूँछा कि तुम अपने परिवार के लिये लूटमार द्वारा जो धन कमा रहे हो क्या तुम्हारे परिवार के लोग तुम्हारे पाप के भागी बनेंगे। तब ब्राह्मण घर जाकर अपनी स्त्री-बच्चें से यही प्रश्न किया, तब उत्तर मिला कि हम तो केवल तुम्हारे धन को भोगने वाले हैं, उसका पाप तो तुम्हें ही लगेगा। इससे ब्राह्मण के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह भी मुनियों की शरण में चला गया। सप्तर्षियों ने उसे 'राम' नाम का उल्टा जपने का आदेश दिया तो ब्राह्मण दीर्घकाल तक इस नाम का जप करता रहा, उसके ऊपर मिट्‌टी का ढेर लग गया। बहुत समय बाद जब सप्तर्षि वहाँ से लौटे, तब उन्होंने उसका नाम 'वाल्मीकि' रखा और इस नूतन जन्म पर उसका अभिनन्दन किया गया।

जनश्रुति में वाल्मीकि के बचपन का नाम रत्नाकर है, उसकी भेंट सप्तर्षियों की बजाय नारद से होती है।

वाल्मीकि रामायण में आरम्भ में डाकू होने का आभास मिलता है। महाभारत के अरण्य पर्व और अनुशासन पर्व में भी इसका वर्णन मिलता है। अन्य रामायणों में राम को विष्णु अवतार के रूप में चित्रित किया है। इस रामायण में देव चरित्र का वर्णन न होकर नर चरित्र का वर्णन है।

बाल्मीकि के अतिरिक्त अन्य तीन बाल्मीकि– तैत्तिरीय प्रतिशाख्य में एक वैयाकरण बाल्मीकि।१। का उल्लेख है जो निश्चित रूप से आदि कवि से भिन्न है। ए० वेबर।२। तथा एच० याकोबी।३। आदि विशेषज्ञों की राय है। इससे इस बात का पता चलता है कि बाल्मीकि का नाम प्राचीन काल में प्रचलित था। महाभारत के उद्योग पर्व में गरुड़ वंशीय विष्णु भक्त सुपर्ण पक्षियों की सूची में बाल्मीकि का नाम आया है। सुपर्ण वंश यह

सप्त सिंधु की एक यायावर आर्य जाति थी।४। विरोध में सुपर्ण वंश को महाभारत में विष्णुभक्त माना गया है। अतः यह प्रतीत होता है कि बाल्मीकि तथा आदि कवि भिन्न-भिन्न हैं।

इस प्रकार हमें आदि कवि से भिन्न तीन अन्य बाल्मीकियों का परिचय मिल गया है- वैयाकरण बाल्मीकि, सुपर्ण बाल्मीकि, महर्षि बाल्मीकि।

भार्गव बाल्मीकि- बाल्मीकि रामायण में भार्गव च्यवन का दो प्रसंगों में उल्लेख हुआ है- बालकाण्ड में सगर की कथा के अंतर्गत (सर्ग सत्तर, बत्तीस) तथा उत्तरकाण्ड में लवण वध के वृतान्त में (सर्ग आठ या चौसठ) इन स्थलों पर च्यवन शब्द का बाल्मीकि से कोई सम्बन्ध नहीं मिला, किन्तु उत्तरकाण्ड की रचना काल के समय तक बाल्मीकि का सम्बन्ध भार्गवों से जोड़ा गया था, क्योंकि बाल्मीकि को प्रचेता का दसवाँ पुत्र माना गया है।५। बाद में उनको भार्गव की उपाधि मिल गयी है। बाल्मीकि की उत्पत्ति प्रायः 'वाल्मीकि' से मानी जाती है। वाल्मीकि वास्तव में (दीमकों की बाँबी) से निकला था।

दस्यु बाल्मीकि- एक परम्परा के अनुसार वाल्मीकि पहले डाकू थे और दीर्घकालीन तपस्या के बाद ही रामायण की रचना करने में समर्थ हुये। महाभारत के अनुशासन पर्व में प्रस्तुत कथा का प्रथम आभास मिलता है कि किसी विवाद में मुनियों ने मुझको ब्रह्मन कहा था। इस कथन मात्र से मैं पापी बन गया था। मैने शिव की शरण ली उन्होंने मुझको पाप से मुक्त करके कहा- "तेरा यश श्रेष्ठ होगा"। इस उद्धरण से वाल्मीकि को आदिकवि मानना मुक्ति संगत है क्योंकि अग्निहोतृ मुनियों के शाप से ब्रह्महत्या का दोष लगा था, आगे चलकर उनका वास्तव में ब्रह्मघन तथा दस्यु माना जाना अनुशासन पर्व के इस प्रसंग का स्वाभाविक विकास प्रतीत होता है।

स्कंदपुराण, अवतीखंड में भी बाल्मीकि की कथा प्रचलित है। उपर्युक्त कथाओं का सबसे पचलित रूप।६। अध्यात्म रामायण के अयोध्याकाण्ड (सर्ग छः श्लोक बयालिस, अठासी) में मिलता है। राम, लक्ष्मण, सीता जब निर्वासित होकर चित्रकूट पहुँचे थे तो उन्होंने अपना निवास स्थान निश्चित करने के लिये वाल्मीकि का परामर्श माँ की श्रुति करने के पश्चात् राम नाम माहात्मय दिखलाने के उद्‌देश्य से अपनी राम कथा सुनाई।

अहं पुरा किरातेषु किरातैः सह वर्धितः।

जन्ममात्र द्विजत्वं में शूद्राचाररतः सदा।। पैंसठ।।

राम चरित मानस में भी कई स्थलों पर उपर्युक्त कथा की ओर संकेत मिलता है।

जान आदि कवि नाम प्रतापू, भयऊ युद्ध करि उलटा जापू (पाँच बालकाण्ड, दोहा उन्नीस) उलटा नाम जपत जगु जाना, वाल्मीकि भय ब्रह्म समाना।।आठ।। (अयोध्याकाण्ड, दोहा एक सौ चौरानवें)

गनिका अजामिल व्याध गीध गजादि खत तारे धना (छंद) (उत्तरकाण्ड दोहा एक सौ तीस)

तत्व संग्रह रामायण में भी दस्यु बाल्मीकि की कथा का मिलता-जुलता रूप देखने को मिलता है।

आनन्द रामायण में राज्यकाण्ड (अध्याय चौदह) में जो कथा है उसमें बाल्मीकि के तीन जन्मों का वर्णन है। पहले जन्म में वह स्तंभ नामक ब्राह्मण है। द्वितीय जन्म में व्याध है। तीसरे जन्म में कृणु का पुत्र है। अंत में उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि शंभु ने ब्रह्म को रामचरित सुनाया था, नारद ने उसे ब्रह्म से सुना और बाद में वाल्मीकि को सुनाया। तब क्रौञ्चवध के अवसर पर श्लोक की उत्पत्ति के पश्चात बाल्मीकि ने शतकोटि विस्तरम' की रचना की।

कृतिवासीय रामायण- इसके अन्तर्गत व्याध का नाम रत्नाकर है वह च्यवन का पुत्र माना जाता है। सात ऋषियों के स्थान पर ब्रह्म और नारद से भेंट होने का वर्णन है। ब्रह्म जी रत्नाकर को रामनाम जपने का आदेश देते हैं किन्तु उसका पापी मुँह इस पावन नाम की जगह 'म-रा' जपने लगता है।

तोरवें रामायण- (एक या दो) के अनुसार भरद्वाज ने क्रौंच नामक वन में रहने वाले व्याध्र को आर्शीवाद दिया। और तपस्या करता रहा अन्त में ब्रह्म ने परमर्षित्व प्रदान किया। वह वाल्मीकि बाँबी से निकला, जिससे वह वाल्मीकि कहलाने लगा।

सारलादास के उड़िया महाभारत- में वाल्मीकि का जन्म इस प्रकार हुआ था ब्रह्म किसी समय गंगातट के मनुमेखला नामक स्थान पर तपस्या करने गये थे वहाँ आठ देवकन्याओं के स्नान के पश्चात् गंगा से निकलते देखकर ब्रह्म का वीर्यपात हुआ था। उन्होंने वीर्य का एक अंश मेख पर्वत पर फेंक दिया जिससे मेरुशूल ऋषि की उत्पत्ति हुई। शेष वीर्य

नदी के बालू पर फेंक दिया गया उससे वाल्मीकि उत्पन्न हुये।

उत्तरकाण्ड के रचनाकाल में वाल्मीकि को अयोध्या के राजवंश से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया गया था। बाल्मीकि दशरथ के सखा माने गये, उनके आश्रम में सीता के पुत्र उत्पन्न हुये और उनके शिष्य बन गये। राम के अश्व मेध अवसर पर वाल्मीकि ने सीता के सतीत्व का साक्ष्य दिया। उस समय तक उनको ब्राह्मण की उपाधि मिल गई थी और वह प्रचेता के दसवें पुत्र माने जाने लगे। बाद में उनको विष्णु का अवतार भी माना गया है।७।

बाल्मीकि नाम की व्युत्पत्ति के आधार पर मत प्रसिद्ध होने लगा कि तपस्या करते समय उनका समस्त शरीर वाल्मीकि से समावृत हो गया था। इसी प्रकार च्यवन और वाल्मीकि के वृतान्तों का सम्मिश्रण हुआ और बाल्मीकि को भार्गव की उपाधि मिल गई।

रामायण का रचनाकाल– प्रथम शताब्दी के पूर्व में रामायण सर्वप्रथम पश्चिम में विख्यात होने लगा था। उस समय के विभिन्न विद्वानों के अनुसार इसकी रचना अत्यन्त प्राचीन काल में हुयी थी। इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी कह सकना कठिन है। किन्तु कुछ मत इस प्रकार हैं–

ए० श्लेगल के अनुसार ११वीं श०ई०पू० तथा जी० गोरेशियो के अनुसार १२वीं श०ई०पू० किन्तु इसके विपरीत जी०टी० ह्वीलर तथा डा० वेबर ने बौद्ध तथा यूनानी प्रभाव स्वीकार करते हुये अपेक्षाकृत उसकी रचना आर्वाचीन (नवीन) मानी जाती है।

कालान्तर में विद्वानों ने रामायण को दो भागों में बाँटा है आदि रामायण तथा वाल्मीकि रामायण, इनके रचना काल को अलग-अलग निर्धारित किया है।

आदि रामायण तथा वाल्मीकि रामायणके विभिन्न पाठों की तुलना के आधार पर विद्वान प्रचलित वाल्मीकि रामायण का वर्तमान रूप कम से कम दूसरी शताब्दी ई० का मानते है। एच० याकोबी पहली अथवा दूसरी शता०ई० को प्रचलित रामायण का काल मानते हैं, जबकि एम० विंटरनित्स दूसरी शता० ई० को अधिक समीचीन मानते हैं।

सी०वी० वैद्य– इनके काल को दूसरी श०ई०पू० तथा डूसरी शता०ई० के बीच में मानते हुये वह पहली शता०ई०पू० को अधिक उपयुक्त समझते हैं। कालिदास के समय में रामायण ने अपना प्रचलित रूप धारण कर लिया था अतः अधिक संभव है कि प्रचलित रामायण का

रूप दूसरी श०ई० के बाद का नहीं है। एम० मोनियर विलियन्स तथा वी०वी० वैद्य के अनुसार इनकी रचना पाँचवीं शता०ई०पू० अथवा बुद्ध के पूर्व हुयी होगी।

डा० याकोबी– रामायण का रचना काल पॉचवीं शता०ई० पूर्व, छठी और आठवीं शता०ई०पू० के बीच मानते हैं।

किन्तु ए०वी० कीथ याकोबी के मत का खण्डन करते हुये आदि रामायण की रचना चौथी शता० ई०पी० निर्धरित की है। एम० विंटरनित्स प्रायः ए०वी० कीथ से सहमत है। लेकिन वे वाल्मीकि को तीसरी शता०ई०पू० का मानते हैं, अधिक संभव है कि ३०० ई०पू० वाल्मीकि ने अपनी रचना की सृष्टि की है। उपर्युक्त वर्णन के आधार पर स्पष्ट होता है कि विंटरनित्स का विचार अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। इनके अनुसार इस ग्रंथ की रचना ८० ई०पू० चौथी शता० में हुयी तथा इसका अंतिम रूप दूसरी शता० ई० के लगभग निश्चित हुआ रामायण का अनेक संस्मरण थे जो सबसे पहले १८०६ में सिरामपुर के डा० विलियम केरी और डा० जोशुआ मार्शमैन नाम के दो पादरियों ने रामायण के प्रथम दो कांड अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित किये इनका आधार पश्चिमोत्तरीय पाठ था। १८२६ में जर्मन विद्वान श्लीगल ने प्रथम दो कांड लैटिन अनुवाद भूमिका और टिप्पणी सहित प्रकाशित किये। संपूर्ण रामायण का सर्वप्रथम मुद्रित संस्करण राजा चार्ल्स अलबर्ट के व्यय से इटली के विद्वान गोरेशियो ने १८४३ से १८६७ के बीच प्रकाशित किया। यह संस्करण बंगाल में प्रचलित पाठ पर आधारित था। तत्पश्चात् उत्तर भारत में देवनागरी पाठ के आधार पर सन् १८८८ में निर्णयसागर प्रेस, बंबई ने रामायण का संस्करण छापा तथा १६१२–२० में गुजराती प्रेस बम्बई में तीन टीकाओं सहित सात जिल्दों में एक संस्करण निकाला। बंबई में छपे इन संस्करणों का पाठ कुंभकोणम् (१६०५) श्री रंगम (१६१७–८) तथा मद्रास (१६३३) के संस्करणों के ही समान है, जिसमें दक्षिणात्य पाठ का अनुसरण किया गया है, पश्चिमोत्तरीय पाठ के आधार पर रामायण का लाहौर संस्करण १६२३–४७ में पं० भगवद्दत, पं० रामलभाया और पं० विश्वबंधु ने संपादित करके प्रकाशित कराया।

इनमें सबसे महत्वपूर्ण तीन संस्करण हैं- गोरेशियो का बंगीय संस्करण, बम्बई और मद्रास का दक्षिणात्य संस्करण तथा लाहौर का पश्चिमोत्तरीय संस्करण।

रामायण काल का पूर्ववर्ती युग उपनिषदों का समय माना जाना चाहिए, क्योंकि

महाराज दशरथ सीता के पिता राजा जनक से अठारह पीढ़ी पहले हुये थे।८। और राम का समय उपनिषदों से चार सौ वर्ष बाद का रहा होगा। लेकिन ये सभी तिथियाँ विवादग्रस्त हैं। रामायण के पूर्व का भारतीय समाज एवं संस्कृति की एक झलक- सामाजिक जीवन वर्ण एवं आश्रम व्यवस्था से बँधा हुआ था। इनका जीवन पूर्वकाल की भाँति था। स्त्रियों को वेदाध्ययन के अधिकार से वंचित कर दिया गया था। दासों का काफी उल्लेख मिलता है। यद्यपि जाति व्यवस्था जटिल थी, पर भी विभिन्न वर्ण के लोग परस्पर विवाह करते थे। जैन, बौद्ध धर्म ने आश्रम तथा वर्ण व्यवस्था दोनों का विरोध किया था। इस युग में नगरों के विकास के साथ-साथ संयुक्त प्रथा विद्यमान थी। जैन, बौद्ध धर्म के कारण पशुवध क्रूर, नृशंस, घृणास्पद माना जाता था। भोजन में गेहूँ, दूध, दही, घी, छाछ, तेल, तिल, मधु का प्रयोग होता था।

सूती, ऊनी, रेशमी वस्त्रों का उपयोग लोग करते थे। स्त्री-पुरुष दोनों आभूषण प्रिय थे।

इस युग में स्त्रियों का ह्रास होता जा रहा था। सन्यासी प्रवृत्ति बढ़ने के कारण उनकी निन्दा भी की जाती थी। पुरुष के समान स्त्रियों को अधिकार भी नहीं थे। अशोकावदान से पता चलता है कि पर्दा प्रथा नहीं थी, सतीप्रथा, बालविवाह नहीं होते थे।

यह काल वह समय था जिसमें सम्पूर्ण उत्तर भारत में सभी पहलुओं में सभी पहलुओं पर निश्चित दिशा में परिवर्तन हो रहे थे।

इस युग में यज्ञ, अनुष्ठान एवं कर्मकाण्डीय व्यवस्था थी, तो दूसरी ओर उनका विरोध किया जा रहा था। कर्मकाण्डों में ब्राह्मणों का स्वार्थ निहित था। आरम्भ में क्षत्रियों ने इनका समर्थन किया।

महाकाव्यकाल में अतिथि की बड़ी महिमा थी। अतिथि का आशीर्वाद सौ यज्ञों के पुण्य से बड़ा माना गया है। सूती, ऊनी, रेशमी वस्त्रों का प्रयोग होता था। भोजन सादा था परन्तु माँस का भी प्रयोग होता था। अनुष्ठानों या त्यौहारों पर सुरा का प्रचलन था। परिवार पितृ प्रधान थे, संयुक्त प्रथा थी। कृष्ण, बलदेव, अर्जुन हजारों स्त्री-पुरुषों को लेकर वन को जाते हैं, माँस-मदिरा से, नाच-गाने से, हँसी-मजाक से आनन्द-प्रमोद करते हैं।

महाभारत काल में बाल-विवाह प्रचलित था। अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का विवाह

सोलह वर्ष की आयु में हो गया था। महाकाव्यकाल में नियोग प्रथा प्रचलित थी। पाण्डवों की माता कुन्ती ने युधिष्ठिर आदि को नियोग द्वारा उत्पन्न किया था, क्योंकि पाण्डु इस कार्य में असमर्थ थे। वेश्यावृत्ति का भी जन्म हो चुका था। प्रमाणें द्वारा विदित होता है कि विभिन्न अवसरों पर वेश्याओं के नृत्य का आयोजन होता था, उसे मंगलकारक समझा जाता था।

यज्ञ प्रथा विद्यमान थी। कौरवों-पाण्डवों ने भी अनेक प्रकार के यज्ञ किये थे- राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ। कर्मवाद तथा पुनर्जन्मवाद का विकास हो रहा था। सूत्रकालीन समाज में ग्रहस्थाश्रम में किये जाने वाले संस्कारों का विवरण है। खान-पान में चावल, जौ, सेम का बीज, सरसों प्रमुख है। दूध-दही, मक्खन भी मिलता था। अवसरों पर शहद, नमक, सोमरस का भी प्रयोग किया जाता था।

वेशभूषा सादी थी। कमर के नीचे अन्तरीय, ऊपर उत्तरीय पहना जाता था। अवसरों पर पगड़ी पहनी जाती थी। सूती, ऊनी, रेशमी वस्त्र पहने जाते थे। गायन, वदन, नृत्य, नाटक, द्यूत क्रीडायें, आखेट उस समय प्रचलन में थे। स्त्रियों को इस समय यज्ञ के लिये स्वतन्त्रता नहीं थी। अनेक देवी-देवताओं का जन्म इसी काल में हुआ। शैव, वैष्णव का जन्म इसी समय हुआ था।

मौर्यकाल में वर्णाश्रम व्यवस्था निर्दिष्ट हो चुकी थी। दासों को मारना-पीटना मना था। उनको वेतन भी दिया जाता था।

खान-पान में दूध, शाक, भाजी, माँस-मदिरा का प्रयोग होता था।

स्त्री-पुरुष दोनों आभूषण प्रिय थे। विवाह को विशेष महत्व दिया जाता था। बहुविवाह प्रथा विद्यमान थी। तलाक का भी प्रावधान था, नियोग प्रथा लागू थी। स्त्री को सम्पत्ति पर अधिकार देते हुये कहा गया है कि पति के अत्याचार के विरुद्ध न्यायालय की शरण ले सकती थी। इस समय व्यक्ति, परिवार, समाज के मध्य मधुर सम्बन्धों को जोड़ने वाला अशोक का धर्म मिला था। वह धर्म के सहारे लोगों में आत्मसंयम, सहिष्णुता बनाये रखना चाहता था। सातवाहन समाज व्यवसाय के आधार पर चार भागों में विभाजित था, यह विभाजन जातीय नहीं था। इस समय अन्तर्जातीय विवाह होते थे। वशिष्ठ पुत्र पुलुमावी के भाई ने एक शक कन्या से विवाह किया। शूद्र शिक्षा ग्रहण करते थे, किन्तु वैदिक ग्रन्थ नहीं पढ़ सकते थे। इस काल में यवन, पल्लव, शक, कुषाण आदि अनार्य जातियों का

सम्मिश्रण हो चुका था। संयुक्त परिवार, दास प्रथा विद्यमान थी। समाज में पुत्री की अपेक्षा पुत्र को अधिक महत्व दिया जाता था। गीता में एक स्थान पर स्त्री को शूद्र के समकक्ष माना गया है पर शिक्षा पर ध्यान दिया जाता था। विधवाओं के लिये पुर्नविवाह की व्यवस्था थी। पर्दा प्रथा विद्यमान थी। इस समय अनेक नारियाँ अध्ययन का कार्य करती थीं। उन्हें उपाध्याया कहा जाता था।

इस समय यज्ञों का पुनः प्रचलन होने के कारण मूर्तिपूजा बढ़ गई थी। बुदेववाद का बाहुल्य बौद्ध धर्म का प्रमुख धर्म बन गया था।

इस समय विदेशी जातियों का बड़ी संख्या में भारत में प्रवेश होने से सामाजिक क्षेत्र में कई समस्यायें और प्रवृत्तियाँ आयीं। बहुसंख्यक यूनानी, शक, कुषाण, पल्लव आदि भारत में आक्रमणकारियों के रूप में आये।

हम निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि २०० ई०पू० में बौद्ध धर्म ने सामाजिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया था, पर २०० ई०पू० के उपरान्त छिन्नता-भिन्नता पर नियन्त्रण स्थापित कर दिया था। वर्ण व्यवस्था के नियम थोड़े ढीले पड़ गये थे। शुंग, सातवाहन काल में आश्रम व्यवस्था को पुनः स्थापित करने की चेष्टा की गई। इससे पहले आश्रम व्यवस्था इसीलिये समाप्त हो रही थी कि कुछ लोग युवावस्था में भिक्षु बन जाते थे। महायान का उदय और ईश्वरवादी उपासना- इस काल में धर्मिक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये। यूनानी, शक, पार्शियन और कुषाण भारत में आकर अपना अस्तित्व खो बैठे, कुछ विदेशी शासकों ने बौद्ध धर्म को अपनाया।

१८४ ई०पू० में मौर्य सम्राज्य का पतन हो गया। उसके बाद शुंग, कण्व और अन्य राजवंश शासन करते रहे। इसी काल में कई विदेशी शासकों ने राज्य किया। शुंग के उपरान्त कुषाणों का उत्थान हुआ। इनका शक्तिशाली राजा कनिष्क था। इसके शासनकाल में धर्म, साहित्य, कला के क्षेत्रों ने जन्म लिया और भारतीय संस्कृति पर अपना प्रभाव डाला। इस संस्कृति पर विदेशी संस्कृति की छाप थी। इस काल में भारत का व्यापार उन्नत अवस्था में था।

कुषाण काल विदेशी, भारतीय, ईरानी, रोमन और चीनी संस्कृतियों का संगमकाल था। कुषाण संस्कृति भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में समन्वयवादी संस्कृति है।

भारतवासियों के दो ही विभाग थे, एक आर्य और दूसरा अनार्य। आर्यों का प्रभुत्व गंगा, सिन्धु के प्रायः सारे मैदान पर फैला हुआ था, जबकि दक्षिण में वन ही वन थे, जिनमें अनार्य जातियाँ निवास करती थीं। आर्यों ने अपनी श्रेष्ठ सभ्यता और संस्कृति के बल पर धीरे-धीरे प्रायः सारे देश पर अधिकार कर लिया। अनार्यों ने कुछ ने तो आर्यों का सहयोग किया और कुछ ने उनका डटकर विरोध किया। विरोधी जातियों को भी अन्त में आर्यों की प्रभुता स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ा। दक्षिण छोर पर लंका द्वीप में एक खूँखार काली जाति निवास करती थी, जिसके रीति-रिवाज, आचार-विचार आर्यों से मेल नहीं खाते थे। इस जाति को आर्यों ने राक्षस की संज्ञा दी है। इसी राक्षस जाति के विरुद्ध राम ने अभियान किया था, जिसका यशोगान वाल्मीकि ने अपनी रामायण में किया है। राक्षसों का खान-पान एवं यौन सम्बन्धों में उनका आचरण निर्लज्ज और अमर्यादित था। नर-माँस भक्षण भी उनके लिये वर्जित नहीं था।

राक्षसों के बाद रामायण में वानरों का उल्लेखनीय स्थान है। यह दक्षिण की एक अनार्य जाति थी, इसने आर्यों से सहयोग किया और उनकी धार्मिक क्रियाओं को भी स्वीकार किया। नस्ल, भाषा, वर्ण, आकृति में भिन्न होते हुये भी उन्होंने आर्य संस्कृति को मुक्त हृदय से अपनाया। बाली और सुग्रीव वानरों के नेता थे। यह जाति विन्ध्य पर्वतमाला के दक्षिण में निवास करने वाली एक वनचर जाति थी उसे निरा बंदर समझना भूल है।

राक्षसों और वानरों के अतिरिक्त तत्कालीन भारत में निषाद, गृघ्र, शबर, यक्ष और नाग जैसी अनार्य जातियाँ भी निवास करती थीं। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि आर्यों को वनवासी अनार्य जाति का स्पर्श करने में अथवा उसका भोजन ग्रहण करने में आपत्ति नहीं थी। क्योंकि भरत ने गुह के अन्नपात्र को सहर्ष रूप में स्वीकार किया था।

प्राचीन भारत की कुछ घुमंतू जातियाँ अपने पर्यटनशील स्वाभाव के कारण पक्षियों, गृध्रों या सुपर्णों के नाम से सम्बोधित की जाती थीं।११। रामायण काल में गृध्र जाति भारत के पश्चिमी समुद्र तट और उसके आस-पास की पर्वत श्रेणियों पर रहा करती थी। इसके मुखिया संपति और जटायु नाम के दो भाई थे, इनकी मृत्यु के बाद गृध्रों का राजनीतिक अस्तित्व समाप्त हो गया। जटायु महाराजा दशरथ के सखा थे।१२। जब राम, लक्ष्मण शिकार के लिये गये थे तब सीता का भार उन्हीं पर आ पड़ा था। रावण के चंगुल

से सीता को छुड़ाने में जटायु ने अपने प्राण तक गंवा दिये थे। राम ने भी अपने निकट सम्बन्धी की तरह उनका दाह संस्कार किया था।१३। दक्षिण दिशा में सीता की खोज में जब वानर दल हताश होकर समुद्र किनारे बैठा था तब संपति ने गुफा से निकल कर जटायु के भाई के रूप में अपना परिचय दिया था। अपने दिवंगत भाई के पितरों को जलांजलि भी अर्पित की थी।१४। राम-लक्ष्मण सीता की खोज करते-करते शबरी नामक तपस्विनी के आश्रम में पहुँच गये थे। वाल्मीकि ने शबरी को 'श्रमणी' की संज्ञा दी है। उस तपस्विनी से उन दोनों राजकुमारों का कृपाभाजन बनकर अपने को धन्य समझा।

यक्ष जाति राक्षसों की ही समकालीन थी, ये लोग असाधारण सौन्दर्य और शारीरिक बल के लिये प्रसिद्ध थे। रामायण में देवों, गन्धर्वों, चारणों, सिद्धों, किन्नरों और अप्सराओं की भी चर्चा आती है। गन्धर्व लोग अलौकिक संगीतज्ञों के रूप में समादृत थे। किन्नर एक स्त्रैण जाति थी, जो सदा श्रंगारिक गीतों और क्रीड़ाओं में मग्न रहती थी। सिद्ध और चारणों को वाल्मीकि ने अंतरिक्ष का निवासी बताया है, रामायण में अप्सराओं का बार-बार उल्लेख आता है। उनके सौन्दर्य विशिष्ट आकर्षणों के कारण समाज में उन्हें स्वर्ग की सुन्दरियाँ समझा जाने लगा।

रामायण एक ऐसा युग था जिसमें राक्षसों की चरम उन्नति और चरम अवनति दोनों लक्षित होती थी। रामायण में राक्षसों की तीन शाखाओं का स्पष्ट रूप से पता चलता है, जिनमें प्रत्येक का अपना अलग वंश था, पहली शाखा विराध थी, जो दण्डकारण्य में रहती थी, इसका मुखिया विराध राक्षस था। दूसरी शाखा दनु की संतति होने के कारण दानवों के नाम से प्रसिद्ध हुयी, इसका प्रतिनिधि कबंध राक्षस था। तीसरी शाखा जो 'राक्षस' अथवा 'रक्ष' के नाम से विख्यात थी, इसके अन्तर्गत लंका के निवासी आते थे।

रावण ने अपने साम्राज्यवादी अभियान का आरम्भ यक्षों पर प्रबल आक्रमण करके किया। उन्हें जीतकर उसने कुबेर को द्वन्द युद्ध में परास्त किया और युद्ध की लूटमार में उनका विख्यात पुष्पक विमान छीन लिया। राजनीतिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण राक्षसों और आर्यों का संघर्ष था। राम-रावण युद्ध के पहले भी इन जातियों के बीच कई बार संघर्ष की घटनायें हो चुकी थीं। राक्षसों और आर्यों की शत्रुता का प्रधान कारण दोनों एक दूसरे के क्षेत्र में घुसने का प्रयास था।

राक्षसों के रंग-रूप के बारे में एक विचित्र धारणा प्रचलित रही है, जिनका वर्णन पुराणों में पाया जाता है। राक्षस काली, मोटी देह, बिखरे बाल, लपलपाती जीभ, अंगारों के समान आँखें, तीखे नख, टेढ़े-मेढ़े दाँत, डरावनी टोढ़ी वाले होते थे। ताड़का एक भयानक प्रकार की स्त्री थी। रावण ने सीता को डराने के लिये चारो ओर भयानक राक्षसियाँ तैनात कर रखी थीं।

राक्षसों की नर-माँस भक्षण की प्रवृत्ति भी उन्हें एक विकृत और कुरूप जाति बनाने में सहायक हुयी। राक्षसी ताड़का एक बार गरजती हुयी अगस्त्य ऋषि तक को खाने के लिये झपटी थी।१५। मारीच राक्षस ऋषियों का माँस खाते हुये दण्डकारण्य में विचरण किया करता था। सुन्दरकाण्ड के ग्यारहवें सर्ग में रावण के भोजन में विविध प्रकार के माँस पदार्थ गिनाये गये हैं, नर रक्त उनका पेय था।१६। शूर्पणखा राम-लक्ष्मण और सीता का खून पीने को व्याकुल थी। कुम्भकर्ण के लिये खून से भरे घड़े रखे गये थे।१७। राक्षसों में शवों को गाड़ने का रिवाज प्रचलित था। आर्य रीति के अनुसार पहले शव को जलाया जाता था और फिर राक्षस प्रथानुसार उसके अवशेष जमीन पर गाड़ दिये जाते थे। राम ने रावण की अन्त्येष्टि ब्रह्मविधि से करवाई थी। विभीषण का राज्याभिषेक भी राम के हाथों वैदिक रीति से हुआ था।१८। इस प्रकार राक्षसों को आंर्य सभ्यता से दीक्षित कर लिया गया।

आर्यों की भाँति राक्षसों में भी विवाह संस्कार अग्नि की दुहाई देकर किया जाता था। रावण ने अग्नि प्रज्जवलित करके मंदोदरी का पाणिग्रहण किया था। वधू के अपहरण करके विवाह करने की प्रथा, जो बाद में राक्षस विवाह कहलाई, रावण सीता जैसी आर्य रमणी से विवाह का इच्छुक था। शूर्पणखा राक्षसी होते हुये भी राम-लक्ष्मण जैसे विजातीयों से विवाह करना चाहती थी। राक्षसों के धार्मिक कृत्यों में स्वस्त्ययन की मांगलिक क्रिया बहुत प्रचलित थी। राक्षस भी नियमपूर्वक तपस्वी थे, विराध राक्षस ने तप करके किसी शस्त्र से अबध्य बन जाने का वर प्राप्त किया था। रावण का तपस्यजन पुण्य इतना अधिक था कि सीता का स्पर्श करने पर भी वह नष्ट नहीं हुआ।१६।

जहाँ आर्य लोग युद्ध में उचित और निष्कपट साधनों का सहारा लेते थे, वहाँ राक्षस शत्रु को परास्त करने में धोखे-धड़ी का आश्रय लेते थे। इसीलिये उन्हें कूटयोधिनः कहा गया है। राक्षसों एक सुनिश्चित सैन्य व्यवस्था के अनुसार युद्ध संचालन करते थे। फिर

भी आर्यों के हाथों राक्षसों को जो हार खानी पड़ती थी, वह सैन्य साधनों और युद्ध संचालन में पर्याप्त समुन्नत नहीं थे।

राक्षस लोग आर्यों के यज्ञ समारोहों को नष्ट-भ्रष्ट ही नहीं करते थे, अपितु उनमें भाग लेने वाले को मौत के घाट उतारते हैं। राक्षसों की उत्पत्ति के प्रसंग से यह ज्ञात होता है कि रावण प्रजापति ब्रह्म के वंशज विश्रवा मुनि का पुत्र था।

इतना तो निश्चित है कि रामायण के समय भारत के दक्षिणी छोर पर लंका में एक काली खूँखार जाति निवास करती थी, जो आर्यों से विमुख थी। उनके धार्मिक कार्यों में विध्न डालती थी। इस जाति के कुछ अवशेष आज़ तक जावा में पाये जाते हैं।२०। उसकी ध्वंसात्मक प्रवृत्तियाँ भारतीय महासागर के द्वीपों तक व्याप्त थी। वानरों को कवि ने बलवान प्राणियों के रूप में चित्रित किया है, जो माया जानने वाले, शूरवीर, वायु के समान वेगवान, नीतिज्ञ, बुद्धिमान, विष्णु के समान पराक्रमी, किसी से परास्त न होने वाले, दिव्य शरीरधारी और देवताओं की तरह सभी शस्त्रास्त्रों के प्रयोग में कुशल थे। राम-लक्ष्मण के पहली भेंट के समय हनुमान ने अपना कपि रूप त्यागकर भिक्षु रूप धारण कर लिया था। लंका में सीता की खोज के समय अनेक रूप परिवर्तन किये।

वानर अपने दाँतों और नखों का शस्त्रों के रूप में प्रयोग करते थे। सुग्रीव को हेमपिंगल और बाली को कनकप्रभ कहा गया है। वानर चपल प्रवृत्ति स्वाभाव का होता था, वे स्वाभाव के तेज और गर्म होते थे। उनके लिये 'चन्द्र' शब्द का प्रयोग कई बार हुआ है। वे स्वाभाव के रूखे और उनके साथ समझौता करना दूभर था।२१। वानर बड़े भावुक प्राणी थे। सौभाग्य या दुर्भाग्य पड़ने पर वे हर्ष या शोक से विभोर हो जाते थे। लंका में मंदोदरी को सीता समझकर हनुमान किस तरह से नाच-कूद कर किलकारी मारने लगे थे। इनका वाल्मीकि ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।२२। वानरों में कुतूहल की भावना थी। पुष्पक विमान के अयोध्या के निकट आने पर वे लोग उत्सुकतावश उचक-उचक कर नगर देखने लगे थे।२३। देश में वानरों की संख्या अपरिमित थी, वानरों का समाज अनेक यूथों या वर्गों में विभक्त था, इन पर महायूथ का नियन्त्रण रहता था। वानर वनचर होने के कारण फल-फूल जैसे प्रकृति प्राप्त आहार से ही अपनी उदरपूर्ति करते थे। वानर नर-नारियों दोनों की मद्यपान में अत्यधिक आसक्ति थी। ये लोग नंगे न रहकर सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करते

थे। दो वस्त्र पहनते थे।

वानरों के रीति-रिवाज कुछ आर्यों से मिलते थे। अतिथि सत्कार तथा सभ्य व्यवहार में वह आर्यों से पीछे नहीं थे। वानर साम्राज्य की राजधानी किष्किंधा नगरी सुख-वैभव की क्रीड़ास्थली थी। वाल्मीकि ने वानरों के यौन सम्बन्धों में अनियमितता दिखाई है। हनुमान जन्म की परिस्थितियों में इसका आभास मिलता है। रामायण के अध्ययन से वानरों के धर्म-कर्म की जानकारी मिलती है। वे आर्यों के ही देवताओं की पूजा-अर्चना करते और धार्मिक कृत्यों का पालन करते थे। वे पितरों के लिये श्राद्ध और तर्पण करते थे। वानर वाक्यज्ञ कुशल थे, शिक्षा-दीक्षा में पारंगत थे। राम इससे प्रभावित भी थे। हनुमान औषधियों का भी ज्ञान रखते थे। लंका युद्ध के समय अनेक वीरों की रक्षा वैद्य सुषेण ने चिकित्सा द्वारा की थी। सीता की खोज करते समय उन्होंने रमणीय ऋषबलि को ढूँढ निकाला, स्वयंप्रभा का परिचय प्राप्त कर गुफा के इतिहास की शोध कर डाली। वानरों की शिक्षा-दीक्षा की ओर भी संकेत किया गया है।

वानर लोग सुदूर देशों की यात्रा के शौकीन थे। उत्तरकाण्ड में वर्णन है कि बाली सन्ध्योपासन के लिये प्रतिदिन चारो समुद्रों की यात्रा करता था।२४। वानर हमेशा समूहों में निवास करते थे। सीता की खोज के समय ये लोग एक-दूसरे से अलग नहीं हुये थे। समूह-प्रेम के कारण अंगद, हनुमान, जांबवान आदि वानर नेताओं ने कभी दल की टोलियाँ नहीं बनाईं। वानरों में पारिवारिक प्रेम की बहुलता अधिक थी। घर से दूर विचरण करने वाले वानरों का महत्वपूर्ण कार्य यह था कि वह लक्ष्य प्राप्ति करके शीघ्र घर लौटे। रामायण युग में आर्यों का समाज निश्चित रूप में जाति-पाँत में बँट चुका था, यह विभाजन सुविधा के लिये किया गया एक प्रकार का श्रम विभाजन था। वाल्मीकि ने चारो वर्णों (चातुर्वर्ण्य) का स्पष्ट उल्लेख किया है।२५। महाराज दशरथ के अश्वमेध यज्ञ में सहस्रों की संख्या में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आमंत्रित किये गये थे।२६। सार्वजनिक उत्सवों में प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति के साथ उसकी यथारूप स्थिति के अनुसार व्यवहार किया जाता था। रामायण में वैदिक 'पुरुष सूक्त' विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य, पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति बताई गई है। वाणी के स्थान मुख से प्रकट होने वाले ब्राह्मण मनुष्य जाति के शिक्षक के रूप में माने गये हैं। दूसरे वर्ग में भुजाओं से सम्बद्ध होने के

कारण क्षत्रियों का कर्म शस्त्र धारण करना और प्रजा की रक्षा बन गया। जांघों से निकलने वाले वैश्यों का कार्य श्रमपूर्वक धन और अन्न का उत्पादन करके समाज का भरण-पोषण करना। चौथे वर्ग में शूद्रों को रखा गया जो सभी वर्गों का सेवक बनकर कार्य करे। प्रथम तीन वर्ण द्विज (दो बार जन्म लेने वाले) कहलाते थे। रामायण से पता चलता है कि यज्ञों का कार्य एकमात्र ब्राह्मणों के हाथ में था। कुछ ब्राह्मण कौटुम्बिक पुरोहित थे, कुछ श्रौत, स्मार्त कर्मों में ऋत्विजों का काम करने लगे थे। ब्राह्मणों ने अपने अधिकार को सुरक्षित रखने के लिये अपना एक संगठन बना लिया था। यदि कोई उनके अधिकारों को हड़पना चाहता था तो उसका तीव्रतर विरोध किया जाता था। ब्राह्मणों को अन्य वर्णों से दान लेने का अधिकार था। समाज ने उनके लिये एक और आजीविका का द्वार खोल दिया था। भूख से पीड़ित होने पर, पारिवारिक पोषण करने में असमर्थ होने पर, ब्राह्मण राजा से याचना कर सकता था, जैसा कि बहुत युगों वाले निर्धन त्रिजट ने किया था। आचार्य सुधन्वा युद्धविद्या में निपुण थे, जिनकी तुलना महाभारत के द्रोणाचार्य से की जाती है। राम को धर्नुवेद की शिक्षा इन्हीं सुधन्वा से मिली थी। इसी प्रकार परशुराम और अगस्त्य ब्राह्मण होते हुये भी शस्त्र धारण किया था। त्रिजट ब्राह्मण ने वैश्यों की तरह हल, कुदाली चलाकर जीविका चलाई थी।२७।

रामायणकालीन ब्राह्मणों को कर्मानुसार पाँच भागों में बाँटा गया है, १. नगरवासी ब्राह्मणं, २. वनवासी ब्राह्मण, ३. ब्रह्मावादी ब्राह्मण, ४. शास्त्रोपजीवी ब्राह्मण, ५. श्रमजीवी ब्राह्मण।

समाज में ब्राह्मणों का बड़ा आदर सम्मान किया जाता था। जो उन्हें कष्ट पहुँखता था, उन्हें कठोर दण्ड दिया जाता था, चाहे वह राजकुमार ही क्यों न हो। राजकीय क्रिया-कलापों पर भी पुरोहित का बड़ा प्रभाव था। राजा दशरथ अपने पुरोहित से बिना निर्णय के कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं करते थे।

क्षत्रियों का कर्तव्य देश को बाह्य और आन्तरिक संघर्षों से बचाना था, राजा का अधिकार केवल क्षत्रिय को ही था। ब्राह्मणों ने भी शासन करने में अपने को असमर्थ बताया था। ब्राह्मणों को प्रसन्न रखना क्षत्रिय भी जानते हैं, इसका ज्वलंत उदाहरण महाराजा अर्लक हैं, जिन्होंने एक ब्राह्मण की याचना पर अपनी आँखें निकालकर दे दी थीं।२८। क्षत्रिय राजा

की ये महान विशेषता थी। जो लोग युद्ध में मारे जाते हैं, इस तरह नष्ट होने वालों के विषय में शोक नहीं करना चाहिए।२६। वैश्यों की संख्या ब्राह्मण, क्षत्रियों की अपेक्षा ज्यादा थी। उनके लिये बस्तियाँ, अयोध्या में दुकाने थीं। अपनी संख्या और धन के कारण अयोध्या में सबसे प्रभावशाली नागरिक थे। ये लोग धन्धे के कारण अपने-अपने गण और वैगमों जैसी संगठनों में विभाजित थी।

वर्ण व्यवस्था में शूद्रों का स्थान सबसे निम्न था। उनका कार्य तीनों वर्णों की सेवा करना थे। ये लोग घरेलू नौकरी या दासवृत्ति किया करते थे। शूद्रों का यज्ञों में उपस्थित होना मना नहीं था, क्योंकि दशरथ के अश्वमेध यज्ञ में हजारों शूद्रों को आमंत्रित किया गया था, पर अन्य वर्णों के कुछ अन्य अधिकारों से उन्हें वंचित रखा गया था। वेदाध्ययन का अधिकार नहीं था। शूद्रों को तपस्या के निमित्त बताया गया है। किन्तु उत्तरकाण्ड में तपस्या को वर्जित माना गया है। शूद्रों के बारे में ये कहा जाता है कि ये लोग गलत कार्य करते थे, गोहत्या, चोरी, दूसरे प्राणियों की हिंसा में लगे रहते थे और वेश्याओं में आसक्त रहते थे। पूर्वजन्म में मैं मालति नामक शूद्र था।३०। ये लोग नीले वस्त्र, शरीर काला, केश छोटे, लोहे के गहने पहनते थे। शमसान में रहा करते थे।

प्राचीन भारत की वर्ण व्यवस्था को राजकीय स्वीकृति प्राप्त थी, अतः उसका पालन करना लोगों के लिये अनिवार्य था। लक्ष्मण ने सुग्रीव के सम्मुख अपने पिता को चारों वर्णों का पालनकर्ता कहा है। हनुमान भी कहते हैं कि राम लोक में चातुर्वर्ण्य के रक्षक हैं, सामाजिक मर्यादाओं का पालन करने वाले और कराने वाले थे।

रामायण के समय में आश्रमों की संख्या चार बताई गई है। विद्यार्थी के लिये ब्रह्मचर्याश्रम, विवाहितों के लिये गृहस्थाश्रम, अर्थोपार्जन से विरत वनवासी तपस्वी के लिये, संसार त्याग वैराग्य के लिये सन्याश्रम।

ब्रह्मचर्य आश्रम में रहते हुये व्यक्ति को विद्याग्रहण करना, वेदों का ज्ञानोपार्जन बताया गया है। तत्पश्चात व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। यह आश्रम सभी धर्मों में अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। श्रीराम ने गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता बताते हुये चित्रकूट में भरत जी कहते हैं-

धर्मेण चतुरो वर्णान्पालयन् क्लेशमाप्नुति।

चातुर्णामाश्रणा हि गार्हस्वयं श्रेष्ठमाश्रमम् ।।

उपनयन संस्कार के बाद ब्रह्मचर्याश्रम आरम्भ होता है। इसमें विद्यार्थी कठोर अनुशासन में रहकर, गुरु की सेवा और शास्त्रों का अध्ययन करते हुये रहता है। शिक्षा समाप्ति पर समावर्तन संस्कार होता था, रामायण में तीन प्रकार के स्नातकों का वर्णन है- 'विद्या स्नातक', 'व्रत स्नातक', 'विद्याव्रत स्नातक'। गृहस्थ धर्म का अनुसरण करने वाले को अपने घर में ही हरिद्वार और केदार तीर्थ प्राप्त हो जाते हैं, जिनके सभी पाप धुल जाते हैं।३१। देवताओं, पितरों और अतिथियों की प्राप्ति इसी आश्रम में होती है। देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण से उऋण होना बताया गया है। बिना इसके मोक्ष संभव नहीं है। मनु ने पाँच महायज्ञों का भी विधान बताया है। वेद का अध्ययन, अध्यापन करना ब्रह्मयज्ञ था, तर्पण करना पितृयज्ञ, हवन करना देवयज्ञ, बलि वैश्य देव करना भूतयज्ञ तथा अतिथियों का भोजन सत्कार करना नृयज्ञ।३२।

ब्रह्मचर्य आश्रम में बताया गया है कि पुरुषों की तरह स्त्रियों का जीवन नहीं था। वह घर पर रहकर गृहस्थ बनने की आशा करती थी। किन्तु वैदिक युग में उसे ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिये निर्दिष्ट किया गया था।३३। शिक्षा ग्रहण करने के बाद जो स्त्री का विवाह कर दिया जाता था। जो कन्या आजीवन शिक्षा कार्य में लगी रहती थी, उसे 'ब्रह्मवादिनी' कहा जाता था। गार्गी, मैत्रेयी, घोषा, अपाला आदि स्त्रियाँ अपनी विद्वता के क्षेत्र में अद्वितीय थीं।

स्त्री के सहयोग से गृहस्थाश्रम प्रारम्भ होता है, बिना उनके सहयोग के कोई प्रयोजन नहीं है। बिना विवाह के यह आश्रम अपनाना संभव नहीं था। वैदिक युग में स्त्रियाँ यज्ञ में भाग लेती थीं। कौशल्या ने राम के राज्याभिषेक के समय, सुग्रीव बाली की लड़ाई में तारा ने भी यज्ञ सम्पन्न किया था।३४।

वानप्रस्थ आश्रम में स्त्री की इच्छा हो तो पति के साथ वन में रहती थी या अपने पुत्रों के साथ गृहस्थाश्रम में ही रहती थी। मान्धाता ने अपनी स्त्री के साथ वानप्रस्थ में प्रवेश किया था। सुकन्या, रेणुका, सीता जैसी स्त्रियों ने वनगमन किया था। वैदिक युग में अनेक स्त्रियाँ अपना जीवन तपस्या और साधना में लगाती थीं। अरुन्धती, माधवी, मृत्युदेवी, अत्रिभार्या, सुलभा जिन्होंने कठिन तपस्या की थी। शिव की प्राप्ति के लिये हिमालय पुत्री

पार्वती ने भी कठोर तपस्या की थी।

सन्यास आश्रम में स्त्रियों के लिये कोई उल्लेख नहीं है। बौद्ध युग में आकर स्त्री सन्यासी अथवा भिक्षु का जीवन प्रारम्भ हुआ।

आश्रम व्यवस्था का प्रचलन उत्तर वैदिक युग में हो चुका था। उपनिषदकाल तक आश्रमों की व्यवस्था निश्चित हो चुकी थी। स्मृतियुग तक आश्रम व्यवस्था का पूर्ण विकास हो चुका था। इस प्रकार आश्रम व्यवस्था का पालन समाज के लोगों के लिये आवश्यक था। इनका पालन करने वाला प्रशंसनीय था और उल्लंघन करने वाला निन्दनीय समझा जाता था। पूर्ववैदिक काल में कबीलाई समाज था। कालान्तर में इसी समाज से आर्य और अनार्य नामक दो वर्ग बने जो आगे चलकर चार वर्णों में विभक्त हुये। इन चारो वर्णों में भेदपरक भावना का विकास हुआ जिसे कालान्तर में कठोर रूप ले लिया। जिससे नयी-नयी जातियों की उत्पत्ति होने लगी। इसके स्पष्ट प्रमाण महाकाव्यकाल में मिलने लगते हैं और यह जातियों की उत्पत्ति का यह क्रम उत्तर वैदिक काल से प्रारम्भ हुआ था। बारहवीं सदी तक अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया और हजारों जातियाँ भारतीय समाज में दिखाई पड़ने लगीं। इन जातियों की संख्या में वृद्धि होने के कारणों में साम्प्रदायिकता, रीतिरिवाज, छुआछूत तथा प्रादेशिकता की भावना प्रमुख रही।३६।

उत्तर वैदिक युग में ब्राह्मणों और क्षत्रियों की प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो गई थी। अनेक क्षत्रिय राजाओं ने अपनी विद्वता के बल पर बाह्मणों को अपना शिष्य बनाया। जैसे जनक, अश्वपति, कैकेय, कशिराज, अजातशत्रु, प्रावाहण, जाबालि। जाबालि ने उद्धालक को पंचाग्नि विद्या की प्रशिक्षा दी थी। विदेह ने याज्ञवल्क्य को उपदेश दिया था।

उत्तर वैदिक काल में कुछ क्षत्रिय कन्याओं से ब्रह्मणों के विवाह के उदाहरण मिलते हैं, लेकिन किसी ब्राह्मण कन्या के साथ किसी क्षत्रिय के विवाह का प्रमाण नहीं मिलता। इस काल में चारो जातियों के अतिरिक्त उत्तरवैदिककाल में अनेक व्यवसायिक संघों और शिल्पों का विकास प्रारम्भ हो गया था। लोहार, रथकार, बढ़ई अपने शिल्पों से नयी-नयी तकनीकि विकसित कर रहे थे। और भी कई जातियों का उदय हो गया था- चाण्डाल, निषाद, अयोगव, आपि। सूत्रयुग में यह व्यवस्था तीनों वर्णों के लिये कर दी थी कि संकटकाल में वह लोग कार्य को छोड़कर किसी अन्य कार्यों को करके अपनी जीविका

निर्वाह कर सकते थे। जैसे- ब्राह्मण सैनिक वृत्ति अपनाकर शस्त्र ग्रहण कर सकता है। वह ब्राह्मण व्यवसाय और कृषि भी कर सकता था।३७। सूत्र युग आते-आते शूद्रों की स्थिति सबसे अधिक दयनीय थी, उन्हें किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं थे। इसके अतिरिक्त सूत्र युग में चार प्रधान जातियों के अतिरिक्त और भी अनेक जातियों का उल्लेख जैसे अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह से बतायी गई है। अम्बष्ठ, अयोगव, उग्र, निषाद, मागध, रथकार, वैदेहक, सूत, पेड़, आभी वात्ता, चाण्डाल आदि जातियाँ थीं।

महाकाव्यकाल में ब्राह्मणों की स्थिति अत्यन्त सर्वोच्च थी। परन्तु कुछ ब्राह्मणों ने अपना धर्म छोड़कर दूसरी जातियों का कार्य अपना लिया था। ऐसे ब्राह्मणें की ६ श्रेणियाँ महाभारत में दी गई हैं। ब्रह्मसम, देवसम, शूद्रसम, चाण्डालसम, क्षत्रसम, वैश्यसम। महाभारत में और भी कई प्रकार के ब्राह्मणों के उल्लेख मिलते हैं। चोर ब्राह्मण, नट ब्राह्मण, नर्तक ब्राह्मण।

क्षत्रियों का मुख्य कार्य युद्ध तो माना ही गया है। महाभारत में तो क्षत्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है किन्तु रामायण शिक्षा की बात की पुष्टि नहीं करता। महाभारत में क्षत्रिय के लिये कहा गया है कि वह यज्ञ कर सकता है लेकिन शिक्षा नहीं दे सकता।

शूद्रवर्ण का कार्य दासवृत्ति प्रधान बताया गया है। इस समय शूद्र वर्ण में कई जातियाँ उत्पन्न हो चुकी थीं, जैसे पोड्रक, ओड्र, द्रविड़, कम्बोज, यवन, शक, पारद, किरात, पहली, खस आदि जातियों को शूद्र वर्ण में सम्मिलित कर दिया गया है। बौद्धयुग में सबसे बड़ा आघात ब्राह्मणों प्रतिष्ठा को लगा, क्योंकि जातियों के लिये जन्म का आधार अस्वीकार करके कर्म को आधार माना गया था। इस युग में ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा क्षीण करने का युग था। जैन और बौद्ध धर्म के जन्म लेने के कारण इस वर्ग का अभिमान और भी बढ़ गया।

मौर्य युग में सभी जातियों के उत्थान का प्रयास मौर्य राजाओं ने किया था। स्मृतियुग में वर्णसंकर जातियों की संख्या तेजी से बढ़ रही थी, अतः इसे रोकने के लिये स्मृतिकारों ने कठोर नियम बनाये। प्रथम सदी में ब्राह्मणों की संख्या तेजी से बढ़ी और मनु ने कहा कि जातियों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है। राजपूतकाल में वैश्यों के पाँच प्रकार बताये गये हैं। स्थानिक वणिक, कारवाँ, सामुद्रिक व्यापारी, वणिक, साधारण व्यापारी। शूद्रों को समाज में

चौथा स्थान था, उनके दो कर्म शिल्प और भृत्ति बतायें गये हैं।

परिवार ही एक ऐसी इकाई है जो सामाजिक कर्तव्यों का पालन करने के लिये मानवीय व्यक्तित्व के विकास में योग देता है। इसका ज्वलंत उदाहरण दशरथ के पारिवारिक जीवन में उपलब्ध होता है। वास्तव में रामायण एक कौटुम्बिक महाकाव्य है। राग-द्वेष, हर्ष-शोक, ममता-मोह, लोभ, त्याग आदि का चित्रण इसमें दर्शाया गया है। परिवार पैतृक था, पुत्र-पुत्रियों पर पिता का नियन्त्रण रहता था, पिता की अनुमति के बिना जीवन साथी चुनने का अधिकार नहीं था। राम ने धनुर्भंग करके भी सीता को विवाह की अनुमति पिता के बिना पूँछे नहीं दी थी।३८।

परिवार में पिता ही सर्वेसर्वा होता था, उसकी इच्छा से सारे कार्य होते थे। दशरथ ने कैकेयी के पिता को अपने बूते यह वचन दिया था कि इसी का पुत्र कोसल राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा। परिवार में पुत्र का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि पुत्र से ही वंश चलता है। 'पुत्' नामक नरक से बेटा बाप की रक्षा करता है। पितरों की सब प्रकार से रक्षा करने वाला होता है।३९। पितृ ऋण से उऋण होना भी आवश्यक माना गया है। परिवार में बड़े पुत्र का स्थान अधिकारपूर्वक था, वंशगत और भावनात्मक दोनों कारणों से वह पिता का अधिक प्रीतिपात्र था।४०। कैकेयी बड़ी स्वार्थी, परिवार की प्रतिष्ठित परम्पराओं को तोड़ने वाली स्त्री थी। क्योंकि उसी माँ का पुत्र भरत प्रशंसा का पात्र बना क्योंकि पारिवारिक प्रथाओं को निर्मूल कर दिया। जब भरत से गद्दी संभालने का आग्रह किया गया तो उसने यही कहा कि हमारे वंश में बड़े पुत्र को ही शासन करने का अधिकार होता है।४१।

रामायण में बहुत से ऐसे दृष्टान्त आये हैं, जिन्होंने परिवार का निष्ठापूर्वक पालन बनाये रखा। दशरथ ने अपनी राज्यसभा के समक्ष यह घोषणा की थी कि प्रजा की रक्षा में रहकर मैंने अपने पूर्वजों के मार्ग का ही अनुसरण किया है।४२।

दशरथ के पारिवारिक जीवन का चित्रण कर वाल्मीकि ने पिता, पुत्र, भाई, पति-पत्नी, देवर-भौजाई, सास-पुतोहू आदि के स्नेहासिक्त अनुकरणीय सम्बन्धों के समुज्जवल उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। कैकेयी की ईर्ष्या भावना इस तरह सुखी परिवार पर काली छाया की तरह आ पड़ी थी। राम और उनके तीन भाइयों के बीच प्रगाढ़ भातृ प्रेम था। कौशल्या के हितों में ही अपने पुत्रों को सौंप दिया था, कैकेयी पहले राम को अपना बड़ा पुत्र समझती

थी किन्तु मंथरा के बहकावे में आकर उसकी बुद्धि खराब हो गई थी और वह गलत व्यवहार करने लगी थी। परिवार का नष्ट-भृष्ट हो जाना एक महान विपत्ति था। रामायण में कहा गया है कि मनुष्य का चरित्र निर्माण परिवार में ही रहकर होता है। वस्तुतः राम का समग्र जीवन परिवार के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक सत्प्रभाव का उज्जवल दृष्टांत है।

विवाह प्रत्येक प्राणी के लिये आवश्यक माना जाता था। स्त्रियों के लिये विवाह एक प्रकार से नूतन जन्म संस्कार मान जाता था, विवाह संस्कार के माध्यम से वधू को उनके उत्तरदायित्व का बोध कराया जाता था। पत्नी को पति के सहायक रूप में अपने आप में प्रस्तुत करना उसका कर्तव्य है। विवाह से पहले कन्यायें वर से नहीं मिलती थीं। सींता, मन्दोदरी, कुशनाभ कन्यायें, ऋष्यश्रृंग की पत्नी शांता, ये सब कन्यायें एकान्त में रहती थीं। गोत्र, प्रवर, सपिंड आदि का ध्यान रखा जाता था या नहीं यह बता पाना कठिन है। अर्न्तजातीय विवाहों का प्रचलन उस समय था। क्षत्रिय राजकुमारी शांता, ब्राह्मण ऋष्यश्रृंग का विवाह अनुलोम विवाह है, दशरथ ने जिन मुनिकुमार को अज्ञानतावश मार डाला था, उसके पिता वैश्य, माता शूद्र थी।४३। अच्छे शिष्ट परिवारों में गान्धर्व विवाह का प्रचलन नहीं था। सीता का विवाह स्वयंवर प्रथा से होता है, लेकिन इस महोत्सव का प्रबंध उसके पिता जनक ने किया था। घोषणा की थी कि जो व्यक्ति शिवधनुष को उठाकर तान देगा, उसका विवाह मेरी कन्या से होगा।४४। इस विवाह में कन्या का हाथ न होकर पिता का हाथ होता था। पुत्रों के विवाह में भी पिता की आज्ञा जरूरी थी। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघन की शिक्षा समाप्ति के बाद दशरथ ने उनका विवाह करने का निश्चय किया था। कभी-कभी पिता के अतिरिक्त अन्य लोग विवाह कराते थे जैसे अयोध्या और मिथिला के राजपरिवारों में विश्वामित्र ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उन्हीं के सुझाव से जनक की दोनों भतीजियों और सीता की बहनों से भरत, शत्रुघन का विवाह हुआ था। विवाह के समय वर-वधू दोनों को वयस्क अवस्था में होना चाहिये। यह विवरण बालकाण्ड, उत्तरकाण्ड से मिलता है। पति-पत्नी की आयु में भी अन्तर पाया जाता था। जैसे वृद्धावस्था में दशरथ ने कैकेयी से विवाह किया था।

रामायण में ६ प्रकार के विवाहों के वर्णन हैं। प्रथम प्रकार के विवाह में कुशनाभ कन्याओं और कंपिल्त्रा के राजा ब्रह्मदत्त का विवाह है। रोमपाद की पुत्री शांता, तृणबिन्दु

और ऋषि भरद्वाज की कन्याओं के विवाह इस विधि से हुये थे। इस विधि में कन्या का पिता अपनी पुत्री सजा-संवारकार वर को आमंत्रित वैदिक विधि से कन्या को दिया जाता था। दूसरे प्रकार का विवाह राम-सीता का है। जनक ने सीता को सभी आभूषणों से सजाकर राम को एक 'सहधर्मचरी' के रूप में दिया था। बाद में इस विवाह को प्रजापात्य विवाह कहा जाने लगा।

गान्धर्व विवाह आर्येतर जातियों में अधिक होता था। कुछ स्त्रियाँ अपनी इच्छा से रावण की पत्नियाँ बन गई थीं। राक्षस बलात्कार करने में अभ्यस्त थे। स्मृतिकारों ने इस प्रकार के विवाह को पैशाच विवाह की संज्ञा दी हैं। पुजिकस्थला, रंभा आदि अप्सराओं का रावण ने उपभोग करके इसे बलात कहा है। रामायण काल में दहेज प्रथा नहीं थी। जो भी वधू उपहार लाती थी वह अपनी स्वेच्छा से। कन्यादान के नाम पर कुछ लोग धन दिया करते थे। जैसे जनक ने सीता के विवाह पर कन्यादान दिया था।

विवाह मंगल घड़ी में किया जाता था, शुभनक्षत्र मुहूर्त का ध्यान रखकर उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र को जिसके अधिपति भग देवता हैं, विवाह के लिये उपयुक्त समय बताया है।४५। राम-सीता के विवाह से विवाह प्रणाली का पूर्ण परिचय मिलता है, जिसमें पाँच दिन लगते थे।

रामायण युग में बहु पत्नी प्रथा थी। चाहे आर्य हो, राक्षस हो, वानर हो। दशरथ के चार रानियों के अतिरिक्त तीन सौ स्त्रियाँ थीं। वाल्मीकि रामायण में अनेक प्रेमीजनों के प्रति आकर्षण एवं अनुराग के विषयांक उपलब्ध हैं। महाराज दशरथ जो एक समझदार, नीतिज्ञ कुशल राजा थे लेकिन उनकी बुद्धि भी 'काम' के प्रति वशीभूत होकर अपनी प्रिय रानी कैकेयी के प्रति लगाव रखकर आगे का भविष्य न सोंचते हुये उनकी मतिभृष्ट हो चुकी थी। राम का कहना है कि धर्म, अर्थ की अपेक्षा 'काम' को अधिक महत्व दिया जाता है।

रामायण में यह मान्यता थी कि युद्ध में वीरगति पाने वाले सैनिकों का स्वर्ग में अप्सरायें प्रेमपूर्वक स्वागत करती हैं। राम के प्रति सीता का भी प्रबल आकर्षण था। राम लक्ष्मण से कहते हैं कि "वह समय कब आयेगा जब हम शत्रुओं को परास्त करके मैं अपनी प्राणों से प्यारी सीता को देखूँगा। रामायण में राम और सीता का दाम्पत्य प्रेम आदर्श प्रेम है। दोनों के एक दूसरे के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती थी। जैसे- सूर्य से

उसकी प्रभा अलग नहीं की जा सकती, वैसे ही राम से सीता।४६। वाल्मीकि ने विवाहित प्रेम को ही श्रेष्ठ स्थान दिया है। अविवाहित, असंगत प्रेम की निन्दा की है।

रामायणकालीन शासन व्यवस्था राजतन्त्र थी। राजा का पद कुल परंपरागत होता था। क्योंकि इच्छवाकु वंशावली से पता चलता है कि राम से पहले कई पीढ़ियाँ शासन पर थीं और बाद में भी राजपद अनुवांशिक था। युवराज पद का अधिकारी बड़ा पुत्र ही होता था, जो अयोग्य पुत्र होता था उसे राजा नहीं बनने दिया जाता था। पुत्र के अभाव में राजा का भाई युवराज होता था। जैसे राम के अभाव में भरत को युवराज बनाया गया था। राजा को राज्य संभालने के लिये अपने हितों का त्याग करके जन-हित का विशेष ध्यान रखना पड़ता था। जैसे सगर पुत्र असमंज का निर्वासन तथा सीता का परित्याग जनमत की बहुलता का परिचायक है। राजा को धर्म के अनुसार न्याय करना पड़ता था। राजा को बलि षड्भाग (प्रजा की आय का छठां भाग) कर के रूप में मिलता था, राजा को प्रजा पर कहीं उससे ज्यादा खर्च राजा को असमय की स्थिति में करना पड़ता था, जैसे दुर्भिक्ष, महामारी होने पर, अशांति या अकाल मृत्यु होने पर। रामायण में एक ओर दशरथ का शासन शांतिकाली अधिवेशन के रूप में देखने को मिलता है तो दूसरी ओर रावण के शासन का युद्धकालीन अधिवेशन में का रोचक वृतान्त मिलता है। यदि इन अधिवेशनों की तुलना यदि आधुनिक संसद की कार्यवाही से की जाय तो दोनों में बहुत कुछ समानता दिखाई देगी। सभासदों की उपस्थिति होने की सूचना दूतों या संदेशवाहक द्वारा पहुँचाई जाती थी।

रामायण में रावण द्वारा सभा के दो अधिवेशन बुलाने का वर्णन मिलता है। एक तो हनुमान द्वारा लंका के अग्निकांड के पश्चात् दूसरा लंका पर राम का आक्रमण होने के समय रावण की सभा में न तो किसी को नीति का ज्ञान था नशत्रु की शक्ति का ज्ञान था। सीता हरण की सूचना रावण ने किसी को नहीं बताई थी, अब रावण ने याचना भरे स्वर में कहा वे दोनों राजकुमार सीता का पता लगाकर सुग्रीव आदि वानरों के साथ समुद्र के उस पार आ गये है आप लोग कुछ उपाय बताइये। जिससे वे लोग मारे जाये और मैं सीता को न लौटाऊँ। रावण की बात सुनकर कुंभकर्ण को गुस्सा आया कि सीता को हरने से पहले परामर्श क्यों नहीं किया फिर भी मैं शत्रुओं का संहार करूँगा। विभीषण ने अपने बड़े भाई को सलाह दी कि आप क्षमा याचना के साथ सीता को लौटा दे। इस प्रकार रावण की सभा

में विरोधी दल नहीं था, फिर भी कुंभकर्ण और विभीषण के विरोधी भाषण एक निरंकुश शासन में प्रजातांत्रिक पद्धति का आभास देते हैं----

अयोध्या में एक गुप्तचर विभाग था जो आधुनिक समय में सी० आई० डी० विभाग का समकक्ष माना जा सकता है। गुप्तचर दो प्रकार के होते है- नागरिक, सैनिक। उत्तरकांड में न्यायाधीशों के लिये 'धर्मपालक' शब्द आया है। न्यायालय इस बात के लिये प्रसिद्ध थे कि वहाँ निष्पक्ष और तात्कालिक न्याय है। राजमार्गो की व्यवस्था के लिये पुलिस कर्मचारियों की नियुक्त का संकेत मिलता है। लंका के रास्ते में हनुमान ने विभिन्न शस्शास्त्र धारण किये हुये सैनिकों को देखा था। रामायण में नारी की महत्ता और गरिमा का बखान किया गया है कि नारी ब्रह्मविधा है, श्रृद्धा है, शक्ति है, पवित्रता है, कला है, जो इस संसार में श्रेष्ठ है वह नारी ही है। नारी को परिवार का हृदय कहा गया है। वह अपनी कोमलता, सुशीलता, संवेदना, करुणा, स्नेह, ममता आदि विशेषताओं के कारण परिवार में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। रामायण में अहल्या, द्रौपदी, सीता, तारा, मंदोदरी में द्रौपदी का वर्णन महाभारत में है और चार नारियों का चित्रण रामायण में है। रामायण में नारी का कई दृष्टियों से अध्ययन किया गया है, कन्या रूप में, पत्नी रूप में, माता रूप में, इनमें से माता के रूप में सबसे अधिक माननीय है। कन्या का विवाह बड़े विचार-विमर्श के बाद सलाह लेकर ही किया जाता था जैसे सीता का विवाह, किसी भी मांगलिक कार्यों में कन्या का होना शुभ माना जाता था। स्त्रियाँ सैन्य संचालन में भी निपुण थीं, जैसे कैकेयी। रामायण में बलिष्ठ स्त्रियों के भी संकेत मिलते है। अश्वमेघ यज्ञ में कौशल्या ने अश्व की बलि चढ़ाने का कार्य किया। लंका में स्त्रियाँ पहरेदारी किया करती थी। रामायण में पतिव्रता, साध्वी स्त्रियाँ की भी चर्चा की गयी है। देवराज की पत्नी शची अपने पतिव्रता के लिये प्रसिद्ध है। रोहिणी, सावित्री, दमयंती जो एक क्षण भी अपने पति से अलग नहीं रहती थी। बुरे समय में भी अपने पति का साथ दिया था। रामायण में दुष्ट पत्नियों के त्यागने की बात कही गयी है। एक निश्चित अवधि तक प्रायश्चित करने के बाद पुनः ग्रहण कर ली जाती थी जैसे-गौतम पत्नी अहल्या, जिससे देवराज इंद्र के साथ गुप्त रूप से रमण किया था। कहा जाता है कि अहल्या लोगों की दृष्टि से दूर रहकर अनेक वर्ष तक तपस्या की थी। जब राम ने विश्वामित्र के साथ आये तब अहल्या ने उन का अतिथि सत्कार किया, राम ने उसकी इस

अभ्यर्चना को स्वीकार करके राम ने अहल्या को समाज में पुनः प्रतिष्ठा का मार्ग खोल दिया। इस प्रकार अहल्या का अपने पति के साथ पुनः समागन हुआ। इसी प्रकार सीता के साथ भी ऐसा ही हुआ अग्नि परीक्षा के बाद राम ने सीता को हृदय से स्वीकार कर लिया था। दूसरे वर्ग में वे स्त्रियाँ है, जिनका पति हमेशा के लिये त्याग कर देते हैं, कैकेयी की माता ने केकयराज के प्रति स्वार्थपरायण पत्नी के लिये सर्वथा अशोभनीय व्यवहार किया था। इसी कारण पति ने उसे निःशंक रूप से छोड़ दिया था।

उत्तरकांड में एक घटना सती होने की है जो राजर्षि कुशध्वज को रात में सोते समय शंभुनामक दैत्य ने मार डाला था। इस पर उसकी पत्नी ने पति के शव का अलिंगन करके अपने को अग्नि में होम किया था।

रामायण में विधवा पुनर्विवाह का भी संकेत नहीं मिलता आर्यो की अपेक्षा वानरों में विधवा पुर्नविवाह अथवा किसी संबंधी से यौन संबंध स्थापित करने की प्रथा थी।

स्त्रियाँ भी पुरूषों की तरह न्यायालय में जाकर राजा के समक्ष शिकायल पेश कर सकती थी। सीता भी राम के साथ जगह-जगह घूमती थी।

रामायण में महिलाओं के प्रति शालीन व्यवहार, उच्च शिष्टाचार व्यवहार बताया गया है। रथों, नावों, वाहनों पर चढ़ते समय स्थान स्त्री को दिया जाता था।

रामायण के समय के खान-पान में दो प्रकारों के भोजनों का विवरण मिलता है। कुछ लोग अभिष भोजन करते थे कुछ लोग निरामिष। आर्य लोग शाकाहारी और अंशतः मांसाहारी थे। किन्तु वानर विशुद्ध शाकाहारी और राक्षस मांसाहारी थे। (चावल), तण्डुल, (जौ) यव, और गेहूँ (गोधूम) मुख्य खाद्य पदार्थ थे। उत्तरकांड में मूँग, उड़द, चना आदि का उल्लेख आया है। रामायण में कई प्रकार के चावलों का उल्लेख है जिसे हम संक्षिप्त में केवल नाम ही बता रहे है अक्षत, अन्न, कमल, कृषर, तण्डुल, नीवार, पायस, व्रीहि, शालि, लाज,

दूध अधिक मात्रा में होने के कारण मट्ठा, क्षीर, गोरस, दधि, आदि पाया जाता था। घृत (घी), 'स्नेह' अथवा तेल का भी उल्लेख है। नमक को 'लवण' कहते थे।

नामायण में अन्य खाद्य पदार्थों का भी उल्लेख पाया जाता है। उच्चावच भक्ष्य-गौड़, खाण्डव, रागखाण्डव, शर्करा। आहार में फलों का मुख्य स्थान था। वनवासी ऋषि मुनि अरण्य के फल-फूलों पर निर्वाह करते थे। भरद्वाज आश्रम में भरत के सैनिकों ने

विविध प्रकार के मांस, पदार्थ परोसे थे। श्राद्धों में ब्राह्मणों को मांस खिलाया जाता था। रावण और कुंभकर्ण जैसे पेटू राक्षसों के लिये मृगों, महिषों और वराहो के मांस की ढेरिया लगा रखी थी।

चर्बीवाले पक्षी मूल्यवान होते थे। मछली का भी प्रयोग किया जाता था। रोहित, चक्रतंडु, नलमीन नाम की मछलियाँ प्रसिद्ध थी। सुदूर यात्रा के समय लोग अपने साथ भोजन लेकर चलते थे। भोजन दिन में तीन बार किया जाता था। उत्तरकांड के अनुसार राम ने अशोकवाटिका में सीता के साथ अपराह्न भोजन किया था। रावण के रात्रिकालीन भोजन की बड़ी लम्बी सूची थी। मृगों, भैसों, सूकरों के (कच्चे) मांस के कटे टुकड़े, मोरों और मृगों का भुना हुआ मांस, चटनियाँ, विविध पेय और नमकीन, मीठे पदार्थ, खट्टे-मीठे तीखे रामखांडव, अनेक प्रकार की सुगंधित मसालो से सुवासित शर्करा, मधुपुष्प, फल के आसव। भोजन में मीठा, खट्टा, नमकीन, कडुवा, तीता, कषैला-छः प्रकार के रसो का समावेश किया जाता था। भूतों को प्रसाद चढ़ाया जाता था। चित्रकूट पर राम ने नयी कुटी में प्रवेश करने से पूर्व भूतों को फल-मूल और पके मांस से तर्पित किया था। तत्पश्चात् राम और सीता ने भोजन किया था। पायस, कृसर और बकरे का मांस देवताओं को चढ़ाये बिना खाना अनुचित था। फलों का रस मधुर बनाकर पेय के रूप में सेवन किया जाता था। मधु और शहद भी एक पेय पदार्थ था। वसिष्ठ और भरद्वाज दोनों के आश्रम में अभ्यागतों के लिये मधु प्रस्तुत किया जाता था।

रामायणों में शराब के लिये सुरा, मदिरा, मद्य शब्द आये है। सभी वर्ग के लोग इसका सेवन करते थे। अयोध्या में चारों ओर वारुणी की गन्ध आया करती थी।

राजादिति पुत्र वधू से दुःखी थे कश्यप से इन्द्रहान्ता पुत्र प्राप्ति के लिये तप के लिये आज्ञा लेकर कुशप्लव नामक स्थान में जाकर एक सहस्र वर्ष तक तप किया था। विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के लिये तप किया था। इन्होने पुष्कर तीर्थ में तपस्या की थी। इन्होनें रम्भा को शाप देकर घोर तपस्या की थीं रावण ने भी घोर तपस्या की थी।

गया में पितरों को पिंडदान करने की प्रथा थी। प्रत्येक पिता की यह इच्छा होती है कि मेरी अन्तिमाक्रिया मेरे ज्येष्ठ पुत्र द्वारा ही होये। पुत्र की अनुपस्थित में दाहक्रिया रोक दी जाती थी। दशरथ का शव भरत के अने तक तैल द्रोणि में सुरक्षित रखा गया था,

रामायण में तीन राजाओं का वैभवशाली अंतिम संस्कार का वर्णन मिलता है। वाली को पुत्र की उपस्थित में चिर निद्रा में लीन होने का सौभाग्य मिला।

पितरों के लिये दैनिक पितृ यज्ञ और वार्षिक श्राद्ध किये जाते थे। श्राद्धों में ब्राह्मण को भोजन कराना तथा दक्षिणा भेंट करना होता था। कहते है कि ऐसा करने से ये ब्राह्मण दिवंगत आत्माओं के प्रतिनिधि रूप में माने जाते थे। एक बार प्रत्येक पुत्र से आशा की जाती है कि वह अपने पितरों के लिये श्राद्ध कर्म अवश्य करे।

यज्ञ-याग, दान-दक्षिणा, तप-त्याग, व्रत नियम पूजा, स्वाध्याप आदि निःसंदेह धार्मिक जीवन के प्रमुख लक्षण है। उनका अनुष्ठान मानव व्यक्तित्व के लिये सर्वागीण उत्कर्षकारी है।

दान या उपहार में गौएं अनिवार्य रूप से भेंट की जाती थी। चार पुत्रों के पिता बनने पर दशरथ ने हजारों गौएं दान की थी। रामादि के विवाह सामारोह में उन्होने अपने पुत्रों के हितार्थ गोदान दिया था।

हमारे समाज में वैसे तो बहुत से तीज-त्योहार, व्रत, उत्सव समय-समय पर होते रहते है। पर यहाँ हम संक्षिप्त रूप में रामायणकालीन कुछ प्रमुख तीज-त्योहार, व्रत उत्सवों का विवरण दे रहे है। जैसा चैतमास के व्रत त्योहार-इनमें दुर्गापूजन, इसका तो रामायण में जिक्र है जैसे देवी माता के रूप में कर सकते है। गनगौर व्रत, गणेश चतुर्थी, रामनवी-इसका विवरण भी रामायण में मिलता है।

वैशाख मास के व्रत- शीतलाष्मी, अक्षय तृतीय, मोहिनी एकादशी, नृसिंह जयन्ती, आसामाई की पूजा, वैशाखी पूर्णिमा।

ज्येष्ठ मास के व्रत- अचलाएकादशी, वट सावित्री पूजन, गंगा दशहरा, निर्जलाएकादशी,

आषाढ़मास के व्रत- जगदीशरथ यात्रा, देवशयनी एकादशी, गुरुपुर्णिमा, कोकिलाव्रत, श्रावण मास के व्रत मंगलागौरीपूजन नागपंचमी, रक्षाबन्धन।

भाद्रमास के त्योहार- कजरी तीज, हलषष्ठी, बछवारस, हरतालिका तीज का व्रत, ऋषि पंचमी, महालक्ष्मी व्रत, अनन्त चतुर्दशी।

आश्विन मास के व्रत एवं त्योहार- मातृनवमी, पितृ विर्जजन, नवरात्रारम्भ, दशहरा, वाराह चतुर्दशी।

कार्तिक मास के व्रत-त्योहार- करवा चौथ, अहोई अष्टमी, गोवत्स एकादशी, ध नतेरस, नरक चतुर्दशी, छोटी दीवाली बड़ी दीवाली, गोवर्धन पूजा, भैयादूज, गोपाष्टमी, आंवलानवमी, देवोत्थान एकादशी, तुलसी विवाह, भीष्मपंचक, बैकुण्डचर्तुदशी, कार्तिक पूर्णिमा।

अगहनमास के व्रत- भैरव जयन्ती, मोक्षदा एकादशी,

पौस मास में ब्रह्म गौरी पूजन व्रत

माघ मास के व्रत- संकट चौथ, मौनीअमावस्या, बसंतपंचमी, माघपूर्णिमा फाल्गुनमास में पिजयाएकादशी, महाशिवरात्रि, होली, चैतमास बासौड़ा।

राम सदा बहुमूल्य वस्त्र पहनते थे। उस समय सोने, चाँदी के कीमती कपड़े पहने जाते थे। बाल्मीकि ने स्त्रियों के लिये सुसज्जित बताया है। रावण का अंतपुरः नाना प्रकार के वस्त्रों से सजी सुन्दरियों से भरा रहता था। रावण के वस्त्र अमृत के झाग के समान श्वेत धुला होता था। आभिसारिका रंभा ने नीला वस्त्र पहन रखा था।

वस्त्रों के कई रूप होते थे जैसे अजिन् (मृगचर्म), वल्कत (पेड़ो की छाल) कुश चीर (घास से बने कपड़ों), मुनिवस्त्र, कहलाते थे। कौशेय वस्त्रों का भी उस समय महत्व था। क्षौम वस्त्र पूजा के समय प्रयोग होता था। रामायण में शव को क्षौम वस्त्र पहनकर अंत्येष्टि क्रिया की जाती थी। सीता का उत्तरीय एक सुनहरे धागों का पीला कपड़ा था।

पगड़ी पहनने का रिवाज था लेकिन भृत्य वर्ग तक ही सीमित था। रावण के चामरधारी, खर के सैनिक विभीषण के अनुसार पगड़ियों में सजे थे। तत्कालीन समय आभूषणों को भी अधिक महत्व दिया जाता था। स्त्री-पुरूष दोनों आभूषण पहनते थे। वानरों और राक्षसों में भी आभूषण का महत्व था। लोग पशुओं को भी गहने पहनाते थे। घोड़े सोने के आभूषण पहनते थे उन पर सुनहरी जालियाँ पड़ी रहती थी। हाथियों को ढकने के लिये सुनहरी चादर प्रयोग की जाती थी। दाँत हाथी के सोने से मढ़े जाते थे।

पैरों में लकड़ी की पादुकायें, चमड़े के उपानह पहने जाते थे। आर्य स्त्रियों के अतिरिक्त राक्षसी, वानर स्त्रियाँ भी आभूषण धारण करती थी।

रामायण में स्त्रियों की करधनी, पैर के नुपूर का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। पति से वियुक्त नारी के लिये केशों को सजाना वर्जित था। सीता ने अपहरण के दिन

से लेकर पति संयोग हो जाने तक केशों को नही सँभाला था। पुरूषों में राम, लक्ष्मण, भरत ने तपस्वी रूप धारण करके बालों कोक नहीं कटवाया था वरन दूध लगाकर जटा का रूप धारण किया था। पुरुष वर्ग दाढ़ी, मूँछ रखता था। सभी द्विज शिखा था चोटी रखते थे। नर-नारी दोनों पुष्पों द्वारा सुसज्जित होते थे। राम ने पहली बार जब सीता को देखा था तब वह पुष्प चयन कर रही थीं। रावण जब उन्हें हरकर ले गया था तब उनके सिर पर गुंथे पुष्प लगे हुये थे। अभिसार के समय रंभा ने मंदार पुष्पों से अपने बालों को सजाया था। रावण की रानियाँ भी पुष्प मालाएँ गूँथकर रखती थी। वानर स्त्रियाँ भी नेपथ्य विधि से तैयार होती थी। नेत्रों में अंजन लगाया जाता था। चित्र-विचित्र बिंदिया लगाई जाती थी जो विशेषक कहलाती थी।

रामायण कालीन समय में भारत आर्थिक दृष्टि से सुखी समृद्ध, वैभवशाली देश था। दशरथ के राज्यकाल में अयोध्या और उसके जानपदों की आर्थिक स्थिति अत्यन्त हो चुकी थी। वे धन-धान्य, पशुजीवन से सुख सम्पन्न थे। राजा की आमदनी का प्रमुख स्रोत 'बलि पड्भाग' था। उसे अपने सामंतो से भी उपहार मिलते रहते थे। अर्थ का तात्पर्य धन या सिक्के ही नहीं थे, वरन् धान्य, गवादि, पशु घर-वार, खेत, खलिहान, हाथी, घोड़े, ऊनीवस्त्र, मृगचर्म ये सभी वस्तुये धन के अन्तर्गत आती है। इसके अतिरिक्त खानों से भी लाभांश मिलता था। विश्वामित्र ने राजा को 'रत्नहारी' कहा है इस प्रकार रत्नों पर होने वाले लाभ पर राजा का अधिकार रहता था। दशरथ के मंत्री ब्राह्मण, क्षत्रियों को कष्ट पहुँचाये बिना राज कोश भरा करते थे। इससे समझ में आता है कि करों का बोझ वैश्यों पर पड़ता था।

रामायण युग में कृषि ही मुख्य आजीविका का साधन मानी जाती थी। कृषि को राज्य की ओर से पूरा संरक्षण प्राप्त होता था। राजा को आठ शासन संबंधी नियमों से परिचित रहना पड़ता था। बालकांड में जनक के लिये कहा गया है। कि एक बार जब वह हल जाते रहे थे तो उन्हें सीता मिली। इस प्रकार क्षत्रियों को भी खेती की मनाही नहीं थी। कृषि की दृष्टि से अयोध्या पूरी तरह से परिपूर्ण थी और लंका की जलवायु भी समशीतोष्ण थी, तो इस प्रकार दक्षिणी तट भी एक रमणीय वन प्रदेश था जहाँ तक्कोल और जाति नामक सुगन्धित फलप्राप्त होते थे। बिहार के मलद, कुरुष प्रदेश दीर्घ काल तक धन-धान्य

से समृद्ध थे। कृषि प्रधान देहात ग्राम कहलाते थे, खेत गाँव के समीप होते थे। यद्यपि ऋग्वेद में अरण्य, ग्राम, पुर तीनों का उल्लेख है। कुछ इतिहासकारों की कल्पना है कि समस्त भूमि पर जन का स्वामित्व रहा होगा। उनके अनुसार लोहे की अनुपलब्धि के कारण अकृष्टपूर्ण भूमि को अकेला जोतना कठिन था अतः भूमि पर सामूहिक स्वत्व होता होगा। परन्तु अनेक प्रमाणों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि भूमि पर स्वामित्व कर्षक कुटुम्बों का था।

भूमि के कई प्रकार थे उर्वरा या उपजाऊ भूमि, खिल्य या बंजर भूमि, गण्युति या गोचर भूमि तथा अरण्य या वन भूमि। तत्कालीन समय में वर्षा के अतिरिक्त कृत्रिम सिचाई के साधनों का भी वर्णन है। कुओं का भी वर्णन है, नहर, तालाब, जलाशय, नदियाँ मुख्य है। इस सयम मुख्य उपज गेहूँ, जै, चावल, तिल तथा विभिन्न दानों की होती थी।

रामायण काल में कृषि के साथ-साथ पशुओं की अधिकता भी देखने को मिलती है। गाय को अधिक महत्व दिया जाता था। अयोध्या नगरी हाथी, घोड़े, ऊँट, गधो से भरी थी। कुत्तों का भी होना दीख पड़ता है।

राज्य की भूमि का अधीक्षक सीमाध्यक्ष कहलाता था। सर्माहत द्वारा सभी भूमि के प्रकारों का लेखा-जोखा रिकार्ड होता था। ब्राह्मणों को दान में दी गई भूमि पर कर वसूल नहीं होता था। कुछ लोग ऐसे होते थे जिनके पास भूमि नहीं होती थी पर जिन भूस्वामियों के पास होती थी उनसे वह लोग भूमि पट्टे में ले लेते थे और मेहनत करके उपज बढ़ाते थे। जो लाभ मिलता वह भू-स्वामी को जाता था। ग्राम के चारो ओर की भूमि तीन भागों में बँटी थी। सीत्या, गोचर, ऊसर।

बसाक के अनुसार- ग्रामों की भूमि पर सामूहिक रूप से ग्रामवासियों का अधिकार होता था। यदि ऐसा न होता तो राजा को अपनी खास (राजकीय) भूमि के लिये ग्राम महत्तरों और व्यवहारियों की अनुमति क्यों लेनी पड़ती। हिन्दू विधिशास्त्री नीलकंठ ने भूमि के बारे में मत देते हुये कहा है कि भूमि का स्वामी राजा नहीं होता, भूमि तो किसान की होती है। राजा तो उस भूमि का संरक्षक मात्र रहता है। प्राचीन भारत में अर्थव्यवस्था के बड़े ही निश्चित सिद्धान्त थे। जो धन करों के माध्यम से उपलब्ध होता था वही राजा की आय होती थी। उसी से राजा को पारिश्रमिक मिलता था और उसी से शासन के अन्य कार्यों का संचालन होता था। कर निश्चित सिद्धान्तों के अधार पर लगाये जाते थे और कुछ लोगों को

करों से मुक्त किया जाता था।

सामन्त एक व्यापक अर्थ रखने वाला शब्द है। इस श्रेणी के अधीन राजा, राज्य के अधिकारी, स्वयं को समर्पित करने वाला राजा, दान प्राप्त ब्राह्मण, राजा के कुछ सम्बन्धी आते हैं। कोसाम्बी के अनुसार भारतीय सामाजिक संस्थायें योरोपीय संस्थाओं की कोरी नकल न होकर अपनी पृथक रूप से एक स्वतन्त्र पहचान रखती है। परन्तु दान प्रसाद पोट्टला कहते हैं कि यूरोपीय फ्यूडेलिज्म से भारतीय सामंत अलग हैं, कहते हैं कि योरोप की भाँति कृषि दास प्रथा का यहाँ अभाव है। यह प्रथा योरोप से भिन्न थी क्योंकि यहाँ मजदूरों को सम्पत्ति की स्वतन्त्रता तथा जातीय स्वतन्त्रता का पूर्ण अधिकार था।४८।

डा० ओमप्रकाश इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यद्यपि सामंतवाद के समर्थकों ने पूर्वमध्यकाल की कृषि के विषय में महत्वपूर्ण तथ्य खोजे हैं। लेकिन सामन्तवादी सिद्धान्त पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किये जा सकते हैं। राज्य तथा किसान के बीच अनेक अधिकारियों की श्रखलाबद्धता तथा मध्यस्थों के आने से सामन्तवादी संरचना जागृत अवश्य होती है, लेकिन सैनिक, प्रशासनिक, आर्थिक दायित्व वाले स्वामी को अनुबन्धात्मक सम्बन्धों के विकास में कमी के कारण पूर्णरूपेण इनके सिद्धान्तों को नहीं माना जा सकता। यद्यपि इस काल में कुछ सामंतवादी प्रक्रियायें पायी जाती हैं, परन्तु वे अपने विरोधी तत्वों के साथ वर्तमान थी।

रामायणकालीन उद्योग एवं व्यापार उन्नत अवस्था में था। उस समय राजा की आमदनी का प्रमुख स्रोत 'बलि षड्भाग' था। उसे अपने सांमतों से भी समय-समय पर उपहार मिलते रहते थे। कुछ खानों से भी लाभ होता था। विश्वामित्र ने राजा को 'रत्नहारी' कहा है कि उनके राज्य में पाये जाने वाले रत्नों पर, प्रत्येक लाभांश पर अधिकार रहता था। रामायण युग में कृषि को ही मुख्य आजीविका का साधन माना गया है। वाल्मीकि ने कोसल राज्यों के संपत्ति खेतों, लतागुल्मों और गाँवों के रूप में दिखाई है। कृषि को राज्य की ओर से पूरा संरक्षण प्राप्त होता था। लंका की जलवायु समुद्री हवाओं के कारण उपजाऊ थी। भारत का दक्षिणी समुद्र तट एक रमणीय वन प्रदेश था, जहाँ 'तक्कोल' और 'जाति' नामक सुगंधित फलों, तमाल के पुष्पों, तथा मारीच की झाड़ियों की बहुलता थी। कहते है कि राम के पूर्वज राजा अनरण्य के समय में अयोध्या में कभी दुर्भिझ नहीं पड़ा, न चोरी से कोई डर हुआ। राज्य की ओर से अन्न के सरकारी गोदाम बने रहते थे, जिन्हें 'धान्यकोश' कहा

जाता था।

अयोध्या के नागरिकों के खेत नगर के बाहर पास में ही थे। इसी कारण आर्थिक दृष्टि से लाभ मिलता था क्योंकि बिक्री के लिये उन्हें माल लेकर दूर न जाकर पास में ही साधन मिल जाता था। सिंचाई के मुख्य साधन बड़े जलाशय, तालाब, नदियाँ, कुयें थे। सरयू नदी बारह महीने बहा करती थी। रामायण युग में बाग-बगीचे उधानों की अधिकता थी। इसी कारण कृषि के सरकारी धंधे के रूप में बाग-बगीचे लगाने का उधोग प्रचलित था। अशोकवाटिका के वर्णन से तत्कालीन उधानविधा का पर्याप्त आभास मिलता है।

रामायणकाल में कृषि के साथ-साथ पशुओं की अधिकता देखने में आती है। गाय को सबसे अधिक महत्व दिया जाता था। गायों के अतिरिक्त हाथी, ऊँट, घोड़े, कुत्ते आदि भी पाये जाते थे।

पशुओं से प्राप्त होने वाले पदार्थो से अनेक प्रकार के कुटीर उधोग-धन्धे चलाये जाते थे। दूध की अधिकता होने के कारण दुग्धपदार्थ बनाने का कुटीर उधोग प्रचलित था। व्याघ्रचर्म, सिंहत्तनु, मृगचर्म या अजिन ओढ़ने विछाने के काम में आते थे, जिससे चमड़ा बनाने की कला का परिचय मिलता है। धार्मिक कार्यों में मृगचर्म का अधिकतर प्रयोग किया जाता था। बैलों की खाल से ढाले बनाई जाती थी जो राक्षस और विधाधर जाति के लोग काम में आते थे। मृग के बालों से चमर बनायें जाते थे। हाथी के चमड़े से ऊनी कालीन 'कुथा' जाता था। हाथी दाँत उस सयम उन्नत अवस्था में था। रथों, सिंहासनों, शयनग्सनों, राजमहलों में हाथी दाँत की पच्चीकारी की ज़ाती थी। वाल्मीकि अनेक खनिज पदार्थों की ओर संकेत किया है। चित्रकूट, कैलास, प्रसवण, सह्य, मलय, और उदय पर्वतों को भी धातु मंडित कहा गया है।

इस्पात बनाने के लिये लोहा भी ढाला जाता था। 'सूची' या 'सुई' के उल्लेख से इस्पात और इससे बने औजारों के निर्माण की सूचना मिलती है। वनों से आर्थिक लाभ मिलता था। गृहों, रथों, शयनासनों, यज्ञ संबधी सामग्रियों के निर्माण में वनों का अधिक से अधिक प्रयोग किया जाता था। साल, औदुंबर, वेणु, ताल, देवदारू, वृक्ष की लकड़ी अच्छी मानी जाती थी। ताम्रपर्णी नदी के द्वीपों पर चंदन के वन थे। गोचर भूमि या श्मसान भूमि के रूप में वनों का प्रयोग होता था। समुद्रवर्ती प्रदेश के वृक्षों से मारीच (काली मिर्च और

निप्पती पीपर) तक्कोल, नारिकेल, खजूर, मेवे, प्राप्त होते थे।

तत्कालीन समय में स्त्री-पुरुष दोनों आभूषण प्रिय थे इससे आभास मिलता है स्वर्णकार के पेशे रहे होंगे। सोने, जवाहरात की कारीगरी बहुत बड़ी अवस्था में थी।

तत्कालीन समय में काँच उधोग भी प्रचलित था। वस्त्र उधोग भी प्रचलित था। तत्कालीन समय में 'टक' या टाकी के काम करने वाले मूर्तिकारों और पत्थर के काम करने वालों की बड़ी मांग थी। संगीत का भी व्यापक प्रचलन था। वाधयंत्रों के निर्माण में अनेक शिल्पी लगे थे। कहते है कि वाणिज्य व्यापार वैश्यों के हाथों में था, जो वणिक कहलाते थे। उस युग के प्रमुख नगर व्यापार के समृद्ध केंन्द्र थे, जहाँ देश-देशान्तर के व्यवसायी, शिल्पी वास करते थे। राजकीय प्रासाद से शहर को जोड़ने वाले राजमार्ग पर विविध क्रम से सजी भरी पूरी दुकाने थी।

देश में आंतरिक व्यापार भी होता था। अयोध्या के बणिक बहुत सा माल लेकर दूर-दूर की यात्रा करते थे। विदेशों से भी व्यापार होने के संकेत मिलते है। उत्तरकांड में मधुपुरी, लवणासुर के अत्याचारों से मुक्त होने पर, नाना देश के व्यापारियों से समृद्ध हो गयी थी। किष्किंधा कांड के ४० वें सर्ग में सीतान्वेषण में सुग्रीव ने अनेक समुद्र पार स्थानों का उल्लेख किया है, पर यह स्थल प्रक्षिप्त माना जानने के कारण विश्वसनीय नहीं है। वाल्मीकि को बड़े व्यापारी जहाजों का पता था जो माल से लदे बीच महासागर में आवागमन करते थे।

मापतोल के भी निश्चित परिणाम उस सयम प्रचलित थे। उस सयम यातायात के साधन अच्छे थे। आवागमन के मार्गो से स्थल मार्ग जुड़े हुये थे। सड़के पक्की बनी थी। अरण्यों में स्थित आश्रम भी परस्पर मार्ग से जुड़े हुये थें। तत्कालीन समय में माल ढोने वाली गाड़ी को 'शकट' कहा जाता था। बैलों से खीचे जाने के कारण 'गोरथ' कहा जाता था। यातायात के लिये नावों का भी प्रयोग होता था। विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण ने गंगा नदी एक ऐसी नौका पर बैठकर पार की थी जिसमें एक सुखद दरी बिछी थी। ऊपर से ठगी होती थी। हवाई यातायात की भी सूचना मिलती है। इसको 'खग' या विमान कहते है। इसी प्रकार रावण का सुप्रसिद्ध पुष्पक विमान एक अद्‌भुत आकाशचारी यान था, जो उड़ते समय महाघोष करता था।

उस समय समाज में छोट-बड़े सभी प्रकार के व्यापारी थे। छोटे व्यापारी घूम-घूमकर फेरी लगाते थे और बड़े व्यापारी एक ही स्थान पर विक्रय किया करते थे। व्यापारी समुदाय के सम्मानित सदस्य को गहपति, कुटुम्बिक और सेट्ठि कहते थे। मौर्ययुग में व्यापार, वाणिज्य का विकास हुआ था। व्यापार के निमित्त बेची जाने वाली अभूतपूर्व वस्तु 'पण्य' कही जाती थी। महाकाव्यों में भी वाणिज्य के विकासक्रम की सूचना मिलती है। राज्य के निर्देश में वाणिक का यथेष्ट उत्कर्ष हुआ था। व्यापारी दूर-दूरतक जाते थे। गुप्तयुग में बाजार को 'विपणि' की संज्ञा दी गई थी, लोहे को तपाकर अनेक वस्तुयें बनायी जाती थी। अयोध्या के बाजारों में लोग विभिन्न प्रकार के वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते थे और तत्पश्चात नावों से सरयू के उस पार जाते थे। पूर्व मध्य युग में भी व्यापार प्राचीन काल के आधार पर होता था।

भारत का विदेशी व्यापार प्रागैतिहासिक काल का है, जब बौदिक आर्यो के आने से पूर्व के भारतीय निवासी विदेशियों से अपना व्यापारिक सम्बन्ध रखते थे। उस समय लोग स्थल और जल दोनों मार्गो का उपयोग करते थे। सुमेर और सिंध दोनों सभ्यताओं की प्राप्त वस्तुओं से यह ज्ञात होता है कि उस समय इन दोनों सभ्यताओं के लोगों का व्यापारिक सम्बन्ध था। जो ब्लूचिस्तान के माध्यम से स्थापित हुआ था। लोथल उस समय समुद्री बंदरगाह था उस सयम समुद्र मार्ग से भी पश्चिमी देशों से व्यापार होता था।

भारत का विदेशों से भी व्यापार होता था। बौद्ध साहित्य से भी उल्लेख मिलता है। भारत के कौए, मोर जैसे पक्षी भारतीय वाणिकों द्वारा विदेशों में पाँच सौ, और एक हजार कर्षापण में बेचे जाते थे। इन पक्षियों का विक्रय बावेरु (बेबीलोन) में जाकर किया करते थे। भारत की अनेक वस्तुयें पश्चिमी देशों में लोकप्रिय थी। मिश्र की ममी के साथ नीम तथा इमली की लकड़ी, और मलमल जैसी भारतीय वस्तुयें रखी जाती थी। यूनान के यथेन्स नगर में भी अनेकानेक भारतीय वस्तुएँ बिका करती थी।

मौर्य राजवंश के काल में भारत का पश्चिमी देशों से समर्क बहुत बढ़ा। चौथी सदी ई० पू० में ब्रह्म, सुवर्ण द्वीप, चीन आदि देशों में अनेक सुन्दर वस्त्रों का आयात किया जाता था। दक्षिण भारत के सातवाहन राजवंश काल में हिन्द महासागर, बंगाल की खाड़ी, अरबसागर, तीनों समुद्रों का समुचित उपयोग होता था। विदेशों से भी बहुत सी वस्तुओं का

भारत में आयात होता था। इलायची, मिर्च, मसाले, पूर्वी द्वीपों से आते थे।

पूर्ववैदिक युग में आर्य अपना व्यापार स्थल मार्ग से ही करते थे। वेवैल, घोड़े, ऊँट, गधे, भैसों पर सामान लादकर गन्तव्य स्थानों तक जाया करते थे। कभी-कभी गाड़ियों का भी उपयोग करते थे। उत्तरवैदिक काल तक भारत में अनेक राज्यों और नगरों का विकास हो चुका था।

बौद्धयुग में भी वणिक अनेकानेक मार्गो से व्यापार के लिये यात्रा किया करते थे। मगध से मिथिला, वाराणसी, सहजाति, कौशम्बी तक इसका उपयोग होता था। विदेह से काश्मीर और गंधार तक व्यापारी जाया करते थे।

महाकाव्यों में भी अयोध्या में विभिन्न देशों के व्यापारी निवास करते थे। महाभारत में काम्बोज, गान्धार, वा हलीक, प्रागंज्योतिषपुर, (आसाम) अपरान्त पाण्ड्य, सिन्धु आदि अनेक देशों का उल्लेख हुआ है। जो तत्कालीन व्यवस्था पर प्रकाश डालती है। व्यापार के लिये जलमार्गो का उपयोग किया जाता था। सिन्धु वितस्ता (झेलम), असिक्नी (चेनाब), परूष्णी पंजाब में गंगा, यमुना, सरयु, गोमती नदियाँ उत्तर भारत में ब्रह्मपुत्र आसाम में, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा आदि नदियाँ दक्षिण में बहती थी, जिन्हें व्यापार के लिये वणिक प्रागैतिहासिक काल से उपयोग में लाते रहे। पूर्ववैदिक युग में सामुद्रिक व्यापार प्रचलित था। समुद्र से मोती निकालकर व्यापार सामुद्रिक व्यापार प्रचलित था। समुद्र से मोती निकालकर व्यापार किया जाता था। मौर्ययुग में समुद्र और नदी की देख-रेख के लिये नवाध्यक्ष की नियुक्ति की जाती थी। वह जलमार्ग से उपयोग होने वालों से कर ग्रहण करता था। कुषाणों और सातवाहनों के युग में सामुद्रिक व्यापार अधिक विकास हुआ। गुप्तयुग में भी जलमार्ग का अधिक प्रचलन था।

प्राचीन भारत में आर्य एवं अनार्य संस्कृतियों का बोलबाला था। उत्तरी भारत का आर्य साम्राज्य था, तथा लंका का राक्षस साम्राज्य था दोनों अपने-अपने क्षेत्र का विस्तार करने में लगे हुये थे। इसी बीच आर्यो और राक्षसों में अनेकों बार युद्ध भी हुये। आर्यावर्त में राक्षसों ने लवणासुर, ताटका, खरदूषण को खड़ाकर अपने क्षेत्र की वृद्धि की, वहाँ आर्यो ने भी वानर जाति से मित्रता करके दक्षिण में अपना प्रभुत्व स्थापित किया। तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था में राजा स्वंय सैन्य विभाग का संचालन आमात्यों की सहायता से करता

था। रामायणकाल में राज्य छोट-छोटे राज्यों में विभक्त था। इनमें प्रायः परस्पर संघर्ष हुआ करते थे। युद्धों दो तरह के बताये गये है। पहला धर्म युद्ध, दूसरा कूट युद्ध।

युद्ध के लिये तीन प्रकार का समय बताया गया है। शीतयुक्त, उष्णयुक्त, वर्षायुक्त।

लंका का सैन्य विभाग एक मंत्रि के अधीन था। विभीषण ने रावण के मंत्री की विशेषतायें बताते हुये कहा है। उसे स्वपक्ष और शत्रुपक्ष के बलाबल का पता होना चाहिये।

सेना के चार भाग होते थे पैदल, घुड़सवार सादी, रथी और गजारोह। इसीलिये चतुरंगबल कहते थे। सैनिकों की श्रेणियाँ भी चार भागों में बँटी थी।

पैदल सेना को भागों में बाँटा गया था। तलवार भाले से लड़ने वाले सैनिक तथा धनुषवाण से लड़ने वाले सैनिक। सैनिकों को हाथी-घोड़ों की देखभाल के लिये अश्वबंध और कुंजरग्रह नियत रहते थे। लंका युद्ध में त्रिशिरा राक्षस साँड पर बैठकर रणभूमि की ओर गया था। तत्कालीन नगर दुर्गो के रूप में बनाये जाते थे इससे उस सयम की अर्थ व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। यह चार प्रकार के होते थे। नादेय, पार्वत, वन्य, कृत्रिम। सेनाध्यक्ष को सेनानायक कहते थें उसके अधीन कई बलाध्यक्ष, यूथपति होते थे। जो राजा और सेनापति युद्धपरिषद की राय से कार्य करते थे। सैन्य अधिकारियों का निर्वाचन उसकी योग्यता के आधार पर किया जाता था। सेना का सबसे विश्वनीय अंग वह था, जिसमें 'कुलपुत्र' होते थे। दशरथ, सुग्रीव, रावण की सेना में महत्वपूर्ण सैन्य पदों पर ऐसे ही विश्वसनीय व्यक्ति नियुक्त थे, जिन्हें कुल परम्परा से अच्छे संस्कार मिले हुये थे।

सैनिकों को हाथी रथ, घोड़े पर से युद्ध करने की शिक्षा दी जाती थी, साम, दान, भेद, दंड से अभ्यस्त रहना पड़ता था।

सैनिकों को पुस्कार देकर संतुष्ट रखा जाता था। युद्ध की समाप्ति पर सैनिकों को उपहार तथा युद्ध की लूट का हिस्सा दिया जाता था। लंका विजय के बाद राम ने भी विभीषण से कहा था कि इन वानरों ने प्राणों का मोह त्यागकर विजय दिलाई है, इसीलिये मेरी तरफ से रत्न, विभिन्न प्रकार का धन देकर उनका सम्मान करो, जो राजा दान से सैनिकों को खुश नहीं रखती, वह सेना उसे छोड़ देती है।

सैनिक शासन बड़ा कठोर था। सुग्रीव ने कहा कि मेरी आज्ञा पाने के दस मिनट के अंदर जो उपस्थित नहीं होगा उसका वध कर दिया जायेगा। लंका चढ़ाई के समय जो

सैनिक पीठ दिखायेगा उसे मार डाला जायेगा। राम भी कठोर अनुशासक थे। उस सयम सैनिकों को सुन्दर वस्त्र, वाहनों से अलंकृत होने का बड़ा शौक था। सैनिको में सौभातृमिलन प्रथा थी जिसमें युद्धसमाप्ति पर दोनों पक्षों के सैनिक पूर्व वैर भुलाकर नई मित्रता स्थापित करते थे। राम-रावण युद्ध में भी ऐसा ही हुआ थां। शत्रु की कमजोरी का लाभ उठाकर भी वार किया जाता था। लक्ष्मण ने यज्ञ कार्य में व्यस्त इंद्रजित पर वार किया था। राम ने छिपकर वाली पर वाण चलाया था। बिना कारण के लड़ाई करना गलत माना जाता था। राम ने कहा था बिना किसी कारण आक्रमण करना अशोभनीय है। रावण ने मारीच से शिकायत की थी कि राम ने मेरी सेना बिना सूचना दिये हुये ही नाश कर डाली।

रामायण में बताया गया है कि युद्ध आठ कारण से होते थे। प्राचीन भारत में युद्ध का अंतिम उपाय यह होता था कि उसे साम, दान, भेद की चेष्टा की जाती थी। जब इनमें असफल हो जाते थे तब दंड का प्रयोग किया जाता था।

राजा के दूत को अपने राजा की आज्ञा का पालन करना बड़ा महत्वपूर्ण था। हनुमान ने गुप्तचर होने पर भी अपने को राम का दूत बतलाया था।

वर्षाकाल में युद्ध की तैयारियाँ स्थगित कर दी जाती थी। ग्रीष्मकाल में सेना को नदी पार कराया जाता था। वर्षांत में शरत्काल के प्रारंभ में सामारिक अभियान किये जाते थे। ज्ञात प्रदेशों में कूच करते समय सेना के पड़ाव की व्यवस्था पूर्व नियोजित होती थी, जैसा कि भरत सेना की चित्रकूट यात्रा से स्पष्ट है। सेना का अग्रभाग 'मूर्धन' कहलाता था, जबकि दांये-बायें के भाग 'पार्श्व' और मध्य भाग 'कुक्षि' या उरस कहलाते थे।

वानरों की सेना के दाहिने पार्श्व का नेतृत्व गज, गवय और गवाक्ष जैसे बलवान वानर थे। बांये पार्श्व की रक्षा गंधमादन कर रहे थे। राम-लक्ष्मण सुग्रीव सेना के मध्य भाग में रहकर सैनिकों का उत्साह बढ़ा रहे थे। सेना का पृष्ठ भाग जांबवान के सुपर्द था।

आक्रमण आरंभ करने से पहले राम ने परामर्श के लिये अपनी सेना में प्रधान अधिकारियों की एक युद्ध समिति बुलाई और सेना को सुवेल पर्वत पर स्थापित किया। राम में पुल के रास्तों की रक्षा का प्रश्न विशेष रूप से रखा था। राम ने लंका में डेरा डालने के बाद अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भेजा कि बिना शर्त आत्मसर्मण करके सीता लौटा दो अथवा लड़ाई के लिये मैदान में आ जाओ। रावण समझौते के लिये तैयार नहीं

हुआ वह मैदान में आ गया।

रात के समय युद्ध नहीं हुआ करते थे। खर सूर्यास्त से पहले ही युद्ध समाप्त कर देना चाहते थे क्योंकि अँधेरे में सैन्य संचालन करना कठिन होता है। किन्तु लंकायुद्ध में इंद्रजित और रावण ने रात में भी राम और उनके वानर सैनिकों से मुठभेड़ की थी।

युद्ध में मर जाने वाले योद्धा राम की तरफ वाले रणभूमि पर ही पड़े रहते थे, पर राक्षस गण के मृतकों का शव तुरंत ही समुद्र में फेक दिया जाता था। क्योंकि रावण को भय था कि बचे खुचे राक्षस कही आलंकित न हो जाये।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

१. मद्रास वि० वि० द्वारा प्रकाशित तैत्तिरीय प्रतिशाख्य में सर (१६३०) में तीन स्थलों पर प्राचीन ऋषि व वाल्मीकि का उल्लेख ५.३६.६.४.१८.६

२. दे० आँन दि रामायण, पृ० १७ टिप्पणी।

३. दे० डस रामायण, पृ० ६६ टि०।

४. दे० ए० सी० दास, ऋगवैदिक इंडिया, पृ० ६५, १४८

५. प्रचेता तथा वरुणं एक है। दे० कुमारसंभव २.११.६. ऋग्वेद (६.६५ और १०.१६) में भृगु का नाम वरुणि कहा गया है तथा शतपथ ब्राह्मण में इसका स्पष्ट उल्लेख है कि भृगु वरुण के पुत्र है, (दे० ११.६.१.१३) भागवतपुराण में कहा गया है कि वरुण की पत्नी चर्षणी से दो पुत्र भृगु, तथा वाल्मीकि उत्पन्न हुये थे (दे० ६.१८.१)

६. मद्रास कैटालॉग (आर ३८१४) में जैमिनी रामायण की पुस्तिका इस प्रकार है-इति जैमिनी रामायणे

रामानाममाहात्मये व्याघस्य सप्तीर्ष दर्शनम।

७. दे० सभा पर्व पृ० २५०। प्रकाशक- राधारमण पुस्तकालय कटक, १६४२।

८. बालकांड, सर्ग ७१, के अनुसार विदेह वंश में जनक इक्कीसवीं पीढ़ी हुये थे, विदेह-निमि मिथि (मिथिला) के संस्थापक- जनक प्रथम- (११) हर्यस्व (२०) हस्वरोमा (२१) जनक द्वितीय (सीता के पिता)

६. देखिये वी० वी० दीक्षित-रिलेशन आफ द एपिम्स टु द ब्राह्मण लिटरेचर (पूना ओरियंट लिस्ट), (जिल्द-६-७)

१०. हरिवंश- १४६-४७

११. दास अविनाशचंद्र-'ऋगवैदिक इंडिया', पृ० १४८

१२. उवाच वत्स मां विद्धि वयस्यं पितुरात्मनः। ३.१४.३

१३. ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः (३.६८.३२)

१४. ततः कृतोदकं स्नातं नं गृध्रं हरियूथपाः ८.४.६०.।

१५. १.२५.११

१६. मांस शोणित भोजनाः, ६.६०.२३

१७. ६.६०.३३

१८. विधिना मन्त्रदृष्टेन ६.११२.१६।

१६. सर्वथतिकृष्टोडसौ रावणो राक्षसेश्वरः। यस्यतां स्पृशतो गात्रं तपसा न विनाशितम।। ५.५६.४

२०. दास नवीनचन्द्र- 'ए नोट ऑन द एंटीक्विटी आफ द रामायण' पृ० ६

२१. न ते सम्भाषितुं शम्याः सम्प्रश्नोऽत्र न विघते। प्रकृत्या को पनास्तीक्ष्णा वानरा राक्षसाधिप। ६.२४.२६

२२. आस्फोटयामास चुचुम्ब पुच्छं ननन्द चिक्रीड जगौ जगाम। स्तम्भाव रोहान्निपपात भूमौ निदर्शयन स्वां प्रकृतिं कपीनाम।। ५.१०.५४

२३. उत्पत्योत्पत्य संहृष्टास्तां पुरीं ददृशुस्तदा।। ६.१२३.५३

२४. चतुर्ष्वपि समुद्रेषु संध्यामन्वास्य वानरः ७.३४.३३

२५. चातुर्णण्य स्वधर्मेण नित्यमेवाभिपलायन ४.४.६

२६. नियन्त्रयस्त...... ब्राह्मणान क्षत्रियान वैश्यानं शूद्राँश्चैव सहस्रशः १.१३.२०

२७. तत्रासीत पिंगलो गार्ग्यस्त्रिजटो नाम वैद्विजः उञछवृत्तिर्वने नित्य फालकुद्दाल लांगती २१.३२.२६

२८. तथा ह्मलर्कस्तेजस्वी ब्राह्मणे वेदपारगे। याचमानें स्वके नेत्रे उद्घृत्या-विमना ददौ- २.१४.५

२६. नैवं-----स्थितः, युद्धकाण्ड, पेज १३६५, १५

३०. अहंमास- रतः, बा० का० पेज १६, पृ० २८।

३१. व्यास कृति, ४.२-४, १३-१४,

३२. मनु०, ३. ७०, अध्यापनं ब्रहायज्ञ, पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवी बलिर्भीतौ नृयज्ञीडतिथि पूजनम्।।

३३. अर्थवेद, ११.५.१८, ब्रह्मचर्येण कन्या युवान विन्दते पतिम्।

३४. रामायण, ४.१६.१२, ततः स्वस्त्ययन कृत्वा मंत्रीविद्विज यैषिणी।

३५. मनुस्मृति, १०.४४, १०, १२२।

३६. शब्दानुशासन, ६.१.२।

३७. बौद्धायन धर्मसूत्र, १.१.२०।

३८. दीयमानां न तु तदा प्रतिजग्राह राघवः। अविज्ञाय पितृश्छन्द मयोध्या जिघतेः प्रभोः २. ११८.१५

३६. पुन्नाम्नो नरकायस्मात पितरंत्रायते सुतः। तस्मातृ पुत्र इति प्रोक्तः पितृत्यः पति सर्वतः। २.१०७.१२

४०. प्रायेण हि नरश्रेष्ठ ज्येष्ठाः पितृषु वल्लभः १.६.१६

४१. ज्येष्ठ राजता नित्यमुचिता हि कुलस्य नः २.७६.७

४२. ममात्याचारितं पूर्वैः पन्थानमनुगच्छता। प्रजा नित्यमनिद्रेण यथा श्वत्य निरक्षिताः २.२६

४३. शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवाराधिव। २.६३.५०

४४. इदं च धनु रूधकय सज्जं यः कुरुते नरः। तस्यमें दुहिता भार्या भविष्यन्ति न संशयः।।२. ११७.४२

४५. उत्तरे दिवसे ब्रह्मन फल्गुनीश्चां मनीषिणः। वैवाहिक प्रशंसान्ति भगो मत्र प्रजापतिः। १. ७२.१३

४६. अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रथा यथा ५.२१.१५

४७. ततो में जननी दीना तच्छशीरं पितुर्मम। परिषज्य महाभागा प्रविष्टा हव्यवाहनम् ७.१७. १४

४८. बी, एन, एस, यादव-लैण्ड सिस्टम----इंडिया पृ६४ पाद टिप्पणी ५।

४६. तक्कोलानां च जात्यानां फलानां च सुगन्धिनाम्। पुष्पाणि च तमालस्य गुल्मानि मारिचस्य च ३.३५.२२-३,

५०. नाराजके जनपदं वणिजो दूरगामिनः। गच्छन्ति क्षेयम-ध्वानंबहुपण्य समाचितः २.६७. २२

५१. रामायण, बालकांड, ६, नानादेश निवासैश्च वणिक भिरूपसेवितम्।

५२. १.७.७,११-२

५३. २.६१.५७

५४. वृषेन्द्र मास्थाय शशिप्रकाश मायाति यौडसौ त्रिशिरा यशस्वी। ६.५६.१६

५५. ६.३.२७

५६. ६.७१.२८-६,

५७. ६.१२२.४-६,

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(अ.) मौलिक ग्रन्थ-

१. अग्नि पुराण : आनन्द आश्रम, पूना, १६००, एम०एन० दत्त द्वारा अंग्रेजी अनुवाद, कलकत्ता, १६०३।

२. अर्थवेद : आर० राय व डब्ल्यू० डी० ह्विटने द्वारा सम्पादित बर्लि १८५६ सायण भाष्य सहित (सं०) एम०पी० पंडित, बम्बई, १६६५-६८ (अंग्रेजी अनु०, डब्ल्यू० डी० ह्विटने कैम्ब्रिज, १६०५) ब्लूमफील्ड, एम० सेकेण्ड बुक्स ऑव द ईस्ट, जिल्द-४२, ऑक्सफोर्ड, १८६७।

३. अथर्ववेद संहिता : (सपा०) सी०आर० लालमान, अनु०डब्ल्यू०डी० व्हिटने, द्वितीय संस्करणः दिल्ली-१६७१, सायण भाष्य सहित संपा०, विष्वबन्धु होशियारपुर.१६६२

४. अर्थशास्त्र : संपा० अंग्रेजी अनु० आर०पी०कांग्ले, भाग १-२ द्वितीय संस्करण, बम्बई, १६६०-६५, "अर्थशास्त्र आव कौटिल्य", संपा० आर० शामशास्त्री तृतीय संस्करण १६२४, अनु०आर० शास्त्रशास्त्री तृतीय संस्करण, मैसूर। १६२६, सटीक संपा०टी०गणपति शास्त्री, तीन खण्डों में त्रिवेन्द्रम् १६२४-२५, कौटिल्य अर्थशास्त्रः वाचस्पति गैरोला, द्वितीय संस्करण, वाराणसी-१६७७.

५. अमरकोश : बी० झलकीकर द्वारा संपा०, बम्बई, १६०७ भट्टक्षीर स्वामी का टीका संहित, संपा० ए०डी० शर्मा एवं एन०जी० सरदेसाई, पूना-१६४१।

६. अष्टाध्यायी आव पाणिनि : सम्पादक एवं अनु०एस०सी० वसु, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली-१६७७.

७. आपस्तम्बधर्म : संपा०जी० ब्यूलर, बम्बई-१६३२, हिन्दी व्याख्याकार-डॉ० उमेशचन्द्र पाण्डेय, द्वितीय संस्करण, वाराणसी-१६६६

८. आपस्तम्ब श्रौतसूत्रः : रुद्रदत्त की टीका सहित, सम्पा० रिचर्ड गार्वे, उतंठ, सुत्र कलकत्ता-१८८२, १६०२, धर्म स्वामिन भाष्य सहित, संपा जी०एच० भद्द, बड़ौदा-१६५५.

६. अश्वलायन गृह्मसूत्रः : म०प्र० गणपति शास्त्री द्वारा संपा, त्रिवेन्द्रम् १६२३.

१०. ऋग्वेद : वैदिक संशोधन मंडल द्वारा संपा० एवं प्रकाशित ४ जिल्द, आनन्द आश्रम, पूना, १६३१, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली-१६३६-४०

११. ऋग्वेद ब्राह्मण : अंग्रेजी अनु. ए०बी० कीथ, प्रथम भारतीय संस्करण मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली-१६७१.

१२. ऋग्वेद संहिता : सायण भाष्य संहित, ५ खंड (संपा०) एन०एल० एवं सी०जी० काशीकर, वैदिक संसोधन मंडल, पूना १६३३-५१, अंग्रेजी अनु०आर०टी०एच० ग्रिफिश बनारस, १६१६-१७.

१३. ऐतरेय ब्राह्मण : (सं०) आर० अनन्तकृष्ण शास्त्री, त्रिवेन्द्रम्, १६४२.

१४. अंगुत्तरनिकाय : संपा० आर, मोर्रिज एवं ई. हार्डे, ५ भागों में, लन्दन, १८८५-१६००

१५. कथासरित्सागर : सी०एच० ट्वेने द्वारा अंग्रेजी अनु० दुर्गाप्रसाद द्वारा संपा० बम्बई, १६२०

१६. कर्पूर मंजरी : राजशेखर कल्कत्ता, १६४८

१७. कल्पसूत्र : अनु० महोपध्याय विनय सागर, पृकृति भारती, जयपुर१६७७

१८. कात्यायन श्रौतसूत्र : (संपा०) ए० बेवर, चौखम्बाग्रन्थमाला वाराणसी-१६७२.

१६. कात्यायन स्मृति : (विधि और प्रक्रिया) पुननिर्मित पाठ सहित.

२०. कात्यायन स्मृति : पी०वी० काणे द्वारा संपा० एवं अंग्रेजी अनुवाद पूना-१६३३. रसाारोद्धार

२१. कामन्दकीय नीतिसारः : (सं०) टी०गणपति शास्त्री द्वारा संपा० त्रिवेन्द्रम्-१६१२.

२२. कामसूत्र : वात्सायन, बम्बई, १६५४

२३. काल विवेक : मधुसूदन स्मृतिरत्न व पी०तर्क भूषण द्वारा संपा०, कलकत्ता,

१६०५.

२४. काव्य प्रकाश : हरदत्त शर्मा द्वारा संपा० पूना, १६३५

२५. काव्य मीमांसा : राजशेखर, गुजरात १६१६.

२६. कीर्ति कौमुदी : सोमदेव संपा०ए०बी०, कथवते, बम्बई १८८३.

२७. कुम्भकोणम् : संपा०टी०आर० कृष्णाचार्य और टी०आर० व्यासाचार्य, बम्बई, १६०६, १६१०, समीक्षित संस्करण, पूना-१६२६-१६६६.

२८. कूर्म पुराण : बिब्लियोथिका इण्डिका सीरीज, कलकत्ता १८६०, काशीराज ट्रस्ट, वाराणसी-१६७२.

२६. कृत्यकल्पतरू : के०बी० रंगा स्वामी द्वारा संपा० गायकबाड़ ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा, १६८१-५३.

३०. कुवलयमाला : उघोटन सूरि, बड़ौदा १६२७.

३१. कोषीतकि : (संपा०) ई०बी० कावेल, चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी-प्रथम ब्राह्मणोपनिषद संस्करण, १६६८.

३२. गरुड़ पुराण : सेक्रेड बुक्स आफ दि हिन्दूज, ६ भागों में

३३. गीतगोविन्द : जयदेव, दिल्ली-१६५५.

३४. गोपथ ब्राह्मण : राजेन्द्रलाल मिश्र व विधाभूषण एच द्वारा संपा०, कलकत्ता १६३६.

३५. गोमिल गृहसूत्र : टीकाकार भट्टनारायण, संपा० सी० भट्टाचार्य, कलकत्ता १६३६.

३६. गौतम धर्मसूत्र : (संपा०) महादेव चिमणाजी आप्टे, आनन्द आश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, १६६६, हिन्दी व्याख्याकार-उमेशचन्द्र पाण्डेय, वाराणसी १६६६.

३७. चतुर्वर्गचिन्तामणि : बिब्लियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, १६७८-६१.

३८. चुल्लवग्ग : (संपा०) भिक्खु जे० कश्यप, बिहार राजकीय पालि प्रकाशन मण्डल, १६५६.

३६. छान्दोग्यउपनिषद : (बारह मुख्य उपनिषद) भाग-३, (संपा०) राजा राजेन्द्रलाल मिश्र एवं प्रो०ई०बी० कावेल नई दिल्ली-१६७८.

४०. जातक : टीका सहित, संपा०बी०फास बाल, लन्दन, १३६५-१६०७.

४१. जैनसूत्र : अनु० हर्मन जैकोबी, दिल्ली १६६५.

४२. तीर्थचिन्तामणि : कमण कृष्ण स्मृतितीर्थ द्वारा संपा० कलकत्ता-१६१२.

४३. तैत्तिरीय आरण्यक : आनन्द आश्रम प्रेस, पूना-१८६७.

४४. तैत्तिरीय ब्राह्मण : (संपा०) विनायक गणेश आप्टे, सायणाचार्य भाष्य सहित, आनन्द आश्रम, संस्कृत सीरीज, १६३८.

४५. तैत्तिरीय संहिता : आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, १८६०.

४६. थेरीगाथा : अनु० रिज डेविड्स, लन्दन १६५१.

४७. थेरीगाथा : अनु० रिज डेविड्स, लन्दन, १६०६.

४८. दशकुमारचरित : (संपा०) काले, प्रकाशन-स्थान ओरियन्टल पब्लिशिंग कम्पनी, १६१७.

४६. दानप्रकाश : मित्र मिश्र.

५०. दानमयूख : चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी.

५१. दान रत्नाकर : चण्डेश्वर

५२. दान वक्यावलि : विद्यापति

५३. दानसागर : बी०भट्टाचार्य द्वारा संपा०, कलकत्ता १६५३-५५.

५४. दाय भाग : एच०टी० कालबुक द्वारा अंग्रेजी अनु० कलकत्ता-१६१०.

५५. दिव्यावदान : (संपा०) ई०बी०फावेल और ए०ए०नैल, एमस्टरडम १६७० तथा पी०एल०वैद्य, दरभंगा,१६५६.

५६. नर्द सेक्रेंडला ऑफ दि आर्याज् : आतस्तम्ब गौतम, वसिष्ठ, बौधायन, धर्मसूत्रों का जी० ब्यूहलर द्वारा अनुवाद दिल्ली १६६४।

५७. दीर्घनिकाय : (संपा०) टी० डब्ल्यू० रिज हैडेविड्स एवं अन्य, ३ खण्ड, पा०टे०सो०, लन्दन,१८६०-१६११, अनुवादक टी० डब्ल्यू०

रिज डेविड्स, तीन खंड, सा०बु०ई०, लन्दन, १८६६-२१, हिन्दी अनु०, राहुल सांकृत्यायन और जगदीश काश्यप, वाराणसी, १९३६.

५८. धातुपद : पाणिनि, हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला बनारस,

५९. धर्मशास्त्र : (हिन्दू विधि संहिता) अनु०एम०एन०, दत्त, कलकत्ता,१९०८.

६०. नारद स्मृति : (संपा०) जे० जाली, कलकत्ता-१८८५.

६१. नीतिकल्पतरु : क्षेमेन्द्र, पूना, १९५६.

६२. नीतिवाक्यांमृतम् : ग्रंथमाला बम्बई, १८९०, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी.

६३. नौषधीयचरित : श्रीहर्ष, बम्बई, १९३३.

६४. पद्मपुराण : आ०सं०सी० पूना, १८९४.

६५. पराशर स्मृति : के० भट्टाचार्य द्वारा अंग्रेजी अनु०, कलकत्ता-१८८७.

६६. परिशिष्ट वर्णन : हेमचन्द्र संपा० एस०जैकोवी कलकत्ता, १८८३.

६७. पतंजलि महाभाष्य : (संपा०) एफ० कीलहार्न, ३ खण्ड, बम्बई १८९२-१९०६, (संपा०) महाभाष्य आचार्य मधुसुदन प्रसाद मिश्रा, द्वितीय संस्करण, वाराणसी-१९७८.

६८. पारस्करगृह्यसूत्र : एम०जी० वक्रे द्वारा संपा० गुजराती, प्रिटिंग प्रेस, १९१७.

६९. पृथ्वीराज बिजये : जयनक संपा०, गौरीशंकर.

७०. प्रबन्ध चिन्तामणि : मेरुतुंग ए०मी० द्विवेदी, १९४०.

७१. प्रबोध चन्द्रोदय : कृष्णमिश्रा संपा० के०एस० शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, १८३६.

७२. ब्रह्मवैतर्त्तपुराण : आनन्द आश्रम प्रेस, पूना-१९३५.

७३. ब्रह्माण्ड पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई-१९१३.

७४. वृहतकथा कोश : हरिषेण

७५. वृहतसंहिता : वाराहमिहिर, कलकत्ता १८६५.

७६. वृहद्धर्म पुराण : हरप्रसाद शास्त्री द्वारा संपा० बिब्लियोथिका इण्डिका सीरीज कलकत्ता-१८९७.

७७. वृहदारण्यक उपनिषद : शंकराचार्य की टीका सहित, अनु० स्वामी माधवानन्द,

अल्मोड़ा-१६५०, कलकत्ता-१६७५

७८. बृहस्पति स्मृति : के०वी० रंगास्वामी द्वारा सम्पा०, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा-१६४१, अंग्रेजीअनु० जे० जाली, सेक्रेण्ड बुक्स आफ द ईस्ट, जिल्द ३३, आक्सफोर्ड, १८८६

७६. वृहत्संहिता : वाराहमिहिर हिन्दी अनु०, दुर्गाप्रसाद, लखनऊ, १८८४

८०. वृहत्पाराशरी स्मृति : (हिन्दी अनु०) सूर्यप्रसाद शर्मा, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई १६२७

८१. बौधायन गृह्यसूत्र : (सम्पा०) आर० शामा शास्त्री, मैसूर-१६२०

८२. बौधायन श्रौतसूत्र : हिन्दी व्याख्याकार - उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी-१६७२

८३. भागवत पुराण : गीताप्रेस, गोरखपुर-१६५३, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई-१६१०

८४. भगवद्गीता : गीताप्रेस, गोरखपुर-१६८२

८५. मज्झिमनिकाय : (सम्पा०) टेंकनर, आक्सफोर्ड, १८८३-१६३५

८६. मत्स्य पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

८७. मनुस्मृति : (सम्पा०) हरिकृष्णदेव मेधातिथि - सर्वज्ञानरायण, कुल्लुकराधवानन्द - नन्दन - रामचन्द्र - मणिराम - संस्करण, बम्बई-१६७२

८८. महावग्ग : (सम्पा०) भिक्खु जे० कश्यप, बिहार राजकीय पालि प्रकाशन मण्डल, १६५६

८६. महावस्तु : (सम्पा०) ई० सेनार्ट, तीन खण्ड, पेरिस, १८८२-६०

६०. महाभारत : कलकत्ता संस्करण, सम्पा०- एन० शिरोमणि और अन्य, वि०ई० कलकत्ता, १८३४-३६, अनु० के०एम० गांगुली, प्रकाशक - पी०सी० राय, कलकत्ता - १६८४-६६

६१. महाभाष्य : एफ० कीलहार्न द्वारा सम्पा०, बम्बई- १८६२-१६०६

६२. मानव श्रौत सूत्र : (सम्पा०) जे०एन० वानगेल्डर, भाग-१, नई दिल्ली-१६६१

६३. मानसोल्लास : २ भागों में गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा, १६२६

९४. मिताक्षरा : विज्ञानेश्वर, बम्बई-१६०६

९५. मीमांसा सूत्र : गंगानाथ द्वारा अंग्रेजी अनु०, सेकेण्ड बुक्स ऑव द हिन्दूज, जिल्द - १०, १६१६

९६. मृच्छकटिक : (सम्पा०) एम० आर० काले, तृतीय संस्करण, दिल्ली-१६७२, श्रीनिवास शास्त्री, मेरठ-१६८०

९७. मैत्रायणी संहिता: (सम्पा०) भट्टाचार्य, बी० दामोदर भट्ट, सुमुना संतकलेकर, भारत मुद्रणालय, औधनगर (सतारा), विक्रमीय सं० १६६८

९८. याज्ञवल्क्य स्मृति : मिताक्षरा टीका सहित सं० जगन्नाथ रघुनाथ, धारपुरे, प्रथम संस्करण-बम्बई, १६१४; वीरमित्रोदय, मिताक्षरा एवं दीपमालिका टीका सहित, अंग्रेजी अनु० एवं टिप्पणी जे०आर० धारपुरे, द्वितीय संस्करण- वाराणसी, १६३०

९९. युक्तिकल्पतरु : भोज, संपा०, ईश्वरचन्द्र शास्त्री, कलक

१००. रघुवंश : कालिदास, संपा० काशीनाथ पाण्डुरंग, बम्बई १८८२

१०१. शततरंगणी : (सम्पा०) दुर्गाप्रसाद, संवत् १६८४

१०२. राजनीति रत्नाकर : चन्द्रेश्वर मिश्रा, संपा० काशीप्रसाद जायसवाल, पटना १६२४

१०३. रामायण : (सम्पा०) पी०एल० वैद्य, बड़ौदा-१६६२, हिन्दी भाषानुवाद, कलकत्ता-१६७३; गीताप्रेस गोरखपुर - १६६७, समीक्षित संस्करण; ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, १६६०-७१, अंग्रेजी अनु० एम०एम० दत्त, कलकत्ता - १८६२-६४

१०४. लिंग पुराण : संपा० जीवनन्द विद्यासागर, कलकत्ता १८८५

१०५. लीलावती : (लेखक) भास्कराचार्य, हिन्दी व्याख्याकार पं० लषगलाल झा, प्रथम संस्करण, वाराणसी-१६६१

१०६. लक्ष्मदास : लेखपद्धति गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा-१६२५

१०७. व्यवहार मयूख : नीलकंठ भट्ट, संपा० पाण्डुरंग वामनकाणे, पूना, १६२६

१०८. वशिष्ठ धर्मसूत्र : एम०ए० फ्यूहरर द्वारा सम्पा०, पूना १६३०

१०९. विक्रमांक देवचरित : विल्हण, संपा० जार्ज व्यूहलर, बम्बई-१८७५

११०. वायु पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई - १६३३

१११. विनयपिटक : (सम्पा०) एच० ओल्डेनबर्ग, ५ खण्ड, लन्दन १८७८-१८८३

११२. विवाद रत्नाकर : (ले०) चन्द्रशेखर ठाकुर, (सम्पा०) कालकृष्ण स्मृतितीर्थ, कलकत्ता-१६३१

११३. विमानवत्थु : अनु० ई०आर० गूनेरत्ने, लन्दन

११४. विमुत्तिभग्ग : उपातिस्य, अनु० सोना घेरा, कोलम्बो - १६६१

११५. विष्णुधर्मोत्तर पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई - १६१२

११६. विष्णु पुराण : गीताप्रेस, गोरखपुर - १६६६

११७. वीरमित्रोदय : मित्रमिश्र, ४ भागों में, बनारस - १६१३

११८. विष्ण स्मृति : (सम्पा०) जे० जाली, वी० आई० कलकत्ता-१८८१, नन्द पण्डित भाष्य सहित (सम्पा०) वी० कृष्णाचार्य अदयार,१६६४ (अंग्रेजी अनुवाद) जे० जाली० एस०बीई० जिल्द सप्तम्, आक्सफोर्ड - १८८०

११६. शतपथ ब्राह्मण : संपा० ए० बेवर, लन्दन, १८८५

१२०. वीरमित्रोदय : (ले०) म०म० भीमिअ (सम्पा०), पं० विष्णुप्रसाद, जिल्द-१०, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी-१६१७

१२१. शुक्ल यजुर्वेदसंहिता : (सम्पा०) पं० जगदीशलाल शास्त्री, प्रथम संस्करण, दिल्ली - १६७१

१२२. शुक्रनीति : (व्याख्याकार) पं० ब्रह्मशंकर मिश्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, प्रथम संस्करण, वाराणसी - १६६८

१२३. स्मृतिचन्द्रिका : (ले०) श्री याज्ञिक देवभट्टोपाध्याय, व्यवहारकाण्ड, (सम्पा०) श्री निवासाचार्य, मैसूर-१६१६

१२४. स्मृतिचिन्तामणि : (ले०) गंगादित्य (सम्पा०) ए०ए० जानी०, बाड़ौदा - १६७६

१२५. सांख्यकारिका : हरदत्त शर्मा द्वारा सम्पा० ओरियण्टल बुक एजेन्सी, पूना, १६३३

१२६. हरिवंश पुराण : आर० किंजवाडेकर द्वारा सम्पा०, पूना-१६३६

(ख.) सहायक ग्रन्थ सूची (हिन्दी माध्यम)-

१. अग्निहोत्री पी०डी० : पंतजलिकालीन भारत, पटना-१९६३

२. अग्रवाल बी०एस० : भारत की मौलिक एकता, इलाहाबाद-वि०सं० २०११

३. अग्रवाल वासुदेव शरण : पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वाराणसी, संवत २०१२

४. अल्तेकर ए०एस० : प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, इलाहाबाद

५. अय्यर पी०एस०एस० : इवोल्यूशन आफ हिन्दू भारत आइडियाज, दिल्ली १९७६

६. उपाध्याय वासुदेव : प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर, पटना १९७२

७. उपाध्याय बल्देव : भारतीय दर्शन, वाराणसी, १९५९, १९४५

८. एंगेल्स, फ्रेडरिक : परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राजसत्ता की उत्पत्ति, नई दिल्ली १९७८

९. काणे पी०वी० : धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १-३ (हि० अनु०) अनुवादक अर्जुन चौबे काश्यप, तृतीय संस्करण, लखनऊ-१९८०

१०. कौसाम्बी डी०डी० : प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, नई दिल्ली १९७७

११. कांगले आर०पी० : कौटिल्य अर्थशास्त्र, ए स्टडी, भाग-३, बम्बई-१९६५

१२. गुप्त रमेश चन्द्र : तीर्थंकर बुद्ध और अवतार, इलाहाबाद-१९८८

१३. जायसवाल के०पी० : हिन्दू राजतन्त्र, दूसरा खण्ड, काशी सम्वत् २०२७

१४. जैन हीरालाल : भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, भोपाल-१९६२

१५. जैन कैलाशचन्द्र : प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थायें, संस्करण चतुर्थ, १९८७ पंचम १९९५

१६. झा० डी० एन० : प्राचीन भारत, एक रूपरेखा, नई दिल्ली-१९७८

१७. थापर रोमिला : भारत का इतिहास, दिल्ली १९८१

१८. दत्त नलिनाथ : उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, बनारस १९५६

१९. नाहर रतिभानु सिंह : प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, इलाहाबाद १९६७

२०. पाण्डे गोविन्दचन्द्र : बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, इलाहाबाद - १९९०

२१. पाण्डेय विमलचन्द्र : भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास, इलाहाबाद १९८९

२२. व्यास एस०एन० : रामायणकालीन समाज एवं संस्कृति

२३. वाशम ए० एल० : अद्‌भुत भारत, आगरा - १६७८

२४. महाजन बी०डी० : प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली-१६६१

२५. मिश्र जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना-१६७४

२६. मुकर्जी आर०के० : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, वाराणसी-१६८०

२७. राव विजयबहादुर : उत्तर वैदिक समाज एवं संस्कृति, प्रथम संस्करण, वाराणसी-१६६६

२८. राय उदयनारायण : प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद-१६६५

२६. शर्मा आर०एस० : प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं संस्थायें (हिन्दी अनुशीलन सं०) दिल्ली १६७८

३०. सिन्हा बी०पी० : मगध का राजनैतिक इतिहास, पटना-१६७८

३१. सिंह हरसहाय : प्राचीन भारत में पंचायती जन समितियाँ इलाहाबाद-१६८७

(अंग्रेजी माध्यम)

३२. अय्यर पी०एस०एल : इवोल्यूशन आफ हिन्दू मॉरल आइडियल्स, (पुर्नमुद्रित) दिल्ली १६७६

३३. अर्जुन डब्ल्यू एम० : फण्डामेन्टल्स ऑफ इथिक्स, न्यूयार्क-१६३०

३४. अरोड़ा यू०पी० : मोटिब्स इन इण्डिया माइथॉलोजी : देयर ग्रीक एण्ड अदर पैरलल्स, इलाहाबाद-१६८२

३५. अल्टेकर ए०एस० : स्टेट एण्ड गवर्नमेन्ट इन एन्शियण्ट इण्डिया, (पुर्नमुद्रित) वाराणसी-१६७७

३६. अल्टेकर ए०एस० : सोर्सेज ऑफ हिन्दू धर्म, शोलापुर-१६५२

३७. आर्गन टी०डब्ल्यू० : द हिन्दू क्वेस्ट फॉर द परफेक्शन ऑफ मैन, जोहियो-१६७०

३८. आप्टे बी०एम० : सोशल एण्ड रिलिजस लाइफ इन द गृह्यसूत्राज, बम्बई-१६५४

३६. आत्रेय बी०एल० : भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास, लखनऊ-१६६४

४०. अल्टेकर ए०एल० : दि पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, बनारस-१६५६

४१. आदिकरम् ई०डब्ल्यू : अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इनसीलोन, सीलोन-१६४६

४२. आयंगर के.वी.आर. : आस्पेक्ट्स ऑफ एन्शियन्ट इण्डियन इकनामिक्स, बनारस-१६३४

४३. आयंगर के.पी.आर. : सम आस्पेक्ट्स ऑफ हिन्दू व्यू ऑन लाइफ एकार्डिंग टु धर्मशास्त्र, बड़ौदा-१६५२

४४. इलियट सी० : हिन्दुज्म एण्ड बुद्धिज्म, ३ जिल्द, लन्दन

४५. उपाध्याय के० एन० : अर्ली बुद्धिज्म एण्ड भगवद्गीता, दिल्ली-१६७१

४६. उपाध्याय वासुदेव : ए स्टडी ऑफ हिन्दू क्रिमिनॉलोजी, वाराणसी-१६७८

४७. एंग्युलर एच० : द सेमीफाइज इन द ऋग्वेद, वाराणसी-१६६७

४८. एलेक्जेण्डर एस० : मोरल आर्डर एण्ड प्रोग्रेस (वि०सं०) लंदन-१६०६

४६. ओ फ्लेहाटी डब्ल्यू० डी० : एसेटिसिज्म एण्ड इरोटिसिज्म इन द हिन्दू माइथालोजी ऑव शिव, दिल्ली-१६७५

: द ओरिजिनल आन इविल आन हिन्दू माइथालोजी, वाराणसी-१६७६

५०. ओमप्रकाश : पालिटिकल आइडियाज इन द पुराणाज, इलाहाबाद-१६७८

५१. ओमप्रकाश : अर्ली इण्डियन लैण्ड ग्रान्ट्स एण्ड स्टेट इकानामी, इलाहाबाद-१६८८

५२. कुन्दनराजा सी० : द वेदाज, वाल्टेयर-१६५७

५३. कर्वे इरावती : युगान्त, दिल्ली-१६७४

५४. क्वीरवर जी. डब्ल्यू. : द इथिक्स ऑव द गीता, दिल्ली-१६७१

५५. कर्न एच० : मेनुअल ऑव इण्डियन बुद्धिज्म, दिल्ली-१६७४

५६. कर्न एच० : मेनुअल आफ इण्डियन बुद्धिज्म, स्टाटवर्ग-१८६५

५७. काँगले आर०पी० : अर्थशास्त्र - ए स्टडी, बम्बई-१६६३

५८. कनिंघम : स्तूप ऑफ दि भरहुत, कलकत्ता-१८७६, महाबोधि, लन्दन-१८६२

५६. कीथ ए०वी० : ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, ऑक्सफोर्ड-१६४१

६०. कीथ ए०वी० : रिलिजन एण्ड फिलासफी ऑफ वेद एण्ड उपनिषद्स, हार्वर्ड-१६२५

६१. कीथ ए०वी० : धर्म इन हिन्दू इथिक्स, कलकत्ता-१६७७

६२. क़ापडिया के० राम० : मैरिज एण्ड फैमिली इन इण्डिया, आक्सफोर्ड-१६५८

६३. कार्वे इरावती : हिन्दू सोसायटी इन इण्टरप्रिटेशन, पूना-१६६८

६४. कार्वे पी०वी० : धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-१ और २ पूना-१६३०

६५. कार्वे पी०वी० : हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, जिल्द १-३, पूना १६६२-१६७५ तथा हिन्दी अनुवाद भाग १-५, लखनऊ १६६३-१६७३

६६. कार० ई०एच० : सम्राट इज हिस्ट्री (पुर्नमुद्रित) लंदन-१६६१

६७. किम बी०वी० : शीपेन हावर्स कॉसेप्शन आव साल्वेशन, वास्टेयर-१६७८

६८. कुप्पू स्वामी बी० : धर्म एण्ड सोसायटी, मद्रास-१६७७

६६. कुमारस्वामी ए०के० : द रिलिजस बेसिस ऑव द फामर्स ऑफ इण्डियन सोसायटी, न्यूयार्क-१६४६

: रिपरिवुअल अथार्टी एण्ड टेम्पोरल पावर इन द इण्डियन थियरी ऑफ गवर्नमेन्ट, दिल्ली-१६७८

७०. कुमारस्वामी ए०के० : आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स ऑफ इण्डिया एण्ड सीलोन, लन्दन-१४१३

७१. कूले सी०एच० : सोशल आर्गनाइजेशन, न्यूयार्क-१६०६

७२. केतकर एस० बी० : हिस्ट्री ऑफ कास्ट इन इण्डियन, न्यूयार्क-१६०६

७३. केसर ब्रूनो० : बुद्धिज्म इट्स इसेन्स एण्ड डेवलपमेन्ट, ऑक्सफोर्ड-१६५१

७४. क्राफर्ड एस० सी० : द इवोल्यूशन ऑफ हिन्दू हिस्ट्रकल आइडियल्स, कलकत्ता-१६७४

७५. कोसाम्बी डी०डी० : द कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन ऑफ एन्शियण्ट इण्डिया इन हिस्टाकरिल आउट लाइन्स (हि०अनु०) (वि०सं०) दिल्ली-१६७७

७६. गुप्ता डी०के० : सोसायटी एण्ड कल्चर इन द टाइम ऑफ इण्डियन, दिल्ली-१६७६

७७. गार्वे आर० : सांख्य एण्ड योगा (ग्राण्ड रिसडर इन्डोएरिसकेन फिलोलाजी) स्ट्रासवर्ग-१८६६

७८. गितिन जान सिविल एण्ड डिलिन जान फिलिप : कल्चरल सोशियोलोजी, न्यूयार्क-१६४८

७६. ग्रानवेडेस ए० : बुद्धिस्ट आर्ट इन इण्डिया, लन्दन-१६२१

८०. ग्रिफिथ : पेन्टिग्स इन दि बुद्धिस्ट केव टेम्पल ऑफ अजन्ता, लन्दन-१८६६

८१. गीजर डब्ल्यू० : दिन महावंश, लंदन-१६१२

८२. गेटे प० : दि गार्डस् ऑफ नार्दन बुद्धिज्म, आक्सफोर्ड-१६१४

८३. गोडे पी०के० : स्टडीज इन इण्डियन लिटरेरी हिस्ट्री, बम्बई-१६५३

८४. गोपाल लल्लन जी : आसपेक्टस ऑफ हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर इन ऐंशियन्ट इंडिया, वाराणसी-१६८०

८५. गोपाल लल्लन जी : दि इकनामिक लाइफ ऑफ नार्दर्न इंडिया, वाराणसी-१६६५

८६. गोंडा जे० : एनशियन्ट इण्डियन किंगशिप फॉम रिलजस पॉइन्ट ऑफ व्यू, लोडेन-१६६६

८७. घोषाल यू०एन० : ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन पब्लिक लाइफ, जिल्द-२, बम्बई-१६६६

८८. घोषाल यू० एन० : ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, कलकत्ता-१६१७

८६. घोषाल यू० एच० : स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, कलकत्ता-१६१७

६०. घोषाल यू० एच० : दि एग्रेरियन सिस्टम इन एन्शियन्ट इण्डिया, कलकत्ता-१६३०

६१. घुर्ये जी० एस० : कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया, न्यूयार्क-१६५०

६२. घुर्ये जी० एस० : सोशलटेन्शन्स इन इण्डिया, बम्बई-१६६८

६३. चटर्जी पी०वी० : प्रिन्सिपुल्स ऑफ इथिक्स, कलकत्ता-१६१५

६४. चट्टोपाध्याय डी.पी. : लोकायत - ए स्टडी इन एन्शियन्ट इण्डियन मेटीरिय-लिज्म,

(च०स०) दिल्ली-१६७८

९५. चैतन्य कृष्ण : एन्यूहिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, वाराणसी-१६६५

९६. चौधरी राधाकृष्ण : प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पटना-१६७७

९७. चट्टोपाध्याय के० : स्टडीज इन वैदिक एण्ड इण्डो ईरानियन कल्चर एण्ड लिटरेचर, जिल्द-१, वाराणसी-१६७६

९८. चट्टोपाध्यांय एस० : बिम्बसार टू अशोक, कलकत्ता-१६७७

९९. चन्द्राककर जी०ए० : मैनुअल ऑफ हिन्दू इथिक्स (हि०सं०) पूना-१६२५

१००. चेन्नकैशवन एस० : कांसेप्ट्स ऑफ इण्डियन फिलासफी, दिल्ली-१६७६

१०१. जाम्सटन आर.एस. : बुद्धिस्ट चाइना, लन्दन-१६१३

१०२. जायसवाल के०पी० : हिन्दू पालिटी, कलकत्ता-१६२४

१०३. जाली जे० : हिन्दू लॉ एण्ड कस्टम, कलकत्ता-१६२८ (एस०के०दास द्वारा १८६६ ई० का जर्मन संस्करण से अनुदित)

१०४. जेम्स डब्ल्यू० : दि डायमक सूत्र, लन्दन-१६१२

१०५. जौहरी मनोरमा : पालिटिकल एण्ड एथिक्स इन एन्शियन्ट इण्डिया, वाराणसी-१६६८

१०६. जायसवाल के०पी० : हिन्दू पालिटी (त०सं०) बंगलौर-१६५५

१०७. जायसवाल सुवीरा : ओरिजन एण्ड डेवलपमेन्ट ऑफ वैष्णविज्म (हि०अनु०) दिल्ली-१६७६

१०८. जिमर एच० : फिलॉसफीज ऑफ इण्डिया, न्यूयार्क-१६५६

१०९. जैन आर०सी० : द मोस्ट एन्शियन्ट आर्यन सोसायटी, दिल्ली-१६६४

११०. जैन पी०एस० : द जैन पाथ ऑव थ्योरीफिकेशन, दिल्ली-१६७६

१११. जोड सी०ई०एम० : गायड द फिलासफी ऑफ मारल्स एण्ड पालिटिक्स, लन्दन-१६३८

११२. जोन्स डब्ल्यु० टी० : मास्टर्स ऑफ पोलीटिकल थॉट, (पुर्नमुद्रित) लंदन-१६५६

११३. झा डी०एन० : एन्शियन्ट इण्डिया - ऐन आउटलाइन्स, (हि०अनु०)

दिल्ली-१६८०

११४. टाइटस एच०एल० तथा
कीटान एम०वी० : (सं) द रेंज ऑव इथिक्स (पुर्नमुद्रित) दिल्ली-१६७१

११५. ठाकुर उपेन्द्र : रिलीजन एण्उ कल्चर; ए स्टडी इन हिन्दू एथिक्स

११६. ठाकुर वी०के० : आर्गनाइजेशन इन एन्शियन्ट इंडिया, नई दिल्ली-१६८१

११७. डार्विन : डिसेन्ट ऑफ मैन

११८. डूरा विल० : द फेजर्स ऑफ फिलासफी, न्यूयार्क-१६५३

११६. डेरेट जे०डी०एम०
और फ्लेहार्टी : रिलिजन लॉ एण्ड स्टेट इन एन्शियन्ट इण्डिया, लन्दन-१६६८

१२०. डब्ल्यू० डी० : सं० द कांसेप्ट्स ऑव ड्यूटी इन साउथ एशिया, दिल्ली-१६७८

१२१. दि जुबेनेल बी० : सांवरिनिटी, शिकागो-१६५७

१२२. दि बेरी० विलियम : (सं०) सोर्सेज ऑफ इण्डियन ट्रेडीशन (पुर्नमुद्रित)

१२३. थियोडोर : दिल्ली-१६७२

१२४. ताशिबाना एस० : द इथिक्स ऑफ बुद्धिज्म (पुर्नमुद्रित), लंदन-१६७५

१२५. त्रिपाठी पी०वी० : पुरुषार्थ - चतुष्टय, वाराणसी-१६७०

१२६. त्रिपाठी आर०पी० : स्टडीज इन पोलिटिकल एण्ड सोशियो - इकनामिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, इलाहाबाद-१६८२

१२७. थापर रोमिला : एन्शियन्ट इण्डियन सोशल हिस्ट्री, दिल्ली-१६७६

१२८. थापर ई०जे० : हिस्ट्री ऑफ बुद्धिष्ट थाट, लन्दन-१६३३

१२६. दत्ता एन० के० : ओरजिन एण्ड शीश ऑफ कास्ट इन इण्डिया, कलकत्ता-१६३१

१३०. दत्त नलिनाथ० : आस्पेजट ऑफ महायान इन रिलेशन टु हीनयान, लन्दन-१६३०

१३१. दत्त बी०बी० : टाउन प्लानिंग इन एन्शियन्ट इण्डिया, कलकत्ता-१६२५

१३२. दास एस० के० : इकोनामिकहिस्ट्री ऑफ एन्शियन्ट इण्डिया, कलकत्ता-१६२५

१३३. दत्त सुकुमार० : अर्ली बुद्धिष्ट मारल एण्ड मानेस्टरीज ऑफ इण्डिया देयर हिस्ट्री एण्ड देयर कन्ट्रीब्यूशन टु इण्डियन कल्चर, लन्दन-१६६२

१३४. दास भगवान : द साइन्स ऑफ सोशल आर्गनाइजेशन, मद्रास-१६१०

१३५. दास गुप्त सुशमा : डेवलपमेन्ट ऑव मॉरल फिलासफी इन इण्डिया, बम्बई-१६७८

१३६. दास गुप्ता एच.एन. : ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलासफी (पुर्नमुद्रित), दिल्ली-१६७६

१३७. तथा के०एस०के० : ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, जिल्द-१, कलकत्ता-१६४७

१३८. देवराज एन०के० : (सं० भारतीय दर्शन) (हि०सं०), लखनऊ-१६७८

: द माइण्ड एण्ड स्पिरिट ऑफ इण्डिया, दिल्ली-१६६७

: संस्कृत का दार्शनिक विवेचन (च०सं०), लखनऊ-१६७२

: भारतीय संस्कृति (हि०सं०), लखनऊ-१६७६

१३६. देवहुति : (सं०) प्राबलम्स ऑफ इण्डियन हिस्ट्रीरियोग्राफी, दिल्ली-१६७०

: (सं०) वायस ऑफ इण्डियन हिस्टीरियोग्राफी, दिल्ली-१६८०

१४०. नन्दी आर०एन० : सोशल रूट्स ऑफ रिलीजन एन एन्शियन्ट इंडिया, कलकत्ता-१६८६

१४१. नेगी जे०एस० : सम इण्डोलाजिकल स्टडीज, इलाहाबाद-१६५६

१४२. नन्द सेरेना : कल्चरल एन्थ्रोपोलाजी, न्यूयार्क-१६८०

१४३. पर्सन तस्कार : दि स्ट्रक्चर ऑफ ऐक्शन, न्यूयार्क-१६३३

१४४. पानिक्कर के०एम० : ए सर्वे ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, बम्बई-१६४७

: हिन्दू सोसायटी रेड क्रास रोड, बम्बई-१६४७

१४५. प्रभु पी०एम० : हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन, बम्बई-१६५८

१४६. पानिक्कर के०एम० : हिन्दू सोसाइटी, रेड क्रास रोड, बम्बई-१६६७

१४७. पानिक्कर आर० : वैदिक एक्सपीरियन्स, मंत्र मंजरी, लंदन-१६७७

१४८. प्रभु पी०एच० : हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन (तृ०सं०) १६५८

१४६. पाटर के० : प्रिजम्पशन्स ऑव इण्डियन फिलासफीज, प्रेन्टिस-१६६३

१५०. पाण्डेय विमलचन्द्र : भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास, इलाहाबाद-१६८६

१५१. पाण्डे जी० सी० : मृत्यु मीमांसा, जयपुर-१९७३

: स्टडीज इन द ओरिजन ऑफ बुद्धिज्म, इलाहाबाद-१९५७

: बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ-१९६३

: द मोर्निंग एण्ड प्रोसेस ऑव कल्चर, आगरा-१९७२

: भारतीय परम्पराके मुख्य स्वर, दिल्ली-१९८१

: फाउण्डेशन्स ऑफ इण्डियन कल्चर,जिल्द १-२, दिल्ली-१९८४

: एन प्रपोच टु इण्डियन कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन, वाराणसी-१९८५

: जैन पालिटिक्स थाट, दिल्ली-१९६५

१५२. पाण्डेय राजबली : भारतीय नीति का विकास, पटना-१९६५

१५३. पाण्डेय सुस्मिता : समाज आर्थिक व्यवस्था एवं धर्म ३००-१२०० ई० तक संस्करण द्वितीय आवृत्ति-१९६५

१५४. पाटिल डी०आर० : कल्चरल हिस्ट्री फ्राम द वायु-पुराण, दिल्ली (पुर्नमुद्रित)

१५५. पिक आर० : सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ ईस्टर्न इण्डिया इन द बुद्धा टाइम्स, कलकत्ता-१९२०

१५६. फिनले एम०आई० : द युस एण्ड एव्यूज ऑव हिस्ट्री, लन्दन-१९७५

१५७. फैनबर्ग जे० : मॉरल कांसेप्ट्स, लन्दन-१९६९

१५८. फोजवाल बी० : इण्डियन माइथालोजी, वाराणसी-१९७२

१५९. फर्क्युहरर जे०एन० : एन आउट लाइन ऑफ दि लिट्चर ऑफ इण्डिया, आक्सफोर्ड-१९२०

१६०. फिक रिचर्ड : सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ ईष्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम, कलकत्ता-१९२०

१६१. ब्लूमफील एम० : द रिलिजन ऑव द वेद, दिल्ली-१९७२

१६२. बनर्जी एस०सी० : इण्डियन सोसाइटी इन द महाभारत, वाराणसी-१९७६

१६३. बनर्जी एन० वी० : स्पिरिट ऑफ इण्डियन फिलासफी, दिल्ली-१९७४

: वैदिक रिलिजन, (अ०अनु०) पूना-१९७८

१६४. बसु० जे० : इण्डिया ऑव द एज आवेद ब्राह्माज्, कलकत्ता-१६६६

१६५. बरुआ, डी० के० : एन एनालाइटिकल स्टडी ऑफ दि फोर निकायाजा कलकत्ता, १६७१

१६६. बसु जोगिराज : इण्डिया आफ दि एज आफ दि ब्राह्माज, कलकत्ता-१६७६

१६७. बर्न्स, ई० : व्हाइट इज मार्क्सिज्म (हि० अनु०), आठवाँ सं० दिल्ली-१६८०

१६८. बगाची, पी० सी० : इण्डिया एण्ड सैन्ट्रल एशिया, कलकत्ता-१६५५

१६६. ब्राउन, डी० एम० : द व्हाइट अक्ब्रेलाः इण्डियन थाट फ्रॉम मनु टू गाँधी, बर्कले, १६५३

१७०. बार्कर, ई० : ग्रीक पोलिटिक्स, थियरी (हि० अनु०) दिल्ली-१६६७

द पालिटिक ऑव अरिस्टारिल, आक्सफोर्ड-१६४६

१७१. आर्थ, ए० : रिलिजन्स ऑफ इण्डिया, लन्दन-१६८२

रिलिजन आफ इण्डिया, नईदिल्ली-१६६६

१७२. बाशम, ए० एस० : वन्डर दैट वाज इण्डिया (हि० अनु०), (तृ० सं०) दिल्ली-१६७८

१७३. बुल्के फादर कामिल : रामकथा, उत्पत्तिं औरविकास, प्रथम संस्करण १६४० चतुर्थ संशोधित सं० १६६३ ई०

१७४. बैलवलकर एस.के. : द शान्तिपर्व-इन्ट्रोडक्सन, पूना-१६६६

१७५. बोस ए० सी० : सिम्न्स फ्रॉस द वेदाज, बम्बई-१६६७

१७६. बोस, एस० : बुद्धिस्ट रिकार्डस आफ दि बेस्टर्न वर्ल्ड हेनसांग से चीनी भाषा में अनुवाद, लन्दन-१६१४

१७७. बेकर, मेक्स : दि रिलिजन आफ इण्डिया, इलोंबा-१६५८

दि थ्योरी आफ सोशल एण्ड इकोनामिक आर्गनाइजेशन न्यूयार्क-१६६७

१७८. वसु जोगिराज० : इण्डिया आफ द एज आफ ब्रह्माण्ड प्रथम संस्करण कलकत्ता-१६७६

१७६. भार्गव, पी० एल० : इण्डिया इन द वैदिक राज़, लखनऊ-१६५६

१८०. भण्डारकर, जी० आर० : अशोक (हि० अनु०), दिल्ली-१६७० सम आस्पेक्ट्स आंव इन्सियण्ट हिन्दू पॉलिटी (द्वि० सं०), वाराणसी-१६६३

१८१. भण्डारकर आर.पी. : वैष्णविज्म, शेविज्म एण्ड माइनर रिलिजस सिस्टम्स (पुनर्मुद्रित) क्लेक्टेड वर्क्स ऑव आर० जी० भण्डारकर पूना-१६२८

१८२. भट्टाचार्य एन.एन. : हिस्ट्री आव इण्डियन कास्योगोनिक्ल आइडियाज दिल्ली-१६७१

१८३. भट्टाचार्य, एच० : (सं०) द कल्चरल हेरिटेज ऑव इण्डिया, जिल्द १:५, (पुनर्मुदित) कलकत्ता-१६७०

१८४. भट्टाचार्य, एस० : सम अस्पेक्ट्स ऑफ इण्डियन सोसायटी, कलकत्ता-१६७८

१८५. भट्टाचार्य ओ.पी. : (सं०) स्टडीज इन सोशल हिस्ट्री, इलाहाबाद-१६४६

१८६. भार्गव डी० एन० : जैन इथिक्स, दिल्ली-१६७८

१८७. म्योर जे० : ओरजिनल संस्कृत टेक्सट्स, जिल्द १-५ (पुर्नमुद्रित), दिल्ली-१६७६

१८८. म्योरहेड जे०एच० : द एलीमेन्ट्स ऑव इथिक्स, लंदन-१६१०

१८६. मजुमदार ए०के० : इकनॉमिक बैक ग्राउण्ड ऑल द इपिक सोसायटी, कलकत्ता-१६७७

१६०. मजुमदार डी०एन० तथा मदान टी०एन० : ऐन इनट्रोडक्शन टू सोशल एन्थ्रोपोलॉजी (पुर्नमुद्रित) बम्बई

१६१. मजुमदार आर.सी. : (सं०) द वैदिक राज, बम्बई-१६७१

१६२. मार्शल ए० : एलीमेन्ट्स आंव एक्नामिक्स, जिल्द-१, लन्दन-१६३२

१६३. मिश्र : रमानाथ प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था एवं धर्म-१६६१

१६४. मिश्र जयशंकर : प्राचीन भारत का समाजिक इतिहास, दिल्ली १६६२

१६५. मिश्रा, के० एन० : महाभारत में लोक कल्याण की राजकीय योजनायें, वाराणसी-१६७२

१९६. मिश्रा, ए० सी० : एलीमेन्टस आंव मारल्स, कटक-१९१२

१९७. मीज, जी० एच० : धर्म एण्ड सोसायटी, लन्दन-१९६३

१९८. मुकर्जी, राधाकमल : द डेस्टिनी आंव सिबिलिजेशन, बम्बई-१९६४
सोशल स्ट्रक्चर आंव वेल्यूज, दिल्ली-१९६५
इण्डियन स्कीम आंव लाइफ, बम्बई-१९५१

१९९. मुकर्जी, राधाकुमुद : अशोक (पुनर्मद्रित) दिल्ली-१९७२
हिन्दु सिविलाइजेशन, (हि० अनु०), (प्र० सं०) दिल्ली-१९७५

२००. मुकर्जी, एस० : सम वा स्पेक्ट्स आंव सोशल लाइफ इन एम्शियन्ट इण्डिया, इलाहाबाद-१९७६

२०१. मुर, जी० ई० : इथिक्स (पुनर्मद्रित), लन्दन-१९७२

२०२. मूर्ति, के० एल० : (सं०) रीडिंस इन इण्डियन हिस्ट्री पोलिटिक्स एण्ड फिलासफी, लन्दन-१९६७
: द इण्डियन स्पिरिट, वाल्टेयर-१९६५

२०३. मेट गम्स, एस.जी. : (सं०) स्टडीज इन द कल्चरल हिस्ट्री आंव इण्डिया,
तथा क्रूजे फकोइस आगरा-१९६५

२०४. मेकी, जे० एल० : इथिक्स, लन्दन-१९७७

२०५. मेकेन्जी, जे० : हिन्दु इथिक्स, (द्वि०सं०), दिल्ली-१९७१

२०६. मेकेन्जी, जे० एस०: ए मेनुअल ऑव एथिक्स, दिल्ली-१९६८

२०७. मेकेन्टायर, ए० : ए शार्ट हिन्ट्री ऑव एथिक्स, लन्दन-१९७४

२०८. मेक्नीकाल, ए.ए. : वैदिक माइथॉलोज़ी, दिल्ली-१९७४

२०९. मेक्नीकाल, एन० : इण्डियन येईज्म, लन्दन-१९१५

२१०. मेक्समुलर, एस० : स्मिथ सिस्टमा आंव इण्डियन टेक्नालिजी दिल्ली-१९७६
: एशियन्ट संस्कृत लिटरेचर

२११. मेवा, एस० के० : द इथिक्स ऑव द हिन्दूज, कलकत्ता-१९६३

२१२. मैकेट, आइ. डब्ल्यू : यूथ, मिथ एण्ड पोलिटिक्स इन एशियण्ट, इण्डिया, दिल्ली १९७२

२१३. मोतीचन्द्र. : ज्योग्राफिकल एण्ड इकनामिक स्टडीज इन द महाभारत उपायन पर्व, लखनऊ-१९४३

२१४. मौरगन, के०डब्ल्यु : द रिसिजन आंव द हिन्दूज, न्यूयार्क-१९५३

२१५. मजुमदार, डी०एन०: रेसेज एण्ड कल्चर्स आफ इण्डिया, बम्बई-१९५८

२१६. मजुमदार, एन०एम०: ए हिस्ट्री आफ एजुकेशन इन ऐशियन्ट इण्डिया, कलकत्ता-१९१६

२१७. मजुमदार,आर०सी०: हिन्दु कालोनीज इन दि फार ईस्ट, कलकत्ता-१९६३

: सुवर्ण दीप, कलकत्ता- १९२७

: कारपोरेट लाइफ इन ऐशियण्ट इण्डिया, कलकत्ता १९२८

२१८. मजुमदार, आर० सी० ऐक० : दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ दि एण्डियन पीपुल जिल्द १ से ६, बम्बई

२१९. मजुमदार, आर.सी.: वैदिक एज कल्चरल (विज भवन सीरीज) ऐरीटीज आफ इण्डिया

२२०. महेश्वरी प्रसाद : दि रोज आफ हिन्दूजम इन सोसाइटी एण्ड पॉलिटिक्स आफ इण्डिया, बोन-१९७२

२२१. मलल सेकर,जी.पी.: पॉली लिट्चर इन सीलोन, लन्दन-१९२०

२२२. मार्शल, जे० : मोहनजोदड़ो एण्ड दि एन्डम सिविलाइजेशन, लन्दन-१९३४

२२३. मिश्रा, आर० सी० : दि डिजाइन आफ बुद्धिज्म इन इण्डिया, विश्वभारती-१९५४

२२४. मिश्रा, योगेन्द्र : अर्ली हिस्ट्री आफ वैशाली, दिल्ली-१९६२

२२५. मुकर्जी आर० के० : ऐसियन्ट इण्डियन एजुकेशन, लन्दन-१९५१

२२६. मेहता, आर.एन. : दि बुद्धिस्अ इण्डिया, बम्बई-१९३९

२२७. मेक्सवेल, ए० : हिस्ट्री आफ संयुक्त लिटरेचर, लन्दन-१९२८

२२८. मेक्सइवर एण्ड पेप सोसाइटी : आक्सफोर्ड, १९८१

२२९. मेसे, एस० सी० : सांची एण्ड इट्स रियेन्स, लन्दन-१८९२

३३०. यादव, बी.एन.एस.: सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया इन द ट्वेल्पन्थ

सेन्चुरी ए०डी० इलाहाबाद-१६७३

२३१. रामगोपाल : इण्डिया आफ वैदिक कल्पसुवास, दिल्ली-१६६३

२३२. राय चौधरी,हेमचन्द्र : पोलिटिक्स हिस्ट्री आफ ऐशियन्ट इण्डिया कलकत्ता-१६५३

२३३. रिज डैविट्स : बुद्धिस्ट इण्डिया, लन्दन-१६०३

२३४. रिजले, एच०एच० : दि पीपुल आफ इण्डिया, लन्दन-१६१५

२३५. राकंहित, डब्ल्यु० डब्ल्यु० : द लाइफ आफ बुद्ध, लन्दन-१६०७

२३६. राज, पी० टी० : फिलासफिकल ट्रेडीशन्स आफ इण्डिया, लन्दन-१६७१

२३७. राधाकृष्ण, एस० : ईस्टर्न रिलिजन्स एण्ड वेस्टर्न थाट, आक्सफोर्ड-१६३६

: इण्डियन फिलॉसफी, जिल्द १-२, लन्दन १६२६-१६३२

: द हिन्दु आफ लाइफ, लन्दन-१६२८

: रिलिजन एण्ड कल्चर, दिल्ली-१६६८

: रिलिजन एण्ड सोसायटी, लन्दन-१६४७

: (सं०) स्पिरिट आफ रिलिजन, दिल्ली-१ पाठ

२३८. तथा सुर, सी० ए०: (सं०) ए सोर्सबुक ऑव इण्डियन फिलासफी, प्रिन्सटन १६५७

२३६. तथा राजू, पी.टी. : (सं०) द कासेप्ट ऑव मैन (हि० सं०), लन्दन-१६६६

२४०. रानाडे, आर० डी०: ए कांस्ट्रस्टिव सर्वे ऑव उपनिषदिक फिलासफी, पूना १६३३, (हि० अनु०) जयपुर-१६७१

२४१. राय० पी० पी० : पोलिटिकल आइडियाज एण्ड इन्स्टीट्‌युशन्स इन महाभारत, कलकत्ता-१६७२

२४२. राय चौधरी,एच.वी. : पोलिटिकल हिस्ट्री आफ एन्शियन्ट इण्डिया, (सं० सं०) कलकत्ता-१६७२

२४३. राव, एम०वी०के० : स्टडीज इन कौटिल्य (तृं० सं०) दिल्ली-१६७६

२४४. रिज डेविट्स, टी० डब्ल्यू : द बुद्धिस्ट इण्डिया, लन्दन-१६७३

२४५. रेनो, लुई : (सं०) हिन्दुइज्म, न्यूयार्क, १९६१
२४६. रेमण्ड, एल० : (सं०) रिलिजस हिन्दुइज़्म, इलाहाबाद-१९६८
२४७. रेलेन्द्र एल० : इथिक्स, न्यूयार्क-१८९३
२४८. रैशडल, एच० : द थ्यिरी ऑव गुड एण्ड इपिल, जिल्द- १-२ (द्वि० सं०) लन्दन-१९२४
२४९. रोजर्स, आर.ए.पी. : शार्ट हिस्ट्री आफ इथिक्स, लन्दन-१९४५
२५०. लर्नर, एम० : (सं०) मेक्यिावलीः द प्रिन्स एण्ड डिस्कोर्सेस, न्यूयार्क
२५१. लिगांत, आर० : क्लासिकल ला आफ इण्डिया, (अं० अनु०) लन्दन-१९७३
२५२. लाल, विलियम : ऐन इन्ट्रोडक्शन द एथिक्स, (पुनर्मुदित) दिल्ली-१९५५
२५३. ला, एन० एन० : स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, लन्दन-१९२५
२५४. ला, सी० सी० : बुद्धिस्ट स्टडीज, कलकत्ता-१९३१
२५५. व्यास शांतिकुमार नानूराम : रामायणकालीन समाज एवं संस्कृति १९८७
२५६. विन्टर नित्स, एम० : ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिट्रेचर, कलकत्ता-१९२७
२५७. बोगेल, जे० पी० : बुद्धिस्ट आर्ट इन इण्डिया, सीलोन एण्ड जावा आक्सफोर्ड-१९३६
२५८. वर्मा, वी० पी० : स्टडीज इन हिन्दु पोलिटिकल थाट एण्ड इट्स मेटाफिजिकल फाउन्डेशन्स, (दि० सं०), वाराणसी-१९६९
२५९. विन्टरनिब्ज, एम० : हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर, (अं० अनु०), जिल्द १-३, (पुनर्मुदित) दिल्ली-१९६८
२६०. विलियम्स, एम० : रिलिजस थाट एण्ड लाइफ इन एशियण्ट इण्डिया (पुनर्मुदित) कलकत्ता-१९७८
२६१. बोरा, डी० पी० : इवोल्यूशन ऑव मॉरल्स इन द इपिक्स, बम्बई-१९६६
२६२. शर्मा, बी० : इथिको-लिटरेरी वेल्यूज ऑव द टू ग्रेट इपिक्स इण्डिया, दिल्ली-१९६६
२६३. शर्मा, जी० आर० : रेह इन्सक्रिप्शन ऑव मिनान्डर एण्ड द इण्डो-ग्रीक इन्वेजन

ऑव गंगा वेली, इलाहाबाद-१६८०

२६४. शर्मा, आर० एस० : शूद्राज इन एन्शियन्ट इण्डिया, (हि० अनु०) दिल्ली १६७६

२६५. शर्मा, रामाश्रय, ए सोशिया : पोलिटिकल स्टडी आफ दि वाल्मीकि रामायण

: आस्पेक्टस आफ पोलिटिकल आइडियाज एण्ड इन्स्टीन्ट्यूशन इन एन्शियन्ट इण्डिया, (द्वि० सं०), दिल्ली-१६६८

२६६. शल्य, यशदेव : संस्कृतिः मानव कर्तव्य की व्याख्या जयपुर-१६६६

२६७. शाही, योगेन्द्र : अस्तित्ववादः किंकगार्द से कामू तक, दिल्ली-१६७५

२६८. समद्दर, जे० एन० : दि इकोनामिक कन्डीशन आफ ऐशियन्ट इण्डिया कलकत्ता-१६२२

२६६. सरकार, डी० सी० : सेलेक्ट इन्स्क्रिप्सन्स, २. जिल्द, कलकत्ता- १६४२

२७०. सरकार, एस.सी. : सम आस्पेक्ट्स आफ आर्थियस्ट सोशल हिस्ट्री आफ इण्डिया, लन्दन-१६२८

२७१. साथ्ये, एस० जी० : मॉरल-च्वाएस एण्ड अर्ली हिन्दू थॉट (पुर्नमुद्रित) बम्बई-१६७०

२७२. सिन्हा ए० के० : प्राचीन भारतीय वैयक्तिक एवं सामाजिक मूल्यबोध, इलाहाबाद-१६८१

२७३. सेनगुप्त, एन.जी. : सोर्सेस ऑफ ला. एण्ड सोसायटी इन एंश्यिन्ट इण्डिया, कलकत्ता-१६१४

२७४. सेलेटोर, बी० ए० : एन्शियन्ट इण्डियन पोलिटिक्स थाट एण्ड इन्स्ट्री-ट्यूशन्स, (पुनर्मुद्रित), बम्बई-१६६८

२७५. सिंह, एम० एम० : बुद्धकालीन समाज और धर्म, पटना-१६७२

२७६. सिंह रणजीत : धर्म की हिन्दु अवधारणा, इलाहाबाद-१६७७

२७७. सुकंठकर, बी.एस. : आन द मीनिंग आफ महाभारत, बम्बई-१६५७

२७८. सेवाइन, जी.एच. : ए हिस्ट्री आफ पोलिटिक्स थियोरी, न्यूयार्क-१६६१

२७६. संकालिया, एच.डी. : दि प्रि हिस्ट्री एण्ड प्रोटो-हिस्ट्री आफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, बम्बई-१६६३

२८०. श्रीवास कृष्णाचन्द्र : प्राचीन भारत का इतिहास, इलाहाबाद, १६८६

: प्राचीन भारत की संस्कृति, इलाहाबाद, १६८८

२८१. हवीलर, एम० : दि इण्डस सिविलाइजेशन, कैम्ब्रिज, १६५३

२८२. हार्डी, एस० : ए मेनेअुल आफ बुद्धिज्म, लन्दन-१८६०

२८३. हास फोल्डिंग : दि सोल आफ ए पीपुल

२८४. हॉपकिन्स,ए०डब्ल्यु : दि रिलिजन आफ इण्डिया

२८५. हॉपकिन्स, ग्रे ऐडवर्ड० : दि ऐपिक्स, नई दिल्ली-१६७२

२८६. हॉपकिन्स, ई० डब्ल्यू० : द ग्रेट इपिक ऑव इण्डिया (पुर्नमुंदित) दिल्ली-१६६६

२८७. हिल, एस० सी० : ओरिजन आफ कास्ट, सिस्टम इन इण्डिया, बम्बई-१६३०

२८८. हेकगन, एस० : बुद्धिज्म एज ए रिलिजन, लन्दन-१६१०

२८६. हरमन, ए०एल० : ऐन इन्ट्रोडक्शन द इण्डियन थाट, न्यू जेरेसी-१६७७

२६०. हाजरा, आर०सी० : पौराणिक रिकार्डस आफ हिन्दु राइट्स एण्ड कस्टम्स, दिल्ली-१६७५

२६१. हिक, जांन एच० : फिलासफी ऑव रिलिजन, दिल्ली-१६७६

२६२. हिन्डरी, आर० : कम्परेटिव इथिक्स इन हिन्दु एण्ड बुद्धिस्ट ट्रेडीशन्स दिल्ली-१६७८

२६३. हिरियन्ना, एम० : सेन्शियल्स आफ इण्डियन फिलॉसफी, लन्दन-१६७४

: आउट लाइन्स ऑव इण्डियन फिलॉसफी, (हि० अनु) (द्वि० सं०) दिल्ली-१६७३

: इण्डियन कांसेप्शन आफ वेल्यूज, मैसूर-१६७५

२६४. हेईमान, बी० : इण्डियन एण्ड वेस्टर्न फिलॉसफीः ए स्टडी इन कन्ट्रास्ट, लन्दन-१६७३

२६५. हेडेन, बी० आउट : (सं०) यूजेज ऑव हिस्ट्री, मिशिमान, १६५६

(ब) विदेशी विवरण :

१. ताकाकुस, जे०ए० : रिकार्ड आफ दि बुद्धिस्ट रिलिजन ऐण्ड प्रेक्टिसेल इन इण्डिया,१८६६

२. मैकिन्डल, जे० डब्ल्यू : ऐन्शियेन्ट, इण्डिया ऐज डेस्क्राइबड इन क्लासिकल लिट्रेचर, वेस्टमिस्टर, १६०१

३. मेक्रिन्डल, जे० डब्ल्यू : ऐशियन्ट इण्डिया ऐज डेस्क्राइण्ड बाई टालेमी, कलकत्ता-१८२५

४. लेग्गे, जे० एच० : रिकार्डस आफ दि बुद्धिस्ट किंगडक्स, बीइंग ऐन एकाउन्ट आफ दि चाइनजी मार्क फाहयान्स ट्रवेल लन्दन-१८६६

५. वाटर्स, टी० : आम श्वान-च्वांग, ट्रेवेल्स इन इण्डिया, २ जिल्द, लन्दन, १६०४-५

(स) सिक्के, अभिलेख एवं विदेशी विवरण :

१. आचार्य, जी०वी० : दि हिस्टारिकल इन्सिक्रप्शंस आफ गुजरात, २ भागों में बम्बई, १६३३-३५

२. कनिंघम, ए० : आर्म्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट्स, भाग १-२४, दिल्ली १६६६

: दि भिलसा टाप्स आर बुद्धिस्ट मानुमेनट्स आफ सेन्ट्रल इण्डिया, लन्दन, १८५४

: क्वायन्स आफ मेडिवल इण्डिया फ्राम दि सेवेन्थ सेन्चुरी डाउन टू दि मुहम्डन कानक्वेस्ट, लन्दन, १८६४

३. कान्त, शशी : दि हाथी गुम्फा इन्सक्रिप्सन आफ खारवेल एण्ड दि भब्रू एडिक्ट आफ अशोका-ए क्रिटकल स्टडी, दिल्ली १६७१

४. कोनोब, स्टेन : खरोष्ठी इन्सक्रिप्सन्स, भाग-२ कार्पस इन्सक्रिप्सनस इंडिकेरम, लन्दन, १६२६

: गाइल्स, एच० ए० (अनु०): दि ट्रैवेल्स आफ फाहियान, लन्दन, १६५८

५. दीक्षित, एम०जी० : सेलेक्टड इन्सक्रिप्सन्स फ्राम महाराष्ट्र, पूना १६४७

६. दीक्षितसार, वी०
आर०आर० (संपा०) : सेलेक्टड साउथ इण्डियन इन्सक्रिप्सन्स, मद्रास, १९५२

७. पीटर्सन, पीटर(संपा०) : ए क्लेक्शन आफ पाकृत एण्ड संस्कृत इन्स क्रिप्सन्स,
: दि मावनगर आर्क्योलाजिकल डिपार्टमेन्ट, भावनगर।

८. पल्लीट जे०एफ० : (रिवाइज्ड कार्पस इन्सक्रिप्शनम इण्डिकेरम, भाग-३, बार्ड भंडारकर) डी०आर० छाबरा, (गुप्ता इन्सक्रिप्सन्स) नई दिल्ली-१९८१

९. बर्गेस, जस : इन्सक्रिप्सन्स फ्राम दि केव टेम्पिल्स ऑफ वेस्टर्न इंडिया, विद डिस्क्रिप्सन नोट्स बाई भगवानलाल इन्द्राजी, पुर्नमुद्रण, दिल्ली-१९७६

१०. बरुआ बी०एम० : अशोका एण्ड हिज इन्सक्रिप्सन्स, कलकत्ता-१९५५
: ओल्ड ब्राह्मी इन्सक्रिप्सन्स इन दि उदयगिरि एण्ड खण्डगिरि केव्स, कलकत्ता-१९२९

११. मजुमदार एन०जी० : इन्सक्रिप्सन्स ऑफ बंगाल, भाग-३, राजशाही, १९२९

१२. मैती, एस.के. (संपा)
मुकर्जी आर०आर० : कार्पस ऑफ बंगाल इन्सक्रिप्सन्स, कलकत्ता-१९६७

१३. राजगुरु एस०एन० : (संपा०) इन्सक्रिप्सन्स ऑफ ओरिसा, भाग-४, भुवनेश्वर, १९५८-१९६६

१४. वार्टस टी० : ह्रेनसाँग ट्रेवल्स इन इण्डिया, लन्दन-१९०७

१५. शर्मा जी०एन० : राजस्थान इतिहास के स्त्रोत, जयपुर-१९७५

१६. सचाऊ एडवर्ड : अल्बेरुनीज इडिया, लन्दन-१९१०

१७. सरकार डी०सी० : सेलेक्ट इन्संक्रिप्सन्स बियरिंग आन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, भाग-१, कलकत्ता-१९६५
: सेलेक्ट इन्सक्रिप्सन्स बियरिंग आन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, भाग-२, नई दिल्ली-१९३३
: इण्डियन एपिग्राफिकल ग्लोसरी, दिल्ली-१९६६

१८. त्रिवेदी एच०वी० : कार्पस इन्सक्रिप्सनम् इण्डिकेरम, भाग-२, नई दिल्ली-१६७८

(द.) कोश एवं विश्वकोश डिक्शनरी :

१. इडगेर्टन एफ०, बुद्धिस्ट हार्यब्रिड संस्कृत डिक्शनरी, दिल्ली-१६७०।

२. इनसाइक्लोपीडिया विट्रैनिका।

३. एण्डरसन दिनेज ए, क्रिटिकल पाली डिक्शनरी, कोपेनहेगन, १६२४-४८१

४. एवरीमेन इन्साइक्लोपीडिया, न्यू लैरोजे इन्साइक्लोपीडिया ऑफ माक्यालोजी, लन्दन-१६२६

५. ए डिक्शनरी ऑफ फिलासफी, सं० एम० ऐजेन्थल तथा पी० युर्दी

६. ए डिक्शनरी ऑफ फिलासफी, सं० डी०डी० रुन्स, लन्दन-१६४५

७. काले, एस०एम०, डिक्शनरी ऑफ पाणिनी, पूना-१६६८

८. कैपलर कार्ल, ए संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, वाराणसी-१६७२

६. गौड़ पी०के० एण्ड कार्वे सी०जी०, वामन शिवराम आप्टेज दि प्रेक्टिकल संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, ३ भागों में, पूना-१६५८

१०. मैकडोनाल्ड, ए०एम०, चेम्बर्स ट्वेन्टीथ सेन्चुरी डिक्शनरी, लन्दन-१६७२

११. मैकडोनेल ए०ए०, संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, लन्दन-१८६३

१२. मैकमिलन कम्पनी और फ्री प्रेस, १६६८, इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन एण्ड ऐथिक्स, जिल्द १-१८, सं०जे० हेस्टिंग्स, न्यूयार्क-१६०८

१३. मोनियर - विलियम्स, एम०, ए संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, पुर्नमुद्रण, दिल्ली-१६७६

१४. रिज डेविड्स, पालि इंग्लिश डिक्शनरी, पुर्नमुद्रण, नई दिल्ली-१६७५

१५. सिम्पसन डी०पी०, कासेल्स न्यू लैटिन डिक्शनरी, लन्दन

१६. संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, (सं०) एम० विलियम्स, (पुर्नमुद्रित) दिल्ली-१६७६

(य.) जर्नल्स कोष, शोध पत्रिका एवं शोध जर्नल्स :

१. ऑवर हेरिटेज

२. इण्डियन ऐण्टीक्वेरी

३. इण्डियन हिस्टारिका क्वार्टली

४. एपीग्राफीया इण्डिका

५. एनाल्स ऑफ दि भण्डारकर आरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा

६. एनुअल रिपोर्टस ऑफ दि आर्कियोलाजिक सर्वे ऑफ इण्डिया, दिल्ली

७. कन्ट्रीब्यूशन टू इण्डियन सोशलॉजी

८. जर्नल ऑफ दि आन्ध्रा हिस्टारिकल रिसर्च सोसायटी

६. जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल

१०. जर्नल ऑफ दि गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद

११. जर्नल ऑफ दि बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी

१२. जर्नल ऑफ यू०पी० हिस्टारिका सोसायटी, लखनऊ

१३. जर्नल ऑफ दि रॉयल सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैंण्ड

१४. जर्नल ऑफ अमेरिकन ओरियन्टल सोसायटी जर्नल ऑफ आइडियाज

१५. जर्नल ऑफ आइडियाज

१६. जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री

१७. जर्नल ऑफ इकनामिक एण्ड सोशलं हिस्ट्री ऑफ द ओरियन्ट

१८. जर्नल ऑफ ईश्वरी प्रसाद इन्स्टीट्यूट ऑफ हिस्ट्री

१६. जर्नल ऑफ एन्शियन्ट इण्डियन हिस्ट्री

२०. जर्नल ऑफ ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट

२१. जर्नल ऑफ द बाम्बे ब्राँच ऑफ द रायल

२२. जर्नल ऑफ बिहार रिसर्च सोसायटी

२३. जर्नल ऑफ द यूनीवर्सिटी ऑफ बम्बई

२४. परामर्श

२५. पुराण

२६. प्रांची ज्योति

२७. प्राच्य – प्रतिभा

२८. प्रोसीडिंग्स एण्ड ट्रान्जेक्शन्स ऑफ आल इण्डिया

२६. ओरियण्टल कांफ्रेन्स

३०. प्रोसीडिंग्स ऑफ द इण्डियन हिस्ट्री काँग्रेस

३१. फिलासफी : ईस्ट एण्ड वेस्ट

३२. भारती : बुलेटिन ऑफ इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर

३३. भारतीय विधा

३४. मानव

३५. विश्वेश्वरानन्द इण्डोलाजिकल जर्नल

३६. स्टडीज इन कम्परेटिव हिस्ट्री एण्ड रिलिजन

३७. हिन्दुत्व

३८. हिस्ट्री ऑफ रिलिजन

३९. हिस्ट्री एण्ड आर्क्यालोजी

परिशिष्ट

परिशिष्ट

वाल्मीकि कालीन स्थान परिचय

अगस्त्य आश्रम	-	नासिक से चौबीस मील दक्षिण-पूर्व
अर्धगंगा	-	कावेरी
अपरताल	-	रामपुर के उत्तर में राम गंगा - तटवर्ती प्रदेश।
अपर विदेह	-	रंगपुर और दीनाजपुर
अर्बुद	-	आबू पर्वत
अयोध्या	-	सरयू के दक्षिण तट पर स्थित।
अंग	-	गंगा के उत्तर-दक्षिण - भागलपुर का इलाका, जिसमें मुंगेर भी शामिल है।
अवंती	-	मालवा की प्राचीन राजधानी।
अंशुमती	-	यमुना नदी का एक प्राचीन नाम।
आनर्त	-	उत्तरी गुजरात
इक्षुमती	-	फर्रुखाबाद जिले की इक्षुला या ईखन नदी।
इन्द्रप्रस्थ	-	दिल्ली
इरावती	-	रावी
इल्वल	-	एलोरा
उज्जिहान	-	उझानी, बदायूं।
उत्कल	-	उड़ीसा
उत्तर कुरु	-	तिब्बत और पूर्वी तुर्किस्तान।
उत्तर गंगा या उत्तानिका	-	रामगंगा नदी।
उशीनर	-	दक्षिणी अफगानिस्तान
ऋष्यमूक	-	विलारी जिले में हंपी के उत्तर में स्थित पर्वत
ऋष्यश्रृंग आश्रम	-	भागलपुर जिले में माधीपुर तहसील में सिंहेश्वर।

कंबोज	-	पामीर, बदख्शां
करुष	-	बघेलखण्ड
कर्णात	-	दक्षिण भारत का एक प्रदेश, जिसमें आजकल बेलगाँव, धारबाड़, बीजापुर, विलारी आदि स्थित है।
कर्मनाशा	-	बिहार के शाहाबाद जिले की पश्चिमी सीमा पर एक नदी।
कलिंग	-	उड़ीसा से दक्षिण तथा द्रविड़ देश से उत्तर, पूर्वी घाट का एक प्रदेश।
काँची	-	काँजीवरम्
कान्यकुब्ज	-	कन्नौज
कांपिल्य	-	कंपिल, फर्रुखाबाद
कामाश्रम	-	बलिया जिले में सरयू गंगा के संगम पर। अब सरयू पूरब से हट गई है।
कालिंदी	-	यमुना नदी का एक प्राचीन नाम।
काशी	-	वह जनपद, जिसकी राजधानी वाराणसी थी।
किष्किंधा	-	विलारी जिले में, हंपी से चार मील दूर तुंगभद्रा नदी पर स्थित वर्तमान अनागोंदी।
किरात	-	भारत का पूर्वी सीमा प्रदेश।
कुरुजांगल	-	हस्तिनापुर के उत्तर पश्चिम की ओर सरहिंद में।
कुलिंद	-	सहारनपुर जिला।
कूटिकोष्टिका	-	कौसिला नदी, रामगंगा की पूर्वी शाखा।
कृष्णवेणी	-	कृष्णा और वेणा नदियों की संयुक्त धारा।
कृतमाला	-	वैगा नदी, जिस पर मदुरा स्थित है।
केरल	-	कनाडा, मालाबार, त्रावणकोर।
कैलास	-	मानवसरोवर से पच्चीस मील उत्तर।
कोसल	-	(उत्तर) अवध।
कौशांबी	-	प्रयाग से तीस मील पश्चिम यमुना के बांये किनारे पर स्थित

कोसम नासक एक प्राचीन गाँव।

कौशिकी	–	कोसी नदी, गंगा की एक शाखा।
गांधार	–	तक्षशिला से काबुल तक का प्रदेश।
गोकर्ण	–	गंगोत्री से दो मील आगे, गोमुखी, जहाँ भगीरथ ने गंगा को भूतल पर लाने के लिये तप किया था।
गोमती	–	यह लखनऊ में स्थित है।
चंद्रभागा	–	चिनाव।
चंपा	–	भागलपुर।
चर्म० वती	–	चंबल।
चित्रकूट	–	चित्रकूट स्टेशन के समीप कामतानाथ गिरि।
चित्रोत्पला	–	महानदी।
जाबालिपत्तन	–	जबलपुर।
तक्षशिला	–	पूर्वी गंधार की राजधानी। रावलपिंडी जिले में तक्षिला गाँव।
तमसा	–	इस नाम की दो नदियां रामायण से सूचित होती हैं- एक अयोध्या से दक्षिण सरयू और गोमती के बीच में बहती है, जिसका नाम वेदश्रुति भी है, दूसरी गंगा के दक्षिण में टोंस, जिस पर वाल्मीकि का आश्रम स्थित था।
दक्षिण कोसल	–	छत्तीसगढ़।
दण्डकारण्य	–	चित्रकूट से लेकर गोदावरी तक का वन प्रदेश, डा० भंडारकर के अनुसार महाराष्ट्र।
दशार्ण	–	भेलसा, वेगवती, बुंदेलखण्ड की अन्य छोटी नदियों का प्रदेश।
धर्मारण्य	–	कृतयुग में उत्कल में आर्यो का अधिनिवेश (राम से पूर्व)।
नंदिग्राम	–	अयोध्या से एक कोस आधुनिक नंदगांव, फैजाबाद से आठ-नौ मील दक्षिण।
नैमिषारण्य	–	गोमती नदी पर स्थित, आधुनिक निमसर, लखनऊ से पैतालीस मील उत्तर-पश्चिम।

पंचवटी	–	नासिक।
पयोष्णी	–	ताप्ती।
पर्णाशा	–	बनारस।
पंपासर	–	तुंगभद्रा की एक सहायक नदी, जो ऋष्यमूक पर्वत से निकलती है।
पंचाल	–	रुहेलखण्ड।
प्रस्रवण पर्वत	–	तुंगभद्रा नदी-वर्ती एक पर्वतमाला।
वाल्हीक	–	वल्ख।
मगध	–	दक्षिणी बिहार।
मतंग आश्रम	–	विलारी जिले में पंपा के पास।
मत्स्य	–	अलवर-भरतपुर।
भद्र	–	चिनाब के पूर्व में उत्तरी पंजाब का एक जनपद।
मधुपुरी	–	मथुरा।
मधुमंत	–	दंडकारण्य में स्थित।
मध्यप्रदेश	–	सरस्वती, हिमालय, प्रयाग और विंध्य के मध्य का देश।
मंदाकिनी	–	चित्रकूट या पयस्विनी नदी, जो ऋष्यवान पर्वत से निकलकर चित्रकूट में बहती हुई यमुना में जा मिलती है।
महेंद्र पर्वत	–	पूर्वी घाट में गंजाम जिले में।
महोदधि	–	बंगाल की खाड़ी।
मागधी	–	सोन नदी।
माल्यवान पर्वत	–	किष्किधा के पास प्रस्रवण-पर्वत माला का एक शिखर।
मालिनी	–	प्रलंब और अपरताल नामक प्राचीन जिलों के बीच बहनेवाली चुक (शुक), नदी, जो अयोध्या से पचास मील उत्तर सरयू में गिरती है।
मिथिला	–	विदेह में जनक से दक्षिण एक नगर।
मैनाक	–	लंका और भारत के मध्यवर्ती समुद्र में स्थित एक पर्वत।

यवद्वीप	-	जावा।
रत्नाकर	-	अरब सागर।
रसातल	-	पश्चिमी तारतार।
राजगृह	-	केकय देश की राजधानी गिरिव्रज का दूसरा नाम। बौद्धकाल में यह मगध की प्राचीन राजधानी का था।
रामगिरि	-	नागपुर से चौबीस मील उत्तर रामटेक, जहाँ राम ने शंबूक वध किया था।
लंका	-	परंपरानुसार वर्तमान श्रीलंका (सिलोन)। कुछ विद्वानों के अनुसार पूर्वी मध्यप्रदेश, मैडेगास्कर, अरब सागर के मलय द्वीप या आस्ट्रेलिया।
लवपुर	-	लाहौर (राम-पुत्र लव द्वारा स्थापित)।
लोहित्या	-	ब्रह्मपुत्र।
वत्स	-	प्रयाग से पश्चिम का प्रदेश, जिसकी राजधानी कौशांबी थी।
वाराणसी	-	बनारस।
वाल्मीकि आश्रम	-	गंगा के दक्षिण में, तमसा नदी पर स्थित, प्रयाग से दस कोस। प्रयाग से चित्रकूट जाते समय राम यहाँ आये थे। किंतु उत्तरकांड के अनुसार यह गंगा पर कानपुर से चौदह मील आधुनिक विठूर है।
वितस्ता	-	झेलम।
विदर्भ	-	बरार।
विदिशा	-	भेलसा।
विदेह	-	तिरहुत।
विपाशा	-	व्यास नदी।
विशाला	-	मुजफ्फरपुर (बिहार) जिले में बेसाड़। रामायण के समय में यह गंगा के उत्तरी किनारे पर स्थित थी। यही बौद्ध काल की वैशाली थी।

विश्वामित्र आश्रम	-	बक्सर का चरित्र-वन।
वेगवती	-	बेतवा।
वेदश्रुति	-	कोसल जनपद में सरयू के दक्षिण में सबसे पहले मिलने वाली एक छोटी नदी, जिसे राम ने अपनी वनयात्रा में पार किया था। इसका वर्तमान नाम तानसा या तमसा है।
बंग	-	बंगाल।
शतद्रुया	-	शुतुद्रि - सतलज
शाल्मली	-	चन्द्रभागा की सहायक नदी।
शूर	-	मथुरा के आस-पास का प्रदेश
श्रृंगवेरपुर	-	सिंगरौर, प्रयाग से अठारह मील वायव्य दिशा में गंगा तट पर स्थित
श्रावस्ती	-	राप्ती पर स्थित सहेत महेत।
सदानीरा	-	राप्ती
सरयू	-	घघ्घर
सरस्वती	-	घाघरा
सह्य	-	सह्याद्रि, पश्चिमी घाट
सांकाश्या	-	फर्रुखाबाद जिले में फतेहगढ़ के पश्चिम की ओर तेइस मील इक्षुमती नदी पर कपित्थ नाम से प्रसिद्ध।
सिद्धाश्रम	-	शाहाबाद जिले में बक्सर का पश्चिमी भाग।
सिंधु	-	उत्तरी सिंधु नदी का देश।
सुतीक्ष्ण आश्रम	-	मंदाकिनी के उद्गम के पास, बुन्देलखण्ड की भूतपूर्व पन्ना रियासत में।
सुवर्ण द्वीप	-	सुमात्रा
सौराष्ट्र	-	काठियावाड़
स्यंदिका	-	गोमती और गंगा के बीच कोसल की दक्षिणी सीमा पर बहने वाली सई नदी।

सौपीर	-	उत्तरी सिंधु
हस्तिनापुर	-	दिल्ली और मेरठ से उत्तर-पूर्व में गंगा पर स्थित।
हिरण्यवाह	-	सोन नदी
हलादिनी	-	केकय और शतद्रु के बीच की कोई नदी, जिसे भरत ने अयोध्या लौटते समय पार किया था।
त्रिकूट	-	दक्षिण-पूर्वी लंका का एक पर्वत।

शोध-प्रबन्ध का मूल्यांकन

यह शोध प्रबन्ध छात्रा के अथक परिश्रम का परिणाम है। पाँच वर्ष की अवधि में शोध छात्रा द्वारा अपने विषय का गंभीर अध्ययन किया गया है। रामायण कालीन समाज एवं अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित जितनी भी पुस्तकें मुझे जहाँ भी उपलब्ध हुयी है वहाँ से लाकर उनको पढ़ने का मैने प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त प्रचलित परम्पराओं तथा ध ार्मविधाओं का भी मैंने गंभीर अध्ययन किया है तथा इसके लेखन में शोधपरक गवेणात्मक शैली को मैंने अपनाया है। विषय की गम्भीरता को देखते हुये विशिष्ट शब्दों का व्याकरण सम्मत विश्लेषण किया गया है। तथा यह भी प्रयास करने की कोशिश की गयी है कि उनका व्यावहारिक स्वरूप भी शोध-प्रबन्ध में स्पष्ट रूप से दिखलायी दे। यह शोध प्रबन्ध मुझे एक प्रकार का आत्मसन्तोष और सन्तुष्टि प्रदान करता है। मैं इसको एक मूल्यावान उपलब्धि मानती हूँ कि मेरा यह परिश्रम सार्थक है और भविष्य में समुचित प्रतिफल निम्न दृष्टिकोण को अपनाकर किया है।

१. शोध के लिये अपनायी गयी विधि– मेरा यह शोध प्रबन्ध ''रामायण में प्रतिबिन्धित भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था'' हिन्दी, और सामाजिक विषय से सम्बन्धित है तथा यह इतिहास से भी जुड़ा हुआ है। अतः जो शोध विधि, शोध विज्ञान में निर्धारित की गई है उसी का अनुकरण मैंने अपने शोध प्रबन्ध में किया है तथा उन बिन्दुओं का ध यान में रखते हुये मैंने यह शोधकार्य किया है जो शोध के लिये निर्धारित किये जाते है। ये बिन्दु निम्नलिखित है।

२. स्थिति एवं स्थल का अवलोकन– शोध-प्रबन्ध में रामायण के कालक्रम का पता लगाने के लिये उन स्थानों का भ्रमण किया जहाँ उनके वास्तविक साक्ष्य उपलब्ध है रामायण कालीन समाज का हमने गहराई से अध्ययन किया है। इसके लिये तमाम तरह के अभिलेखों का सहारा लेना पड़ा है। कुछ अभिलेख हमें मूर्तियों से प्राप्त हुये है। ऐसी मूर्तियां हमें चित्रकूट, कालिंजर, खजुराहो के जैन मंदिर तथा देवगढ़ में उपलब्ध हुयी है। इसके अतिरिक्त भूमि व्यवस्था का हमने अवलोकन किया है। जिसमें रामायण कालीन भूमि व्यवस्था कैसी थी। तत्कालीन समय में भूमि दान किस रूप में की जाती थी। उनके ताम्रपत्र भी देखने को

मुख्य रूप से जन्म विवाह, एवं अन्त्येष्टि संस्कारों में दान की परम्परायें हजारों वर्ष पुरानी है। और प्रचलित रूढ़ियों के कारण आज भी विधमान है। इन सभी बातों का वर्णन आज भी हमें जन परम्पराओं से देखने को मिलता है।

६. व्यक्तिगत सर्वेक्षण– रामायण काल की तिथि जानने के लिये, तथा वाल्मीकि का जीवन परिचय समझने के लिये हमने बुद्धिजीवियों, इतिहासकारों, संस्कृत विद्यालय के आचार्यो जैसे बाँदा में रामलीला मैदान में जो संस्कृत विद्यालय है वहाँ पर जाकर मैने वहाँ के प्रधानध्यापक पंडित जी से काफी विचार विमर्श किया, और मंदिर के पुजारियों एवं महन्तों से संपर्क स्थापित किया तथा उनके कई एक प्रश्न किये। उन्होने अपनी बुद्धि के अनुसार मेरे प्रश्नों का उत्तर दिया।

७. शोध सहयोग– शोध प्रबन्ध लिखने के लिये हमें जिन व्यक्तियों और जिन संस्थाओं से सहयोग मिला उन्हीं की वजह से यह शोध कार्य पूर्णता की ओर पहुँचा। पं० जे० एन० पी० जी० कॉलेज बाँदा के इतिहास विभाग के सेवानिवृत विभागाध्यक्ष प्रो० बी० एन० रॉय जी का परामर्श एवं प्रदर्शन इस शोध प्रबन्ध का निर्देशन करता रहा है। उन्हीं की कृपा से यह शोध-प्रबन्ध अपने लक्ष्य की ओर बढ़ा। साथ ही इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के पुस्तकालय तथा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के पुस्तकालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से काफी मात्रा में पुस्तकीय सहायता प्राप्त हुयी। यह शोध प्रबन्ध इन सभी सहयोग का परिणाम है।

८. अब तक रामायण पर हुये शोध कार्यो की तुलनात्मक समीक्षा– अनुसंधान एवं अन्वेषण बुद्धिमान मानव की प्रकृति है। वह हमेशा नवीन खोज के लिये प्रयास करता रहता है। उसकी विषय वस्तु में अन्तर होता है, शोध शैली में अन्तर होता है। किन्तु वह प्राचीनता को मानसिक कोष में सुरक्षित रखकर नवीनता की खोज में आगे बढ़ता है। ब्रिटिश शासनकाल में वर्तमान प्रणाली का उदय हुआ तथं सन १८६० से लेकर अब तक अनेक शोधकार्य विभिन्न विषयों में हुये है। ये शोधकार्य इतिहास में भी हुये है, जिन व्यक्तियों ने शोधकार्य किया है उन्हें योग्यतानुसारा डी० फिल०, पी० एच० डी० और डी० लिट० आदि उपाधियों से सम्मानित किया जाता है। रामायण पर भी अनेक विद्वानों ने शोध कार्य किया है। इस क्षेत्र में लैस्सेन नामक जर्मन विद्वान अग्रणी माने जाते है। कुछ भारतीय विद्वानों ने

भी अंग्रेजी में रामायण की अंतरंग परीक्षा की है। स्वर्गीय चिंतामणि विनायक वैद्य की 'द रिडल ऑफ द रामायण' (बम्बई, १६०६) में काव्य और इतिहास की दृष्टि से वाल्मीकि की समालोचना की गई है। कुमारी पी० सी० धर्मा की 'द रामायण पॉलिटी' (मद्रास, १६४१) में रामायणकालीन राजनीतिक परिस्थितियों का विश्लेषण है। स्वर्गीय वी० एस० श्री निवास शास्त्री की 'लेक्चर्ज ऑन द रामायण' (मद्रास, १६४६) में रामायण के पात्रों का सुन्दर चरित्र-चित्रण किया गया है। के० एस० राम स्वामी शास्त्री की 'स्टडीज इन द रामायण' (बड़ौदा, १६४४) में रामायण का ऐतिहासिक, तुलनात्मक एवं काव्यशास्त्री समीक्षण किया गया है। डी० सी० सेन, वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितसार, नीलमाधवसेन, शिवदास चौधरी, सी० एन० मेहता, वी० एस० सुकथनकर, सी० शिवराममूर्ति, एस० सी० सरकार, नवीनचन्द्र दास, टी० परमशिव ऐयर, जे० एन० समद्दर, नीलकंठ शास्त्री, आदि भारतीय विद्वानों आदि दृष्टियों से ग्रन्थ तथा लेख लिखे है। पर इनमें किसी का भी ध्यान रामायण के सामाजिक एवं सांस्कृतिक अनुसंधान की ओर आकृष्ट नहीं हुआ है। हिन्दी के रामायण सम्बन्धी शोधपूर्ण साहित्य में सर्वाधिक उल्लेखनीय कृति यूरोपीय विद्वान डा० कामिल वुल्के 'की रामकथा' (प्रयाग, १६५०) है, जिसमें रामकथा की उत्पत्ति और विकास के सम्बन्ध में विस्तार से अन्वेषण किया गया है। वाल्मीकि का सामाजिक सांस्कृतिक अध्ययन तो हिन्दी में भी नितांत उपेक्षित रहा है। प्राचीन भारतीय संस्कृति विषयक जितने भी ग्रन्थ हिन्दी अंगेजी में देखने में आते है, उनमें प्रागैतिहासिक काल का विवेचन करते समय वेदों, उपनिषदों, महाभारत आदि की चर्चा तो की जाती है किन्तु रामायणकालीन समाज एवं संस्कृति की प्रायः उपेक्षा कर दी जाती है। यह फिर उसका प्रसंगात् मात्र उल्लेख कर दिया जाता है, प्रस्तुत पुस्तक में इस शोध प्रबन्ध में मेरे द्वारा रामायणकालीन सामाजिक और सांस्कृतिक के अध्ययन द्वारा इस कमी को पूरा करने का प्रयास किया जायेगा। शोध प्रबन्ध में रामायणकालीन समाज एवं संस्कृति को नवीन वैज्ञानिक शोधपरक दृष्टि से देखा गया है और उसकी समुचित समालोचना प्रस्तुत की गयी है।

शोध परिणाम– जिस शोध प्रबन्ध को पाँच वर्ष के अथक परिश्रम के पश्चात् सृजित किया गया है तथा जिसमें उचित परामर्श और निर्देशन का अनुसरण किया गया है, वह शोध प्रबन्ध निश्चित ही मेरे परिश्रम का एवं वास्तविक मूल्यांकन है।

शोध प्रबन्ध की उपयोगिता– शोध प्रबन्ध की उपयोगिता शोध छात्र के लिये केवल पी० एच० डी० अथवा डी० लिट० की उपाधि प्राप्त करना भर नहीं है अपितु शोधार्थिनी अपने शोध कार्य से अपने शोध विषय में निपुणता प्राप्त कर लेती है तथा अपने शोध विषय का अधिकृत विद्वान माना जाने लगता है। इस शोध का वास्तविक लाभ उन पाठकों को विशेष रूप से मिलेगा। जो गम्भीरतापूर्वक इस शोध प्रबन्ध का अध्ययन करेगें तथा शोधकर्ता की बुद्धि का मूल्यांकन करेगें। यदि कोई शोधकर्ता अथवा विचारक अथवा इतिहासकार भारतीय धर्म, समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था, भूमि व्यवस्था, वाल्मीकि का जीवन परिचय आदि से सम्बन्धित कार्य करेगा तो उसके लिये यह शोध निश्चय ही उपयोगी सिद्ध हो इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर इस शोध-प्रबन्ध का सृजन किया गया है। तथा शोधकर्ता उन सभी का कृतज्ञ रहेगा जो इस शोध प्रबन्ध का अध्ययन करेंगे तथा शोधकर्ता के श्रम मूल्यांकन करेगें। निश्चय ही यह शोध प्रबन्ध बड़ा उपयोगी है।

भावी शोधार्थियों के लिये परामर्श– जहाँ शोध प्रबन्ध विषय की सामग्री को व्यक्त करते हैं और शोध के उद्देश्य को व्याख्या के साथ प्रस्तुत करते हैं वहीं ये शोध प्रबन्ध भावी छात्रों के लिये उचित मार्ग दर्शन का कार्य भी करते है। मेरा यह शोध प्रबन्ध प्रारम्भ से लेकर कुषाण काल तक के समय की सभ्यता और संस्कृति को उजागर करता है। साथ ही रामायण काल का समय, वाल्मीकि का संक्षिप्त जीवन परिचय एवं रामायण के पूर्व का समाज एवं संस्कृति की एक झलक प्रस्तुत करता है। तथा रामायणकालीन समाज एवं संस्कृति के पक्ष को व्यक्त करता है, तथा रामायणकालीन भूमि व्यवस्था तथा रामायण कालीन उधोग-धन्धे तथा रामायणकालीन समाज एवं संस्कृति पर वैदेशिक प्रभाव को दिखाता है। अब मैं यह प्रयास करूँगी जो भी इससे सम्बन्धित शोध-प्रबन्ध कार्य करें वह कुछ सीमाओं से हटकर तथा कुछ और नवीनता को लेते हुये अपने कार्य को आगे बढ़ायें।